



# गांधी वध और में

★

गोपाल गोउरी

★

वित्तन्त्रा प्रकाशन  
पुणे ४ ( महाराष्ट्र )

मूल्य (५)

प्रकाशक—

गोपाल विनायक गोडसे

वितस्ता प्रकाशन

१२०६/१ व, शिवाजीनगर, पुणे ४ ( महाराष्ट्र )

\*

शाखा :

११३/२४८, स्वल्प नगर, कानपूर २ ( उत्तर प्रदेश )

\*

बंबई के वितरक .

हिन्दी साहित्य सदन

होराबाग, सी० पी० टैंक, बंबई-४ ( महाराष्ट्र )

\*

कलकत्ता में प्राप्तिस्थान :

हिन्दी प्रचारक प्रतिष्ठान

१९५/१ महात्मा गांधी मार्ग, कलकत्ता-७

\*

प्रथमावृत्ति ( राष्ट्रभाषा में ) ४००० प्रति

© गोपाल गोडसे

१२०६/१ व, शिवाजी नगर, पुणे-४

\*

अनुवाद सहायक

श्री धर्मेन्द्र शर्मा

विराटनगर, जयपुर ( राजस्थान )

\*

मूल्य १४०० ( २०३० वि० सं० )

\*

- मुद्रक -

आर्यभूषण प्रेस

अहमदाबाद, वाराणसी-१

[ मूल मराठी संस्करण की श्री ग. वा वेहेरे की प्रस्तावना ]

मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूँ। किसी पक्षका सदस्य नहीं हूँ। किसी राजनीतिक तत्वज्ञानका प्रचारक नहीं हूँ इसलिये इस ग्रंथ प्रकाशनके पीछे कोई उद्देश्य न छिपकाये जायँ। व्यवसाय है जो हुआ है उसका अन्वयार्थ लगाना। और इसलिये, जो हुवा है उसका शब्दांकन करना मेरा कर्तव्य है। फिर भी, मेरे मित्रोंने परामर्श दिया कि मैं यह ग्रंथ प्रकाशित न करूँ। गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या लाभ है ऐसा भी पूछा गया। मैंने इतना ही कहा कि इतिहास का हेतु ही वही रहता है। इतिहास अप्रिय हो तो भी उसे बिना लिखे पर्याय नहीं है।

मुझे आशा नहीं थी कि यह पुस्तक कभी आपके हाथों पहुँच जायेगी। विषय उत्तेजक, राज्यकर्ता असहिष्णु, कुछ जन कुछ शब्दमात्र से ही भय खानेवाले। ऐसी अवस्था में एक अपराधी की कहानी मुद्रित करने का दुःसाहस कौन करेगा ?

और वह अपराधी भी सामान्य श्रेणिका नहीं। महात्मा गांधीका वधक। महात्मा गांधी उन दिनोंके श्रेष्ठ पुरुष। उनकी कीर्तिमें सतपनका प्रवाह मिला हुवा। ऐसे व्यक्तिका वध वह भी पूरे विचार विमर्श के साथ, षडयन्त्र रचकर किया गया। गोपाल गोडसे इस कहानीका निवेदक उस षडयन्त्र के अभियोग का एक प्रमुख अभियुक्त, जिसने वध किया उस नयूराम गोडसेका छोटा सगा भाई। यह अपराधी अपने अठारह वर्षों के कारावास के पश्चात् अपनी कथा विशेषकर गांधी वध की कथा कहता है, कोई भी राजनीतिक उद्देश्य न रखकर।

गांधी का वधक यदि गँवार, स्वार्थी, अनाड़ी या भ्रमिष्ठ सा होता तो गांधीजी के नामका व्यापार करनेवाले दुखी अवश्य होते फिर भी क्रुद्ध न होते। गांधीवादकी अथवा



गांधीकी प्रतिमा उससे कलकित न होती। किंतु वधक, अर्थात् वध करनेवाले, वधकी प्रत्यक्ष साहाय्य करनेवाले अथवा इस घटनाकी ओर अनाकानी करनेवाले सबजन सुशिक्षित थे, सज्जन थे, देशभक्त थे—!

जी हाँ! वे देशभक्त तो थे ही। इस देशपर गांधीजीका जितना प्रेम था उतनाही इन सब जनोंका अपनी मातृभूमिपर था। वरन् मातृभूमिपर उनका जो प्रेम था उसीने गांधी-वध जैसा कृत्य करनेको उन्हे उद्यत किया। उस कृत्यका उत्तरदायित्व पिछले पाँच पचास वर्षों के राजनीतिक नेतृत्व पर, विशेषकर गांधीजीके मुसलमानोंके संबंध में जो धारणाएँ थी, कि जिससे देशका विभाजन हुआ, सहस्रावधि सिंधी, पंजाबी, बंगाली, भारतीयोंका सर्वनाश हुआ, उसपर तथा उसीके समान कई कारणोंपर निर्भर हो सकता है। गांधी-वध केवल एक हननका कृत्य, एक खून, इतनेही सीमित अर्थसे इस घटनाको देखना न्याय्य न होगा। वह एक राजनीतिक वध था।

उस वधमें व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा सत्ताकी अभिलाषा न थी। अपितु अगतिकता थी। गलत मार्गसे यह रोकनेकी अनाडी-चेष्टा थी। वधकोंने यह नहीं सोचा कि वध मनुष्य का किया जा सकता है तत्त्वका नहीं। इसलिये गांधीजी मारे जा सके किंतु गांधीवाद जैसा का तैसाही रहा—बढ़ती मात्रा में।

आजके परिवर्तनशील समयमें हम कमसे कम इतना तो मुद्रित कर सकते हैं। आज गांधी तत्त्वज्ञान अंतिम साँसे ले लाहौरकी डेवढीपर रक्तसे लथपथ हो खड़ा है। अहिंसा सत्य की ध्वजियाँ पूरे भारतभर बिखरी हैं। और उन्नीस बीस बरसोंमें स्वातंत्र्य की तरक की अवस्था प्राप्त हुई है।

गांधीवध अब एक इतिहास मात्र है। इतिहास को सत्य के बिना अन्य पर्याय नहीं होता। इसलिये यह ग्रन्थ सत्य की खोज के मार्ग की एक विनम्र चेष्टा मात्र है। लेखक का अधिकार क्षेत्र मर्यादित है, उसका उसे और मुझको ज्ञान है।

विधि के बंधन गृहीत है इसलिए हमारी शक्ति को मर्यादा है। इस स्थिति को पाठक समझे।

वर्ष बीतेगे। नथुराम गोडसे का विस्मरण हो जायगा। सावरकर विस्मृति में जायेंगे। स्यात गांधी नेहरू ये आज के देवता विस्मृत होंगे। भुलानेवाली परिस्थिति ही निर्माण होगी। किंतु यह भूभाग वैसे ही रहेगा। यहाँ मनुष्य रहेगे। इतिहास के पिछले पन्ने देखेंगे। इस वैभवशाली देश के टुकड़े बचो हुए इसका इतिहास पढ़ेंगे। एक कायर राजनीति का वह कलंकित भाग, उसका रक्तरंजित गंगा सिंधु नदियों के परिसर का इतिहास उनकी दृष्टि के सामने आयेगा। उस समय गांधी अवश्य ध्यान में आयेंगे, नेहरू ध्यान में आयेंगे सावरकरजी का स्मरण तो अवश्य होगा किंतु भिन्न भिन्न संदर्भों में। ऐसे इतिहासकारों को नथुराम गोडसे का एक अत्यंत तुच्छ मनुष्य का सरसरा स्मरण उस समय होगा।

मनुष्य जाति को उन्नति की ओर ले जानेवाले भोले तत्वज्ञान यदि त्रुटित स्थान पर प्रयोजित किये गये तो देश की भूमि रक्त से भीग जाती है इसका और एक पाठ मिलेगा। जैसे पृथ्वीराज को मिला जैसे देवगिरी के रामदेवराय को मिला।

और उस दिन के इतिहासकार इस देश का आज का इतिहास लिखेंगे जिसमें मृत बुद्धवाद के लिए लिखे गये पृष्ठों के समान ही मृत गांधीवाद की समालोचना करनेवाले कुछ पृष्ठ होंगे।

समय को कोई रोक नहीं सकता। कोई वैसा चाहे तो भी वह असंभव है। देखते देखते बीस बरस बीत गए। इतिहास भिन्न सत्य कहने लगा, और कौन कह सकता है? कुछ वर्षों में यहाँ पर भिन्न स्वप्न स्फुरेंगे।

कौन जाने उस दिन समय किसके पल्ले क्या न्याय बाँधेगा।

१२. १०. १९६७

—ग. वा. वेहेरे.



## चूनिक्का

गाधी वव और मैं यह ग्रथ मराठी में 'गाधी हत्या आणि मी' नाम से १० अक्तूबर १९६७ को ४००० प्रतियो में प्रकाशित हुआ। उसके पूर्व लगभग डेढ़ वर्ष तक पुस्तक के प्रकरण लेखमात्र के रूप में 'पैजण' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ करते थे।

पुस्तक प्रकाशित होने के पश्चात् दिनांक ६ दिसंबर १९६७ को दिल्ली प्रशासन ने एक आज्ञापत्र द्वारा उस मराठी पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगाया और पुस्तक की प्रतियो को समपहृत ( जप्त ) करने का आदेश दिया।

दिनांक २५-१-६८ को लेखक के घर से एक प्रति समपहृत हुई। तथा प्रकाशक श्री ग० बा० वेहेरे इनके अस्मिता प्रकाशन कार्यालय से भी दो प्रतियाँ दूसरे दिन समपहृत हुईं।

महाराष्ट्र राज्य के उच्च न्यायालय, बम्बई में लेखक और प्रकाशक ने याचिका प्रस्तुत की। उसका निर्णय दि० ६-८-१९६९ को हुआ। पुस्तक बंध-मुक्त हुई।

निर्णय पत्र २१७ पन्नो का है। अतः मैं लेखक को ३००० रुपया और प्रकाशक को १००० रुपया क्षतिपूर्ति रूप में शासन से प्राप्त करने का आदेश दिया गया।

प्रशासन का आक्षेप था कि इस पुस्तक से हिन्दुस्थान के मुसलमान और हिन्दू इनके बीच वैमनस्य निर्माण हो सकता है। परन्तु पुस्तक को पूर्ण छानबीन करने के उपरान्त न्यायमूर्तियो ने अपना अभिप्राय दिया कि पुस्तक में इस प्रकार का कोई लेखन नहीं है।

पुस्तक दुबारा छपी। वह ८००० हजार की सख्या में थी। अब तीसरा संस्करण भी प्रकाशित हो रहा है। आज उसी पुस्तक का हिन्दी संस्करण पाठको को प्रस्तुत किया जा रहा है।

\*

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	क्या गांधीवध टाला नहीं जा सकता था ?	३
२	पहयत्र कब रचा गया होगा ? ....	१२
३.	नथुराम की मन स्थिति .. .	२८
४.	गांधी दण्ड का वह दिन ....	३३
५	नथूराम ! हे राम ! ....	५०
६.	उत्सर्ग ....	९३
७.	मेरी राख सिंधु-सरिता में बहा देना !	१०६
८	अभियुक्त विनायक दामोदर सावरकर	१२१
९.	वियोग के दिन ....	१६७
१०	वन्दोकरण से लाल किला ....	१९३
११	प्रकाश से अंधकार की ओर . .	२१६
१२	अधरे पथ की यात्रा .. .	२३९
१३	अधकार ! अधकार ! ....	२६४
१४.	यन्त्रणा .. .	२९६
१५.	स्वाँस के लिये प्रयास ....	३१५
१६.	प्रकाश की प्रथम किरण ....	३३९
१७	और अंत में ....	३६०
१८	दुवारा भेंट ....	३६५
१९	निर्णय पत्र का सारांश ....	३६८



श्री गोपाल विनायक गोडसे ( लेखक )

तथा

सौ० सिधु गोपाल गोडसे ( लेखक की पत्नी )



## आमुख

पचास फरवरी १९४८ । बम्बई-पूना सयान-पथ के ( रेल पथके ) कामसेत स्थानकसे दस मील दूर, उकसाण नामक अपने ग्राम में मैं गया था । उसी दिन वहाँ बम्बई-आरक्षी दल ( Police Force ) का एक पथक आ पहुँचा । पथक प्रमुखने मुझे गांधीवध के 'पडयत्र' में भाग लेने के आरोप में पकड़कर बम्बई पहुँचा दिया ।

दिल्ली के लाल किले में स्थित विशेष न्यायालय में यह अभियोग चला । अभियोग लगाने के पश्चात् उसे सिद्ध करने का उत्तरदायित्व वादी अथवा अभियोजको का होता है । अभियुक्त मूक रहेगा अथवा आरोप अस्वीकार करेगा । मेरा कहना था कि मेरा उक्त पडयत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है । मेरा कथन शपथपूर्वक नहीं था । अभियोजको ( Prosecutors ) ने मेरा उस पडयत्र में सम्मिलित होना सिद्ध कर दिया । दिनांक १० फरवरी १९४९ को मुझे आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया । दिनांक १३ अक्टूबर १९६४ को मैं प्राचीरो के सीमित ससार से मुक्त हुआ ।

गांधीजीका अस्त्राचार से अत यह घटना आधुनिक भारतीय इतिहास का एक पृष्ठ है । गांधी-चरित्र का वह अन्तिम अध्याय है । यदि उसे छोड़ दिया जाय तो गांधी चरित्र अपूर्ण रह जाता है और यदि उसे विकृतत्प से प्रस्तुत किया जाय तो गांधी चरित्र इतिहास की सज्ञा नहीं पा सकता ।

न्यायालयीन निर्णय ने गांधी-वध में मेरा सीधा सम्बन्ध जोड़ दिया था, भले ही मैंने उस आरोप को स्वीकार नहीं किया, किन्तु शासन के सशक्त तंत्र ने मुझपर पूरे प्रमाणों के साथ आरोप भी सिद्ध किया, यह एक अमिट सत्य है ।

न्यायालय में अभियोग अथवा अभियुक्तों से सम्बन्धित सभी तथ्य प्रकट होते हो, ऐसा नहीं है । अभियुक्त और अभियोजक, दोनों अपने-अपने हितों की



दृष्टि से, अपने पक्ष की अधिकाधिक पुष्टि के लिए अथवा पुष्टि में हानि न आवे इसलिये अनेक तथ्यों और घटनाओं को जानबूझकर छोड़ देते हैं। गांधी-वध से तथाकथित सम्बन्धित आजन्म कारावास का दंड प्राप्त सभी अभियुक्त आज कारावास से मुक्त हो चुके हैं। उनमें से मैं एक हूँ। इस महत्वपूर्ण घटना के, भारतीय इतिहास के एक अप्रिय अध्याय के तथ्यों को, इतिहास-जिज्ञासु पाठकों के लाभ की दृष्टि से भलीभाँति प्रकट करना मेरा उद्देश्य है।

इस अंतिम चरण में गांधी-वध के परिणामों के सस्मरण भी समाविष्ट हैं। क्योंकि गांधी-जीवन के अंतिम कालखंडसे उसके सूत्र धनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं।

आज जब न गांधीजी जीवित हैं न नयूराम, न नाना आपटे ही विद्यमान हैं और तीनो आजीवन कारावास दंडित भी अपनी दंडावधि पूरी करने के पश्चात् मुक्त कर दिये गये हैं, तब 'मरणान्तानि वैराणि' के न्यायक्रम से गांधीजी के प्रति यदि उनके जीवनकाल में कोई दुर्भावना रही भी हो, तो भी, किसी प्रकार की दुर्भावना रखना उसे अब उचित प्रतीत नहीं होता। कारागृह में मैं गांधी जयंती के आयोजन में सम्मिलित होता रहा हूँ। कई बार ऐसे आयोजनों की रूपरेखा भी मैंने ही बनायी है। यह सब स्वीकार करते हुए मुझे कोई सकोच नहीं होता। न तो किसी दवाव अथवा भय से मैं ऐसा करता था, न इस कारण मैं पथभ्रष्ट अथवा सिद्धांतच्युत हुआ, ऐसा मैंने कभी अनुभव किया है। इसीप्रकार गांधीजी के वध का निश्चय पूर्ण करनेवालों अथवा उनसे सम्बन्धित जनों के प्रति भी किसी प्रकार का पूर्वग्रह या दुर्भावना नहीं रखी जानी चाहिये। इस संपूर्ण घटनाक्रम को इतिहास की दृष्टि से ही देखा जाना चाहिये और उसी दृष्टि से उसपर विचार होना चाहिये। यही मेरा निवेदन है, जिसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करना पाठकों पर निर्भर है।

गोपाल विनायक गोडसे

दि २७ मार्च १९६६

१२०६/१ व, शिवाजीनगर

पृष्ठ ४

## क्या गांधी बंध टाला नहीं जा सकता था ?

‘जन्म से ही मनुष्य के कलाट पर उसका भविष्य अंकित रहता है’, ऐसी कहावत है। इस पूर्वलिखित विधि-लेख को अक्षरगत पढ़कर अपने भविष्य को जानने का मनुष्य प्रयत्न करता रहा है, किन्तु उसकी जिज्ञासा शान्त नहीं हो पायी है। यदि वह अपना भविष्य पढ़ने में सफल हो गया होता तो अपने जीवन की असफलताओं को टालना उसके लिए अत्यंत सरल हो जाता और उस दशा में ‘भाग्य की अनिवार्यता’ की कहावत निरर्थक हो जाती।

जीवन की परिणति मृत्यु है, यह सभी लोग भलीभांति जानते हैं। इस मृत्यु का समय, निमित्त और घटनाक्रम विवि-निर्धारित होता है। काल के इस कार्यक्रम से मनुष्य अनभिज्ञ रहता है।

भाग्य की अनिवार्यता के अनन्तर स्वभाव से ही मनुष्य प्रयत्नवादी है। “मृत्यु अटल है,” उसके काल एवं कार्यक्रम अज्ञात है, इसलिए उसके मार्ग को रोकने या समय को टालने की व्यर्थ चेष्टा क्यों की जाय ?” ऐसा सोच कर वह निष्क्रिय और निराश नहीं होता। पत्युत अनेक अप्रकट रहस्यों के उद्घाटन और सत्य के अन्वेषण जैसे कार्यों में वह जानबूझ कर अपने प्राणों पर सकट लेकर सघर्षपूर्ण शोध करता है और प्रत्येक दुर्घटना के कारणों का विश्लेषण करते हुए उसके कारणों पर विचार करके उसकी पुनरावृत्ति के निवारण के विविध उपाय ढूँढता रहता है।

मान लिया कि, दुर्घटना में आहत अथवा मृत व्यक्तियों को ऐसी उत्तरीय चिकित्सा से कुछ लाभ नहीं मिलता, फिर भी, मनुष्य की दृष्टि के सामने मानव जाति की सुरक्षितता का तथा उसके प्रगति का लक्ष्य रहता है। किसी विकार की

चिकित्सा परिपूर्ण रूप से न होने से उसकी मृत्यु होती है। उस रोग का कारण उसकी श्व परीक्षा में दोष पड़ता है। इसीसे यह हमारा अनुभव है कि उसी प्रकार के अन्य विकारियों पर प्रभावी उपाययोजना की जा सकती है।

अपनी इसी वृत्ति के कारण लोगो ने गांधी-वध को एक पूर्व निर्धारित दैवी दुर्घटना नहीं माना है और गांधी-वध को टाला जा सकना असंभव नहीं था, यह पश्चात्ताप उसे पुनः पुनः उद्घेलित करता रहता है। इस दुर्घटना के निवारण की सम्भावना पर इन दिनों बड़ा वाद-विवाद चल रहा है। इस सम्बन्ध में उत्तरदायी अधिकारियों, मंत्रियों और नेताओं के अनेक वक्तव्य और विचार यत्र प्रकाशित हुए हैं। सरकार द्वारा गांधीजी की रक्षा के लिए किये गये सुदृढ़ आरक्षी-प्रवन्ध में कहीं और क्या त्रुटि रह गयी थी, यह जानने के लिए चर्चा-परिचर्चा चल रही है। पाठक जानते हैं कि इन्हीं प्रश्नों पर विचार करने के लिये शासन ने हाल ही में एक आयोग भी नियुक्त किया था। गांधी जी की सुरक्षा से सम्बद्ध अधिकारियों की तत्कालीन मनोदशा और धारणा क्या थी, इस पर विचार विषय-विवेचन के माध्यम से करने की हमारी इच्छा है, ताकि भविष्य में इसप्रकार के घातपात रोके जा सकें तथा मनोविज्ञान के अध्येता इस विवेचन से स्वात्कुल निष्कर्ष निकाल सकें।

प्रस्तुत विवेचन के दो पक्ष हैं। एक तान्त्रिक, दूसरा तात्विक। हम यहाँ पहले पक्ष पर विचार करेंगे। दिनांक २० जनवरी १९४८ की सन्ध्या को दिल्ली के विडला भवन में गांधीजी के प्रार्थना सभा-स्थल के निकट बम-विस्फोट हुआ था। और मदनलाल पाहवा घटनास्थल पर पकड़ा गया था। मदनलाल ने अपने कृत्य को पूर्व सूचना कुछ ऐसे व्यक्तियों को दी थी जिनका कथित पड्यन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं था। ऐसा प्रमाण गांधी-वध अभियोग के सिलसिले में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था।

लाल किले में श्री जगदीशचन्द्र जैन की गवाही दिनांक ४-८-४८ से ९-८-४८ तक हुई। श्री जैन काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के एम० ए० और बम्बई विश्व-विद्यालय के पी० एच० डी० हैं। वे उस समय माटुगा (बम्बई) स्थित रामनारायण रट्टा महाविद्यालय में अर्धभागवी और हिन्दी भाषाओं के प्राध्यापक थे। उन्होंने कतिपय पुस्तकें भी लिखी हैं। मदनलाल पाकिस्तान से आव्रजित पण्डित थे। श्री जैन उसकी आर्थिक सहायता की दृष्टि से अपनी प्रकाशित पुस्तकें उमें २५ प्रतिशत छूट पर विक्रयार्थ देते थे। प्रा० जैन ने अपनी गवाही में कहा—“जनवरी (१९४८) के प्रथम सप्ताह के अन्तिम दिन के आसपास मदनलाल मुझे मिला। उसके साथ एक मञ्जन और थे। उनका नाम उसने दाने दनाया। दोन्ही दिन पञ्चान् रात्रि के आठ बजे मदनलाल मुझसे

पुन मिला। उसने मुझसे कहा कि उसके दिल ने एक वड़े नेता को मार डालने का निश्चय किया है। मैंने उससे उस नेता का नाम पूछा। पहले तो उसने यह कहकर नाम प्रकट करने में आनाकानी की कि नाम वह नहीं जानता, किन्तु, मैंने जब यह सोचकर उससे अधिक आग्रह किया कि उसे उक्त नेता का नाम अवश्य शत होगा, तब उसने गांधीजी का नाम लिया। मुझे यह जानकर आघात सा लगा और मैंने उसे इसप्रकार की मूर्खता न करने की सलाह दी। बातों-बातों में उसने यह भी कह दिया कि गांधीजी की प्रार्थना सभा में वम विस्फोट करने का काम उसे सौंपा गया है। उसने कहा कि इससे सभा में भगदड़ मच जायेगी और उपयुक्त अवसर पाकर उसके अन्य साथी गांधीजी को घेर लेंगे। मैंने उसे समझाया कि वह पाकिस्तान से निष्कासित है। पंजाब में हुए साम्प्रदायिक उपद्रवों में पहले ही उनकी पर्याप्त हानि हो चुकी है। अतः इसप्रकार का कार्य उसे नहीं करना चाहिये। मैंने उसे उसके इस निश्चय से विरत करने के लिए उसमें बहुत देर तक बातचीत की। पीछे जब वह चला गया तब मैंने उसकी बातों को अधिक महत्व नहीं दिया क्योंकि उन दिनों विभाजन के कारण विस्थापित (शरणार्थी) बहुत क्षुब्ध थे और वे बहुत कटु शब्दों में गांधीजी और कांग्रेस को कोसा करते थे।”

“दो-एक दिन पश्चात् मदनलाल फिर मेरे पास आया तो मैंने उससे पूछा कि उसने मेरी बातों पर विचार किया या नहीं? उसने उत्तर दिया कि वह मुझे पिता के समान समझता है और यदि उसने मेरी सम्मति को न माना तो उसका सर्वनाश हो सकता है। किन्तु दो दिन पश्चात् वह पुनः मेरे यहाँ आया, तब उसने सूचना दी कि वह दिल्ली जा रहा है।”

“मदनलाल के दिल्ली जाने के लगभग दो दिन पश्चात् सेंट जेवियर कॉलेज के प्रिंसिपल (हाल) में श्री जयप्रकाश नारायण का भाषण हुआ। मैं वहाँ उपस्थित था। मैंने श्री जयप्रकाश नारायण से मिलने और उन्हें मदनलाल द्वारा बताये गये पडयन्त्र के आभास से अवगत कराने की चेष्टा की। श्री जयप्रकाश नारायण दिल्ली जाने वाले थे और दिल्ली के अधिकारियों को उनके द्वारा सचेत किये जाने से समाहित दुर्घटना के निवारण की मुझे आशा थी। किन्तु उनके आसपास बहुत भीड़ होने के कारण मैं उनसे भलीभाँति मिल नहीं सका तथापि दिल्ली में किसी पडयन्त्र की सभावना का संकेत मैंने उन्हें दे दिया।”

“गांधीजी की प्रार्थना सभा में मदनलाल द्वारा किये गये वम-विस्फोट और उसकी गिरफ्तारी के समाचार मैंने दिनांक ११-१-४८ को पढ़े और तभी दूरभाष पर सरदार वल्लभभाई पटेल से बातें करने का निश्चय किया किन्तु मेरा प्रयास असफल रहा। श्री स० का० पाटील से भेंट करने का भी मैंने प्रयास किया

किन्तु उसमें भी सफलता नहीं मिली। तब दूरभाष पर भेंट निश्चित करके मैं माननीय मुख्यमन्त्री श्री वा. ग. खेर से सचिवालय में दिन के ४ बजे मिला। वहाँ माननीय गृहमन्त्री श्री मोरारजी देसाई भी उपस्थित थे। मदनलाल के सम्बन्ध में ज्ञात सभी बातें मैंने उन्हें बता दी।" (Criminal Appeals No: 66 to 72 of 1949, East Punjab High Court, Simla, Printed Record, Vol I. Pages 130-138.)

बम्बई राज्य के तत्कालीन गृहमन्त्री माननीय श्री मोरारजी देसाई की गवाही दि २३-८-४८ से २५-८-४८ तक हुई। उन्होंने अपनी गवाही में प्रा० जैन के वक्तव्य की पुष्टि करते हुए बताया—

"श्री जैन द्वारा बतलायी गयी बातों को सुनकर मैंने गुप्तचर विभाग के मुख्य अधिकारी श्री नगरवाला को बुलवाया। कार्य में व्यस्त होने के कारण वे तत्काल नहीं आ सके। तब मैंने उन्हें प्रत्येक स्थिति में बम्बई सयान स्थानकपर (रेलवे स्टेशन पर) मुझसे मिलने को कहलवाया। मुझे उसी दिन अहमदाबाद जाना था। वे मुझे रात्रि के सवा आठ बजे स्टेशन पर मिले। मैंने उन्हें वे सभी बातें जो श्री जैन द्वारा मुझे ज्ञात हुई थी, बतायी और उनसे उपयुक्त कार्यवाही करने के साथ साथ श्री करकरे को पकड़ने का निर्देश दिया।"

"दिनांक २३-१-४८ को प्रातः अहमदाबाद में सरदार पटेल से मिलने पर मैंने उन्हें श्री जैन से प्राप्त सूचनाएँ और इस सम्बन्ध में मेरे द्वारा की गयी कार्यवाही की जानकारी दी। (Printed Record Volume I, Pages 166 - 173)

दिनांक ५-१०-४८ से १८-१०-४८ तक हुई गवाही में श्री नगरवाला ने श्री मोरारजी भाई के कथन की पुष्टि की है। वे कहते हैं—

"दिल्ली पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट-श्री जसवन्तसिंह एक सव-इन्स्पेक्टर के साथ दिल्ली से दिनांक २२-१-४८ को बम्बई आकर मुझसे मिले। वे दिल्ली में हुए बम विस्फोट के सिलसिले में करकरे एवं अन्य किन्हीं पडयन्त्रकारियों को पकड़वाना चाहते थे। उनके दिल्ली लौट जाने पर मैंने करकरे और उसके अज्ञात साथियों की खोज का काम हाथ में लिया। बम्बई पुलिस को इसके पूर्व करकरे का कोई परिचय नहीं था। किन्तु उपलब्ध जानकारी के आधार पर दिनांक २४-१-४८ को मैंने श्री बडगे को पकड़ने का आदेश दिया।" (Printed Record Vol I, Pages 278-293,)

दिल्ली पुलिस के सव इन्स्पेक्टर श्री दसवन्दसिंह की गवाही दिनांक १४-१-४८ और १५-१-४८ को हुई।

वे केन्द्रीय शासन के गृह विभागगत गुप्तचर विभाग से सम्बद्ध थे और जनवरी ४८ में तुगलक मार्ग पुलिस स्टेशन को प्रमुख थे। विडला भवन उन्हीं की सेवा-सीमा में था। उन्होंने बताया कि घटना के दिन वे एक हेड कास्टेबल और चार सिपाहियों के साथ विडला भवन के द्वार पर सन्नद्ध थे। ( Printed Record Vol I, Pages 233-239 )

डिप्टी सुपरिण्टेण्डेंट सरदार जसवन्तसिंह की गवाही १६-९-४८ से २०-९-४८ तक हुई। उनकी और श्री नगरवाला की गवाही सम्बद्ध अंशों से मिलती जुलती है। विडला भवन की सुरक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि दिसम्बर १९४७ से विडला भवन पर पुलिस फोर्स रखा गया था। महात्मा गान्धी के विडला भवन में आगमन के पश्चात् ही यह व्यवस्था की गयी। किसी प्रकार की अनुचित घटना की रोकथाम करना इस व्यवस्था का उद्देश्य था। बम विस्फोट की घटना के पश्चात् सतर्कता बढ़ा दी गई। और सादी वर्दी में भी पुलिस अधिकारी एवं कर्मचारी वहाँ नियुक्त किये गये थे। ( Printed Record Vol I, 239-247 )

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि बम विस्फोट अथवा ऐसे किसी पड्यन्त्र का पूर्वाभास श्री जैन को था। और विस्फोट के पश्चात् तो किसी पड्यन्त्र की सम्भावना के और अधिक स्पष्ट संकेत सरदार पटेल, मोरारजी देसाई, पुलिस प्रमुख श्री नगरवाला और डिप्टी सुपरिण्टेण्डेंट श्री जसवन्त सिंह जैसे वरिष्ठ व्यक्तियों को मिल चुके थे। मदनलाल उस समय बन्दीगृह में था। उसने एक विस्तृत वक्तव्य पुलिस को दिया था। उसके कथनानुसार दिल्ली में कथित पड्यन्त्र से सम्बन्धित व्यक्ति जहाँ-जहाँ हो सकते थे वहाँ-वहाँ पुलिस ने खोज-बीन भी की थी, ऐसा कहा गया है। मदनलाल द्वारा करकरे के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों का रूपरेखादि विवरण भी पुलिस को प्राप्त हो चुका था।

न्यायमूर्ति श्री आत्माचरण ने १०-९-४९ को दिये गये निर्णय में लिखा है—

“२० जनवरी १९४८ से ३० जनवरी १९४८ तक पुलिस द्वारा की गयी जाँच पड़ताल की शिथिलता मुझे केन्द्रीय शासन के ध्यान में लानी है। २०-१-४८ को मदनलाल के पकड़े जाने पर उसका विस्तृत वक्तव्य दिल्ली पुलिस ने प्राप्त कर लिया था। उबर डॉ० जे सी जैन द्वारा गृहमन्त्री को दी गयी सूचनाएँ भी बम्बई पुलिस को २१-१-४८ को मिल चुकी थी। इन दोनों वक्तव्यों को प्राप्त करने के पश्चात् दिल्ली और बम्बई के पुलिस अधिकारी परस्पर मिल भी चुके थे। इतना सब होने पर भी इन दो वक्तव्यों का लाभ उठाने में पुलिस असमर्थ रही यह अत्यंत दुःख की बात है। ( Yet, the police miserably failed to derive any advantage from those two statements. ) इस प्रकरण में

यदि तनिक भी तत्परता दिखायी गयी होती तो यह दुःखद घटना कदाचित् टाली जा सकती थी।" (Printed Record Vol. III, Page 109)

न्यायमूर्ति की यह धारणा उनके समक्ष प्रस्तुत किये गये प्रमाणों के आधार पर बनी। नथूराम और आपटे से पूना-पुलिस भलीभाँति परिचित थी। करकरे भी अहमदनगर पुलिस की जानकारी में थे। अतः यदि पूना अहमदनगर के कुछ कुशल पुलिस अधिकारियों को बिडला भवन की सुरक्षा-व्यवस्था में सम्मिलित कर लिया जाता तो दुर्घटना के पूर्व ही सम्बन्धित व्यक्तियों का पकड़ा जाना सम्भव था। सुरक्षा व्यवस्था और अन्वेषण की यह त्रुटि यदि दूर कर दी गयी होती तो आगे होनेवाली दुर्घटना को रोका जा सकता था। न्यायमूर्ति के अभिमत का यही अभिप्राय है। साथ ही, न्यायमूर्ति के कथन का यह अर्थ कि यह दुःखद घटना कदाचित् टाली जा सकती थी, ध्यान देने योग्य है।

सतर्क जाँच एवं कड़ी सुरक्षा व्यवस्था से सदिग्ध व्यक्तियों का पकड़ा जाना सम्भव था और यदि वे पकड़े गये होते तो कम-से-कम उनके द्वारा ही किसी दुर्घटना के घटित न होने की निश्चिन्तता हो सकती थी। किन्तु इन सदिग्ध पडयन्त्र-कारियों के पकड़ लिये जाने पर भी इस बात का क्या भरोसा था कि अन्य किन्हीं लोगों द्वारा उस प्रकार की घटना सम्भव नहीं होती। फिर सदिग्ध पडयन्त्रकारियों को पकड़ने में पुलिस की सफलता भी निश्चित नहीं थी। सब प्रकार की सतर्कता से काम करने पर भी जब कोई व्यक्ति किसी अवैध कार्य को प्राणों की परवाह न करके भी पूरा करने का संकल्प या दुस्संकल्प कर लेता है, तब वह अपने कार्य में विधि और व्यवस्था के सरक्षकों द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले प्रत्येक सम्भव व्यवधानों की पूर्वकल्पना कर लेता है और अपनी बुद्धि की पहुँच तक उन व्यवधानों के निराकरण के उपाय भी सोच लेता है। उसका प्रयत्न रहता है कि उसके दो नेत्र विधि तथा व्यवस्था सरक्षकों के सहस्त्र नेत्रों से अधिक सक्रिय और सतर्क रहें। और जहाँ उसे अपने कार्य की सफलता के लिये प्रतिकूल-परिस्थिति अनुभव होती है वहाँ किञ्चित् समय के लिये वह अपने बढ़ते हुए चरण पीछे खींच लेता है। और अनुकूल समय मिलते ही अपनी मनीषा पूरी कर लेता है।

इतना सब कुछ होने पर भी अन्तिम रूप से अवसर और भाग्य की महत्ता सर्वोपरि है। असाधारण कार्य करने के लिये कृतसंकल्प, दृढ़ निश्चयी योजना-शील व्यक्ति भी अपनी सतर्कता पर अन्तिम रूपसे निर्भर नहीं रहते। प्रायः सावधानी नहीं प्रत्युत भाग्य ही सफलता के अवसर प्रदान करता है। उदाहरण के लिए कल्पना की जा सकती है कि उस रात केवल बम्बई जानेवाली गाड़ियों की ही

जाँच न करके अन्यत्र जानेवाली ट्रेनों में भी पड़यन्त्र से सम्बद्ध व्यक्तियों की खोज की जाती तो ? मदनलाल तो साथ में था ही ।

कानपुर जानेवाली ट्रेन में नथूराम और आपटे मिल जाते और ३० जनवरी वाली घटना इन दोनों के हाथों तो न होती और दिल्ली पुलिस को उसके निवारण का श्रेय मिलता । किन्तु विधि निर्धारित विधान पुलिस के अनुकूल न था ।

पंजाब उच्च न्यायालय ने निर्णय २२-६-४९ को दिया । निर्णायक थे श्री भडारी, श्री अच्युतराम तथा श्री खोसला । उच्च न्यायालयके इस निर्णय में तीनो न्यायाधीशों ने कहा कि वे न्यायाधीश श्री आत्माचरण के अभिमत से सहमत नहीं हैं । न्यायाधीश श्री भडारी लिखते हैं—

“नथूराम ने अपने मन में निश्चय कर लिया था और गांधीजी का अन्त करने के लिये वह अपने प्राणों का मूल्य देने को तत्पर था । उसने पिस्तौल लेकर विडला भवन में प्रवेश करने का सकट स्वीकार किया । और गोलीयाँ भी दागी । जन समुदाय ने उसे घेरा, वच निकलने का उसने विचार भी नहीं किया । ( He did not care to run away ) वह एक विशिष्ट उद्देश्य से वहाँ गया था और उसे पूरा करने के लिये प्रत्येक स्थिति में कटिबद्ध था । इस सन्दर्भ में किसी भी सकट को अपनाने और तज्जन्य अवश्यम्भावी परिणामों का सामना करने को वह तत्पर था । कोई अपरिचित अथवा कृत्रिम नाम धारण करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकनेवाले व्यक्ति को या परिणामों की परवाह न करके किसी अवैध कार्य को सम्पन्न करने को कटिबद्ध व्यक्ति को रोकना क्या पुलिस के लिए सम्भव था ? कहीं कुछ हो रहा है, पुलिस इतना ही जानती थी, किन्तु कब, कहाँ और किसके द्वारा आघात होने वाला है इसकी जानकारी उसे नहीं थी । वह अघेरे में अनुमान के आधार पर सभावित अपराध के सूत्रों को टटोलती भटक रही थी । उसे मार्ग नहीं मिल रहा था । जो कुछ हुआ उसे लोग जानते हैं और उस जानकारी के आधार पर ही, वह अमूल्य जीवन इस प्रकार बचाया जा सकता था, यह भी अब कह सकते हैं किन्तु घटना के हो जाने के उपरान्त उपाय सूझना सरल है ।”

‘ प्रस्तुत प्रमाणों के आधार पर मेरा मत है कि, (अ) ३० जनवरी के पूर्व नथूराम को पकड़ने में अथवा गांधीजी के प्राण बचाने में क्या क्या कठिनाइयाँ थी इसका स्पष्टीकरण करने का पुलिस को अवसर नहीं दिया गया । ( ब ) मदनलाल ने पड़यन्त्रकारियों के नाम पुलिस को नहीं बताये । (क) यदि ये नाम बताये भी होते तो भी विविध नाम धारण कर विभिन्न स्थानों पर घूमनेवाले और अपने प्राणों का मूल्य देकर भी गांधीजी की हत्या करने को तुले हुए नथूराम



को पकड़ना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता ।”

( टकित निर्णय पत्र पृष्ठ १९५ )

न्यायाधीश श्री अच्युत राम ने लिखा है—“पुलिस ने दिनांक २० से ३० जनवरी १९४८ की अवधि में यदि जाँच पड़ताल में शिथिलता नहीं की होती तो गांधी हत्या की दुर्घटना टल सकती थी—ऐसा जो अभिमत विद्वान् न्यायाधीश (श्री आत्माचरण) ने प्रगट किया है, उसका, समापन करने से पूर्व, मुझे निराकरण करना है। उक्त अभिमत की पुष्टि में मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। और मेरे विचार में यह अभिमत पूर्णतया अवाञ्छनीय (Wholly uncalled for) है।”

( टकित निर्णय पत्र पृष्ठ ५५९ )

तृतीय न्यायाधीश श्री खोसला ने अपने अनुमोदनात्मक निर्णयपत्र में सम्बन्धित प्रश्न पर उपरोक्त दोनों न्यायाधीशों से सहमति व्यक्त की। इस परिकल्पनिक प्रश्न के तान्त्रिक पक्ष पर विचार करने पर हत्या की अटलता और टाले जा सकने की सम्भावना, दोनों के पक्ष में तर्क दिये जा सकते हैं। मान लीजिये कि, नयूराम की मृत्यु ३० जनवरी के पूर्व हो गई होती तो ? प्रस्तुत प्रमाणों से असम्बद्ध होने पर भी एक प्रासंगिक घटना यहाँ उल्लेखनीय है—

२० जनवरी के कुछ समय पूर्व नयूराम और नाना आपटे मोटर साइकिल द्वारा बम्बई से पूना जा रहे थे। आपटे गाड़ी चला रहे थे। ठंडक बहुत अधिक थी इसलिये आपटे ने उनका कन्टोप पहन रखा था। घाटी में से जाते समय एक स्थान पर कन्टोप सरककर आँखों पर आ गया और इसप्रकार उलझ गया कि उसे ऊपर सरकाना कठिन हो गया। गाड़ी अत्यन्त वेग में थी। अतः रोकते-रोकते भी बहुत दूर चली गई और नियन्त्रण खोकर एक ओर लुढ़क गई। नयूराम जो पीछे बैठे थे यह सब देख रहे थे। किन्तु उस स्थिति में कुछ कर सकना उनके लिये सम्भव नहीं था। दोनों मित्र रास्ते के किनारे जा गिरे। जहाँ वे गिरे उसके कुछ ही इञ्च पश्चात् गहरी खाई थी। रास्ते के किनारे और गाड़ी के पहिये के बीच अन्तर नहीं के समान था। जीवन और मृत्यु की मानो वही सीमा रेखा थी।

गाड़ी यदि मड़क की ओर न लुढ़क कर खाई की ओर गिरी होती तो ? तो वदाचित्त चार पाँच दिनों पश्चात् दोनों के सड़े गले हुए शव किसी पथिक को दिनाई दिये होते, जिन्हें पहचानना भी तब सरल नहीं रहता।

मैं सोचना हूँ कि एक प्रयत्न निष्फल हो जाने पर उससे सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा ही गांधीजी के वध का पुनः प्रयत्न किया जायेगा यह कल्पना पुलिस अग्निरागियों के मस्तिष्क में नहीं थी। घटना हो चुकी है, एक व्यक्ति पकड़ा गया है, अब वेतल अन्य सम्बन्धितों को पकड़ना ही शेष है। शासन के हाथ

बहुत लम्बे होते हैं, अतः अन्य लोगों को पकटना अथ मृत्यु ही दिनों का बात है, इस धारणा ने अधिकारियों को पर्याप्त सीमा तक निश्चित कर दिया होगा। घटना से सम्बन्धित व्यक्तियों से स्वाभाविक भय उत्पन्न हो गम होगा। वे लोगों वचाव के लिए डबड़-डबड़ विवरणों को देंगे और कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे। उनकी धारणा रही होगी जो स्वाभाविक भी थी।

जैसा आरम्भ में कहा गया है, व्यक्ति को मृत्यु से डरना होता है उसे ज्ञात नहीं होता। गांधी जी की मृत्यु यदि नवग्राम और आपटे के पास करवाना विधि को अभीष्ट था तो किसी दुर्घटना से नहीं निवृत्त पार्सों के स्थान पर चढ़कर मृत्यु को वरण करना नवग्राम और आपटे का विधिनिर्वाह था।

कालाय तस्मै नमः ।

\* \* \*

## पडयन्त्र कब रचा गया होगा ?

गांधी वच का पडयन्त्र निश्चित रूप में कब रचा गया इसका विवरण न्यायालयमें नहीं आया। पडयन्त्र ( कॉन्स्परसी ) को प्रमाणित करने के लिये वैसी निश्चित तिथि का अन्वेषण करना अभियोजको के लिये आवश्यक नहीं होता इसलिये —

“आपने अभियुक्त . . . ने दिनांक १ दिसम्बर १९४७ मे ३० जनवरी १९४८ इन दिनों में मोहनदास करमचन्द गांधी जिन्हें सर्वसामान्य रूप से, महात्मा गांधी कहा जाता है, की हत्या करने के लिये परस्पर सहयोग किया और पडयन्त्र रचा ” इस प्रकार का सदिग्ध आरोप पत्र अभियुक्तों को दिया ( पन्जाब उच्च न्यायालय प्रिन्टेड रेकार्ड, भाग ३ पृष्ठ ११ )। अभियोग के पत्रात् दिये गये निर्णयपत्र में न्यायमूर्ति श्री आत्माचरण ने कहा है कि जनवरी १९४८ के आरम्भ से यह पडयन्त्र अस्तित्व में था और ३० जनवरी १९४८ तक रहा यह बात निश्चय ही हो गई है ( भाग ३ पृष्ठ २७ )। पडयन्त्र के आरम्भ की निश्चित तिथि लिखने की न्यायमूर्ति को कोई आवश्यकता नहीं थी।

गांधी वच के पूर्व सात आठ मास में नयूराम और आपटे ने अनेक शस्त्रास्त्र एकत्र किये थे और उनका विनिमय किया था। शस्त्रास्त्रों के यातायात में भी उनका हाथ था ऐसा विवरण अभियोग के सिलसिले में सामने आया है। प्रमाणों के आधार पर इन शस्त्रास्त्रों के व्यवहार की जांच की जाय तो ज्ञात होगा कि गांधी वचका उद्देश्य सामने रखकर अभियुक्तों का यह व्यवहार नहीं चल रहा था। इन गतिविधियों में से गांधी वचका पडयन्त्र कब प्रस्तुत हुआ इस बातका बहुत कुछ अनुमान लगाना सम्भव है।

इस अभियोग में जिन प्रतिष्ठित व्यक्तियों की गवाहियाँ हुईं उनमें गोस्वामी श्रीकृष्ण जीवन जी महाराज भी एक थे। उन्हें दादा महाराज कहा जाता है। वे महाप्रभु बल्लभाचार्य के वंशज माने जाते हैं और इस पीठ के धर्मगुरु हैं। ९-८ ४८ से १०-८-४८ तक उनकी गवाही हुई थी। हैदराबाद राज्य उससमय तक विलीन नहीं हुआ था। हिन्दुओं पर रजाकारो के अकल्पनीय अत्याचार होते थे। हैदराबाद स्टेट कांग्रेस मुक्ति आन्दोलन की योजनायें बनाया करती थी। रजाकारो के अत्याचारो के प्रतिकार की ओर सशस्त्र प्रत्याघात की रूपरेखा भी उनमें होती थी। श्री दादा महाराज की गवाही से ऐसा लगता है कि वे हैदराबाद स्टेट कांग्रेस को शास्त्रास्त्रो के सभरण की व्यवस्था करते थे। नाना आपटे और दादा महाराज का परस्पर घनिष्ठ परिचय था। आपटे हैदराबाद की मुक्ति के लिये होनेवाले प्रयत्नों में सम्मिलित थे और वे दादा महाराज की सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न में थे।

पाकिस्तान के निर्माण के पश्चात् उसकी पहली सविधान सभा दिल्ली में आयोजित करना विचाराधीन था। आपटे चाहते थे कि यदि ऐसा हो तो उस सविधान सभा को उडवा देना चाहिये। यह बात दादा महाराज को महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी के सुपुत्र श्री गोविन्द मालवीय से ज्ञात हुई ऐसा उन्होंने अपनी गवाही में कहा है। उन्होंने यह भी कहा कि उनकी आपटे से पूना में भेट होने पर उन्होंने आपटे से कहा कि कम से कम जिन्ना और लियाकत अली को उडवा दिया जाय। दो मार्टरो (morters) के लिये आपटे को चार सहस्र रूपयों की आवश्यकता थी। दिनांक १६-१०-४७ को शास्त्रास्त्रो की एक गाड़ी पाकिस्तान की ओर भेजी जा रही थी उसे आपटे उडवा देना चाहते थे। अग्नि-क्षेपक (Flame thrower) शस्त्र दिखाने के लिये वे दादा महाराज को बहुत स्थानों पर ले गये। इस प्रकार बहुत सा विवरण दादा महाराज ने अपनी गवाही में दिया है। (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १३९-१४२)

दादा महाराज कांग्रेस के सदस्य थे। फिर भी हिन्दुओं को आत्मरक्षा निर्भर और प्रतिकार के सक्षम बनाने के लिये प्रयत्नशील थे। सुहरावर्दी के नेतृत्व में नोआखाली के हिन्दू-हत्याकांड के पश्चात् हुए सामूहिक भ्रष्टाचार के निराकरण के लिये दादा महाराज ने वहाँ शुद्धिकार्यक्रम आयोजित किये थे। हैदराबाद का मुक्तिसंग्राम हिन्दुओं को लाभदायक होनेवाला था इसलिये उक्त संग्राम में उन्होंने यथासंभव सहयोग दिया था। गांधीजीके मुस्लिम तुष्टीकरण नीति के वे विरोधी थे इस प्रकार की स्वीकारोक्ति भी उन्होंने अपने वयान में दी है। नथूराम और आपटे द्वारा संचालित दैनिक "हिन्दूराष्ट्र" के प्रकाशन के लिये वह अक्टूबर १९४६ में पूना आये थे। दादा महाराज के वधु गोस्वामी दीक्षितजी महाराज की गवाही

भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। आपटे और दीक्षितजी महाराज में शस्त्रास्त्रों का विनिमय होता था यह बात उनकी गवाही से प्रकट होती है। २०-८-४८ से २४-८-४८ तक सम्पन्न हुई उनकी गवाही का विवरण मुद्रित अभिलेख के पहले भाग के १५७ वें पृष्ठ से १७१ वें पृष्ठ तक है।

इन गवाहियों को पढ़कर यह अनुमान किया जा सकता है कि शस्त्रास्त्रों के उक्त विनिमय का गांधीवध से कोई सम्बन्ध नहीं था।

उपरोक्त शस्त्रास्त्र विनिमय से गांधीवध से सम्बद्ध व्यक्तियों का सम्बन्ध जोड़नेवाला उपरिलिखित विवरण मौखिक था। अभियोग के सिलसिले में कुछ प्रत्यक्षदर्शी प्रमाण भी प्रस्तुत किये गये। श्री गणपत सभाजी खरात की गवाही इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थी।

श्री खरात विधान सभा के सदस्य थे। इस अभियोग के सन्दर्भ में पुलिस ने विभिन्न स्थानों पर तलाशी ली थी। उससमय श्री खरात के घर की भी तलाशी ली गई थी। ९-२-१९४८ को बहुत कुछ गोला बारूद प्राप्त हुआ। उसका पचनामा पी/२७९ क्रमांक से पजीवद्ध है। ( मुद्रित अभिलेख भाग ४, पृष्ठ १४५-४६ )

श्री खरात के अनुसार वड्डगे तीन चार सप्ताह पूर्व उनके यहाँ दो थैलियाँ लेकर गया। श्री खरात ने उनमें से एक थैली अपने एक मित्र श्री शेलार को और दूसरी श्री नागमोडे को दी। तलाशी के समय वे थैलियाँ श्री खरात के यहाँ नहीं मिलीं। वे पुलिस को श्री शेलार और श्री नागमोडे के यहाँ लेकर गये जहाँ दोनों थैलियाँ प्राप्त हुईं। उन्हें खोलने पर उनमें विस्फोटक अस्त्र और गोलियाँ प्राप्त हुईं। उन सामग्रियों का विवरण इस प्रकार है —

दो भरे हुये हेंडग्रेनेड, फूजवाले दो पैकिट, पिस्तौल जैसे दीखनेवाले दो बड़े बंगल जोड़े हुए शस्त्र, उसी तरह का एक अन्य शस्त्र, गत्ते के एक बक्से में चौदह कारतूस, पाँच मैग्जीन, प्रत्येक में पाँच कारतूस ( चार छुछे कारतूस ) उन्नोस कारतूसों का एक डिब्बा, विभिन्न आकार वाले अडसठ कारतूसों का एक डिब्बा, एक सौ अठ्ठासी कारतूसों का एक डिब्बा, ( चार छुछे कारतूस )

श्री खरात की गवाही दिनांक २६-८-४८ को हुई। ( मुद्रित अभिलेख १, पृष्ठ १७८-७९ )।

दिनांक २०-९-४८ को श्री नामदेव तायप्पा नागमोडे और श्री होनाजी गणेश शेंगर की गवाहियाँ हुईं। श्री खरात पुलिस को श्री नागमोडे के यहाँ दिनांक ८-२-१९४८ को ले गये थे। उनके यहाँ हुई तलाशी में प्राप्त वस्तुएँ इस प्रकार की —

एक डिब्बा, उस पर गन काँटन वजन, स्लैन्ज पाइलड एलबी, मार्क १ नम्बर ४, ड्राईगन काँटन पौड ४-०, पानी ०-१३, "मेन्युफैक्चर्ड सी एफ डेट १९४२ ग्रॉस वेट पौड ... डेट २-१२-४२ अंकित थे।"

एक पुडिया में हथगोले के ३४ टुकड़े थे। उनमें से १३ टुकड़ों पर "पोलर एन एस गेलिंगनाइट" और २१ टुकड़ों पर "नोबल्स एक्स्प्लोजिव, अल्फेड नोबल, ग्लासगो," अंकित था।

चार सफेद टुकड़ों पर जिनके बीच में डेढ़ इन्च के छिद्र थे, उस पर सी एफ ७५४४ ७८, ७५४४, १ पौड १९४२, ४३, १९४२ अंकित था।

साढ़े तीन इन्च लम्बे दो कारतूस।

कुछ सफेद टुकड़े जिनपर विभिन्न क्रमांक थे। फ्यूज वायर की चार काँइत्स।

ताँबे के रंग की फ्यूज की काँइल, तीन फ्यूज की काँइल, एक पैकेट में एक काली फ्यूज वायर, चौदह डिटोनियर, उनमें से नौ बत्ती सहित, पाँच विना बत्ती के तीन छोटे ताँबे के टुकड़े, एक ताँबे की तार का बडल। (मुद्रित अभिलेख १, पृष्ठ २४७, २४८, २४९। पचनामा क्रमांक पी २५२। मुद्रित अभिलेख भाग ४, पृष्ठ १८९-१९१)।

नथूराम जिस कोठरी में रहते थे, उसकी तलाशी दिनांक ३१-१-४८ को हुई। उसके पचनामे का क्रमांक पी २२२ है। नथूराम के कमरे में एक पदार्थ मिला वह विस्फोटक था ऐसा श्री गापुर खुरो भावनगरी, इन्स्पेक्टर ऑफ एक्स्प्लोजिन्स, वेस्ट सर्किल बम्बई, ने अपनी दिनांक ४-८-४८ की गवाही में कहा है। (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ २७५-७६)।

हम अभियुक्त बम्बई पुलिस-कार्यालय में पूछताछ के लिये रखे गये थे। उन दिनों फ्लेम थोवर नामक अस्त्र हमें दिखाया गया था। उस अस्त्र का वर्णन मैंने पहले कभी नहीं पढ़ा था। इस अस्त्र के द्वारा घनरूप पेट्रोल पर निशाना साधकर फेका जाता है। आग बनकर फेके गये उस अस्त्र से पेट्रोल पर निशाना लगते ही इतनी भीषण आग की लपटें निकलती हैं कि उसकी प्रचण्ड ऊष्णता से लोहा तक पिघल जाता है। शत्रु के टैंको को नष्ट करनेवाला वह प्रभावशाली अस्त्र है।

इस प्रकार यह जो शस्त्रास्त्रसंग्रह सामने लाया गया वह एक छोटे मोटे युद्ध के लिये पर्याप्त था। गांधी वध जैसे सीमित कार्य के लिये इतने शस्त्रास्त्रों का यह प्रपच अपने आप में असम्बद्ध और अस्वाभाविक था, किन्तु अभियोजकों को यह सिद्ध करना था कि सम्बन्धित व्यक्ति शस्त्रास्त्रों के विनिमय और व्यवसाय में लिप्त थे। उसी सीमा तक इन प्रमाणों का लाभ उन्हें मिल गया। गांधी वध के लिये यह सब शस्त्रास्त्रसंग्रह किया गया था यह

अभिप्राय उनका भी नहीं था। इस प्रकार उन शस्त्रास्त्रों के व्यवहार के पीछे उन दिनों नथूराम और आपटे का कोई अन्य उद्देश्य रहा होगा, यही तर्क-सगत निष्कर्ष निकलता है। हाल ही में कुछ क्रांतिकारी युवकों ने नगरहवेली को मुक्त कराया है, उसी प्रकार हँदरावाद को प्राप्त करना नथूराम और आपटे को अभीष्ट होगा, अथवा श्रीकृष्णजी महाराज की गवाही के अनुसार दिल्ली में सभावित पाकिस्तान की प्रथम सविधान सभा को उडवा देने का उद्देश्य रहा होगा, या फिर पाकिस्तान को भेजी जानेवाली युद्ध सामग्री के मार्ग में बाधा उपस्थित करने की उनकी योजना रही होगी। कुछ भी हो उस समय कम से कम गांधी वध की रूपरेखा उनकी कल्पना में नहीं थी।

दिनांक १५-१-४८ को पडयन्त्र अस्तित्व में था ऐसा आभास देनेवाला एक विवरण सामने आया। वह है, श्री दीक्षितजी महाराज का वक्तव्य। “दिनांक १५-१-४९ को आपटे, बडगे, मदनलाल, नथूराम और करकरे मेरे पास आये थे” ऐसा उन्होंने कहा। पडयन्त्र के अभियुक्त के रूप में जिन जिन व्यक्तियों पर अभियोग चलाया गया उनमें ये पाँचों व्यक्ति सम्मिलित थे।

दीक्षितजी महाराज कहते हैं, “मैं बाहर गया हुआ था पच्चीस, तीस मिनट पश्चात् लौटा तो बडगे अपने थैले में से कुछ वस्तुएँ अन्य साथियों को दिखा रहा था। वे लोग परस्पर धीरे-धीरे बोल रहे थे। मेरी दृष्टि जिन वस्तुओं पर पड़ी वे थोड़े दो सफेद इंटें और दो हूण्डग्रेनेड। हूण्डग्रेनेड का उपयोग किस प्रकार करना चाहिये यह बडगे बता रहा था। मेरे विचार से वह गलत था। मैंने उन्हें सही तरीका बताया। तत्पश्चात् वे वस्तुएँ थैले में रख दी गईं। वे लोग जाने लगे। बडगे और आपटे पीछे रह गये थे। मैंने उनसे मेरे यहाँ आकर उन वस्तुओं का प्रदर्शन करने का कारण पूछा। उस समय तक मेरा उनका सम्बन्ध हँदरावाद भुक्ति अभियान तक ही सीमित था। मैंने सोचा कि उनका यह उपक्रम भी उसी सम्बन्ध में होगा, इसलिये मैंने उनसे उनके आनेका कारण पूछा। उन्होंने बताया कि वे एक महत्वपूर्ण कार्य के लिये जा रहे हैं और उन्हें एक पिस्तौल या रिवाल्वर चाहिये। मैंने उनसे उस महत्वपूर्ण कार्य के विषय में पूछा और कहा कि उस कार्य के विषय में जान लेने पर ही मैं उन्हें पिस्तौल अथवा रिवाल्वर देने पर विचार करूँगा, दोनों ने अपने कार्य के सम्बन्ध में—बतलाना स्वीकार नहीं किया। अब वे जाने लगे तो मैंने बडगे को रोका। बडगे ने थोड़ी देर में लौटकर आने का संकेत किया और वे दोनों चले गये। पंद्रह, बीस मिनट पश्चात् जब बडगे आया तो मैंने उससे उस कार्य के सम्बन्ध में पूछा बडगे ने फिर आने और उस कार्य के विषय में बताने का आश्वासन दिया ”

( मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १५८-१५९ ).

गवाहियों की असंगति और अप्रामाणिकता देखने से तो स्पष्ट है कि उस समय बडगे को वह "महत्वपूर्ण" कार्य ज्ञात नहीं था। बडगे के अनुसार, "दीक्षितजी महाराज के घर से हम तीनों ( आपटे, नयूराम, बडगे ) आगन में आये, वहाँ आपटे ने मुझसे दिल्ली जाने के सम्बन्ध में पूछा।" और बडगे के दिल्ली जाने का कारण पूछने पर उसे—गांधी वध की योजना ज्ञात हुई। ( मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ ८४ )। यह असंगति छोड़ दी जाय तो दिनांक पन्द्रह को वह पडयत्र में समाविष्ट हुआ ऐसा माना जा सकता है, क्योंकि उसके अनुसार वह दिल्ली गया था।

डा० जगदोशचन्द्र जैन का कहना है कि मदनलाल ने उन्हें गांधी वध का पूर्वाभास दिया था। किन्तु समय के सम्बन्ध में वे काफी अस्थिर हैं। वे कहते हैं कि जनवरी के पहले सप्ताह के अन्तिम दिनों के आसपास मदनलाल उनसे मिला था। दो-तीन दिन पश्चात् वह फिर उनसे मिला तब उसने उक्त सूचना डा० जैन को दी थी। इस सूचना के दो दिन पश्चात् वह फिर उनसे मिला और इसके पश्चात् एक दो दिन के बाद जब वह अन्तिम बार मिला तो वह दिल्ली जाने की तैयारी में था। दिल्ली से लौटकर मदनलाल ने फिर उनसे मिलने की बात कही ऐसा डा० जैन का कहना है। (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १३१-३२)।

हम एक बड़े नेता को मारने वाले हैं ऐसा सकेत मदनलाल ने जिस दिन डा० जैन को दिया उस दिन श्री अगदसिंह नामक एक गृहस्थ भी वहाँ उपस्थित थे किन्तु ठीक उसी समय वहाँ से चले गये थे ऐसा डा० जैन ने कहा है। इन श्री अगदसिंह की गवाही दिनांक १३-८-४८ से १६-८-४८ तक हुई। दिनांक और दिन के सम्बन्ध में वे भी निश्चित नहीं हैं। उनके अनुमान के अनुसार वह दिन १० जनवरी का भी हो सकता है और ११ का भी। या तो वह शनिवार या या रविवार। ( मुद्रित अभिलेख भाग १ पृष्ठ १४७ )। डा० जैन के साथ श्री अगदसिंह वा जो सभापण तत्पश्चात् हुआ होगा उसका कोई लिखित स्रोत श्री अगदसिंह ने नहीं रखा था।

श्री मोरारजी देसाई से डा० जैन की भेंट २१-१-४८ को हुई थी। मोरारजी भाई की गवाही के अनुसार, प्रा० जैन के विवरण में अगदसिंह का उल्लेख नहीं आया था। (So far as I remember, Professor Jain while he was narrating his story to us, had referred to no Angad Singh। ( मुद्रित अभिलेख ग्रन्थ १, पृष्ठ १६९ )। उनके पश्चात् डॉ० जैन की श्री मोरारजी से भेंट दिनांक २४-१-४८ को हुई थी और उसके बाद ३ और ४ फरवरी १९४८ को हुई थी। श्री मोरारजी की गवाही मुद्रित अभिलेख ग्रन्थ पृष्ठ १६७) डा० जैन के कथनानुसार, उन्होंने उक्त समय तक अपना निश्चित निर्देशन



कलमबन्द कर किसी को भी नहीं दिया था । ( I did not give the facts of the case to any one in writing between the period from 21st January 1948 till 17th February 1948 ) [मुद्रित अभिलेख ग्रन्थ १ पृ० १३३]

श्री मोरारजी की गवाही के अनुसार— “बम विस्फोट की घटना के तीन चार दिन पूर्व मदनलाल दिल्ली के लिये खाना हुआ था, ऐसा उन्होंने (डॉ० जैन) बताया । दिन के सम्बन्ध में मुझे निश्चित स्मरण नहीं । मदनलाल और उसके मित्रों ने एक बड़े नेता को मारने का निश्चय किया है ऐसा मदनलाल ने दिल्ली खाना होने के पूर्व मुझसे कहा था ऐसा डा० जैन ने कहा ।” ( मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १६६ ) ।

इस प्रकार डा० जैन का वक्तव्य दिनांक १७-२-४८ तक लिपिवद्ध नहीं हुआ था । जो लिपिवद्ध नहीं हुआ उसमें आगे पीछे किंचित परिवर्तन की संभावना रहती है । किसी एक सत्य सूत्र में, जिस पर पूरी घटना आधारित है, सोच समझ कर परिवर्धन किया जा सकता है । इस परिवर्तन के पीछे कोई उद्देश्य रहे ऐसा भी आवश्यक नहीं । कदाचित् इस प्रकार के हेर फेर के परिणामों का परिवर्तनकर्ता के लिये कोई महत्व भी नहीं होता ।

प्रमाणों के अनुसार दिनांक १५ की रात को मदनलाल और करकरे दिल्ली के लिये खाना हुए और १७ के प्रातःकाल दिल्ली पहुँचे । मदनलाल और श्री जैन की उपरोक्त चर्चित भेंट इस प्रकार चौदह या पन्द्रह जनवरी को ही संभव हो सकती थी । श्री जैन आदि की गवाहियों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि दिल्ली जाने के पूर्व मदनलाल पडयन्त्र का एक अंग था परन्तु दिनांक सम्बन्धी किसी निश्चित वक्तव्य के अभाव में पडयन्त्र की तिथि के अनुसंधान का उद्देश्य पूरा नहीं होता ।

दिनांक १३-१-४७ को नयूराम ने अपनी दो बीमा पॉलिसियों का उत्तराधिकार गो० चम्पूताई आपटे ( नाना आपटे की पत्नी ) और सौ० सिन्धु गोडसे ( गोपाळ गोडसे की पत्नी ) के नाम किया । ऐसी गवाही ओरिएण्टल गवर्नमेन्ट निफोर्टिटी लाइफ-इन्श्योरेंस कम्पनी की ओर से दिनांक १०-२-४८ को हुई । (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १४४—१४५) ।

बीमा के लिये उत्तराधिकारी की नियुक्ति दैनिक जीवन की एक सामान्य घटना है । सामान्यतया व्यक्ति के जीवन की स्थिरता या अस्थिरता की दृष्टि से उत्तराधिकार पत्र लिखने के कुछ नियम होते हैं । वृद्धावस्था होने पर, रागग्रस्त होना, अथवा भ्रम होने पर, किसी दूसरे देश की यात्रा के पूर्व, किसी संकटापन्न

कार्य के प्रारम्भ करने पर अथवा युद्ध क्षेत्र में जाने पर संभावित मृत्यु की अवस्था में बीमा के रुपये प्राप्त करने में स्वजनो को कोई कठिनाई न हो इस उद्देश्य से उत्तराधिकार पत्र लिखे जाते हैं ।

उपरोक्त स्थितियों के अतिरिक्त भी यदि कोई उत्तराधिकार पत्र लिखता है तो कोई तकनीकी आपत्ति नहीं होती । क्योंकि किसी की मृत्यु कब होगी यह कोई नहीं कह सकता । इसलिए बीमा की योजना के साथ ही उत्तराधिकार पत्र की भी सुविधा सलग्न होती है । उत्तराधिकार पत्र लिखने में असामान्यता क्या है ? किन्तु अभियोजको को नथूराम द्वारा निर्दिष्ट उत्तराधिकार असामान्य प्रतीत हुआ, केवल आगे घटी घटनाओं के कारण ।

नथूराम द्वारा निर्दिष्ट उत्तराधिकार के महत्वपूर्ण होने के निम्न कारण हैं

दिनांक १३ और १४ जनवरी १९४८ के दो दिनों में नथूराम ने मन में कुछ निर्णय निश्चित किये थे । उत्तराधिकार पत्र के दिनांक इस वस्तुस्थिति के परिचायक थे, यह अभियोजक न्यायालय को दर्शाना चाहते थे ।

अधिकार-पत्र की भाषा इस प्रकार थी ( बीमा पत्र क्रमांक ११६६१०२, राशि रुपये ३०००/- ) ।

“यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो इस बीमे के रुपये मेरे मित्र की पत्नी सौ० चम्पूताई नारायण आपटे, २२, बुधवार पेठ, पूना, आयु ३२ वर्ष को दिये जाय । यह उत्तराधिकार पत्र मैं, नथूराम विनायक गोडसे, इस स्थान पर” करता हूँ । पूना दिनांक १३ जनवरी १९४८, हस्ताक्षर न वि. गोडसे ।”

( बीमा पत्र क्रमांक ११६६१०१. राशि रुपये ३०००/- ) “ इस बीमा के रुपये मेरे छोटे भाई की पत्नी सौ० सिन्धुताई गोपाल गोडसे, आयु २५ वर्ष, को दिये जाय पूना दिनांक १४ जनवरी १९४८ ”

( “ I Nathuram Vinayak Godse, hereby nominate my friend's wife Mrs. Champutai Narayan Apte, 22, Budhwar Peth, poona, aged 32 years, to be the person to whom the moneys secured by the within Policy shall be paid in the event of my death. Dated at Poona the 13th day of January, 1948. Sd/—(N. V. Godse).”

( ‘I hereby nominate my younger brother's wife Mrs. Sindhutai Gopal Godse . Dated Poona the 14th day of January 1948. Sd/—(N. V. Godse)’

मुद्रित अभिलेख-प्रमाण क्रमांक पी. १२९, पी १२८, भाग ४, पृष्ठ ७६ से ८४ तक )।

अपने मन में किये गये निश्चय के अनुसार नथूराम को अपनी मृत्यु सन्निकट दिखाई देती थी, यह इस लेख से प्रकट होता है। क्योंकि बीमा में उत्तराधिकार की सामान्य अवस्थाओं के अनुरूप नथूराम की अवस्था न थी।

नथूराम ने यह उत्तराधिकार आपटे और गोपाल के नाम नहीं, प्रत्युत उनकी पत्नियों के नाम पर किये अर्थात् अपने निश्चय के फलस्वरूप आपटे और गोपाल के जीवन पर भी सकट की संभावना इन्हें थी। यह सब न्यायालय के समक्ष प्रदर्शित करना अभियोजकों को अभीष्ट था।

पड्यन्त्र का अर्थ है एक से अधिक अर्थात् दो या उनसे अधिक व्यक्तियों के द्वारा किसी अवैध कार्य के लिये योजनाबद्ध रूपरेखा का निर्माण करना और उसके अनुसार कार्यवाही करना (भारतीय दण्ड विधान धारा १२० अ)। किन्तु यदि नथूराम अथवा किसी अन्य एक व्यक्ति के मन में कोई विचार उत्पन्न हो और वह स्वयं सभी संभावित परिणामों का उत्तरदायी बन कर उसके क्रियान्वयन के लिये कोई दुस्साहसिक किंवा अवैध कार्य कर डाले तो उसे पड्यन्त्र की सजा नहीं दी जा सकती। किसी के नाम किसी अपराधी ने उत्तराधिकार पत्र लिख दिया, केवल इसी आधार पर वे व्यक्ति अपराधी नहीं माने जा सकते जिनका उत्तराधिकारी से कोई सम्बन्ध है। परन्तु इस अभियोग में गोपाल गोडसे के विरोध में एक प्रमाण प्रस्तुत किया गया १४-१-७२ का।

भारतीय सेना की खडकी परिवहन सामग्रीशाला (मोटर ट्रान्सपोर्ट स्टोअर सब डिवी) में गोपाल गोडसे (लेखक स्वयं) उस समय सामग्री आवेक्षक (स्टोअरकीपर) के रूप में कार्य करता था। संयोग से दिनांक १४-१-४८ को गोपाल ने एक आवेदन द्वारा अधिकारियों से १५-१-४८ से २१-१-४७ तक की एक सप्ताह की छुट्टी मांगी थी। (प्रमाण क्रमांक पी० १३२, मुद्रित अभिलेख भाग ४, पृष्ठ ८६)। किन्तु दिनांक १६-१-४८ को उसे परामर्शदात्री समिति (Advisory Board) के समक्ष प्रस्तुत होना था इसलिये उसकी छुट्टी १७-१-४८ से स्वीकार की गई। इन प्रमाणों को प्रस्तुत करते समय अभियोजकों का ध्यान गोपाल द्वारा प्रस्तुत आवेदन के दिनांक १४-१-४८ पर केन्द्रित था क्योंकि नथूराम ने गोपाल की पत्नी के नाम उत्तराधिकार पत्र १४-१-४८ को लिखा और उधर गोपाल ने उर्दा १४-१-४८ में एक सप्ताह की छुट्टी के लिये आवेदन दिया था। इसलिये इन दोनों घटनाओं का समान दिनांक के कारण सम्बन्ध जोड़कर गोपाल गोडसे को १४-१-४८ को परिवर्तित पड्यन्त्र का एक घटक मान लिया गया। आपटे के सम्बन्ध में भी यही तर्क प्रस्तुत किया गया। नथूराम और आपटे १४-१-४८

को दोपहर ३.३० की ट्रेन द्वारा पूना से बम्बई गये थे ऐसा दिनांक ३-८-४८ को हुई एक गवाही में कहा गया है। (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १२३ २४)। आपटे की पत्नी के नाम नथूराम के १३-१-४८ को लिखे गये उत्तराधिकार पत्र का आपटे का नथूराम के साथ बम्बई यात्रा का सम्बन्ध जोड़कर आपटे की वाद की गतिविधियों को लक्ष्य करके तेरह या चौदह जनवरी को परिकल्पित पट्टयन्त्र में आपटे को लिप्त करना अभियोजकों को अभीष्ट था।

इस प्रकार १३-१-४८ और १४-१-४८ के दिन अभियोजकों की दृष्टि में अत्यन्त महत्व के हैं। १३-१-४८ को नथूराम ने पहला उत्तराधिकार पत्र लिखा। क्या उसी दिन उन्होंने मन में कुछ निश्चय किया होगा? इसका समाधान करने के लिए भारतीय राजनीति पर प्रभाव डालने वाली उन दो, तीन दिनों में राजधानी दिल्ली में घटी घटनाओं पर ध्यान देना आवश्यक है। सरदार वल्लभभाई पटेल उस समय भारत के उप-प्रधानमंत्री थे। पाकिस्तान और हिन्दुस्थान के अनेक विवादास्पद एवं ज्वलन्त प्रश्नों पर गत कुछ महीनों से उच्च स्तर पर समझौते चल रहे थे। हिन्दुस्थान के विभाजन के समय पाकिस्तान के हिस्से के पचपन करोड़ रुपये उसे देने का प्रश्न भी चर्चा और समझौते का एक मुख्य विषय था।

यों इस प्रश्न पर विवाद का वास्तव में कोई कारण नहीं था। भारत ने विभाजन के समय पाकिस्तानवाले प्रदेशों पर जो कृष्ण या उसे चुनाना और चार वर्षों के पञ्चात् पाकिस्तान की सुविधामुसार यह राशि उसमें उदारतापूर्वक बसूल करना, स्वीकार किया था। इसलिये पाकिस्तान के हिस्से का घन भारत हड़प लेगा यह कल्पना भी मूर्खता की बात थी। किन्तु प्रश्न यही तक सीमित नहीं था। पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर कबाइलियों से करवाये गये आक्रमण तथा उक्त आक्रमण को प्राप्त पाकिस्तान के प्रत्यक्ष समर्थन से उत्पन्न विस्फोटक स्थिति का पचपन करोड़ रुपये की अदायगी से धनिष्ट सम्बन्ध था। सरदार पटेल ने १२-१-४८ को पत्रकारों के बीच जो वक्तव्य दिया था उसमें हिन्दुस्थान की भूमिका अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में व्यक्त हुई है।

उन्होंने कहा—'कश्मीर पर' आक्रमण के प्रतिरोध की प्रक्रिया के रूप में इस सन्धि की (वार्थिक व्यवहार की) कार्यवाही को सम्पत्ति स्थिति करके हमने न्यायोचित कार्य किया है। हम इस सन्धि के प्रति निष्ठावान हैं, बचनवत् हैं यह हमने पाकिस्तान सरकार को एक बार नहीं अनेक बार कहा है। किन्तु इस सन्धि में रूपया देने की निश्चित अवधि जैसा कोई दायन हमारे ऊपर नहीं है। पाकिस्तान ने अपनी सेना की सहायता में हमने सदास्व सघर्ष छेड़ रखा है और उसके और अधिक विस्तार की भयानक संभावना है। ऐसी अवस्था में नहीं था

विच्छेदपूर्ण सम्भव है, ऋण के उत्तरदायित्व को स्वीकार करना, और सम्पत्ति का बँटवारा करना जैसे सन्धि में समाविष्ट अनुबन्धों पर भी उसका विपरीत परिणाम होगा। उस दशा में पाकिस्तान किसी भी बहाने से सन्धि की शेष राशि प्राप्त करने के लिये अपना वाद प्रस्तुत नहीं कर सकेगा। ( Indian Information dated 22-2-1948 ) :

( We were therefore fully justified in providing against aggressive actions in regard to Kashmir by postponing the implementation of the agreement. We have made it clear to the Pakistan Government more than once that we stand by the agreement which we reached. The agreement does not bind the Government of India to any fixed date for payment and we cannot reasonably be asked to make a payment of cash balances to Pakistan when an armed conflict with its forces is in progress and threatens to assume even a more dangerous character, which would be likely to destroy the whole basis of the financial agreement and would endanger other parts of the agreement, such as agreements for taking over of debt, division of stores, etc. )'

सरदार पटेल ने यह भी कहा—'कश्मीर के प्रश्न का निर्णय हुये बिना हम कोई खपया देना स्वीकार नहीं करेंगे, ऐसा मैंने उस समय स्पष्ट किया था।' ( I had made it quite clear then that we would not agree to any payment until the Kashmir affair was settled )

तत्कालीन अर्थमंत्री श्री पण्मुखम् चेट्टी ने अपनी क्षमता पर विचार करके भारत की ओर से पाकिस्तान को उत्तर दिया—“सभी प्रश्नों के समाधान होने के पूर्व अपने न्यायपूर्ण मार्ग से, पड़ोसी राष्ट्र के उत्तरदायी मन्त्रियों की दादागिरी या मिथ्या प्रचार से डरकर हम विचलित नहीं होंगे।” ( Indian Information dated 2-2-1948. )

( Meanwhile we will not be deterred from what we consider to be the right path by a campaign of hectoring, bullying and scandalising on the part of responsible Ministers of a neighbouring country. )

बाग बुझाने के दो मार्ग हैं। एक है बाग पर पानी डालना और दूसरा है

आग को फैलाने वाली वस्तुओं को आग तक न पहुँचने देना । कश्मीर पर आक्रमण के समय हमारी सेनायें आक्रमणकारियों को रोकने और उन्हें परास्त करने के लिये प्राणपण से जुटी हुई थी । भारत सरकार द्वारा पाकिस्तान को दी जानेवाली-घनराशि को रोक लेने की नीति युद्ध की अभिमतक इंधन को पहुँचने से रोकने की दूरदर्शितापूर्ण योजना से प्रेरित थी । गतवर्ष पाकिस्तान के द्वारा कश्मीर पर हुये आक्रमण को विफल करने के लिये स्व० शास्त्री के प्रधानमन्त्रित्व की छाया में भारतीय सेना द्वारा लाहौर तक पहुँचने की घटना जैसी समयोचित और अभिनन्दनीय थी उतना ही गौरवपूर्ण भारतीय शासन का यह निर्णय था । रक्तपात को तत्काल रोकने का, शांति स्थापित करने का वह एक दूरदर्शी उपाय था । कश्मीर पर आक्रमण की गम्भीर वस्तुस्थिति के अनन्तर भारत द्वारा पाकिस्तान के हिस्से की घनराशि दे देने जैसा सद्भाव और औदार्य दिखाये जाने पर पाकिस्तान का हृदय परिवर्तन हो जायगा और वह आक्रमण को लौटा लेगा यह मानने को भारत शासन तैयार नहीं था । पूर्व अनुभवों से उसके हाथ जल ही चुके थे इसलिए प्राणों को सकट में डालकर विप की पुनः परीक्षा करने की उसकी इच्छा नहीं थी ।

गांधीजी उन दिनों दिल्ली में ही थे । शासन के उत्तरदायी नेता और उनकी भेंटें होती रहती थी । राजकीय विषयों पर भी चर्चा होती थी । भारतीय शासन का यह निर्णय गांधीजी को नहीं जँचा । भारत द्वारा पाकिस्तान का इस तरह घेरा जाना गांधीजी को अहिंसा के आदर्शों के विपरीत प्रतीत हुआ । शामन यह निर्णय बदलने के लिये वाध्य होंगे ऐसे प्रयत्न उन्होंने किये परन्तु वे सफल नहीं हो सके । गांधीजी के दिनांक १२-१-४८ के प्रार्थना प्रवचन से ऐसा आभास मिलता है । वे कहते हैं—

“ मगर ऐसा मौका भी आता है जब अहिंसा का पुजारी नमाज के किसी अन्याय के सामने विरोध प्रकट करने के लिये उपवास करने पर मजबूर हो जाता है । वह ऐसा तभी करता है जब अहिंसा के पुजारी की हँसियत ने उसके सामने दूसरा कोई रास्ता खुला नहीं रह जाता । ऐसा मौका मेरे लिये आ गया है । ” ( दिल्ली डायरी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद पृष्ठ ३४४ )

गांधीजी की इस मनोदशा का मूल कारण सरदार वल्लभभाई पटेल की पच-पन करोड़ रुपये सम्बन्धी दृढ़ता ही थी । विन्तु गांधीजी के उपवास का निर्णय सरदार पटेल को पसन्द नहीं आया और वे दिल्ली छोड़कर बम्बई चले गये । इस तथ्य की पुष्टि मौलाना अवुल कलाम आजाद ने अपनी पुस्तक में की है ।

प्रार्थना सभा में व्यक्त किये गये विचारों के अनुसार दूसरे दिन से गांधीजी ने

अपना दुर्भाग्यपूर्ण अनशन प्रारम्भ कर दिया। गांधी जी का यह अनशन पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये न देने के भारत सरकार के निर्णय के विरुद्ध था। यह स्पष्ट करना राजनीति के विद्यार्थियों के लिए आवश्यक नहीं है। गांधीजी के उन दिनों के वक्तव्य जनता की आंखों के सामने थे। हिन्दुस्थान के हितों की हत्या करके भी नवनिर्मित राष्ट्र पाकिस्तान के सुख साधन के लिए उनकी आतुरता से जनता परिचित होती जा रही थी। इन्होंने राष्ट्र का सिद्धान्त उनकी दृष्टि में साम्प्रदायिक था किन्तु इसके विपरीत मुस्लिम सम्प्रदाय वा साम्प्रदायिक राष्ट्र हिन्दुस्थान में ही स्थापित हो चुका था। गांधीजी की मान्यता थी कि उस मुस्लिम राष्ट्र के विस्तार पथ में यदि राजनैतिक कार्यवाही के रूप में भी हमने कोई वादा उपस्थित की तो हम ससार की दृष्टि में असाम्प्रदायिक वर्ग निरपेक्षता के सिद्धान्त से व्युत्पन्न हो जायेंगे। व्यावहारिक रूप में यदि शासन मेरी बात नहीं मानता तो अपने प्राणों की बाजी लगाकर मैं उसे अपनी बात मनवाने पर विवश कर दूंगा, इसी अभिप्राय से गांधी जी ने—अनशन का मार्ग अपनाया है, ऐसा अनुमान करना राजनीति के विद्वानों के लिए कठिन न था।

गांधीजी के अनशन के सन्दर्भ में भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की। गांधी जी के अनशन का ऊपरलिखित अर्थ लगानेवालों का अनुमान युक्तियुक्त था यह इस विज्ञप्ति से स्पष्ट हो गया था। विज्ञप्ति इस प्रकार थी—

“गांधीजी ने देश से जो अपील (Appeal) की है उसके अनुसार हिन्दुस्थान और पाकिस्तान दोनों देशों के बीच सन्नेह और सघर्ष के एक कारण को दूर करने का भारत सरकार ने निश्चय किया है। राष्ट्रीय सम्मान और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से ऐसा करना सरकार को उचित प्रतीत होता है और यह सरकार के अधिकार क्षेत्र में भी है।

“इस उत्स्फूर्त भावना की तह में शासन का यह उद्देश्य है कि इस कार्य की सद्भावना को समझा जाय और परस्पर प्रेम सम्बन्धों का वातावरण निर्मित हो। इस सन्नेह सम्बन्ध के लिए आज गांधीजी यज्ञवेदी पर अपनी देह को होम रहे हैं। इस सद्भावना से उनका अनशन समाप्त हो और देश को उनकी अमूल्य सेवाओं का प्रतिदान देने का अवसर मिले।”

“भारत सरकार ने वकाया राशि के भुगतान की कार्यवाही तुरन्त करने का निर्णय किया है”

“शासन का यह निर्णय देश की दैदीप्यमान परम्परा के अनुसार शान्ति और सद्भावना की रक्षा के लिए गांधीजी के बहिंसक और उदात्त प्रयत्नों को विनम्र भेंट है।” (Indian Information dated 22-1948)

"The Government have decided to implement immediately the financial agreement with Pakistan in regard to the cash balances."

"This decision is the Government's contribution, to the best of their ability, to the non-violent and noble effort made by Gandhiji, in accordance with the glorious traditions of this great country, for peace and goodwill." )

प्रसंगिकता द्वारा प्रकाशित प्रिजिनि में भी कहा गया है कि भारत सरकारने "गान्धीजी के विचार करने और गान्धीजी के वातचीत करने के पदचात यह निर्णय लिया है । ( Indian Information dated 2-2-1948 )

( The Government's decision in regard to payment of the cash balances to Pakistan has been taken after the most careful thought and after consultation with Gandhiji )

बिन्तु भारत की गद्मना में ओत-प्रोत यह प्रेम प्रवाह भी पाकिस्तान का हृदय गिगा नहीं सका । उगने आक्रमण नहीं रोका, अन्य सीमाओं पर भी अतिक्रमण करके भारत को प्रग्त करना नहीं छोड़ा । पाकिस्तान से शेष हिन्दुओं को भगने का क्रम पूर्वगत था यह सब इतिवृत्त पाठकों को ज्ञात ही हैं । यहा केवल १३-१-४८ का गहत्व ही चर्चा का विषय है ।

नयूराम और आपटे दैनिक 'हिन्दुराष्ट्र' का संचालन करते थे । ऊपर प्रकाशित अग्रणी ही 'हिन्दुराष्ट्र' में रूपान्तरित किया गया था । साग्नदायिकता के आधार पर मुस्लिम राष्ट्र के निर्माण की सम्भावना के साथ-साथ, हिन्दुराष्ट्र के सम्पाद-



कीय लेख उत्तरोत्तर अधिक प्रखर और उग्र होते गये । अनेक सम्पादकीय लेखों को अभियोजको ने प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है । (मुद्रित अभिलेख, भाग ४ पृष्ठ ९२ से १२३) ।

इन समाचारपत्रों से अनेक बार प्रतिभूति (जमानत) मागी गई थी । पाकिस्तान प्रत्यक्ष मुस्लिम राष्ट्र है इसलिये वहाँ हिन्दुओं की प्रताड़ना स्वाभाविक है किन्तु भारत में मुस्लिम अनुनय का विरोध करनेवाले हिन्दुत्व निष्ठों का दमन हो रहा है और यह सब गांधी जी की एक पक्षीय विशिष्ट नीति के कारण हो रहा है ऐसी भावना 'हिन्दुराष्ट्र' के अनेक सम्पादकीय लेखों में ध्वनित होती थी । गांधी जी के विरुद्ध 'हिन्दुराष्ट्र' के संचालकों की भावनाएँ दिन प्रतिदिन तीव्र होती जा रही थी । उनका मत था कि गांधीजी को राजनीति से निवृत्त हो जाना चाहिये । नथूराम और आपटे शस्त्रास्त्रों के व्यवहार में लिप्त थे । तथापि उनके इन लेखों से गांधीजी के वध के उद्देश्य की कोई पहल उनके द्वारा होती दिखाई नहीं देती ।

गांधीजी के अनशन का समाचार दिनांक १२ को दूर मुद्रक (टेली प्रिन्टर) पर पढ़ने पर संभवतः नथूराम और आपटे ने अनुमान लगा लिया कि गांधीजी का यह अनशन भारत सरकार के ५५ करोड़ रुपये सम्बन्धी निर्णय को बदलवाने के उद्देश्य से ही हो रहा है ।

यहाँ एक दो बातें स्पष्ट करना आवश्यक है । पडयन्त्र के एक सदस्य के रूप में मुझपर आरोप लगाया गया था । वह प्रमाणित भी हुआ और उसके कारण मुझे दण्डित किया गया । इसलिये कोई भी यही मानेगा कि पडयन्त्र की सूक्ष्माति-सूक्ष्म जानकारी मुझे अवश्य होगी । किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है । हम सब अभियुक्त न्यायालयाधीन होकर लाल किले के बन्दीगृह में रखे गये थे । वहाँ हम स्वतन्त्रतापूर्वक परस्पर बातचीत किया करते थे । उस वार्तालाप में अनेक अज्ञात तथ्य ज्ञात होते रहते थे । पडयन्त्र कब रचा गया यह निश्चित रूप से ज्ञात न होने पर भी प्रमाणों के आधार पर तर्क करने में कोई बाधा नहीं थी । दूसरी बात यह कि राजनैतिक पडयन्त्रों में अनेक घटनाएँ पीछे तक अन्वेषण में ही रहती हैं ।

स्वातन्त्र्यवीर सावरकर ने कहा है—“इतिहास का प्रथम पृष्ठ कभी देखने को नहीं मिलता । उसका आरम्भ प्रायः दूसरे पृष्ठ से ही होता है ।”

निम्नी भी राजनैतिक पडयन्त्र के इतिहास के बीच-बीच के पृष्ठ लुप्त हो जाते हैं और उनका प्रकाश में आना कभी भी सम्भव नहीं होता । १९६४ के नवम्बर में बर्मा में मैंने सरदार भगतसिंह के सम्मन्ध में एक चलचित्र देखा था । प्रायः लगभग घटनाएँ हमें स्मरण रहती हैं और पूरी कथावस्तु को आधार प्रदान करने के लिये काल्पनिक अनुमान का आश्रय लेना पड़ता है । और उस प्रक्रिया में हम वस्तुस्थिति से पर्याप्त दूर तक चले जाते हैं इसका आभास मुझे उस चित्र को

देरते समय बार-बार होता था । Facts are at times stranger than fictions अर्थात् बहुधा वास्तविक घटनाये उपन्यास से भी विचित्र हुआ करती हैं, उस अंग्रेजी कहावत का मैंने अनुभव किया ।

“Nine hours to Rama” नामक अमेरिकन उपन्यास में यही हुआ है । इसका कारण यह लगता है कि पडयन्त्र के निमित्त पडयन्त्रकारियों और अन्य अनेक व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों के विषय में कोई भी रहस्योद्घाटन दोनों ओर से नहीं होगा ऐसा परस्पर विश्वास रहा होगा । यह लिखते समय मुझे पश्चात्ताप होता है कि यदि किन्ही सन्दर्भों में कुछ सूत्र में नथूराम या आपटे से पूछ लेता तो आज उनके विषय में बहुत कुछ लिख सकता था, किन्तु उनके द्वारा गोपनीय रखे गये तथ्य उनके साथ जो गये सो चले ही गये ।

ग्रन्थास्त्रों के बीच विचरण करनेवाले नथूराम और आपटे की दृष्टि में और भी कई योजनायें आई होगी ऐसा प्रमाण में प्रस्तुत किये गये शस्त्रसभार से ही दिखाई देता है । किन्तु स्यात् किसी निश्चित योजना के कार्यान्वयन की स्थिति तक वे नहीं पहुँचे होंगे इसलिये अपने जीवन के सम्बन्ध में सामान्यतया निश्चितता की स्थिति उस समय तक उनकी थी । दिनांक १३ के प्रमाण से ही ऐसा प्रतीत होता है कि वैसी निश्चितता उसके अनंतर नथूराम के मन में नहीं रही ।

अपने दैनंदिन व्यवहार में हम अनुभव करते हैं कि किसी विशिष्ट कार्य के लिये रखी हुई राशि अनेक बार सहसा प्रस्तुत हुये किसी अन्य आवश्यक कार्य में व्यय करनी पड़ती है । किराये के लिये अथवा दूकानदार को चुकाने के लिये रखे गये पैसे, अथवा पैसे का एक बड़ा भाग अपने क्षतिग्रस्त वाहन या अपने आहत हाथ या पैरों की चिकित्सा के आकस्मिक कार्य में खर्च करने पड़ते हैं । गांधीजी के अनशन का समाचार पढ़ते ही अपनी अन्य योजनाओं को दूर रखकर भारत शासन की लोकतांत्रिक कार्यपद्धति में गांधीजी के अवाञ्छनीय हस्तक्षेप को रोकने के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर करके भी गांधी वधका कार्य सर्वप्रथम हाथ में लेने का नथूराम ने निश्चय किया होगा क्योंकि उनके मतानुसार यह राष्ट्र के जीवन मरण का प्रश्न था । किन्तु उस एक व्यक्ति के मन में उत्पन्न हुआ विचार पडयन्त्र की सज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता ।

दिनांक १२ की संध्या में १३ के प्रात तक किसी समय नथूराम ने अपना विचार नाना को बताया होगा । नाना ने सहमति व्यक्त की होगी अथवा स्वयं भी नथूराम की योजना में भाग लेने का उत्साह दिखाया होगा । और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये दोनों ने परस्पर मिलकर आगे की योजना बनाई होगी । तथाकथित पडयन्त्र का वही उद्गम हुआ । यही था वह अभागा क्षण । \* \* \*

## तीन

### नथूराम की जन-स्थिति

गांधीजी द्वारा जनजागृति के लिये किये गये प्रयत्नों से नथूराम अपरिचित नहीं थे। उनका महत्व वे जानते थे। ऐसी स्थिति में गांधी वध का निर्णय करते समय उनकी मन स्थिति कैसी रही होगी यह देखना आवश्यक है।

दिनांक २४-११-६४ को कारागार से मेरी मुक्ति के चालीस दिनों पश्चात् ही भारत रक्षा अधिनियम के अनुसार मुझे फिर कारावास हो गया। चार मास के उपरान्त दिनांक २९-३-१९६५ को मैंने महाराष्ट्र के गृहमंत्री माननीय वाळा-राव देसाई को उस समय के चर्चित विषय पर एक पत्र लिखा था। उस पत्र में मैंने उपरोक्त विषय की किंचित चर्चा की है। जनमानस पर गांधी जी का प्रभाव किस प्रकार का था इसका वर्णन निम्न भागों में किया गया (परिच्छेदों के पूर्व क्रमांक मूल पत्र के अनुरूप हैं।)

३९ क्या गांधी वध पिस्तौल हाथमें लेने और गोली मार देने जैसी सामान्य घटना थी? यदि कोई उसे इतनी सहज सामान्य घटना मानता है तो वह अज्ञानी है। उसे अनुभव नहीं है। कोई भी वध इतने सहज नहीं होता। फिर गांधी वध तो कदापि नहीं था।

४०. अन्तिम घटनाओं के सम्बन्ध में गांधीजी से कितना भी मतभेद क्यों न हो, अन्ततोगत्वा गांधीजी के पीछे एक महान् जीवन का इतिहास खड़ा था।

४१ सत्याग्रह सिद्धान्त के सम्बन्ध में किसी का कुछ भी मत क्यों न हो, सौरभान्य के पश्चात् उत्पन्न हुई रिक्तता में गांधीजी ने सत्याग्रह के माध्यम ने सामान्य जनता तक देशप्रेम की भावना और पराधीनता के दोषों की अनुभूति को पहुँचाया।

४३. सत्याग्रह के माध्यम से गांधीजी ने सामान्य जन के मन से दन्दीगृह के भय को नष्ट कर दिया ।

४४. गांधीजी ने महात्मा की उपाधि स्वयं धारण नहीं की । प्रत्युत जनता ने उन्हें यह आदर प्रदान किया था ।

४५. देन की नई पीढ़ी स्वतन्त्रता के गीतों की लय पर चरण रखती हुई आगे बढ़ रही थी । मुझे स्मरण है, उस समय नथूराम १७-१८ वर्ष के थे और मैं ७-८ वर्ष का ( १९२७-२८ ) । गीत लिखने का नथूराम को शौक था । नये गीत वे मुझे कण्ठस्थ करा देते थे । “ही—परवशता क्षणि सोडी, तोडी पारतन्त्र्य-वेडी” ( यह परवशता तुरन्त छोड़ दो और दास्यता की शृंखला तोड़ दो । ) इस प्रचार की कुछ पक्तियाँ मुझे अभी तक स्मरण हैं । उस समय उनका अर्थ मेरी नमज़ में नहीं आता था । एक दो वर्ष पश्चात् गणेश उत्सव के एक मेले में मैंने उनका रचिन एक गीत गाया था जिसका भावार्थ था—“हे विघ्नहर्ता । हमारी पराधीनता दूर करो । शत्रुओं का सहार करने की हमें शक्ति दो ।” अभि-प्राय यह है कि उस समय युवा पीढ़ी स्वतन्त्रता की कल्पना से उत्स्फूर्त थी और याँवन की ओर अगसर होनेवाली पीढ़ी इस कल्पना के सत्कार ग्रहण कर रही थी । गांधीजी के प्रयत्नों से यह सब हो रहा था ।

४६. “महात्मा गांधी की जय” उस समय का रणघोष था और गांधी टोपी रणवेश । विद्यार्थियों में यह उत्साह इतना बढ़ा चढ़ा था मानो वह युद्ध ही लड़ रहे हों । उसी आवेश से यह रणवेश धारण करते थे और गगनभेदी गर्जना के साथ रणघोष करते थे । रणघोष करते थे और दंत की मार खाते थे । जरी की टोपियाँ लुप्त हो रही थी और विदेशी वस्त्रों एवं वेशभूषा के प्रति जनसामान्य में तीव्र घृणा का संचार हो रहा था ।

४७. उस वय में गांधी कीन हैं, कहाँ के हैं, अथवा अग्रेज कौन हैं, और कहाँ के हैं यह सोचने समझने की बुद्धि की क्षमता ही नहीं थी । उसी आयु में “सावरमती सत जेलमा छे ।” अथवा “जालिम सरकार नहीं रखना” जैसे गीत अर्थ न समझ में आने पर भी बालकों के होठों पर रहते थे ।

४८. सशस्त्र क्रांति गांधीजी का सिद्धान्त नहीं था । किन्तु जनता में स्वराज्य चेतना का उत्साह इतने उत्कर्ष पर था कि लोग ‘सरदार भगत सिंह की जय’ का उद्घोष करते समय स्वयं को भी भूल जाते थे । भगतसिंह की मनोदशा पर लिखा गया किसी का गीत—“भेटेन नऊ महिन्यानी” ( नौ महिनो के बाद फिर मिलूँगा ) घर घर गाया जाता था ।

४९. माराठा में, गांधीजी उस समय उस पीढ़ी के हृदय में, सामान्य जनता के हृदय में, कूटकूट कर समा गये थे । एक व्यापक चरित्र गांधीजी के पीछे था ।

इस चरित्र से पूर्ण परिचित होने के कारण गांधीजी के इस चरित्र को पूर्ण विराम देने का निर्णय करने के पूर्व नयूराम की मन स्थिति क्या रही होगी इसका उत्तेलेश भी मैंने उसी पत्र में किया है। सम्बन्धित अंश इस प्रकार है

५० साम्प्रदायिक समस्या के सम्बन्ध में गांधीजी की नीति अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुई है, अब वे राजनीति से निवृत्त हो और राष्ट्र के निर्णयो में हस्तक्षेप न करें ऐसा अनेक कांग्रेसी नेताओं का मत था यह सत्य है। किन्तु ऐसा मत रखना पृथक् बात है और गांधीजी के जीने का अधिकार जो परमात्मा ने उनके भाग में दिया होगा, छीन लेना पृथक् बात है।

५१ सरदार पटेल का गांधीजी की नीति के सम्बन्ध में मत और गांधीजी द्वारा “पटेल अब मुझसे नहीं पूछते और मेरी ओर आनाकानी करते हैं” जैसे विचार व्यक्त करना इस पृष्ठभूमि पर गांधी वध के पीछे सरदार पटेल का हाथ था ऐसा सदेह व्यक्त किया जाता है। किन्तु ऐसा सन्देह पटेल के प्रति अन्याय है। अधिक से अधिक पटेल त्याग-पत्र दे देते। मैंने सुना है, यदि ३० जनवरी अथवा उसके आस पास गांधी वध न होता तो सरदार पटेल के त्यागपत्र का समाचार हमें पत्रों में पढ़ने को मिलता। मुझे लगता है कि श्री एच व्ही आर अय्यंगार इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश डाल सकते हैं।

५२ पाकिस्तान से आये निर्वासितों की भावनायें उन दिनों बहुत क्षुब्ध थी। यह कैसा स्वराज्य मिला है ? बिना भूकम्प के ही उनके पैरों के नीचे की धरती खिसक गई। ऐसी उनकी अवस्था हो गई थी। रक्त-रजित जनसमूह वेगवती नदी के प्रवाहसा चला आ रहा था।

शेक्सपीयर ने एक स्थान पर एक अलंकारिक वाक्य लिखा है—“यदि घावों के पास जिन्हा होती तो वे अपनी पीड़ा चीख-चीख कर व्यक्त करते।” यहाँ तो प्रत्येक निर्वासित अपने आप में एक चलता फिरता घाव था और उसके पास जिन्हा भी थी। चाहने पर भी समाचार पत्र जिस क्षोभ को व्यक्त नहीं कर सकते थे उसे निर्वासितों के विराट समूह की लक्ष लक्ष जिह्वाओं से निकलने वाले उद्गार उच्छ्वास, सम्पूर्ण वायुमण्डल में भर रहे थे। अणु विस्फोट के होनेवाले विप-विस्तार के समान देश का वातावरण क्षुब्ध होता जा रहा था।

५३ शोक के उद्देग से मानव अन्तःकरण शाप देता है। गांधीजी को मर जाना चाहिए, गांधी मरता है तो मरने दो, उसके कारण हमारा सर्वस्व लुट गया है, इस प्रकार के उद्गार सार्वजनिक स्थानों पर असंख्य कण्ठों से बरबस निकल पड़ते थे।

५४ फिर भी शाप देना पृथक् बात है और गांधीजी को मार डालना पृथक्।

५५ यदि अमुक को न मारा गया तो वह हमें मार डालेगा यह आशका गी हत्या करने पर विवश करती है। किन्तु नथूराम गांधीजी को न मारते तो गांधीजी नथूराम को मार डालते ऐसी भी कोई सभावना इस प्रकरण में नहीं थी।

५६ आत्म समर्पण के उदाहरण भी कभी कभी मिलते हैं। हत्या करके रक्त-रजित शस्त्र के साथ आरक्षी या न्यायालय के सम्मुख जाकर हत्यारे के द्वारा अपना अपराध स्वीकार करने जैसी घटनायें, पढ़ी जाती हैं। “मुझे अधिकार नहीं था फिर भी मैंने विधिको अथवा कानून को अपने हाथ में लिया और अमुक को मार डाला। आत्मरक्षा के लिये नहीं प्रत्युत अमुक कारणों से मैंने ऐसा किया है। मैं विधिको तोड़ना नहीं चाहता इसलिये मुझे यथाविधि दण्ड दिया जाय।” ऐसा कहकर स्वयं फांसी को निमन्त्रण देना आत्मसमर्पण का मार्मिक उदाहरण है। किन्तु यहाँ तो ऐसी स्थिति थी कि मूलतः हत्या ही आत्मसमर्पण की अपेक्षा अत्यन्त कटु हो।

५७. एक प्रकार से वह हालाहल-पान था। आप कल्पना कर सकते हैं। गांधीजी ने एक सम्पूर्ण पीढ़ी को प्रेरित और कार्य प्रवृत्त किया था। नथूराम भी उसी पीढ़ी के थे। कालान्तर में प्रवाह के पलट जाने पर भी प्रारम्भ में मन पर पड़े प्रभाव का सर्वथा मिट जाना सम्भव नहीं है। देश में गांधीजी के श्रद्धालु असंख्य थे। गांधी हत्या का अर्थ था श्रद्धालुजनों की भावनाओं को ठेस पहुँचाना। नथूराम न ही पाकिस्तान से निष्क्रमित विस्थापित थे न उनका गांधीजी से कोई व्यक्तिगत वैर ही था। मानव जीवन का महत्व न समझनेवाले निष्ठुर लोगों में वे नहीं थे। इस पृष्ठभूमि पर गांधीजी की हत्या का कठोर कर्तव्य निश्चित करते समय उनके मन में भावनाओं का सघर्ष नहीं हुआ होगा यह कैसे सम्भव है। अपने गुरुजन को युद्धभूमि में अपने सम्मुख खड़े देखकर महाभारत में ‘गांडीव ससते हस्तात्’ ऐसी अर्जुन की स्थिति हुई थी। उसे आँखों के सामने रखकर नथूराम की मनोदशा का अनुमान किया जा सकता है।

५८ मूलतः रक्तपात धर्म नहीं है। गीता में भी रक्तपात को धर्म बताकर उसका समर्थन नहीं किया गया। युद्ध दोषलसित कर्म है, आरंभ कर्म मनुष्य का अनिवार्य धर्म है, इसलिये युद्ध करो, गीता का यह अभिप्राय है। मनुष्य का सहज-स्वभाव शांति है। वही स्वाभाविक धर्म है। रक्तपात तो दुर्घटना ही है।

५९. यह रक्तपात युद्ध नहीं था। द्वंद्व भी नहीं था। इस प्रकार के रक्तपात की एक विशेषता है। हत्या के पूर्व मारे जाने वाले के प्रति जन भावनाएँ कितनी भी तीव्र और क्षुब्ध क्यों न हों, हत्या के पश्चात् उनके समस्त दोष उसके रक्त में धुल जाते हैं। उसके चरित्र का कृष्ण पक्ष दब जाता है और उज्ज्वल पक्ष और



## चार

### गांधी वध का वह दिन

“डॉक्टर ! मेरे शरीर की परीक्षा कीजिये । मेरा हृदय, मेरी नाडी आदि व्यवस्थित है या नहीं, देखकर बताइये ।”

गांधी हत्या की घटना के कुछ ही समय पश्चात् नयूराम की शारीरिक परीक्षा के लिये बुलाये गये डॉक्टर से नयूराम ने कहा । नयूराम के अनुरोध पर डॉक्टर ने उनके हृदय और नाडी की परीक्षा की और सब कुछ पूर्णतया सामान्य और सुव्यवस्थित होने की घोषणा की ।

लालकिले के विशेष बदीगृह में निवास करनेवाले हम न्यायाधीन बन्दी परस्पर बातचीत किया करते थे । जैसा मैं पहले लिख चुका हूँ, वास्तव में, इस अभियोग के सभी अभियुक्तों को गांधी वध के पूर्व किसी योजना या पड्यन्त्र का पूरा पूरा ज्ञान न था । जिन घटनाओं का ज्ञान नहीं हो ऐसी घटनायें सभी के लिये कुतूहल का विषय था । हमारी बातचीत का मुख्य केन्द्र बिन्दु यही था ।

न्यायालय में प्रतिदिन होने वाली गवाहियों की सत्यता के सबब में और उनमें छोड़े गये तथ्यों और जोड़े गये प्रसंगों के सम्बन्ध में भी हम परस्पर चर्चा करते थे । गवाहों की प्रश्न-परीक्षा के लिये कौन से प्रश्न अपने अभिभाषक को हमें सुझाने चाहिए, इनका निश्चय भी इसी बातचीत में होता था ।

गवाह के वक्तव्य की भी सत्यासत्यता हम वास्तविक घटना के आधार पर परखते थे । बहुधा ऐसा भी होता था कि गवाह सच्चा अथवा वास्तविक, पर असली बातों में कुछ बातें असत्य होती थी । प्रश्न परीक्षण में यह असत्याग न्यायाधीश पर प्रकट हो जाता था और न्यायाधीश भी इसे गवाही के उस भाग



को अस्वीकार करते थे। किंतु कभी-कभी प्रश्नपरीक्षण में भी असत्य का खण्डन कठिन हो जाता था। उस स्थिति में वह असत्य ही अभिलेखों में सत्य बनकर प्रतिष्ठित हो जाता था।

कभी-कभी किसी घटना का दूसरी घटना से सम्बन्ध जोड़ने के लिए किसी गवाह को खड़ा कर दिया जाता था और सम्बन्धित घटनाएँ तो सच्ची होती थी किन्तु गवाह नकली एवं झूठा होता था। हमारी चर्चा का यह भी एक मनोरंजक विषय था। बहुत सावधानी और सतर्कता से खंडे किये गये ऐसे गवाहों की झूठी गवाही को अप्रामाणिक सिद्ध करना असंभव हो जाता था।

यहाँ मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि शासन ने अभियुक्तों पर झूठा अभियोग चलाया अथवा असत्य आरोप लगाये। अभियोग की पुनर्रचना अथवा प्राप्त दण्ड का निराकरण अब समयातीत विषय हो गये हैं और न्यायाधिकरण पद्धति से परे हैं। इसलिये अभियोग की असत्यता का संकेत असंगत भी है अनावश्यक और और तर्कसंगत भी नहीं है। आग्य यह है, कि गांधी वध सम्बन्धी सत्य को जानने के लिये न्यायालयीन अभिलेख का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। बंदीगृह के प्राचीरों के भीतर की चर्चा का कुछ अंश आपकी जानकारी में आने पर ही आप न्यायालयीन अभिलेखों की सहायता से सत्य के निकट पहुँच सकते हैं। सत्यान्वेषण की दृष्टि से मेरी यह चर्चा शासन के लिये भी उपयोगी हो सकती है, ऐसी मेरी धारणा है।

पदों के पीछे, सीकचों के भीतर नयूराम और आपटे की परस्पर चर्चाएँ आज भी मेरे स्मृतिपटल पर चमक रही हैं। उनका कोई अज्ञ धूमिल नहीं पडा है। प्रथम दिन नयूराम के मुख से सुनी बातें तो स्मृति में तैरती रहती हैं।

अपने हाथों होने वाले गांधी वध के पश्चात् लोगो द्वारा अपना नाम किन्-किन विशेषणों से संयुक्त किया जायेगा इसकी नयूराम को पूर्व कल्पना थी।

“लोग मुझे सिरफिरा या पागल बतायेंगे, कहीं मैं सचमुच पागल न मान लिया जाऊँ। उस दशा में, मानसिक विकृति की दशा में वध के आधार पर शासन को मुझ पर अपनी दया लादने का अवसर मिल जायगा अथवा वचाव पत्र ही मुझे मनोविकारग्रस्त घोषित करके मेरे लिये दया की याचना करेगा।” नयूराम इस स्थिति के लिये कदापि तत्पर न थे। इसीलिये उन्होंने डॉक्टर से अपनी शारीरिक परीक्षा करने का अनुरोध किया था। डॉक्टर के अनुसार उनकी द्वास प्रक्रिया सामान्य और नाडी की गति उल्लेखनीय रहित थी।

कुछ भी हो, नयूराम द्वारा यह अवध कृत्य मन की एक विशिष्ट दशा में सम्पन्न हुआ था, यह कोई भी स्वीकार करेगा। स्वयं नयूराम भी यह मानते थे

कि उस दुष्कृत्य के पक्ष में कोई वैधानिक तर्क नहीं दिया जा सकता। फासी ही इस कार्य का उपयुक्त दण्ड है, ऐसी उनकी भी धारणा थी।

मन की इस अवस्था के अनन्तर मानव मन की अन्य प्रवृत्तियों से वे शून्य नहीं थे। अपने असाधारण कृत्य से मैं गांधी-परिवार पर एक असह्य आघात करने जा रहा हूँ, इसकी उन्हें कल्पना थी। इस विषय में खेद प्रकट करने का अवसर उन्हें गांधी वध से थोड़ी देर पीछे ही मिल गया था।

पकड़े जानेके अर्थात् गिरफ्तारी के कुछ समय पश्चात् नथूराम को पहले तुंगलक रोड और पीछे पार्लमेंट स्ट्रीट के आरक्षी केन्द्र की कोठरी (हवालात) में रखा गया था। अधिकारियों के साथ अनेक लोग उन्हें देखने के लिये आया करते थे। कोठरी का प्रहरी बीच-बीच में सीकचो के सामने खड़ा हो जाया करता था।

सीकचो के बाहर आकर खड़े एक पुरुष से नथूराम की नजर मिली।

“मैं समझता हूँ, आप श्रीयुत देवदास गांधी हैं ?” “हाँ ! आप कैसे पहचानते हैं ?” उस पुरुष ने प्रतिप्रश्न किया। मैं किसी विद्रूप, असंस्कृत और असम्य व्यक्ति को अपने पिता के हत्यारे के रूप में देखूँगा यह श्री देवदास की कल्पना रही होगी। नथूराम का सौम्य और स्पष्ट भाषण उनके लिये अकल्पनीय था।

“हम एक पत्रकार परिषद के सदस्य में एकत्र हुए थे। आप ‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ के सम्पादक के नाते वहाँ आये थे।” नथूराम ने कहा।

“और आप।”

“मैं नथूराम विनायक गोडसे, दैनिक ‘हिन्दुराष्ट्र’ का सम्पादक। मैं भी वही था। आप आज पितृहीन हो चुके हैं। मैं इसका कारण बना हूँ। आप पर और आपके परिवार पर जो वज्रपात हुआ है, उसका मुझे खेद है। आप विश्वास करें कि किसी वैयक्तिक शत्रुता या द्वेष से अथवा आपका अनिष्ट करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर मैंने यह कार्य नहीं किया।”

जिसके ‘हत्याकारी’ हाथों का रक्त अभी सूखा न हो, वह मनुष्य इतनी शांति से, सन्तुलित और सयत् स्थितप्रज्ञ की भाँति वार्तालाप कर रहा है, यह देखकर श्री देवदास का कुतूहल जाग उठा। अपने पिता का अंत करने वाले व्यक्ति से उन्हें घृणा होती तो उसमें कुछ भी अस्वामाविक न होता। यदि वैसी घृणा का अनुभव उन्हें हुआ भी हो तो उन्होंने उसपर नियंत्रण रखा। पितृविद्योग के शोभ को नियंत्रित करके उन्होंने पूछा—“तब आपने ऐसा क्यों किया ?”

“कारण राजनैतिक और केवल राजनैतिक ही है।” नथूराम ने उत्तर दिया “क्या आप आधा पौन घटा सुन सकते हैं ? अधिकारियों से पूछिये। आप सम्पादक हैं, पृष्ठभूमि आपकी समझ में आ जायेगी।”

“वात मत कीजिये, आप आ जाइये।” समीप खड़े अधिकारी ने श्री देवदाम से अनुरोध किया। गांधीजी के पुत्र होने के कारण श्री देवदाम को नयूराम ने दो-तीन मिनट वार्ता की छूट दी गयी थी। अपने अपूर्ण कुतूहल के साथ श्री देवदाम वहाँ से हट गये।

इस अभिरोग का प्रमाण क्रमांक पी० ८० एक गोष्ठी के ठिकाने के सम्बन्ध में है। “महात्मा गांधी के पुत्र श्री देवदाम गांधी ने पिम्प्री की गोष्ठी का ठिकाना हाथ में दिया। उस पर GECO/19 M M K अंकित है। उन्ने उस लेन के आधार पर वरामद किया, पुडिया बनायी, राजमुद्रा अंकित की। हस्ताक्षर जसबन्त सिंह डी० एम० पी० नयी दिल्ली, समझ श्री देवदाम गांधी, श्री गुगल लवरदार, दि ३१-१-४८ (मुद्रित अनिलेख भाग १, पृष्ठ ३७)।”

उपर्युक्त प्रमाण की पुष्टि के लिये श्री देवदाम गांधी की गवाही प्रस्तुत नहीं की गयी। इन प्रसंग में श्री गुगलसिंह लवरदार की गवाही १६-७-४८ की हुई। (मुद्रित अनिलेख भाग १, पृष्ठ ७४)। यदि श्री देवदास को न्यायालय में बुलाया जाता तो नयूराम से हुआ उनका सभाषण उनकी गवाही में ही उद्धृत किया जा सकता था। तथापि गांधीजी के द्वितीय पुत्र श्री रामदाम गांधी को लिखे गये पहले पत्र में ही नयूराम ने श्री देवदास के समक्ष व्यक्त किये गये अपने विचार दोहराये हैं। पूना के पास स्थित पानशेत का बाँध टूटने से बाढ़ आ गयी जिससे आया नगर प्रभावित हुआ था। उसी पानशेत की बाढ़ में सम्बन्धित साहित्य के भोग जाने पर भी सम्बन्धित पत्र पढ़े जाने योग्य रह गया इसलिए यह सन्दर्भ देना संभव हो सका है।

मई, जून १९४९ में गिमला के उच्च न्यायालय में अभियोग के पुनर्निर्णय के आवेदन की सुनवाई चल रही थी। नयूराम को अम्बाला जेल से वहाँ लाया गया था। एक दिन बन्दिपाल ने उन्हें एक पत्र दिया। पत्र छोलने का कण्ट अधिकारी ही उठाते थे। उससे जिज्ञासा पूर्ति में विलम्ब नहीं होता था।

वह श्री रामदास गांधी का नागपुर से प्रेषित दिनांक १७-५-४९ का पत्र था। ‘प्रिय नयूराम गोडसे’ इस सम्बोधन के साथ श्री रामदास ने सर्वप्रथम अपना परिचय ही दिया है।—“जिनकी हत्या करने पर आपको विलक्षण अभिमान अनुभव होता होगा, प्रस्तुत पत्र का लेखक उन्ही का पुत्र है।” (The writer of this is the son of one you seem to take great pride in having assassinated)

पत्र भावपूर्ण है। आत्मीयता से परिपूर्ण। किञ्चित् विषयान्तर करके भी वह पत्र यहाँ देना चाहता हूँ। पत्र का भावानुवाद इस प्रकार है—‘मेरे पिताजी के नाशवान देह का ही आपने अंत किया है, और कुछ नहीं, इसका ज्ञान आपको

एक दिन होगा ऐसा मेरा विश्वास है। क्योंकि एक मुझ पर ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण नसार के लोगों के हृदयों पर मेरे पिताजी के तत्वों का प्रभाव अभी तक विद्यमान है। सम्पूर्ण सगर के लोगों ने राष्ट्रो ने, मेरे पिताजी को जो श्रद्धा-जलियाँ समर्पित की हैं उनसे यह सिद्ध हो चुका है।

“नगर का प्रत्येक व्यक्ति शांति के लिये अत्यंत आतुर है यह आप जानते हैं। आण्यिक शक्ति नहीं, प्रत्युत परस्पर की सहानुभूति ( Mutual understanding ) और एक दूसरे के प्रति आदर की भावना ही ससार में शांति ला सकती है। जो ऐसा बहते हैं और जिनकी यह मान्यता है उनमें वर्तमान युग के बड़े बड़े गुट प्रवर्तक ( War lords ) भी हैं। यह देखकर आपको विस्मय हुआ होगा। उम देज के लोगों लोग सत्य और अहिंसा इन सरल और सार्थक शब्दों में उम भावना का अनुभव करते हैं।

आपके मन की ओर दृष्टि को जिस कुहरे ने और भ्रात धारणा ने ढँक दिया है उस कुहरे और भ्रात धारणा के निराकरण में उपर्युक्त वस्तुस्थिति आपकी सहायता करेगी ऐसी मुझे आशा है। इस भ्रात धारणा का निराकरण होते ही आप पट्टायेगे और आपने जो कृत्य किया वह सर्वथा अकरणीय और त्याज्य है उम सत्य का साक्षात्कार आपको हो जायगा। इसमें मुझे रच सदेह नहीं है चाहे वह कृत्य किसी धर्म सिद्धि के लिये हो अथवा राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए हो अथवा किसी और कारण से प्रेरित। आप शास्त्र समत और तर्कसिद्ध विचार पद्धति के समर्थक हैं। ( You are a man of reason and logic )। समाचार पत्रों के अनुसार ऐसी अपने सम्बन्ध में आपकी मान्यता है। इसलिये आप मेरे हृदय के व्रण की कल्पना कीजिये, ऐसा मेरा आपसे आग्रह है। यदि आप ऐसा करेंगे तो आपने यह कृत्य करके अपना भी कोई बहुत प्रिय कार्य नहीं किया है यह आपको प्रत्यक्ष जान पड़ेगा।

आपका सत्यैषी,  
आर. एम्. गांधी.

“पुन दत्त—दि १-५-४९ को मैंने हिन्दुस्थान के महाशासक ( Governor General ) को पत्र भेजा है यह आपको सूचित कर रहा हूँ। आपके विरुद्ध अभियोग चलानेवाले विशेष न्यायालय ने आपको जो दण्ड दिया है वह आपको कम्यो नहीं भोगने देना चाहिए इसका कारण मैंने इस पत्र में दिया है।

आर. एम्. गांधी

इस पत्र के मिलने पर दूसरे ही दिन अर्थात् ३ जून १९४९ को नथूराम ने उत्तर लिखा और नियमानुसार शिमला के डिप्टी कमिश्नर के मार्फत भिजवा

दिया। 'प्रियवन्धु' के विशेषण से श्री रामदास गांधी को सम्बोधित करके उन्होंने इस पत्र में अपनी मनोव्यथा व्यक्त की है। वे लिखते हैं—“मेरे हाथों से आपके परम पूजनीय पिता का दुःखद अन्त हुआ उससे आपको और आपके सम्बन्धियों को जो मानसिक आघात पहुँचा है उसके विषय में एक मानव के नाते अपनी भाव-नायें व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।” पत्र के अन्त में नयूराम पुनः लिखते हैं—“आपके पिता का मेरे हाथों से हुए निधन से आपको जो पीडा हुई है उसके लिए मैं पुनः गहरा खेद व्यक्त करता हूँ।”

श्री रामदास गांधी के पत्र के शेष भाग के सम्बन्ध में भी उन्होंने उसी पत्र में लिखा है। इस प्रसंग में उसकी भी किंचित चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा।

गांधीजी के कुछ सिद्धान्तों और उन के लिये उनके द्वारा आविष्कृत जीवन पद्धति के स्थायित्व की ऊपर चर्चा हुई है। गांधीजी के भक्त गांधीजीवन पद्धति के उपासक होते हैं। श्री रामदास गांधी के अनुसार उस समय तक जन मन पर गांधीजी के तत्वों का पूर्ण प्रभाव था। इस दशा में सहानुभूति नहीं तो कमसे कम नयूराम के मत परिवर्तन के लिये ही सही गांधी भक्तों के असंख्य पत्र नयूराम को मिलने चाहिये थे। गांधीजी ही तो मरे थे, उनके तत्व तो जनमानस में विद्यमान थे। श्री रामदास की यही मान्यता थी। गांधीजी के तत्वों में सबसे प्रमुख है हृदय-परिवर्तन। यदि गांधीजी के हत्यारे का हृदय-परिवर्तन हो जाता तो वह गांधीवाद की कितनी बड़ी विजय होती। गांधी-दर्शन के अनुयायियों को स्वाभाविक रूप में इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए था किन्तु ऐसा प्रयत्न केवल एक ने किया, और वह एक थे श्री रामदास गांधी।

मत परिवर्तन न्यायालय का कार्य नहीं है। किसी के विधि-विरोधी कृत्य का विवेचन करके उसे उसके अनुरूप दण्ड का निर्देश मात्र न्यायालय की कर्तव्य-सीमा है। नयूराम चाहते थे कि न्यायालयेतर कोई व्यक्ति उनके मत के परिवर्तन का प्रयत्न करे। सशस्त्र क्रांति पर विश्वास करनेवालों किंवा हिंसा में विश्वास करनेवालों का हृदय-परिवर्तन गांधीवादी विचारपद्धति का मुख्य आधार है और भारत में सहस्रो सच्चे गांधीवादी हैं ऐसी सर्वत्र मान्यता थी। नयूराम तत्त्वचिंतन न कर सकते हो अथवा वाद-विवाद करने की सामर्थ्य उनमें न थी, ऐसी बात नहीं थी। उनका मानसिक सतुल्य अन्त तक सुस्थिर था यहाँ तक कि फाँसी के दण्ड के प्रति तनिक भी आतंकित न होते हुए एक स्थितप्रज्ञ पुरुष के समान उन्होंने उच्च न्यायालय में नौ दिन तक अपने पक्ष का युक्तियुक्त और तर्कपूर्ण प्रतिपादन (वकालत) स्वयं किया था। उन्होंने किसी महाविद्यालय की उपाधि प्राप्त नहीं की थी यह सत्य है किन्तु फिर भी अध्यवसाय और चिंतन ने उनकी मेधा को अवलम्बीय विस्तार प्रदान किया था। स्वयं न्यायमूर्ति को उनकी तर्कतीक्ष्ण बुद्धि और

भापा पर अद्भुत अधिकार की सराहना करनी पड़ी थी। अपने निर्णय में उन्होने कहा है—

“उसे मेट्रिकुलेशन का प्रमाण पत्र लेने का भी यश नहीं मिला है तथापि उसका पठन अत्यंत प्राज्ञ है। इस न्यायालय में अपने पक्ष का प्रतिपादन करते समय उसने अंग्रेजी भाषा पर अपने उच्चतम अधिकार का और प्रशंसनीय सुसंगठित विचारक्षमता का परिचय दिया है।” (चक्री टंकित निर्णय पृष्ठ २०६)

अस्तु, नथूराम की इच्छा थी गांधीजी की हृदय परिवर्तन पद्धति का अनुभव कोई उन्हें कराये और नहीं तो कमसे कम दूसरे को समझने की सुविधा ही इस वहाने प्राप्त हो।

जब किसी विशिष्ट उद्देश्य से प्रेरित होकर कोई व्यक्ति उससे सद्गुण हो जाता है और मानसिक एकाग्रता की अंतिम अवस्था तक पहुँच जाता है तो वह व्यक्ति भयातीत और प्रलोभनातीत हो जाता है। नथूराम जिस अवस्था तक जा पहुँचे थे उसके कार्य-कारण सम्बन्धों की ध्येयनिष्ठता की चर्चा यहाँ करना मेरा अभिप्राय नहीं है। विशेष न्यायमूर्ति द्वारा दिनांक १०-२-४२ को फासी का दंड सुनाये जाने के पश्चात् नथूराम और उसकी मृत्यु आमने सामने थे। फासी की डोरी का आतक या शासको की दया का प्रलोभन उनके मनमें पश्चात्ताप उत्पन्न करने में असमर्थ थे। मन की उद्दीपित अवस्था में कोई कृत्य कर डालने के पश्चात् जब उत्तेजना शांत होती है तब प्रायः अपराधी का मन उसे इस विचार से कुरेदता रहता है कि वह उत्तेजित क्यों हुआ था ? इसी स्थिति को पश्चात्ताप की स्थिति कहा जाता है, किन्तु मन की उस उद्दीपित अवस्था का यदि कोई वैचारिक आधार है तो उस आधार की भ्रान्ति अपराधी को तर्कपूर्वक समझाने पर ही उसे अपने कार्य का अनौचित्य अनुभव होगा एवं मैंने नैतिक दृष्टि से कोई अपराध किया है, यह बोध होगा। यह अपराध बोध ही पश्चात्ताप की पूर्वपीठिका है।

पश्चात्ताप की भावना भी तत्काल निर्मित और निरपेक्ष-होनी चाहिए। “मुझे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप है मुझ पर दया कीजिए।” इस प्रार्थना में ध्वनित पश्चात्ताप निरपेक्ष नहीं हो सकता। उसके पीछे तो प्राणरक्षा की अपेक्षा निहित है। अपने उद्देश्य के प्रति पूरी निष्ठा के साथ खूब सोचने विचारने के पश्चात् नथूराम ने गांधीजी का वध किया था। फिर भी वे पश्चात्ताप करने को तत्पर थे यदि कोई उन्हें उनके विचारों की भ्रान्ति प्रमाणित करके समझा सकता। इस प्रकार के पश्चात्ताप से मेरे द्वारा किये गये अवैध कृत्य का परिमार्जन हो जायेगा, ऐसी नथूराम की मान्यता न थी। यदि कोई उन्हें पश्चात्ताप करा सकता तो भी उस पश्चात्ताप के आधार पर वे दण्ड से त्राण नहीं पाना चाहते थे। यदि किसी ने मेरे विचारों की भ्रान्ति और कृत्य का अनौचित्य प्रमाणित कर दिया तो तज्जन्य

पञ्चात्ताप की भावना को सार्वजनिक रूप में भलीभाँति व्यक्त करके मैं अपने कृत्य का विधिसम्मत फल प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूँ, नथूराम की यही इच्छा थी।

अपने कार्य से गांधी-परिवार पर क्या बीतेगी, इसकी कल्पना नथूराम ने पहले ही की थी, इसलिए अवसर मिलने पर गांधीजी के आत्मीयों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करने में उन्होंने सकोच नहीं किया किन्तु मन के किसी कोने में वे इतने निश्चल और निरुद्धिन्न थे मानो उनकी अन्तरात्मा उन्हें कहती थी— 'कतुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपितत्', स्थितप्रज्ञता की इस आधारपीठिका पर आरुढ़ होने के कारण ही श्री रामदास गांधी के पत्र में ध्वनित क्षमा दानजन्य प्राण रक्षा की सभावना की सीढ़ी द्वारा फासी के तख्ते से उतर आने का प्रलोभन भी उन्हें विचलित नहीं कर सका। वे विचार विनिमय अवश्य चाहते थे किन्तु वह भी गांधीजी के ऐसे पटु शिष्यों के साथ जो राजनीति अथवा सत्ता से निर्लस हो क्योंकि, ऐसे व्यक्तियों से विचार-विनिमय क्षमादान की अपेक्षा के कलंक से ललित नहीं हो सकता था। उनके द्वारा श्री रामदास को भेजे गये पत्र का अविकल अनुवाद इस प्रकार है—

शिमला, दि० ३ जून १९४९

प्रिय बंधो श्री रामदास गांधी,

आपका १७ मई १९४९ का दयापूर्ण पत्र कल मिला। मेरे हाथों से आपके परमपूजनीय पिताजी का दुःखद अंत हुआ उससे आपको एवं आपके सम्बन्धियों को जो मानसिक आघात पहुँचा है उसके लिये एक मानव के नाते अपनी भावना व्यक्त करने योग्य शब्द मेरे पास नहीं हैं, किन्तु इसके समान एक दूसरा पक्ष भी ध्यान देने योग्य है ऐसा मेरा मत है। अपने समस्त विचार कागज पर उतारने की परिस्थिति में मैं नहीं हूँ न ही आपसे प्रत्यक्ष भेंट करने की स्थिति में ही मैं स्वयं को पाता हूँ किन्तु मेरी फासी के पूर्व मुझसे वदियूह में मिलने में आप अवश्य समर्थ हैं।

मैं एक तार्किक और शास्त्रसममत विचारोवाला मनुष्य हूँ, यह आपने सुना है, ऐसा आप लिखते हैं, किन्तु मैं प्रखर सवेदनाशील भी हूँ यह जानकर आपको विस्मय होगा। मेरी उन प्रखर सवेदनाओं में मातृभूमि की भक्ति मेरी सवेदना है।

आप कहते हैं कि मेरे मन से मेरे भ्रातृ विचार दूर होते ही एक दिन मुझे अपने कृत्य पर अवश्य ही पञ्चात्ताप होगा और अपना अपराध मेरी समझ में आयेगा।

बंधो ! मेरा मस्तिष्क विचार ग्रहण के लिये खुला है, ( I am an open minded man ) और अपनी धारणा की भ्रांति सुधारने के लिये सदैव तत्पर हूँ। परन्तु यदि मेरी कोई मान्यता गलत है तो उसे दूर करके मुझमें पश्चात्ताप

जाग्रत करने का मार्ग कौन सा है ? निश्चित ही फासी का तत्त्वा नहीं, दया प्रदर्शन भी नहीं और मेरे दण्ड में छूट ( Commutation ) भी नहीं । इसका एक मात्र मार्ग है मुझसे मिलना और मेरी भ्राति का मुझे ज्ञान करा देना । इस समय तक तो मुझे ऐसा कोई दिखाई नहीं दिया जो मुझे पश्चात्ताप करने पर विवश कर दे ।

कुछ प्रमुख क्रिश्चियन धर्म प्रचारको ने मुझे बहुत से पत्र भेजे हैं । उनकी श्रद्धा के अनुसार और 'पवित्र' बाइबल की शिक्षाओं के अनुसार उन्होंने मुझे कुछ उपदेश देने का प्रयत्न किया है । उनकी यह भूमिका अर्थपूर्वक समझने योग्य है, किन्तु आपका ही पत्र पहला पत्र है जो आपके पिताजी की सुविदित अथवा सर्वविदित जीवनपद्धति के तत्वों से कुछ सीमा तक मिलता जुलता है । सचमुच यह विस्मयजनक है । मेरे पास गाली गलोच से भरे हुए अनेक पत्र आते हैं वे आपके पिताजी के किन्हीं शिष्यों ने लिखे होंगे ऐसा मैं नहीं समझता । कुछ भी हो मुझे आपसे अनुरोध करना है कि आप मुझसे मिलें । यथासम्भव अपने पिताजी के किन्हीं प्रमुख शिष्यों के साथ मिलें । विशेषकर ऐसा शिष्य राजसत्ता से निर्लिप्त होना चाहिये । उस भेट में आप मुझे मेरी भ्राति दिखा दीजिए अन्यथा दया का यह प्रदर्शन और कुछ न होकर धूल झोकना ( Byewash ) मात्र है ऐसा मुझे सदा लगेगा ।

यदि आप मुझसे प्रत्यक्ष मिलें और मेरे साथ आपका विचार विनिमय हो, चाहे वह भावनात्मक स्तर पर हो अथवा शास्त्रसम्मत विवाद के स्तर पर, तो कौन कह सकता है कि आप मेरे विचारों में परिवर्तन करा लेंगे और मुझ में पश्चात्ताप जागृत कर सकेंगे अथवा मैं ही आपका मत-परिवर्तन करा लूँगा और अपनी भूमिका का औचित्य आपसे मनवा लूँगा ।

आपको केवल सत्यतापूर्वक बोलना होगा केवल यही एक शर्त हमारे सम्भाषण के लिये होनी चाहिये ।

आपके पिता के मेरे हाथों से हुये निबन्ध से आपको जो पीडा हुई है उनके लिए मैं पुनः आन्तरिक खेद व्यक्त करता हूँ ।

आपका सद्भावी—

नथूराम विनायक गोडसे

पुनः श्व—

यदि आपको उचित प्रतीत हो तो आप इस पत्र की प्रति भारत के महाशासक को भेज दें ।

उपरि निर्दिष्ट दो पत्रों के पश्चात् और पत्र व्यवहार भी हुआ था । आवश्यक



होने पर उसे यथा स्थान उद्धृत किया जायेगा। सारांश यह है कि आचार्य विनोबा भावे और श्री किशोरीलाल मश्रूवाला इन दो व्यक्तियों के साथ नथूराम से मिलने का श्री रामदास गांधी का प्रयत्न था। किन्तु उनका वह यत्न सफल नहीं हुआ। कारणों का विवेचन मैं नहीं करूँगा। यह भेंट नहीं हो सकी यह अच्छा नहीं हुआ। क्योंकि ऐसी भेंट से स्यात् नथूराम का फाँसी के पूर्व हृदय परिवर्तन हो जाता और गांधीवाद एक तर्कसम्मत व्यावहारिक दर्शन है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आज की पीढ़ी के समझ रखा जा सकता था।

अस्तु, श्री रामदास गांधी के पत्र से यदि नथूराम का कुछ समाधान हुआ होगा तो वह यह कि मानसिक विकृति के कारण मनुष्य जैसे पागल समझा जाता है वैसे वे नहीं समझे गये थे प्रत्युत वे एक विचारशील व्यक्ति हैं इसका यत्नचित आभास बाह्य विद्वद् को हो गया है।

दिनांक ३० जनवरी की घटना के सम्बन्ध में जिन गवाहों को प्रस्तुत किया जायगा उनकी प्रतिपरीक्षा नहीं करनी है यह नथूराम ने पहले ही निश्चय कर लिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन गवाहों के वक्तव्य अतिशयोक्ति और आत्म प्रवचना पूर्ण एवं असत्य थे उनकी प्रामाणिकता का परीक्षण नहीं हो सका। ३० जनवरी की घटना के लिए एकमात्र मैं उत्तरदायी हूँ और न्यायालय का कोई लाभ नहीं होगा, अपनी इस धारणा के कारण नथूराम ने उन गवाहों के वक्तव्य ज्यों के त्यों रहने दिये।

गांधी हत्या का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर स्वीकार करके नथूराम ने स्वेच्छापूर्वक फाँसी स्वीकार की किन्तु गांधीवध के पूर्व और पश्चात् के रोमाचकारी क्षण कैसे थे यह हमे यहाँ देखना है।

उन तीन गोलियों के छूटने की प्रक्रिया एक एक कर अथवा धीरे चल रही थी ऐसा हमें अनेक गवाहों के अनुसार प्रकट होता है। अनेक गवाहों का कहना है कि उन्होंने त्वरित तत्परता और कुशलता से नथूराम को पकड़ा। सबसे पहले हमने ही नथूराम को पकड़ा यह तो प्रायः सभी कहते हैं। नथूराम के पास ६०६८२४ क्रमांक वाली एक स्वचालित पिस्तौल थी उनमें सात गोलियाँ थी। रियास्वर में प्रायः ६ गोलियों की व्यवस्था होती है। प्रत्येक गोली छोड़ने के लिये घोड़े को बार बार दबाना पड़ता है किन्तु स्वचालित का घोड़ा दबाते ही सभी गोलियाँ लगातार एक के पश्चात् एक करके छूटने लगती हैं। यह कार्य बहुत तेजी से होता है। घोड़े को दबाकर तत्काल छोड़ देने पर भी स्वचालित पिस्तौल में एक ही गोली छूटना अवश्य है। उतने समय में भी कम से कम दो गोलियाँ छूट जाती हैं।

नथूराम ने एक ही बार घोड़ा दबाकर तत्काल छोड़ दिया था। उनकी कल्पना थी कि इतनी अल्प अवधि में दो गोलियाँ छूटी होंगी। किन्तु गोलियाँ दो नहीं, तीन छूटी थी यह उन्हें पीछे ज्ञात हुआ। अतिशीघ्रता से छूटने पर भी प्रत्येक गोली के छूटने की ध्वनि पृथक् पृथक् होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं। एक गोली की आवाज से दूसरी गोली की आवाज का अन्तर भी केवल मन में ही गिनना संभव है। जीभ द्वारा शीघ्र उच्चारण से भी उससे व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि उच्चारण का वेग बहुत बढ़ाने पर भी वह गोलियों के छूटने के वेग से बहुत मंद होगा। इसमें सन्देह हो तो अधिकारी व्यक्ति इस वस्तुस्थिति का अनुभव कर सकते हैं।

पुलिस सब इन्स्पेक्टर श्री अमरनाथ की गवाही विशेष न्यायालय में दिनांक ९-८-४८ को हुई। विडला भवन में गांधीजी की रक्षा के लिये नियुक्त आरक्षी दल के वे नायक थे। उन्होंने कहा “ मैं उस समय गांधीजी से अड़ाई, तीन पग के अन्तर पर बाईं ओर था। मैंने गोली की एक आवाज सुनी और साथ ही साथ उसका धूआँ देखा। कोई गोली चला रहा है ऐसा मुझे लगा। तब मैंने आगे धुसकर गोली चलाने वाले व्यक्ति को पकड़ लिया तब तक तीन गोलियाँ चलाई जा चुकी थी। वे गोलियाँ गांधीजी को लग चुकी थी। भीड़ में से सार्जेंट, देवराजसिंह आगे आगया था। उसने मारनेवाले की गर्दन पकड़ी और हाथ में रिवाल्वर छीन लिया। रिवाल्वर में से धूआँ निकल रहा था। मारने वाला गांधीजी से ढाई पग की दूरी पर था ”

३० जनवरी की घटना के सम्बन्ध में यह पहली गवाही थी। गवाही हो जानेपर नथूराम के वकील श्री बी बी ओक ने प्रति-परीक्षण के अभिप्राय में नथूराम की ओर देखा। उनके द्वारा नथूराम ने न्यायालय को बताया कि ३० जनवरी की घटना के सम्बन्ध में अभियोजक जो भी गवाह प्रस्तुत करेंगे उनका प्रति-परीक्षण कराने की उनकी इच्छा नहीं है। न्यायालय के पूछे जाने पर भी पीछे उनके द्वारा यह आक्षेप तो नहीं किया जायेगा कि उन्हें अपने बचाव का अवसर नहीं दिया गया, नथूराम ने अपना निश्चय दोहरा दिया।

दिल्ली के एक व्यापारी श्री नन्दलाल मेया की गवाही दिनांक ९-३-४८ को हुई। वे उस दिन विडला भवन में उपस्थित थे। उन्होंने कहा — “ . . . गांधीजी अपने कक्ष से प्रार्थना स्थल की ओर चले तो उनके साथ दस-बारह व्यक्तियों का समूह था जिसमें मैं भी सम्मिलित था। सहना मैंने दो-तीन गोलियों की आवाज सुनी। मैंने आगे की ओर डल्ला मारी। मेरे हाथ अधिक पर पड़े उनके हाथ में पिस्तौल थी। थोड़ी देर बाद ही तीन-चार लोगो ने अधिक को पकड़ा लिया ”

श्री मेया ने अंत में अपनी गवाही में संशोधन कर लिया। “... ..मेरा हाथ

हत्यारे पर पड़ने तक तीन-चार लोगो ने उसे पकड़ लिया था ।” प्रति-परीक्षण नहीं हुआ ।

पुलिस कांस्टेबल श्री रतनसिंह की गवाही भी उसी दिन हुई । विडला भवन में जो सिपाही रखे गये थे उनमें वह भी एक थे । आपका कहना है—“मैंने एकाएक दो तीन गोलियों की आवाज सुनी तो मैं उस दिशा में दौड़ा जिससे आवाज आयी थी । श्री अमरनाथ और श्री धर्मसिंह ने हत्यारे को पकड़ रखा था यह मैंने देखा ।”

न्यायालय के यह पूछे जाने पर कि क्या वे हत्यारे को पहचान सकते हैं श्री रतनसिंह ने नयूराम और आपटे की ओर इंगित करके उत्तर दिया कि उन दोनों में से किसी एक को ३० जनवरी के दिन घटना स्थल पर पकड़ा गया था । निश्चित रूप से दोनों में से किसी पकड़ा गया था, इसकी स्मृति उन्हें नहीं है ।

दिनांक १-७-४८ को हुई गवाही में हेड कास्टेबल श्री धर्मसिंह ( क्रमांक १६७६ ) ने कहा—“... मैं उस दिन प्रार्थनास्थल पर नियुक्त था । मैंने गोली की एक आवाज सुनी तो खुली जगह में होकर आगे बढ़ा । इसी बीच दो और गोलियों की आवाज हुई । पिस्तौलवारी पुरुष को मैंने देखा । मैंने उसका दाहिना हाथ ऊपर उठाया । इतने में एक अन्य सैनिक ने आकर उसके हाथ से पिस्तौल छीन ली । हत्यारा गांधीजी से डेढ़ फुट की दूरी पर था ।”

विडला भवन के माली श्री रघुनाथ नाईक की गवाही २०-८-४८ को हुई । श्री रघुनाथ का कहना है : “मैं उस समय गांधीजी की दाहिनी ओर पाँच-दस कदमों की दूरी पर था । हत्यारा गांधीजी के सामने उसी समय आया था । वह किस ओर से आया, यह मैं नहीं कह सकता । पिस्तौल की आवाज सुनकर मैंने हत्यारे की ओर छलांग मारी । बीच में मैंने तीन गोलियों की आवाज सुनी । मैंने अपने हाथ के खुरपे से हत्यारे पर पीछे से दो प्रहार किये । खुरपा सात आठ इंच लम्बा रहा होगा । पीछे से ही मैंने हत्यारे को पकड़ा । उसे दो सिपाहियों और एक सैनिक ने भी पकड़ रखा था । सिपाहियों ने उसके हाथ की पिस्तौल ले ली थी ।”

दिल्ली के एक अन्य व्यापारी श्री गुरुवचनसिंह केन्द्रीय निर्वासित समिति के सदस्य थे और कम्बली एव बालो के निर्माण का कार्य करते थे । गांधीजी के पाम उनका बहुत आना जाना था । उस दिन वे दिन के तीन बजे से ही विडला भवन में थे । उन्होंने दि० ३०-८-४८ को अपनी गवाही में कहा—“लगभग पाँच बजे मैंने गांधीजी की प्रार्थना समा के समय की स्मृति दिलाने के लिये आँखों से संकेत किया । प्रार्थना स्थल की ओर जाते हुए मैं मार्ग में एक दो व्यक्तियों से वार्तालाप में लगा रहा । गांधीजी के आगे एक-दो रास्ता बनाने के लिये चलते थे ।

एक-दो व्यक्ति उनके पीछे होते थे अन्यथा मैं उनके आगे या पीछे रहता था। उस दिन गांधीजी के नियमित सेवकों में से कोई भी उनके आगे नहीं था। श्री नदलाल बायी ओर और श्री वृजकृष्ण पीछे थे। प्रार्थनास्थल पर एक बड़ा समुदाय गांधीजी की प्रतीक्षा में था। मैंने गांधीजी के आगे हो जाने का प्रयत्न किया, किन्तु आगे कुछ लड़कियों और महिलाओं के होने के कारण बैसा न कर सका। तब मैंने उनके दूसरे पार्श्व से होकर उनके आगे जाने की चेष्टा की। इतने में ही मैंने एक गोली की आवाज सुनी। वह आवाज किधर से आई यह मैं नहीं समझ सका। गांधीजी के आगे होने के लिए मैं प्रयत्नशील था। मैंने गोली की एक और आवाज सुनी। गोलियाँ चलानेवाले व्यक्ति को मैंने अपने सामने ही खड़े देखा। उसके हाथों पर मेरे झपाटा मारने के पूर्व ही उसने तीसरी गोली भी दाग दी थी। तुरंत ही बहुत से लोगो ने हत्यारे को पकड़ लिया और मैंने अपना ध्यान गांधीजी की ओर मोड़ दिया..... ”

इस आशय के वक्तव्य गवाहों ने दिये। सभी गवाहियाँ प्रस्तुत करने की यहाँ आवश्यकता नहीं थी, इसलिये उन्हें मैंने नहीं दिया है। उनके सम्पूर्ण सदर्थ मुद्रित अभिलेख के पहले भाग के पृष्ठ क्रमांक ५० से ५४, १५६, १७९, १८० पर पढ़े जा सकते हैं।

हम घटना के प्रत्यक्षदर्शी नहीं थे इसलिये वास्तविक घटनाक्रम को जानने की हम लोगो को जिज्ञासा हुआ करती थी। किसी गवाह के सम्बन्ध में सदेह होने पर हम परस्पर चर्चा किया करते थे। पिस्तौल का धूँआ देखने सम्बन्धी गवाह के विषय में पूछने पर नथूराम ने कहा—“मेरे अनुमान से तो धुआँ निकला ही नहीं सूक्ष्म महक मात्र आयी थी।”

“तब शस्त्र विशेषज्ञ से ही क्यों न पूछ लें ? उनकी गवाही तो अभीतक नहीं हुई है।” डॉ० थो डी एन गोयल का वयान आगे चलकर २-८-४८ को हुआ। वे साइंटिफिक लेबोरेटरीज के डायरेक्टर थे और शास्त्रो के विशेषज्ञ थे।

( भाग १ पृष्ठ ११८ )।

किन्तु नथूराम ने कहा—“मान लो पिस्तौल से धुआँ न निकलना भी प्रमाणित हो गया तो अधिक से अधिक यही सिद्ध होगा न कि अमरनाथ ने अतिरजित और वत्पनापूर्ण वयान दिया है। किन्तु जब मुझे कोई बहाना खोजना ही नहीं है तो इस प्रति-परीक्षण का प्रपच क्यों ? अपनी साक्षी तर्क सम्मत है या नहीं यह देखना अभियोजक का काम है।”

दिल्ली के इरविन हास्पिटल के प्रमुरा डॉ. कर्नल वी. एल. तनेजा ने अपने वयान में गांधीजी के शरीर पर पाँच घावों का विवरण दिया। मृत्यु पिस्तौल की गोलियों से हुई यह अपना अभिमत भी उन्होंने व्यक्त किया। जो कुछ डॉ० तनेजा

को कहना था उसकी प्रतिलिपि बचाव पक्ष को पहले ही दे दी गई थी इसलिए वकीलो में उस पर तर्क हो रहा था। गांधीजी की शव परीक्षा ( पोस्ट मार्टम ) नहीं हुई थी फिर कुछ विशेषज्ञों के अनुसार श्री तनेजा द्वारा देखे गये और उनकी रिपोर्ट में लिखे घाव पिस्तौल की गोली से होनेवाले घावों से साम्य नहीं रखते थे।

श्री तनेजा द्वारा गांधीजी की मृत्यु के कारण के सम्बन्ध में दिया गया मत ग्राह्य नहीं है, गांधीजी की मृत्यु गोलियों से नहीं हुई और यदि वह गोलियों से हुई भी है तो भी नथूराम के पिस्तौल की गोलियों में नहीं हुई और यदि उसी की पिस्तौल की गोलियों से हुई तो नथूराम ने उस पिस्तौल का उपयोग नहीं किया जो उसके हाथों से छीनी गयी क्योंकि जो पिस्तौल छीनी गयी उससे शस्त्र विशेषज्ञ के अनुसार घुर्मा नहीं निकल सकता और प्रत्यक्षदर्शियों ने गोलियों के साथ पिस्तौल से घुर्मा निकलता देखा था। इस प्रकार अभियोग को एक पृथक मोड़ देने की बचाव पक्ष के वकीलों की इच्छा थी किन्तु नथूराम ने न्यायालय में स्पष्ट शब्दों में यह कहने का निश्चय किया था कि उनके द्वारा उपयोग किये गये पिस्तौल की गोलियों के घावों से ही गांधीजी का देहान्त हुआ। इसी कारण श्री तनेजा की गवाही के पश्चात् नथूराम ने अपने वकील को उनसे एक भी प्रतिप्रश्न नहीं करने दिया। दिनांक १२-७-४८ को हुई श्री तनेजा की गवाही पर न्यायमूर्ति की यह टिप्पणी ध्यान देने योग्य है—“प्रति-परीक्षण नहीं ( Cross Examination Nil )” ( भाग १ पृष्ठ ५५ )। अतएव आज नथूराम की स्वीकारोक्ति की मृत्यु के कारणों के विषय में यदि कोई मुख्य सम्पुष्टि ( Corroboration ) है तो वह श्री तनेजा की रिपोर्ट ही है।

श्री तनेजा का प्रतिपरीक्षण नहीं होगा यह कल्पना अभियोजकों ने भी नहीं की थी। श्री दफ्तरी ने आश्चर्य व्यक्त किया क्योंकि उससमय प्रमुख अभियोजक वही थे। गवाही कुछ ही देर में समाप्त हो गई थी। परिणामतः उसी श्रृङ्खला के जो अन्य गवाह उन्हें तैयार कर रखे थे उनके भी बयान सम्पन्न हो चुके थे।

गांधी वध के दिन नथूराम के सिर पर दो, तीन आघात हुए थे जिनके कारण घावों से रक्त बह रहा था। रघुनाथ माली ने अपने खुरपे से नथूराम पर प्रहार करने की अपने बयान में चर्चा की थी किन्तु नथूराम ने बताया—“माली बिल्कुल झूठ बोल गया है। हाथ में रखी जानेवाली छड़ी के दो-चार आघात मेरे सिरपर लगे थे किन्तु तत्काल नहीं, घटना के चार-पाँच मिनट पश्चात् डाक्टर ने मेरी चिकित्सा की। तबतक रक्त जम गया था। मेरे घावों का विवरण भी डॉ० ने लिखा है। उसमें घावों को मामूली ( All apparent Simple ) बताकर उन्हें ठोस शस्त्र प्रहारजन्य ( Blunt ) लिखा है।”

( सर्व प्रतिवृत्त भाग ४ पृष्ठ १८७ प्रमाण क्रमांक पी. २४९ पर )

नथूराम को पकड़ने में अपनी तत्परता का लगभग सभी गवाहों ने उल्लेख किया है, इस सम्बन्ध में नथूराम ने हमें बताया था कि, “मेरे हाथ में पिस्तौल थी, गोलियाँ मैं दाग चुका था, और गोलियाँ मैं नहीं दागूँगा यह विश्वास किसी को नहीं था। यदि किसी सशस्त्र आरक्षक ने उस समय मुझपर गोली चलाई होती तो वह नि सन्देह सफल होता। किन्तु हुआ यह कि एकाएक दागी गई उन गोलियों से सभी किकर्तव्य विमूढ़ और आतंकित हो गये थे। बहुत पास के लोगो ने मेरे हाथ में रिवाल्वर देखा था। इस दशा में प्रत्येक व्यक्ति को अपने ऊपर भी गोली चलाये जाने की आशंका थी इसलिए सभी लोग तत्काल पाँच-सात पग पीछे हट गये। गांधीजी के आगमन के लिये जो मार्ग छोड़ा गया था और जिसपर मैं खड़ा था वह मार्ग और चौड़ा हो गया। चार पग के अन्तर पर ही गांधीजी मरकर गिरे हुये थे। मेरे चारो ओर एक दहा-सा घेरा बन गया था। मेरा सशस्त्र हाथ ऊपर उठा हुआ देखकर लोग स्यात् और पीछे नहीं हटे।

“गोलियाँ छोड़ते ही पिस्तौल वाला हाथ ऊपर उठाकर मैं ‘पुलिस ! पुलिस !!’ चिल्लाया किन्तु आधा मिनट बीतने पर भी कोई पास में नहीं आया। उससमय प्रत्येक क्षण मेरे मन के ऊपर तनाव बढ़ता जा रहा था। मैं बहुत अस्वस्थता अनुभव कर रहा था। मुझे लगा कि मैं उत्तेजित हो रहा हूँ।”

“आपके मन पर तनाव और उत्तेजना बढ़ने का क्या कारण था ? उस समय तो किसी ने आपको मारने के लिए हाथ नहीं उठाया था।” मैंने बीच में ही नथूराम को टोका।

“कोई मुझे मारेगा और यदि मारेगा तो उसका प्रति-कार मुझे कैधे करना है यह कल्पना उस समय मेरे मन में विलकुल न थी। उस समय की अपनी मन-स्थिति को आज मैं प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता हूँ। गांधी वव के किमी भी परिणाम को भोगने के लिए मैं तत्पर था किन्तु मैं तीन आरोपो से दबना चाहता था। मैंने भाग जाने का प्रयत्न किया, ऐसा सकेत भी किसी के द्वारा हो यह मैं नहीं चाहता था। आधे मिनट के पश्चात् मैंने फिर पुलिस को पुकारा। अपने सामने पूरे गणवेश में खड़े सिपाही को मैं देख रहा था किन्तु वह मुझे पकड़ने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। यदि मैं पिस्तौल फेंक देता तो उसका अर्थ यह लगाया जाता कि मैंने भ्रम उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। यह आरोप भी मुझे स्वीकार नहीं था। मैं अपने शस्त्र के साथ स्वयं को पुलिस के हाथों सौंपना चाहता हूँ यह विश्वास सामने खड़े पुलिस कर्मचारियों को मैं कैमे दिलाऊँ ? यह मुझे समझ में नहीं आ रहा था।”

“और कौन सा आरोप आप नहीं चाहते थे ?”

“वही जिसके भय से २० जनवरी कार्यान्वित नहीं हो सकी।”

“अर्थात् ?”

“मैं भूल से भी किसी और को आघात नहीं पहुँचाना चाहता था इसीलिए पिस्तौलवाला हाथ ऊपर उठाकर मैं पुलिस की प्रतीक्षा कर रहा था। अनजाने में भी पिस्तौल यदि मैं नीचे रखता तो नथूराम ने हमारी ओर पिस्तौल तानी थी, ऐसे भी कोई वयान देता।”

“किर आपको कैसे पकड़ा गया ?”

“अपनी दृष्टि चारों ओर घुमाने लगा इतने में अमरनाथ की अथवा जिस सैनिक ने मुझे पकड़ने की बात कही है उसकी दृष्टि से मेरी दृष्टि मिली। आँखों ही आँखों में मैंने उसे निकट आने का संकेत किया। मेरी दृष्टि का आत्म विश्वास स्यात् उसने परख लिया। वह मेरे पास आया और मेरी कलाई को उसने ऊपर ही ऊपर पकड़ लिया। मैं प्रतिकार नहीं कर रहा हूँ यह उसने जान लिया, उसी समय मेरे मन का बोझ मानो उतर गया। मैंने मुक्ति का श्वास लिया। इसके पश्चात् दूसरा मनुष्य आया और उसने मेरे पिस्तौल पर हाथ रखा। मैंने उसे उसके हाथों में छोड़ दिया।

“उसके बाद तो अनेक लोगो ने मुझे घेर लिया। कई लोगो ने मुझे पीटा भी। पुलिस भी कितनी मूर्ख थी कि वह पिस्तौल लोगो के कुत्तुहल की वस्तु बना एक हाथ से दूसरे हाथ घूमाती फिर रही थी। एक उत्तेजित व्यक्ति ने पिस्तौल को मेरे सामने करते हुए मुझ से कहा—“मैं तुम्हें इसी पिस्तौल से मार डालूँगा।” मैंने उसे शांत और स्पष्ट शब्दों में कहा—‘बड़ी खुशी से, किन्तु पिस्तौल को छूने का ज्ञान तुम्हें प्रतीत नहीं होता उसका सेपटी कैच खुला है। तनिक सा धक्का लग जाने पर भी तुम्हारे हाथ से दूसरा कोई मर जायगा। उसमें और भी गोलियाँ हैं यह ध्यान में रखो।’ फिर मैंने पास खड़े पुलिस अधिकारी से कहा—‘पहले तुम वह पिस्तौल अपने कब्जे में ले लो, उसका सेपटी कैच खुला ही रह गया दीखता है, उसे बन्द करो अन्यथा यह भला मानुष मेरे वजाय किसी और को मार बैठेगा।’ बात उस अधिकारी के समक्ष में आ गई और उसने तुरन्त पिस्तौल अपने हाथ में लेकर उसका सेपटीकैच बंद करके उसे जेब में डाल लिया। यह हल्ला कोई पाँच मिनट तक चलता रहा। उस समय तक और एक-दो सिपाहियो ने मुझे आ पकड़ा था। बाहर निकलते समय मुझपर छड़ियों से कुछ वार किये गये थे, जिनके घावों से रक्त बहने लगा था।

“मुख्य घटना के सम्बन्ध में तो आपने कुछ कहा नहीं।” मैंने उन्हें फिर टोका।

सच्चा बात बजकर पचास मिनट पर मैं बिटला भवन के द्वार पर पहुँचा।

द्वार के रक्षक प्रार्थना सभा में जाने वालों का निरीक्षण कर रहे थे। इस निरीक्षण का ही मुझे सबसे अधिक भय था। इसलिए चार-पाँच व्यक्तियों के एक झुण्ड के साथ होकर सावधानी पूर्वक मैं अन्दर पहुँचा। वहाँ खुली जगह थी और मुझे कुछ समय तक ऐसा लगा कि इधर उधर घूमने वाले सिपाहियों की दृष्टि मानो मुझपर ही है। तब आस पास के लोगों में मैं शीघ्रता से जाकर मिल गया।

“पाँच वज्रकर दस मिनट हो चुके थे। कुछ लोगों के साथ मैंने गांधीजी को अपने कमरे से निकलकर प्रार्थना स्थल की ओर आते देखा। उनके मार्ग में आगन की सीढ़ियों के निकट खड़े लोगों में मिलकर मैं खड़ा था।

“गांधीजी सीढ़ियाँ चढ़कर दोन्चार पग आगे आये। उनके हाथ दो बालिकाओं के कंधों पर थे।”

“जब मैं हाथ डालकर मैंने पिस्तौल का सेफ्टी कैच खोला। समूह से घिरे गांधीजी के निकटतम होने की सुविधा मुझे कहाँ मिलती है, यह मैंने देख लिया था।”

“मुझे अब केवल तीन क्षणों का समय चाहिये था। दो चरण आगे बढ़कर गांधीजी के सामने जाकर, पिस्तौल बाहर निकालने और गांधीजी ने अपने जीवन में जो देश सेवा की थी, जो त्याग किया था उसके प्रति उनका अभिवादन करने के लिये।

उन दो लड़कियों में से एक गांधीजी के अत्यन्त समीप थी। मेरी गोलियों से वह आहत होगी ऐसा मुझे भय था। मैं आगे बढ़ा—‘नमस्ते’ कह कर पिस्तौल सहित हाथों से गांधीजी का अभिवादन किया। एक डग और आगे बढ़कर उस लड़की को वार्यें हाथ से दूर किया।

“आगे के क्षण अनेक अशो मे विभाजित हो गये। उन क्षणाशो के पूर्वार्ध समय में पहले से ही कृश गांधीजी ‘अ’ इस बहुत अस्पष्ट, जैसे भीतर ही भीतर निकले उद्गार हो, के साथ अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

“गांधीजी की अच्छेद्य, अदाह्य, अनलेद्य, अशोष्य आत्मा अतर्धान हो रही थी और मैं अपनी जीवित समाधि में प्रविष्ट हो रहा था।”

\* \* \*



## पाँच

### नथूराम ! हे राम !

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा तत्प्रसादान्मयाच्युत ।

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

" तब तक आप आत्म निरीक्षण कीजिये । उसके फलस्वरूप हमारी प्रस्तावित भेंट के अंत में आप हमारे साथ गीता के इस श्लोक के रूप में अपनी मन स्थिति व्यक्त करने में समर्थ होंगे । "

यह था श्री रामदास गांधी द्वारा नथूराम के उत्तर के प्रत्युत्तर में लिखे गये पत्र का अंतिम अंश । श्री रामदास ने यह पत्र १३-६-४९ को लिखा था जो अम्बाला बंदिशाला में नथूराम को २३-६-४९ को प्राप्त हुआ ।

जो अपना अभिप्राय सरल और सुस्पष्ट शब्दों में अपने पाठक के मस्तिष्क में सहजता के साथ उतार सके उसी को कुशल लेखक माना जाता है । यदि किसी सामग्री का अर्थ पाठक के दिमाग पर असर न करे तो दोष पाठक का नहीं, सम्बन्धित लेखक का माना जाना चाहिए । उपर्युक्त श्लोक का शब्दार्थ संस्कृत के किसी भी प्राथमिक विद्यार्थी की समझ में आ जायेगा । किन्तु गीता का महत्त्व उसके शब्दार्थ के नहीं, भावार्थ के कारण है । इसलिए गीता का अभिप्राय स्पष्ट करने के लिये जगद्गुरु शंकराचार्य से लोकमान्य तिलक तक असंख्य विद्वानों द्वारा प्रचुर साहित्य लिखा गया है । आगे भी लिखा जाता रहेगा ।

जिस सदर्भ में श्री रामदास गांधी ने ऊपर का श्लोक उद्धृत किया उस सदर्भ में उसका वाछित अभिप्राय नथूराम समझेंगे यह उनका अनुमान था । नथूराम के सम्बन्ध में उन्होंने यत्र-तत्र जो कुछ सुना या पढ़ा था उससे उनके मन

मे नथूराम के प्रति जो धारणा बनी थी वह नथूराम द्वारा दिये गये पत्रोत्तर से पुष्ट हो गयी थी। फाँसी की डोर जिसके सिर पर लटक रही हो उसके द्वारा अत्यंत निश्चित और निर्विकार भाषा में लिखा गया पत्र उनके सामने था। उस दशा में भी नथूराम का मन निश्चिन्त और भस्तिष्क निर्मल एव विचारशक्ति पूर्णतया सक्षम थी। इसलिये उद्धृत श्लोक के पीछे निहित आशय, उसका लक्ष्य, उद्देश्य और प्रसंग नथूराम को सविस्तार लिखने की श्री रामदास ने आवश्यकता नहीं समझी।

उपरिनिर्दिष्ट पत्र और उसके प्रत्युत्तर का आशय समझने के पूर्व नथूराम के तात्त्विक ज्ञान की पृष्ठभूमि को समझना समयोचित होगा। भारत की राजनीति पर गांधीजी का उनकी मृत्यु पूर्व के ३५ वर्षों में कितना प्रभाव था इसे प्रायः सभी जानते हैं। ऐसे महान और प्रभावशाली व्यक्ति के देहान्त के लिये नथूराम निमित्त बने थे। इसलिये उनके पूर्ववृत्त का किंचित अवलोकन अप्रासंगिक नहीं है।

संकट से घिर जाने पर ही मनुष्य दार्शनिक हो जाता है, ऐसी बात नहीं है। ईश्वर प्रदत्त बुद्धि पर वातावरणजन्य सस्कारों के द्वारा व्यक्ति का मानसिक स्तर निर्मित होता है। परंपराजन्य विचारों, रीतियों और रहन-सहन का जीवन पर चालावस्था से ही अव्याहत प्रभाव पड़ता है। उस प्रभाव का अंश भी मानसिक विकास का कारणभूत है। हम अनुभव करते हैं कि बुद्धि का वितरण व्यक्ति व्यक्ति में समसमान नहीं है। हो सकता है, निसर्ग ने अभीतक साम्यवाद को अंगीकार न किया हो यही उसका कारण है। प्रायः इसलिये अन्य तत्वों के समान होते हुए प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक संरचना और ग्रहणशीलता पृथक्-पृथक् होती है। नीचे उद्धृत इस श्लोक में यह वस्तुस्थिति सोदाहरण समझायी गयी है,

वितरति गुरु प्राज्ञे विद्या यथैव तथा जडे ।

न तु खलु तयोज्ञानि वृद्धिं करोत्यपहन्ति वा ॥

भवतिच पुनर्भूयान्मेद फलं प्रति तद्यथा ।

प्रभवति शुचिर्विदग्रहे भणिर्यं मृदाचय ॥

किसी व्यक्ति की तत्त्वचिंतन क्षमता के विकास का क्रम उसके पूर्वचरित्र के माध्यम से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। किसी के मर्मस्पर्शी व्यवहार का साम्य भी हम उसके पूर्वचरित्र में पा ही जायें यह आवश्यक नहीं है। चाहे वह व्यवहार शास्त्रीय शोध से सम्बन्धित हो, या अपने प्राणों पर सकट खेल कर दूसरों की प्राणरक्षा करने का हो अथवा किसी के सहार का हो। मेरे मत में उस प्रकार के अप्रत्याशित व्यवहार के पीछे सम्बन्धित व्यक्ति की मानसिक संरचना में सहायक वे तत्व हैं जो अज्ञात रह जाते हैं और ऊपरी निरीक्षण से जिनका ज्ञान नहीं हो पाता।

नरहत्या स्वयं में एक अप्रिय कृत्य है। नथूराम को भी गांधी वचन के पूर्व और पश्चात् वह अप्रिय ही प्रतीत हुआ था। क्या नथूराम ऐसा अप्रिय कृत्य कर सकते हैं जैसे तर्क करने पर समय व्यतीत करने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने यह अप्रिय कृत्य किया था यह वस्तुस्थिति है। उनके इस कृत्य का उनके पूर्व-चरित्र की ज्ञात घटनाओं से कहीं कोई साम्य हो तो पाठक स्वयं देख लें।

मानव मन के अध्ययन के लिए एक और बात का सोचना उद्बोधक होगा। भारत का स्वाधीनता के उद्देश्य से असह्य क्रांतिकारियों और सत्याग्रहियों ने प्रसन्नता से प्राण विसर्जित किये यह हम जानते हैं। किन्तु मृत्यु का आवाहन करने की उनमें से अनेक की रीति विलक्षण थी। एक उदाहरण के स्वरूप में ऊपर से एक साधारण श्रमिक प्रतीत होनेवाले बम्बई के हुतात्मा बाबू गेनू ने जिस प्रकार मृत्यु का वरण किया उसकी स्मृति से उनके हीतात्म्य के इतने वर्षों के पश्चात् आज भी शरीर रोमांचित हो उठा है। जिस निष्ठुर अंग्रेज सैनिक ने अपने सामने लेटे बाबू गेनू पर निर्दयतापूर्वक गांडी चला दी थी उसने भी तत्काल नीचे उतर कर मृत हुतात्मा की धीरता, स्थिरता और मृत्यु के प्रति निर्भयता के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये अपना शिरस्त्राण उतार कर उनका अभिवादन किया था। वह गोरा सैनिक बाबू गेनू का साक्षात् काल था किन्तु वह काल भी उस अलौकिक धैर्य को देखकर सिहर उठा था।

तू मुझे डराता है या मैं तुझे ? इस प्रतिस्पर्धा के साथ मृत्यु से आँखें मिलाकर उससे दो हाथ करके उस पर विजय प्राप्त करके अमर हो जाने वाले अनेक क्रांति-वीरों के वृत्त हमने पढ़े हैं। मृत्यु की छाया में कालकोठरियों में वे किस प्रकार रहते होंगे, उनकी दिनचर्या कैसी रही होगी, उनकी स्थिरता किस प्रकार बनी रही होगी, इसका कुतूहल हमें हो तो वह स्वाभाविक है। मेरा विश्वास है कि नथूराम के उदाहरण से उन क्रांतिकारियों की मनु स्थिति की कल्पना की जा सकती है। यह तुलना केवल उसी सीमा तक होनी चाहिये। नथूराम की घटना स्वाधीनता के पश्चात् हुई थी, इसलिये वह स्वातंत्र्यार्थ किये गये प्रयत्नों की श्रेणी में नहीं आती। मानव मन के अध्ययन के लिये नथूराम के उदाहरण की सहायता से केवल यह देखना है कि मृत्यु की छाया में मनुष्य किस प्रकार स्थिरचित्त रह सकता है। क्या उसके पूर्व चरित्र से उस स्वयं का कोई सम्बन्ध है ?

मुझे नहीं लगता कि नथूराम की स्थितप्रज्ञता के लिये अब तक के लेखों में दिये गये अधिकृत प्रमाणों के अतिरिक्त किसी और प्रमाण की आवश्यकता है। केवल दो-चार क्षणों का यह प्रश्न नहीं था। प्रत्युत मृत्युपाश के अदृश्य स्पर्श को गर्दन पर अनुभव करते हुए, क्षणों से बचनेवाले घटों और घटों से बचनेवाले दिनों और दिनों से बचनेवाले कई महिनो तक, कोई कैसे मन और मस्तिष्क से

स्थिर रह सकता है यह एक तर्कातीत स्थिति है, किन्तु अनेक लोग इस प्रकार रहे हैं यह एक तथ्य है। गांधी वध से फाँसी तक साठे इक्कीस महीने अथवा छ सौ पचपन दिन और यदि मृत्युदण्ड का निर्णय सुनने के बाद से गिनें तो भी पूरे दो सौ सतहत्तर दिन नथूराम ने फाँसी की प्रतीक्षा करते हुए व्यतीत किये थे। इन सम्पूर्ण दिनों में नथूराम की आन्धिक दिनचर्या अपरिवर्तित, पूर्ववत् और पूर्ण व्यवस्थित रूप में चलती रही। उन्हें न तो खान पान से विरक्ति हुई थी न उनकी निद्रा का ही ह्रास हुआ था। इतना ही नहीं प्रत्युत इस अवधि में उन्हें ज्वर, खाँसी, प्रतिशाय और मस्तक पीड़ा जैसी व्याधियाँ भी नहीं हुईं। हो सकता है खानपान की अविच्छिन्न नियमवद्धता ही उसका कारण हो। अन्यथा कभी-कभी मस्तिष्क पीड़ा हो जाना नथूराम की एक स्थायी व्याधि थी। सिर एक बार दुखने लगता तो सध्यातक वे कोई काम नहीं कर पाते थे। दिन भर पड़े-पड़े विताना पड़ता था। एक दिन एक गवाही के समय में न्यायालय को भी इसका ज्ञान हुआ था।

क्षमा आश्वासित साक्षीदाता वडगे ने कहा है कि २० जनवरी को नथूराम का सिर दुख रहा था। इसी कारण नथूराम अपने साथियों के साथ, जिनमें वडगे भी था विडला भवन नहीं जा सके थे। इस सम्बन्ध में आपटे का कहना था कि २० जनवरी को विडला भवन जाने का उद्देश्य गांधीजी के समक्ष उनकी हिन्दूद्रोही नीतियों के विरुद्ध प्रदर्शन करना था। नथूराम ने इस विषय में उच्च न्यायालय में इस प्रकार अपना पक्ष प्रस्तुत किया—“वडगे के कथनानुसार मेरा सिर दुख रहा था। उसी के कथनानुसार मैं उसके अथवा आपटे के साथ विडला भवन की ओर नहीं निकला। इसलिये न्यायमूर्तिको यह मान लेना चाहिए कि मैं उस दिन वहाँ गया ही नहीं।”

सिर दुख रहा होगा यह मानने में न्यायमूर्ति को कोई आपत्ति न थी किन्तु नथूराम की उपरोक्त युक्ति के सम्बन्ध में अपने निर्णय में वे कहते हैं—“पाँच सप्ताह से यह याचिका हमारे सामने चल रही थी और विशेषतया उन आठ नौ दिनों की अवधि में, जब नथूराम ने अपनी याचिका का स्वयं मचालन किया, हमने उसे बहुत कुछ देखा-समझा है। उस आधार पर मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि उस कोटी का मनुष्य अपने पीछे रह जाने का विचार भी मन में ला सकता है।

(“We have seen quite enough of Nathuram during the period of more than five weeks while we were hearing these appeals and particularly during the eight or nine days while he was arguing his own case, and I cannot imagine

that a man of his calibre could have even entertained the idea " : Cyclostyled Judgement, Page 439 )

नथूराम का स्वास्थ्य और उनकी चित्तवृत्ति इतनी उत्तम थी कि घटना के पूर्व सिर का दर्द जैसी कोई व्याधि उन्हें हो सकती है जिससे वे कार्य करने में असमर्थ हो जाये, ऐसा न्यायमूर्ति को विश्वास नहीं हुआ ।

नथूराम का लेखन और अध्ययन अन्त तक चलता रहा । फाँसी के केवल एक दिन पूर्व ही उन्होंने श्री ग. ग्र. माडखोलकर के लिए एक लम्बा पत्र लिखा था । और भी कई पत्र उन्होंने उसी दिन लिखे थे । फाँसी के दिन भी अधिकारियों से अनुमति लेकर अनेक लोगो ने उनके हस्ताक्षर लिये थे ।

नाना आपटे ने 'प्रशासन' ( Administration ) के विषय पर फाँसी की छाया में रहते हुए एक विस्तृत निबन्ध लिखा था । सम्प्रति वह शासन के नियन्त्रण में है ।

समय तो वही रहता है । घड़ी और पलों से इनकी लम्बाई न घटती है न बढ़ती है । दिन बड़ा है या छोटा, इस परिभाषा का प्रयोग हम पृथ्वी की परिक्रमा को दृष्टि में रखकर नहीं, प्रत्युत उस पूरी परिक्रमा के प्रकाश के पक्ष के आधार पर करते हैं । अन्यथा समय के दीर्घ या लघु होने की संज्ञा पूर्णतया तुलनात्मक है । उन सत्ताओं पर अपने मन की समय-समय की भावना आरोपित होती है । सापेक्षवाद ( Theory of Relativity ) के तत्वों की समीक्षा करते हुए आइंस्टाइन ने एक मनोरंजक उदाहरण दिया है । प्रेयसी की प्रतिष्ठा में बीते पाँच मिनट हमें पाँच घण्टे जैसे प्रतीत होते हैं किन्तु इसके विपरीत उसके सम्पर्क में बिताये गये पाँच घण्टे पाँच मिनटों के समान तत्काल बीत जाते हैं । इस प्रकार मन की विविध अवस्था के कारण सापेक्षता का निर्माण होता है ।

मरुप्रदेश की प्राणदाहक ऊष्णता में बिताये गये समय और वातानुकूलित भुविधा सम्पन्न विलासगृह में व्यतीत किये गये उतने ही समय की अनुभूति में किन्ना अन्तर होता है ? एक को किन्नी प्रकार काट पाना भी कठिन हो जाता है जब कि दूसरे के शीघ्रता से समाप्त होने का आभास तक नहीं होता । समय की मियाद तो उतनी ही होती है किन्तु सुख-दुःखादि अनुभूति के कारण इसका गान बढ़ता या घटता मालूम होता है ।

युद्ध के वातावरण का तनावपूर्ण समय सक्रिय युद्ध के क्रियाशील समय से अलग बोलिबल और उचा देने वाला होता है, ऐसा सैनिकों का प्रत्यक्ष अनुभव है ।

फाँसी के दण्ड का क्रियान्वयन, दण्ड की भयानकता की पराकाष्ठा नहीं है । प्रत्युत यह तो मानना है शाप देने वाली एक अत्यंत साधारण घटना है । मृत्युदंड

का सबसे अधिक त्रासदायक अश है फाँसी की प्रतीक्षा में बिताया जाने वाला वह समय जो प्रायः पहाड़ बन जाता है और काटे नहीं कटता ।

फाँसी के दण्डप्राप्त वदी और साधारण वन्दियों की स्थिति और मनोदशा में बड़ा अन्तर है । अन्य बहुत से वन्दी भी कारागार की प्राचीरो के भीतर होते हैं, किन्तु वे समूहबद्ध रखे जाते हैं । किसी अत्यन्त उद्दृष्ट या अनुशासनहीन वन्दी के लिये जो सबसे कठोर दण्ड कारागार के विधान में माना जाता है वह है एकान्त-वास जिसे सामान्य भाषा में 'तनहाई' कहा जाता है । किसी भी मनुष्याकृति को देखने के लिए 'तनहाई' का वन्दी तरस जाता है । इसी प्रकार फाँसी की कोठरी में फाँसी की प्रतीक्षा करते हुए वदी का यदि कोई गवाही होता है तो वह होता है उसका मन । फाँसी की कोठरी में यही समूह है । दिनभर फाँसी की कोठरी के वन्दी को इसी मर्यादा में रखा जाता है ।

वास्तव में फाँसी के दण्ड से वदिगृह-वास का कोई सम्बन्ध नहीं है । अपराधी को दण्ड फाँसी का दिया गया है, कारावास का नहीं । किन्तु यदि उसे कारावास भी करना पड़ता है तो केवल अपरिहार्य सुरक्षा की दृष्टि से । मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधी कहीं भाग न जाय, इस भय से उस पर कठोर प्रतिबन्ध रखा जाना अनिवार्य हो जाता है । इस प्रकार फाँसी के पूर्व का कारावास भोगना ही पड़ता है । ऐसा कारावास सब प्रकारके कारावासों से अधिक कठिन, अधिक कष्टदायक होता है ।

फाँसी कोठरी के वन्दी को नित्यकर्म के लिये प्रातः दस-पन्द्रह मिनिटों के लिये बाहर निकाला जाता है । यदि और कभी उसे बाहर निकालना पड़े तो भी उसकी एक निश्चित विधि होती है । वदी कोठरी के सीकचों से अपना हाथ बाहर निकालता है । जिसमें बाहर खड़ा प्रहरी हथकड़ी पहना देता है । तदनन्तर द्वार खोलकर उसे बाहर निकाला जाता है । हथकड़ी में बंधे हाथों में ही वन्दी को हाथ पैर मुँह आदि धोने की 'क्रिया' सम्पन्न करनी पड़ती है । नित्यकर्म के पश्चात् उसे कोठरी के भीतर कर के द्वार बन्द किये जाते हैं और फिर उसी प्रकार वन्दी सीकचों से हाथ बाहर निकाल कर अपनी हथकड़ी खुलवाता है ।

सामान्यतया प्रातः कालीन भोजन १०॥ बजे होता है । उसके पूर्व आधा घंटा या अधिकारियों के सौजन्य से एक घंटा बाहर आगन में टहलने की सुविधा उसे मिलती है । सध्या में भी इसी प्रकार सारा क्रम दोहराया जाता है । कोठरी में एक कम्रल और एक चद्दर, इतना ही वन्दी का ससार होता है । रात्रि को आशका होने पर शौच या मूत्रपात के लिये या तो कोठरी में ही मिट्टी के पात्र रख दिये जाते हैं या कोने में मिट्टी का ढेर रखा होता है । पानी की आवश्यकता

हो तो बाहर से प्रहरी ही उसके हाथों पर पानी डालता है। इस प्रकार यह छोटी-सी कोठरी मानो शौचालय ही होती है।

दीपक होता है तो वह प्रहरी की सुविधा के लिए, कि उसके प्राण में वह वन्दी की गतिविधि देख सके। फांसी का बंदी रात को मुग्नपूर्वक मो भी नहीं सकता। वह जीवित है या नहीं, कहीं मर तो नहीं गया, यह देख कर आश्वस्त होने के लिए पहरा बदलने के समय नव नियुक्त प्रहरी आवाज देकर उसे जगा देता है। प्रत्येक तीन घंटे में पहरा बदला जाता है। अर्थात् प्रति प्रहर निद्रा तोड़ दी जाती है। प्रहरी आया, उसने पुकारा, बंदी की नींद टूटी और उसने उत्तर दिया तो प्रहरी द्वारा उसे फिर सात्वना देने का मौखिक प्रयास—“कुछ नहीं, सो जाओ, ऐसे ही पुकार लिया।” यह सब प्रपंच बंदी को बहुत बुरा लगता है किन्तु दो-चार दिनों में वह इसका अभ्यस्त हो जाता है। इस यातना में उसकी मुक्ति या तो फांसी पर लटक जाने पर होती है या दण्ड का पुनर्निर्णय होने और फांसी की कोठरी से निकाले जाने पर।

प्रातः, सायं और अधिकारियों की इच्छा पर कभी भी वन्दी और उसकी कोठरी का परीक्षण होता है। सीकचों की कोई छड़ काटी हुई तो नहीं है, यह देखने के लिये प्रत्येक छड़ को डण्डे से बजाकर या हाथ से हिलाकर परखा जाता है। वन्दी को ऐसा कुछ करने का अवसर न मिले इसके लिए प्रतिदिन उसकी कोठरी बदल दी जाती है। उसके भोजन की प्रत्येक वस्तु को अधिकारी या प्रहरी चख कर देखते हैं। उसके पश्चात् वह वस्तु उसे दी जाती है।

नथूराम और आपटे को इनमें से किसी भी नियम में छूट प्राप्त नहीं थी। उन्हें सुविधा थी तो प्रकाश की और लेखन सामग्री एवं साहित्य की। उनकी कोठरी के बाहर द्वार के निकट एक पट्टे पर ( मेज पर ) उनके लिखने पढ़ने की सामग्री रखी रहती थी। एक पृथक् दीपक उन्हें उपयोग के लिए दिया जाता था। पहले लिखा जा चुका है कि सरदार वल्लभभाई पटेल के सौजन्य से उन्हें बी० श्रेणी दी गयी थी। नथूराम और आपटे जब क्रमशः बाहर आते थे तब कभी-कभी पट्टे पर शतरंज के दाँव लगाते थे। उनमें से एक कोठरी के अंदर और दूसरा बाहर सीकचों के पास बैठकर खेलता था। मनोरंजन के लिये कभी कभी ताश भी खेलते थे। हम लोग भी उनके साथ कभी-कभी शतरंज खेल लेते थे। फांसी के उन वन्दियों को उस समय मिली इस छोटी सी सुविधा के लिए मन में आज भी कृतज्ञता का अनुभव होता है।

घर में बैठकर वन्दी जीवन की कल्पना करना कठिन है, फांसी कोठरी के जीवन की तो और भी कठिन। स्वाधीनता संग्राम के सदर्भ में कारावास भोगनेवाले थोड़े बहुत लोग अब भी जीवित हैं। कारावास की कठोरता की उन्हें

कल्पना है। फाँसी कोठरी के जीवन की कल्पना भी वे अधिक निकट से कर सकते हैं।

इन स्थितियों में भी फाँसी का बन्दी जीवित रहता है। दण्ड सुनते ही दूसरे दिन उसे क्रियान्वित करने की पद्धति नहीं है। उच्च न्यायालय से पुनर्विचार की संभावना होती है। पुनर्विचार में मृत्युदंड दूसरे किसी दण्ड में परिवर्तित हो सकता है, पूर्णतया मुक्ति भी मिल सकती है। 'जबतक साँस तबतक आस' की यह भावना उसे आश्वस्त करती है। आशा की इस क्षीण डोरी से बँधा वह सभी यातनाएँ सहन करता रहता है। किन्तु नथूराम ने वैसे कोई आशा नहीं रखी थी। जिस निर्णय और आरोप के विरुद्ध बन्दी को कोई शिकायत नहीं हो उस आरोप और उस पर किए गये निर्णय पर पुनर्विचार की कोई आवश्यकता नहीं रहती। नथूराम ने अपने मृत्युदंड के विरुद्ध पुनर्न्याय की माँग नहीं की थी। उच्च न्यायालय ने भी ऐसा अभिमत अपने निर्णय पत्र में व्यक्त किया है (चक्रो टंकित निर्णय पत्र पृष्ठांक २०४)। उन्होंने दया के लिये भी कोई याचना नहीं की थी। अतः मृत्युदंड से मुक्ति की आशा के बल पर फाँसी कोठरी का जीवन बिताने की स्थिति यहाँ न थी। फाँसी अवश्यभावी है यह जानते हुए वे कालकोठरी में अपने जीवन के अंतिम दिन बड़े धैर्य और निश्चिन्तता से बिता रहे थे।

नाना आपटे के व्यवहार की एक स्मृति मेरे मन पर अंकित हो गयी है। नाना सिगरेट पिया करते थे। मैं जब उनके पास जाता था तो वे मुझसे अवश्य कहते—  
“गोपाल ! सिगरेट ?”

मैं नहीं पीता, यह उन्हें ज्ञात था तथापि मैं उनके साथ पीऊँ यह उनकी आतंरिक इच्छा रहती थी। किसी भी वस्तु के उपभोग का आनंद किसी मित्र के साथ बढ़ जाता है, स्यात् उनके आग्रह के पीछे यही भावना थी। किन्तु मैं टाल जाता था।

केन्द्रीय शासन से अभीतक फाँसी के दिन का निर्देश नहीं आया था और हम सबको आशा थी कि नाना को फाँसी नहीं होगी। उन्हीं दिनों एक बार मैं उनके पास गया। वे सिगरेट पी रहे थे। सदा की भाँति उन्होंने मुझसे कहा—  
“गोपाल ! सिगरेट ले लो। पंडित (नथूराम) तो घनचक्कर है। वह नहीं पियेगा।”

“नाना ! आप मुझसे सदा आग्रह करते हैं, यह ठीक है किन्तु मेरी दृष्टि में सिगरेट जीवन के लिए कोई आवश्यक वस्तु नहीं है। वह तो एक व्यसन है और व्यसन किसी आनंद के अवसर पर ही अच्छा लगता है। आपको फाँसी नहीं होगी, यह निश्चय हो जाने दीजिये। तब मैं आपके साथ अवश्य सिगरेट पियूँगा।” मैंने उनसे कहा।



“कितना पगला है रे तू गोपाल !” नाना हँस कर बोले, “जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएँ तो हमें दी गयी हैं उतनी ही हैं। रहने के लिए आश्रय, दोनों समय का भोजन और वस्त्र। क्या प्रत्येक घर में केवल इतनी ही वस्तुएँ होती हैं।”

“किन्तु अन्य सभी वस्तुएँ ‘अनावश्यक’ की परिभाषा में नहीं आती।” मैंने विरोध व्यक्त किया।

“अनावश्यक वस्तुएँ हमें कब आवश्यक प्रतीत होने लगती हैं, यह हम समझ भी नहीं पाते। आदत के कारण वस्तु की ‘अनावश्यकता’ लुप्त हो जाती है और वह परमावश्यक बन जाती है।” नाना ने समझाना प्रारम्भ किया, “छोटे बालको को हम खिलौने देते हैं। क्यों? इसलिये कि हम चाहते हैं कि वे खेलें, हँसें, प्रसन्न रहें। वास्तव में खिलौना भी जीवन के लिए आवश्यक वस्तु नहीं है। इधर उधर की वस्तुएँ मनुष्य के मनोरंजन के लिए हैं। सुख के लिए हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए मनुष्य प्रयत्नशील रहता है। यथासम्भव प्राप्य वस्तुओं का उपभोग प्रत्येक व्यक्ति करता है। मुझे ऐहिक सुख किस वस्तु में मिलेगा यह निश्चय प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है।”

कुछ अशो में क्या यह भोग वृत्ति नहीं है ?” मैंने कहा।

“मैंने तुम्हें जीवन का उद्देश्य नहीं बताया है। जीवन का उद्देश्य क्या है, यह एक अलग बात है। प्राप्य सुख का भी स्वेच्छा से उपभोग न करने के भी कुछ कारण होते हैं। व्यक्ति पर समाज का कुछ ऋण होता है। अपने-अपने सत्कारों के अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति को इस ऋण का थोड़ा बहुत बोध होता है। कुछ प्रसंगों में यह बोध बहुत तीव्र हो जाता है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति अपनी जीवनोपयोगी प्रवृत्तियों में कटौती करने लगता है। जीने का यह भी एक उद्देश्य है। सामान्यतया इसे त्याग कहते हैं। दूसरी अवस्था में कोई व्यक्ति अपनी कमाई में से पाँच-पाँच सौ, पाँच-पाँच सहस्र या पाँच लाख रुपये सामाजिक कार्यों के लिए दान करता है किन्तु अपनी प्रिय प्रवृत्तियों अथवा जीवनोपयोगी गाम्भी में कोई कटौती नहीं करता। अपवाद की बात अलग है। इसके भी आगे की सीढ़ी है जीवनोपयोगी वस्तुओं और व्यसनों को ही नहीं अपने जीवन में भी तुच्छ ममत्ता पर समाज का ऋण चुकाने के लिए उत्सर्ग कर देने की तत्परता। किन्तु तुम्हें मिलनेवाले ऐहिक सुख का उपभोग करने पर तुम सामाजिक दायित्व को भूल रहे हो, यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता। हाँ! सामाजिक दायित्व भी और आगे मूर्ख वर सुयोग्यभोग में लिस हो जाना निस्संदेह भोगवृत्ति है। गाम्भीय दृष्टि में ‘मना पैट पर चलती है’, ऐसा कहा जाता है। किन्तु सैनिक पैट पर उद्देश्य पैट की आग बुराना तो नहीं होना। वह कुछ और होता है।

“मुझे फाँसी होती है या नहीं, यह नियति के वश की बात है। उस पर तुम निर्भर मत रहो। जिस कार्य में तुम्हें रस नहीं मिलता उस कार्य को करने के लिए बाध्य करना, मैं नहीं चाहता, किन्तु तुम जीवन की आवश्यकता का दर्शन मुझे सिखाने लगे थे इसलिये मैंने किञ्चित् तत्त्वज्ञान तुम्हें पिलाया है।”

नाना से थोड़ी देर और बात करके मैं लौट आया। मैंने सिगरेट नहीं पी। चार दिन पश्चात् मैं नाना से मिला तो उस दिन फाँसी का दिन निश्चित होने और नाना की फाँसी का दड पूर्ववत् रखने का निर्णय आ गया था। नथूराम की फाँसी तो पूर्व निश्चित और अवश्यभावी थी ही। मैं नथूराम से पहले नाना के पास गया। उन्हें फाँसी न हो यह मेरी आन्तरिक इच्छा थी। किन्तु निर्णय प्रतिकूल हुआ था। मेरे मन की खिन्नता मेरे मुख पर भी झलकती थी। नाना कुछ पढ़ रहे थे। निर्णय उन्हें ज्ञात था। उन्होंने सिर उठाकर मुझे देखा और सहास्य मुद्रा में मुझे मानो झिड़का—“हूँ, क्या है रे।” उनकी स्थिर मुद्रा को देखकर अपनी उदासीनता पर मैं लज्जित हुआ। प्रयत्नपूर्वक चित्तवृत्ति को नियंत्रित करके मैं आगे बढ़कर सीकचो के सामने जा खड़ा हुआ।

“नाना। आप इस कोठरी के बाहर हो यह इच्छा थी। चार ही दिन पूर्व सुख की कल्पना के सम्बन्ध में आपने मुझे प्रवचन दिया था। मेरी कल्पना के सुख का समारोह मुझे प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु अपने वश के बाहर की बात पर मेरी सुख-कल्पना आधारित थी।” मैंने कहा “मुझे सिगरेट दीजिये। आज तो मैं आपके सम्पर्क में हूँ। जितना प्राप्य है उतने आनन्द का उपभोग तो अपने वश में है।”

“आज तू अच्छा लग रहा है। ( Now you are a man )।” नाना प्रसन्न होकर बोले। उन्होंने डब्बा खोलकर मुझे सिगरेट दी और स्वयं ली। घूम के छल्ले छोड़ते हुए उनके मन को मानो गति मिली। वे बोले—“गोपाल। अत्युच्च आनन्द कौनसा है। तुम जानते हो?”

मैंने प्रश्न-मुद्रा में उनकी ओर देखा।

“देखो, ‘यत् पिंडे तत् ब्रह्मांडे’ इसका अर्थ हुआ ‘यत् ब्रह्मांडे तत् पिंडे’। जो ब्रह्माण्ड में है वही पिंड में है। हमारा मन, हमारी प्रजा, ये सब उस ब्रह्माण्ड में व्याप्त अज्ञात और अदृश्य सत्ता के ही अंश हैं। आनन्द ज्ञात को जानने में नहीं प्रत्युत अज्ञात को खोजने में है। अन्तर्मन में उस अदृश्य-अज्ञात शक्ति में उम नियति से-एक रूप होने की स्थिति यह सर्वोच्च आनन्द है। इसमें बढ़कर आनन्द आगे नहीं है। इससे अन्य कोई भी आनन्द बाह्य साधनों पर निर्भर है। जिन साधनों पर वह निर्भर है उनका नाश होने पर वह भी लुप्त हो जायेगा किन्तु

ब्रह्मांड को नियंत्रित करने वाली शक्ति अविनाशी है। इसलिये उस शक्ति में एकलपता का आनन्द भी कभी नष्ट नहीं होता।

“अब परावलम्बी आनन्द की दशा भी देखो। मैं कल मरनेवाला हूँ इसलिए आज से ही रोने लगने से आज की उपलब्ध-उपभोग्य वस्तु से मिलनेवाला आनन्द भी खो बैठता हूँ। अपने आनन्द की रक्षा करनी हो तो मृत्यु के पूर्व के क्षण तक मृत्यु का शोक न करने से ही वह प्राप्त होगा। और मरने के क्षण में तो हम हमारे रहते ही नहीं। हमारे अवयव आनन्द और दुःख की सीमा से दूर पहुँच चुके होते हैं।”

हम अभियुक्त जब लालकिले के बदीगृह में विचाराधीन बन्दी थे तब नयूराम, नाना और सावरकरजी के बीच यदा-कदा पातजल योगसूत्रों पर चर्चा हुआ करती थी। पर्याप्त अवकाश होने के कारण नाना ने उन सूत्रों को कण्ठस्थ कर लिया था। ज्ञानेश्वरी, तुकाराम गाथा और गीता रहस्य आदि ग्रंथ वे पढ़ते ही थे। नयूराम का अध्ययन तुलानात्मक होता था। किस तात्त्विक विषय पर किस भाष्यकार ने क्या कहा है, यह उन्हें सदा स्मरण रहता था और प्रसंगानुसार वे उनका उदाहरण भी देते थे। नयूराम और नाना के बीच चर्चा होती रहती थी। इस समय नाना इन ग्रंथों का सार सरल भाषा में बता रहे थे। वे उत्साह में थे और उनकी वाणी में वेग आ गया था। मैं जान ही नहीं सका कि मेरे चित्त की विन्नता उन्होंने कब दूर कर दी। उनके शब्दों में भावना का कोमल स्पर्श था। वे कह रहे थे—

“घर-द्वार का वन्धन छोड़कर, कठिन समय में साथ देने के लिए, तुम जैसे मित्र आज मेरे सपक में हो। ज्ञात समार की दृष्टि से मृत्यु के द्वारतक हाथों में हाथ डालकर साथ चलनेवाली नयूराम की और मेरी दृढ़ एवं चिर मैत्री नियति ने मुझे प्रदान की है। इतना सब होते हुए अदृष्ट शक्ति से एक रूप होने का अक्सर मिलने पर मृत्यु का दुःख क्यों माना जाय ? गोपाल !

मैंने पूछा—“आप बहुत समय तक ध्यानस्थ होकर होकर बैठते हैं नाना ! क्या आपको सिद्धि प्राप्त हो गयी है ?”

“सिद्धि का अर्थ है—मैं और वह शक्ति दोनों पृथक् हैं, यह भावना नष्ट होना। इस निष्ठि के प्रयत्न में सुख की समाप्ति मैं कर रहा हूँ। कुछ दिनों में निष्ठि भी प्राप्त होगी ही।” नाना ने अर्धपूर्ण शब्दों में कहा और कुछ देर वार्त्त करके मैं अण्णा ( नयूराम ) की ओर बढ़ा।

अतिशयोक्ति अलंकार में मिश्रण नाना को विलासी और नयूराम को सन्यासी कहा करते थे। किन्तु मैं कुछ असाधारण करता हूँ ऐसा प्रदर्शन नाना ने कभी

नहीं किया और मैं अलस हूँ अथवा मुझ में कुछ विशेषता है ऐसी घमंड नथूराम में भी किसी ने नहीं देखी। मंत्री के स्थायित्व के लिये स्वभाव में कहीं किंचित समानता बड़ी सहायक होती है। प्रदर्शन पराङ्गमुखता का यह साम्य दोनों के स्वभाव के अन्य समान अंशों में से एक था। अपने वैयक्तिक जीवन में किस प्रकार जीना इस विषय में अपना मत अथवा अमिश्चि दूसरे पर न लादना यह उनके स्वभाव की दूसरी समान विशेषता थी।

नाना के जीवन को विलासी मान भी लिया जाय तो भी कालकोठरी में वह कितने स्थिरचित्त थे यह जानने के लिये मेरे और उनके उन दिनों के सम्भाषण का उल्लेख पर्याप्त है।

मेरे विवरण में किसी को नथूराम और नाना का उदात्तीकरण प्रतीत हो या गांधीजी का अवमूल्यन लगे तो उसके लिए किंचित स्पष्टीकरण मुझे आवश्यक प्रतीत होता है। नथूराम हो, आपटे हो, या गांधीजी हो, भारत के इतिहास में नियति ने तीनों का विशिष्ट स्थान दिया है। तीनों अपने अपने स्थान पर स्थिर हैं। जो अवाच्छनीय कालातीत में घट चुका है उसकी पुनरावृत्ति फिर न हो इसके लिये सभी सावधान रहने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु जो हो चुका है उसे बदल सकना यह किसी के वश की बात नहीं है। इसलिए इतिहास में उनके स्थान का मूल्य चढ़ाना या घटाना भी किसी के वश की बात नहीं है। इतिहास की खोज, उसका परीक्षण, विवेचन और पुनर्लिखन इतना ही हमारे वश में है।

हाथ में पृथ्वी का मानचित्र लेकर उसे फड़फड़ाने से भूकम्प नहीं होता ऐसा 'गडकरी' ने कहा है। इसी प्रकार इतिहास के पन्नों को नष्ट करने से जो घट चुका है उसकी वास्तविकता और उसके परिणाम नष्ट नहीं हो सकते। भारतीय इतिहास की एक क्रांतिकारी दुःखद घटना के पन्नों का और उनके परस्पर सम्बन्धों के इतिहास का हम निष्पक्ष भाव से अवलोकन कर रहे हैं यह दृष्टिकोण सामने रखने पर अवमूल्यन अथवा मूल्य वृद्धि जैसा भ्रम मन में उत्पन्न नहीं होगा।

विधि की दृष्टि से हत्या निषिद्ध कृत्य है। अवैध कृत्यों पर विचार करने के लिए हमी ने न्यायपीठ खड़ा किया है। किन्तु केवल कागज पत्रों पर अवैध कृत्य की निंदा करके न्यायपीठ की सत्ता सार्थक नहीं हो सकती। कोई देश किसी देश के मौलिक अधिकारों पर आक्रमण करता है तो आक्रांत देश आक्रामक को यदि कोरे विरोधपत्र ही भेजकर सतोष कर ले और आक्रामक देश उन पत्रों को उठाकर रद्दी की टोकरी में फेंकता रहे, ऐसी निरर्थक सत्ता न्यायपीठ की नहीं होती। क्योंकि न्यायपीठ के पीछे उसके निर्णयों को मान्य करने के लिये हमने शक्ति खड़ी की है। न्यायपीठ कभी-कभी अपराधी के प्राणों का निपेध अपनी कार्यवाही में लाकर अवैध कृत्य का निषेध करता है।

अब हत्या अथवा अन्य अवैध कृत्य की बात अलग है, और सम्बन्धित अपराधी के गुण या भावना का प्रश्न पृथक् है। किसी व्यक्ति के प्राणों का अपने निर्णय द्वारा हरण करते हुए न्यायपीठ उस व्यक्ति के गुणों या विशिष्ट कृत्यों के पीछे की भावनाओं की आलोचना करने का तब तक प्रयत्न नहीं करता जब तक वह भावना ही निषिद्ध अथवा निन्दनीय न हो क्योंकि न तो भावनाएँ अपराधी होती हैं और न विशिष्ट गुण अवैध होते हैं। अनेक बार अपराधी के गुण और उसकी भावनाएँ सराहनीय सहानुभूति के योग्य ही नहीं प्रत्युत अनुसरणीय भी होती हैं और शासनाखंड व्यक्ति भी उनका सम्मान करने पर विवश होते हैं। एक उदाहरण अप्रासंगिक नहीं होगा।

सरदार भगतसिंह के निकट सहयोगी श्री बटुकेश्वर दत्त को भगतसिंह के पहले १२-६-१९२९ को आजीवन कारावास का दण्ड मिला था। नौ वर्ष पश्चात् सन् १९३८ में वे मुक्त हुए। जुलाई १९६५ में उनकी मृत्यु होने पर जिन्होंने उन्हें श्रद्धांजली समर्पित की उनमें राज्यासन पर अधिष्ठित वरिष्ठ पुरुष भी थे। राष्ट्रपति डा० राजाकृष्णन ने भी उन्हें पुष्पांजलि समर्पित की। राष्ट्रपति ने किनका सम्मान किया? क्या उस अवैध कृत्य का जिसमें दत्त सहयोगी थे? ऐसी कल्पना करना तो राष्ट्रपति पर दोष आरोपित करना होगा। उन्होंने दत्त के विधि विरोधी कृत्य का नहीं प्रत्युत दत्त की देशभक्ति का देश के लिये उनकी त्याग भावना का सम्मान किया। क्योंकि वह भावना अपराधी नहीं थी, निषिद्ध नहीं थी, प्रत्युत सराहनीय थी, वन्दनीय थी और अनुसरणीय थी।

अपराधियों के गुणों की सराहना के उदाहरण हमें अंग्रेजी शासनकाल में कहीं कहीं दिखाई देते हैं। जुलाई १९०९ में क्रांतिवीर मदनलाल बिहारी का अभियोग लंदन में चल रहा था। उनका आचरण धीरोदात्त था। उस आचरण में अनेक अंग्रेज प्रभावित हुये थे जिन्होंने किसी से भयभीत न होते हुए मदनलाल को फासी दिये जाने का सार्वजनिक रूप में विरोध किया। मदनलाल के प्रति सहानुभूति प्रकट करके उन्होंने उनके द्वारा की गई हत्या का समर्थन किया था ऐसा नहीं माना जा सकता।

फरवरी-मार्च १९१० में बम्बई न्यायालय में क्रांतिकारी अनंत कान्हेरे पर अभियोग चल रहा था। तीन न्यायाधीशों में दो श्री स्कॉट और श्री हीटन अंग्रेज थे। वैरिस्टर जैकर भी अभियोग को सुनने के लिये न्यायालय में बैठते थे। उन्हीं दिनों उन दो अंग्रेज न्यायाधीशों में से एक की श्री जैकर से भेंट हुई तो सर्वथा अप्रत्याशित रूप में श्री जैकर से उन्होंने कहा—“आप प्रतिदिन न्यायालय में बैठते हैं, कान्हेरे के सम्बन्ध में आप क्या सोचते हैं? ऐसे कोमल, सुन्दर और धैर्य के प्रतिभूर्ति युवक को मुझे फाँसी पर चढ़ाना पड़ रहा है। कैसा दुःख है यह।”

( .... What a pity that I have to send such a handsome and courageous youth to the gallows ! ) The Story of my Life : M. R. Jaykar; Page 117, 118)

न्यायमूर्ति के इन उद्गारों में कान्हेरे की वैयर्थीलता की प्रशंसा थी। हत्या के कृत्य का समर्थन नहीं।

उपरोक्त निरूपण के अतिरिक्त न्यायालय का एक और अभिमत पाठको की दृष्टि में लाना उपयुक्त होगा उससे उदात्तीकरण और अवमूल्यन जैसे भ्रमों का अनायास ही निराकरण होगा।

दिनांक १५-११-१९४९ को नथुराम और आपटे को अम्बाला केन्द्रीय कारागार में फाँसी दी गई। उस दिन पूना के “केसरी” ( अर्ध साप्ताहिक ) ने “देहान्त शासनाचे राष्ट्रीय बळी” शीर्षक अग्रलेख प्रकाशित किया। दिनांक २९-१२-१९४९ को बम्बई-शासन ने एक आदेश के द्वारा “केसरी” से ३००० रुपये की प्रतिभूती ( Security ) मागी। शासन का कहना था कि “केसरी” ने इण्डियन प्रेस एक्ट ( १९३१ ) की सीमा का अतिक्रमण किया है। क्योंकि उसने शासन द्वारा घोषित गांधी वध के दण्डित अपराधियों की प्रशंसा की। “केसरी” के तत्कालीन सम्पादक श्री ग वि केतकर ने बम्बई के उच्च न्यायालय में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। जो Criminal application No 136 of 1950 इस क्रमांक से पंजीकबद्ध किया गया। न्यायपीठ पर न्यायमूर्ति श्री छागला, श्री बाबडेकर और श्री शहा विराजमान थे। दिनांक १३-४-१९५० को दिये गये निर्णय को न्यायमूर्ति छागला ने लेखापित ( Dictate ) किया था और अन्य न्यायमूर्तियों ने उसे मान्यता दी थी। न्यायमूर्ति श्री छागला के अनुसार केसरी ने विधान का उल्लंघन नहीं किया था। न्यायमूर्ति का तात्पर्य यह था कि हत्या प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन अथवा हत्या के लिये हत्यारे की प्रशंसा करना ही आपत्तिजनक है। अपने अभिप्राय को उदाहरण द्वारा समझाते हुये न्यायमूर्ति ने तर्क दिया कि मान लो किसी चित्रकार पर हत्या का आरोप लगाया जाय और फाँसी दे दी जाय तब उसकी मृत्यु के पश्चात् यदि कोई समाचार पत्र दण्डित कलाकार की कला की प्रशंसा करता है तो उसका यह अर्थ लगाना कि वह उसके द्वारा की गई हत्या की प्रशंसा कर रहा है सर्वथा असंगत है। न्यायमूर्ति ने धामन के आदेश को लौटा दिया।

कोई अपराध अथवा अपराध का सकल्प भी बिधे बिना मेरी नियति में कारावास लिखा जाय, यह बात मुझे सदा बुरी लगी है, इसलिये ऊपर का निरूपण करना मुझे आवश्यक प्रतीत हुआ। मैं जिसके प्रति निष्ठा रखता हूँ ऐसा

भारत के अतिरिक्त कोई देश ससार में नहीं है। किन्तु विडम्बना देखिये कि बिना किसी नियम और गणनाक्रम के निश्चित अवधि से अधिक समय तक आजीवन कारावास का दंड भोग कर मुक्त होने के ४० दिन पश्चात् ही मुझे पुनः बन्दी बनाया गया तो 'भारत सुरक्षा अधिनियम' के आचार पर २४-११-६४ में ३०-११-६५ तक मुझे पुनः कारावास भोगना पड़ा।

स्थानवद्धता की अवधि में मैंने सम्बन्धित अधिकारियों को लिखा—“देन की सुरक्षा में सुविधा के लिये आप मुझे स्थानवद्ध रखना चाहते हैं ? देश मेरा है। उसकी रक्षा के लिये जो भी यातना मुझे भोगनी पड़े उन्हें भोगना मेरा कर्तव्य है। आप अपनी सतुष्टि तक मुझे बन्दी बनाये रखें, किन्तु मेरा दोग क्या है, यह तो मुझे समझा दीजिये।

आजीवन कारावास की अवधि में जिस प्रकार किसी भाँति का प्रतिदान न लेते हुए मैंने अनेक बार रक्तदान किया था उसी प्रकार स्थानवद्धता के बीच भी पाकिस्तान का भारत पर आक्रमण होने पर रक्तदान मैंने किया। प्रतिदान की व्यवस्था होने पर भी मैंने कोई प्रतिदान नहीं लिया। देशनिष्ठा की भावना से मैंने यदि कुछ किया है तो उसका प्रतिदान लेने की इच्छा मेरी कभी नहीं रही किन्तु कोई बात का बर्तगड खड़ा करे और किसी कार्य के पीछे का निहित अभिप्राय समझे बिना, कोई अपराध सिद्ध या आरोपित किये बिना ही यदि किसी पर कारावास लाद दे तो उससे किसके मन को दुःख नहीं होगा ? मुझे फासी कोठरी में रहने का अनुभव नहीं था। स्यात् इसी कसर को पूरा करने के लिये स्थान वद्धता के समय यरवदा बंदीगृह में मेरे निवास के लिये फासी कोठरी चुनी गयी थी। कौन जाने The order is to be executed ... के स्थान पर The Prisoner is to be executed ... की कल्पना अधिकारियों को हुई हो। पाँच दिन पश्चात् मुझे औरंगाबाद ले जाया गया। वहाँ तो मुझे एकान्त कोठरी से भी कठिन स्थान दिया गया। यह सब बात का बर्तगड बनाकर किया जा रहा था इसीलिये मुझे इनका क्षोभ था। अन्यथा उद्भूत विवेचन की कोई आवश्यकता न थी।

दंडित अपराधियों के व्यक्तित्व की विशेषताओं की प्रशंसा के उपरोक्त उदाहरण अप्रत्यक्ष स्वरूप के हैं। किन्तु पंजाब उच्चन्यायालय ( शिमला ) के न्यायमूर्ति ने नयूराम के व्यक्तित्व या व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष प्रशंसा की थी। उसी न्यायपीठ के एक न्यायाधीश न्यायमूर्ति खोसला ने पन्द्रह वर्ष पश्चात् लिखी अपनी पुस्तक में, नयूराम के वक्तव्य में कितनी तार्किकता थी, उसमें श्रोताओं के हृदय हिला देने की कौसी विलक्षण क्षमता थी इसका स्वयंप्रेक्षित, स्वयंश्रुत विवरण प्रस्तुत किया है।

न्यायपीठासीन जिन न्यायाधीशों ने नयूराम के अवैध कृत्य के कारण उसे मृत्युदंड दिया उन्होंने उनके व्यक्तित्व में देखे गुणों की, उनके अपराधी होने पर भी, सार्वजनिक रूप में प्रशंसा की। न्याय का यह सन्तुलन न्यायमूर्तियों के लिए तो गर्व की बात है ही, हमारे लिए भी अपने न्यायपीठ पर गर्व करने योग्य है।

नयूराम के जिन गुणों के लिये इस प्रकार की निरपेक्ष और निर्भीक प्रशंसा की गई उन गुणों की भूमिका क्या है? नयूराम का आचरण क्या उनका कारणभूत नहीं है? यह जानने के लिए इतिहास का किंचित अवलोकन आवश्यक है।

ब्रिटिश कार्यकाल के देशभक्त क्रांतिकारियों को गोरे शासकों की न्याय-परायणता पर विश्वास नहीं था। जिस शासक को वे छली, धूर्त और अन्यायी मानते थे उसके द्वारा खोली गयी न्याय की दूकानों की तुला पर उन्हें कैसे विश्वास होता?

१८५७ के स्वातंत्र्य योद्धा तात्या टोपे पर चलाये गये अभियोग के संदर्भ में १० अप्रैल १८५९ को न्यायालय में तात्या ने कहा—“तुम हमारा न्याय करने वाले कौन होते हो? तुम हमारे कोई नहीं हो। मैं तुम्हारा नागरिक नहीं हूँ। हमारा राज्य छीन लेने का अधिकार तुम्हें किसने दिया है? तुम लोगों के द्वारा अन्यायपूर्वक छीने गये अपने राज्य को पुन प्राप्त करने का प्रयत्न करना हमारा अपराध नहीं है।

“मेरा जन्म तुम्हारे राज्य में नहीं हुआ। जो मेरा राजा नहीं उसके प्रति निष्ठा की शपथ मैं क्यों लूँ? मैं तुम्हारा नौकर नहीं, सेवक नहीं तब मैं विद्रोही कैसे हो गया?

“मह राज्ज हमारा है। यह पेशवाओं का राज्ज है। मैं यदि निष्ठावान हूँ तो केवल उनके प्रति। केवल उनकी आज्ञा ही मुझे मान्य है, मेरा सिर धड़ से अलग कर दिया जाय तो भी मैं उनका सेनापति हूँ।

“भाग्य का पासा उल्टा पड़ गया है। इसलिये मैं विजित हूँ और तुम विजेता। किन्तु इसमें तुम्हारी वीरता सिद्ध नहीं होती। तुम्हारी न्यायपरायणता प्रमाणित नहीं होती। तुम्हारी सत्ता को मैं स्वीकार नहीं करता। मेरी निष्ठा मेरे देश के साथ है, मेरे राज्य के साथ है और मेरे स्वामी के साथ है।”

दिनांक १८-४-१८५९ के दिन तात्या को मृत्युदंड दिया गया और उसी दिन उन्हें फाँसी दे दी गयी, यह पाठक जानते ही होंगे।

इसी प्रकार सरदार भगत सिंह और उनके साथियों ने हुतात्मा यतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु के पश्चात् न्यायालय का वहिष्कार कर दिया था। उनका कहना



था कि जिस राज्य की आधारशिला ही अन्याय की मिट्टी पर टिकी है उनके द्वारा नियुक्त न्यायालय अपने अन्यायी शासन के मूलोच्छेद के लिये कृतसंकल्प देशभक्तों के साथ न्याय देंगे यह असंभव है। स्वाधीनता संग्राम की राजनैति के अखाड़े में उतरने वाले प्रत्येक देशभक्त को अंग्रेजी न्यायालयों से कोई आशा नहीं करनी चाहिए, भगतसिंह का यह निश्चित मत था। १९३० के अक्टूबर में उन्हें दंड दिया गया और सुखदेव, भगतसिंह और राजगुरु को २३-३-१९३१ की रात्रि में लाहौर कारागार में फाँसी दे दी गयी।

तीसरा उदाहरण तनिक भिन्न होने पर भी उद्धरणीय है। १९१० के अभियोग में स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने एक व्यवस्था का प्रश्न उठाया था। उनका कहना था कि वे ब्रिटिश राज्य के वन्दी नहीं हैं। उन्हें फ्रांस की भूमि से पकड़ कर लाया गया है। यह गिरफ्तारी ही अवैध है। उन्हें फ्रांस के हाथों सौंप दिया जाना चाहिए। फिर भी यदि ब्रिटिश शासन उन पर अभियोग चलाती है तो उसमें तटस्थ रहेंगे क्योंकि ब्रिटिश राज्य और न्यायालय को उन पर अभियोग चलाने का कोई अधिकार नहीं है। दिनांक २४-१२-१९१० के दिन उन्हें आजीवन कारावास हुआ और ३०-१-१९११ को द्वितीय आजीवन कारावास दिया गया। उनकी सम्पूर्ण अचल सम्पत्ति पर शासन ने अधिकार कर लिया।

किन्तु गांधी वष के इस प्रसंग में स्थिति दूसरी थी। अब राज्य अपना था। नथूराम एवं अन्य अभियुक्त स्वयं को इस राज्य का नागरिक मानते थे। वे न तो शासन को परकीय मानते थे और न ही उलटने के उद्देश्य से उन्होंने शस्त्र उठाये थे। शासन के प्रति निष्ठावान होने के कारण उसे उलटने की उनके मन में न तो कल्पना थी और न ही अभियोजकों ने ऐसा कोई असत्य आरोप उन पर लगाया था। शासन के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने पर उसके द्वारा नियुक्त न्यायपीठ के सभी न्यायासनों के प्रति निष्ठा रखना स्वाभाविक है। न्यायासन को न्याय करने में सहयोग देना जिस प्रकार अभियोजकों का कर्तव्य है उसी प्रकार अभियुक्त या वचाव पक्ष का भी कर्तव्य है। इस दिशा में जो निर्णय मनोनुकूल हो उसे न्यायोचित और जो अपने प्रतिकूल हो उसे अव्ययपूर्ण मानने की मनमानी प्रवृत्ति उचित नहीं है। इसी धारणा से नथूराम न्यायासन को अपना सम्पूर्ण सहयोग देने के लिये कृतसंकल्प थे। ३० जनवरी की घटना के सम्बन्ध में और गवाहियाँ प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं है, यह इसी भावना से नथूराम ने अभियोजकों के वकील को समझाया था। थोड़ी बहुत इधर-उधर की बातों को छोड़ कर मुख्य घटना की प्रामाणिकता में किसी को कोई सन्देह नहीं था। नथूराम स्वयं उसे स्वीकार कर रहे थे। इसलिये इसी घटना को और अधिक सबूतों से प्रमाणित करने के परिश्रम से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, ऐसा नथूराम का

अभिप्राय था। अभियोजक उन कन्याओं की शहादत न्यायासन के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते थे, जो गांधी जी के साथ अन्तिम क्षणों तक थी और जिनके कन्वों पर हाथ रखे गांधी जी प्रार्थनास्थल तक आये थे। गोलियों की ध्वनि के साथ गांधी जी के घराशायी होने पर वे कन्याये इतनी भयभीत और व्याकुल हो गई थी कि सड़ी रह सकना उनके लिये कठिन हो गया था। वे गांधी जी के पास वही भूमि पर बैठ गई थी। उनकी वह व्याकुलता, भय और आतंकित मुद्रा नाथूराम को स्मरण थी। वे उन निर्दोष कन्याओं को भीड़ भरे न्यायालय में उस दुःखान्तिका को स्मरण कराने और दोहराने की मानसिक यत्नना नहीं देना चाहते थे, विशेषतया उस स्थिति में जब उनकी शहादत से अभियोग अधिक पुष्ट होने वाला न था। गांधी जी की हत्या प्रमाणित हो चुकी थी और नाथूराम उसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्रारम्भ से ही अपने ऊपर ले चुके थे। नाथूराम का अभिप्राय अभियोजकों ने समझा और उन कन्याओं एवं अन्य और बहुत से गवाहों को प्रस्तुत करके पिष्टपेपण का विचार छोड़ दिया गया। मूल घटना का कारण स्वयं होना स्वीकार करके न्यायासन को पूरा पूरा सहयोग देने का नाथूराम ने जो निश्चय किया था उस पर वे अन्त तक दृढ़ रहे।

न्यायालय ने जब मृत्युदण्ड सुना दिया तब नाथूराम ने न्यायालय को आदर प्रदान करते हुए उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। उनका कहना था कि न्यायालय ने किसी द्वेषभाव से प्रेरित होकर मृत्युदण्ड नहीं दिया है, यह न्यायालय स्वतन्त्र भारत का अपना न्यायालय है। नाथूराम मृत्युदण्ड के विरुद्ध पुनरावेदन करते तो उसमें उनकी देशनिष्ठा पर कोई कलक लगने वाला नहीं था।” क्योंकि इस न्यायालय के ऊपर उच्च न्यायालय भी स्वतन्त्र भारत के अपने शासन ने ही स्थापित किये थे किन्तु उच्च न्यायालय में उन्होंने अपने मृत्यु दण्ड के विरुद्ध पुनरावेदन प्रस्तुत नहीं किया। उन्होंने जो पुनरावेदन किया वह पडयन्त्र के आरोप के विरुद्ध था। गांधी जी को मैंने मारा है, इस कार्य के पीछे कोई योजना या कोई पडयन्त्र नहीं है, इसलिये पडयन्त्र की कल्पना करके जो अन्य निर्दोष लोगों को दण्डित किया जा रहा है, वह अनुचित है और उस पर पुनर्विचार होना चाहिये। यही उनका अभिप्राय था। किन्तु इस पर भी उच्च न्यायालय जो निर्णय दे उसे शिरोधार्य करने का उनका निश्चय था।

मृत्युदण्ड के कार्यवहन के आत्मसमर्पण के उदाहरण बहुत बार देखने को मिलते हैं। किन्तु प्रायः उनका उद्देश्य शासन को चकमा देने का होता है। किन्तु नाथूराम की भूमिका यह नहीं थी। आत्महत्या करके शासनको धोका अथवा चकमा देने का उनका विचार न था। क्योंकि उनकी धारणा थी कि शासन और न्यायासन दोनों ही अपने हैं।

नथूराम की यह भूमिका पंजाब उच्च-न्यायालय ने स्पष्ट अनुभव की। वकील का कार्य, फिर चाहे वह अभियोजक पक्ष का हो अथवा वचाव पक्ष का, न्याय-प्रदान कार्य में न्यायालय को सहयोग देना होता है। नथूराम ने भी अपने अभियोग की अवधि में वैसा ही सहयोग न्यायालय को दिया था, ऐसा न्यायालय की कार्य-वाही पढ़ने से ज्ञात होता है। मृत्यु दण्ड के विरुद्ध उन्होंने एक भी शब्द नहीं कहा किन्तु न्यायालय के सम्मुख उन्होंने अपना पक्ष जिस कुशलता से प्रस्तुत किया वह नितान्त प्रशंसनीय एवं सराहनीय माना जायगा। यद्यपि पुनरावृत्ति होगी तथापि प्रस्तुत प्रसंग के परिपेक्ष्य में “निर्णय पत्र” के पृष्ठ २०४ पर अंकित शब्दों को यहाँ पर उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा।

“ . of the appealants NathuRam V. Goodse has not challenged his conviction under section 302 of the Indian Penal Code for the offence of the murder of Mahatma Gandhi on the 30th January 1948 nor has he appealed from the sentence of death passed on him in respect of that offence. He has confined his appeal and also has arguments at the Bar. He personally argued his appeal, I must say with conspicuous ability evidencing, a mastery of facts which would have done credit to any counsel only to the other charges which have been found proved against him . ”

नथूराम द्वारा न्यायालय को सहयोग देने का न्यायाधीशों पर उपयुक्त प्रभाव पड़ा होगा।

न्यायाधीश यह भलीभाँति जानते थे कि देश की तत्कालीन परिस्थितियों से दुःखी एवं बाध्य होकर ही यह हत्या की गयी है। देश विभाजन के परिणाम-स्वरूप उनका प्रान्त और सम्भवतया वे स्वयं भी प्रपीडित थे अतः उन्हें उसकी पुनरावृत्ति करा देने की आवश्यकता नहीं थी। १९२९ में सम्पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव लाहौर कांग्रेस में ही पारित हुआ था। जिस की स्मृति में आज हम २६ जनवरी को गणतन्त्र दिवस मनाते हैं। २६ जनवरी १९२९ को कांग्रेस ने सम्पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पारित किया था। वही पवित्रस्थल भारत का भाग होने हुए भी अब स्वतन्त्रता के बाद विदेश का भाग बन गया था। हिन्दुओं के लिये वहाँ अब कोई स्थान नहीं, और अब वह मुस्लिमधर्माधिष्ठित राष्ट्र बन गया है। उम नाते वह पाक अथवा पवित्र बन गया है यह ध्वनि भारतवासियों को कर्णगोचर हो रही थी। इतिहास की यह विदम्वना न्यायमूर्तियों के सम्मुख ही घटित हुई थी और हो रही थी। लाहौर निवासी अन्यान्य हिन्दुओं की ही भाँति वहाँ की

न्यायपीठ पर आसीन न्यायमूर्तियों को भी निर्वासित होना पड़ा था। पञ्जाब उच्चन्यायालय जो किसी युग में लाहौर में अधिष्ठित था उसे विभाजित भारत में लाना पड़ा था और सुविधा-असुविधा की दृष्टि से अनेक वर्ष तक उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण करते रहना पड़ा था, इसका अनुभव भी न्यायमूर्ति प्रतिक्षण करते रहते थे। यही कारण है कि हत्या के अपराध में विधानानुसार नथूराम को प्राणदण्ड देने पर भी उन्हें ऐसा नहीं प्रतीत हुआ कि नथूराम न्यायनिष्ठ अथवा देशनिष्ठ नहीं है और यही कारण है कि इस अवधि में जो गुण उन्होंने नथूराम में देखे उनकी प्रशंसा उन्होंने स्पष्टतया निर्भीक होकर अपराधी को दण्ड देना जिस प्रकार जनता के प्रति न्याय प्रदर्शित करना है उसी प्रकार अपराधी की भावना का मूल्यांकन करना भी जनता के प्रति न्याय्य ही था। विदेशी और स्वदेशी दो विभिन्न राज्यों में क्रान्तिकारी अभियुक्तों की भूमिका में और न्यायपीठ की अभियुक्तों की ओर देखने की भूमिका में जो अन्तर होता है वह इस अभियोग अवधि में देखने को मिला। इस प्रस्तावना के उपरान्त हम नथूराम के पूर्वचरित्र पर प्रकाश डालेंगे।

अंग्रेज शासकों के प्रति भारतीयों द्वारा किये जाने वाले शस्त्र प्रयोग की रोकथाम के उपायों पर विचार करने के लिये १९१७ में ब्रिटिश सरकार ने एक समिति का गठन किया था। न्यायमूर्ति एस०, ए० टी० रोलेट इस समिति के सचिव-जक थे। १५-४-१९१८ को उन्होंने अपनी छानबीन का विवरण प्रस्तुत कर दिया था। इस प्रतिवेदन को 'सिडिंग्स कमेटी रिपोर्ट' के नाम से जाना जाता है।

उनका कहना था कि लोकमान्य तिलक द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित 'गणेशोत्सव' तथा 'शिव जयन्ती' कार्यक्रम क्रान्तिकारी पड़यन्नों के मूल हैं। उन्होंने अपनी खोज में इसे भी महत्व दिया कि लोकमान्य तिलक, चाफेकर बन्धु, रानडे, कान्हेरे, शिवराम महादेव पराजपे तथा सावरकर बन्धु सदृश सभी उग्रवादी चित्तपावन ब्राह्मण हैं। अंग्रेजी शासन का भारत से मूलोच्छेद करने की भावना चित्तपावनों में अत्यंत तीव्र है। उनका निष्कर्ष था कि सभी पड़यन्त्रकागे ब्राह्मण हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता एवं क्रान्तिकारियों के इतिहास पर यदि हम दृष्टिपात करें तो हमें विदित होगा कि केवल एक छोटे से चित्तपावन ब्राह्मण समुदाय में ही ब्रिटिश राज्य के प्रति विरोध की भावना विद्यमान रही हो ऐसी बात नहीं है। इतिहास पर साधारण दृष्टिपात से ही यह तथ्य समझ में आ सकता है। गैलेट कमेटी ने अपने प्रतिवेदन में चित्तपावन ब्राह्मणों के प्रति जो अपनी भावना व्यक्त की है यह उसका सकोचित दृष्टिकोण ही है। उक्त प्रतिवेदन की पृष्ठ नम्बरा १० पर अंकित है कि कान्हेरे के पड़यन्त्र के जिन सात व्यक्तियों को दण्ड दिया

गया वे सबके सब चितपावन ब्राह्मण थे। इस पड़यन्त्र में कान्हेरे, कवें और देशपाण्डे को मृत्युदण्ड दिया गया था। इस प्रसंग में यह बता देना उचित होगा कि देशपाण्डे चितपावन ब्राह्मण नहीं थे, यह महाराष्ट्र के सभी लोग जानते हैं।

सामान्यतया भी इस प्रतिवेदन में ब्राह्मणों के विरोध में जो लिखा गया है वह सब उन्होंने पूर्वाग्रह से पीड़ित होकर ही लिखा है। सम्भवतया उनकी धारणा यह रही हो कि ब्राह्मणों को राजद्रोही बता कर जन साधारण को यह समझा दें कि ब्राह्मणोत्तर जन उनसे अच्छे हैं। इस प्रकार जातिवाद का प्रदन उपस्थित कर परस्पर फूट के बीज बो उससे लाभ उठाने की लालसा समिति के सदस्यों की रही होगी। उनकी धारणा अथवा लालसा जो भी रही हो किन्तु यह सत्य है कि अग्रज शासकों को फूटी आखी न सुहानेवाले चितपावन ब्राह्मण कुल में ही नथूराम गोडसे का जन्म हुआ था। उनका कुल ऋग्वेदाम्यासी एव शाण्डिल्य गोत्रीय था।

इस सम्बन्ध में बहुत प्राचीन इतिहास की छानबीन करने की आवश्यकता नहीं है। कितना भी प्राचीन इतिहास क्यों न खोजें किन्तु यह सम्भव नहीं कि किसी भी इतिहास का प्रथम पृष्ठ हस्तगत हो। नथूराम के पितामह श्री वामनराव विद्वान ब्राह्मण थे। कृपि के साथ साथ वे पौरोहित्य का कार्य भी करते थे। पूना जिला में भावल तालुके के अन्तर्गत उक्साण ग्राम के वे निवासी थे। उन दिनों आवागमन का साधन बैलगाड़ी ही थी। मार्ग पर स्वाभाविक ही गाड़ी के चक्रों की लोक सी बन जाती थी। उन दिनों तारकोल अथवा सीमेण्ट का प्रचलन नहीं था। इसी कारण से वर्षाऋतु में लगभग चार मास तक इस प्रकार आवागमन बन्द रहता था, मार्ग में पानी भर जाने के कारण लम्बी यात्रा सम्भव नहीं हो सकती थी।

सर्वसाधारण रूप से प्रायः उस समय सभी देहातों का जीवन कठिन होता था। परिवहन की सुविधा नहीं थी और न उद्योग धन्धे ही विकसित हो पाये थे। यही कारण है कि आजीविका के लिए ग्रामीण साधन सर्वथा अपर्याप्त थे। अपनी सन्तति अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करे, उसमें उसे सरकारी नौकरी प्राप्त हो जिससे कि बढ़ते हुए परिवार का परिपालन हो सके, इस महत्वाकांक्षा के वशीभूत ग्रामवासियों की दृष्टि नगरोन्मुखी हो गई थी।

नथूराम के पितामह पण्डित वामनराव की तीन कन्यायें तथा एक पुत्र था। सुपुत्र विनायक का जन्म १८७५ में हुआ था। कन्याओं की शिक्षा का प्रबन्ध उस युग में घर पर ही होता था। उनको कहीं बाहर नहीं भेजा जाता था। इसलिए उनकी शिक्षा का प्रश्न ५० वामनराव के सम्मुख नहीं था। पुत्र की प्राथमिक शिक्षा उक्साण में ही पूर्ण कर उच्च शिक्षा के लिये वे सपरिवार पूना

आ गये। परिवार पूना में ही रहने लगा और वे स्वयं गांव घर का कार्य देखने के लिए यथानियम उत्साण आते जाते रहे।

जब विनायक उच्च शिक्षा के अन्तिम वर्ष में थे उस समय उनके विवाह की चर्चा चली। तब उनको सत्रहवां वर्ष लग गया था। प्राचीन प्रथा के अनुसार सत्रहवें वर्ष में उनका विवाह कर दिया गया। पूना के ही निवासी वैद्य श्री विनायकराव फडके की सुकन्या सौ० गोदावरी से उनका पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। गोदावरी की आयु उस समय १० वर्ष की थी। विवाहोपरान्त उनका नाम लक्ष्मी बदला गया। उसी वर्ष परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त विनायक को पूना में ही डाकघर की नौकरी भी मिल गई। प्रथम तीन मास के लिए उनका मासिक वेतन पांच रुपया निर्धारित हुआ और तदुपरांत पन्द्रह रुपये मासिक निश्चित किये गये।

पाँच अथवा पन्द्रह रुपये मासिक वेतन आज भले ही उपहास का विषय हो, किन्तु तत्कालीन स्थिति में यह पर्याप्त समझा जा सकता था। वस्तुएँ इतनी महंगी नहीं थी। विनायक १० रुपये में अपना मासिक व्यय चला लेते थे और पाँच रुपया वे नियमितरूपेण अपने पिताजी को भेजते थे। उनके पिताजी कभी उत्साण में रहते थे और कभी उनके समीप पूना में। सदैव विनायक के पास रहना उनके लिये सम्भव नहीं था क्योंकि नौकरी के कारण विनायक का स्थानान्तरण होता रहता था। गाँव की कृषि उनकी आजीविका का साधन था।

विनायक की गृहस्थी विवाह के पाँच-दस वर्ष उपरान्त ही प्रारम्भ हुई। ज्येष्ठ पुत्र के जन्म पर उनको पितृपद प्राप्त हुआ और अब वे विनायक से विनायकराव कहलाने लगे। सुपुत्र का नाम रामचन्द्र रखा गया। किन्तु दुर्दैव से दो वर्ष बाद ही रामचन्द्र दैवगति प्राप्त कर गया। दूसरी सन्तान के रूप में सुकन्या ने जन्म लिया उसका नाम मथुरा रखा गया। इसके बाद दो सुपुत्र और हुए किन्तु वे भी एक-एक वर्ष से अधिक इस ससार में नहीं रहे। लड़को को न रहने से माता-पिता एवं नाना-नानी को बहुत दुःख होता था।

आज के इस यांत्रिक युग में भी जब अभी श्रद्धा का पूर्ण लोप नहीं हुआ, तो उस युग में समाज पर श्रद्धा का जितना प्रबल प्रभाव था वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। विनायकराव उस समय वारामती में रहते थे। धर्मपत्नी लक्ष्मी पुनः गर्भवती थी। तब विनायकराव के माता पिता ने कुलदेवता के मन्दिर में जाकर मनौती मानी कि उनकी पुत्रवधू के मुपुत्र उत्पन्न हो, उसे वे दायी की गोद में दे देंगे। दायी का पुत्र समझ कर ही उनका पालन-पोषण करेंगे, उसका उपनयनादि भी मन्दिर में ही करेंगे, आदि-इत्यादि।

सौभाग्य से १९ मई १९१० को सौ० लक्ष्मीबाई ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। पारिवारिक लोगों की धारणा दृढ़ हो गई कि कुलदेवता ने उनकी मनौती

स्वीकार कर ली है। पुत्र को दायी की गोद में दिया गया। उसका नाम रामचन्द्र रखा गया। उसकी नाक छेदी गयी। नाक छेदने के कारण सभी लोग प्यार के भाव से उसको नथू (नकछेद) कहने लगे। किन्तु कालान्तर में नथूराम नाम ही प्रचलित हो गया।

वारामती के बाद विनायकराव का स्थानान्तरण खेड, लोनावला, तलेगाव, कर्जत और रत्नागिरि आदि स्थानों पर हुआ। नथूराम के बाद १९१५ में वारामती में दत्तात्रय, १९१७ में खेड में शाता, १९२० में गोपाल और १९२१ में तलेगाव में गोविन्द उत्पन्न हुए।

नथूराम की प्राथमिक शिक्षा वारामती में ही प्रारम्भ हुई। उनका उपनयन सस्कार कुलदेवता के सम्मुख मनौती के अनुसार वारामती के राममन्दिर में हुआ। सन्ध्या-वन्दन और सूर्य नमस्कार सभी माता पिता उन दिनों अपने घरों में अपनी सन्तान को सिखाते ही थे। नथूराम का भी वही उपक्रम चलता रहा। स्कूली शिक्षा के साथ साथ उन दिनों यह प्रथा भी थी कि पुत्र को कठामरण कराया जाय। ऐसी मान्यता थी कि इससे बुद्धि का विकास होता है। यह कार्य घर पर ही होता था।

कठामरण में नथूराम की बुद्धि बहुत ही तीव्र थी। शाम को नवनीत के चुने हुए श्लोक मनुस्मृति के श्लोक, करुणाष्टक, आरती, रामायण और महाभारत के चुने हुए श्लोक पढ़ाने तथा उनके सुन लेने की प्रथा होने के कारण नथूराम का कठामरण बहुत अच्छा हुआ था।

महाराष्ट्र के विगेष तथा पूना के राष्ट्रीय विचारवारा के समाचार-पत्रों को रौलट ने चितपावन प्रेस सञ्ज्ञा से ही सम्बोधित किया है। सिडिशस कमेटी की रिपोर्ट के पृष्ठ १३ पर ऐसा स्पष्ट अंकित है। 'केसरी' उस समय का प्रमुख पत्र माना जाता था। अंग्रेज भक्त कर्मचारियों ने 'केसरी' की नीति को अंग्रेजी राज्य का विरोध करने के लिये जनता में असन्तोष निर्माण करने वाली नीति कहकर अलिप्त रूप में केसरी के पठन को आपत्तिजनक घोषित किया हुआ था। किन्तु इसके विपरीत वस्तुस्थिति यह थी कि प्रेमी पाठकों से भी अधिक उत्कण्ठा ऐसे लोगों में ही 'केसरी' पढ़ने के लिये देखी जाती थी। किसी कृति पर प्रतिबन्ध लगाने में उसके प्रति बाँझुहल बढ़ता है। यही कारण है कि नथूराम को पिता ने अपने ऊपर कोई आरोपण न हो सके इस सम्भावना में बचने के लिये नथूराम के नाम में, जिसकी आयु उस समय सात-आठ वर्ष की होगी, 'केसरी' मगवाना आरम्भ किया।

नथूराम को 'टोटी' भी अवस्था में पढ़ने का चस्का लग गया था। वह 'केसरी' पढ़ कर उनमें गमनता भी था, ऐसी बात नहीं है किन्तु घर में पठन सामग्री के

रूप में केसरी' विद्यमान होने से वह उसे पढते थे। स्वातन्त्र्य-समर की जो सामग्री उसमें प्रकाशित होती थी उसे नथूराम वाल्यावस्था में तो अनजाने में किन्तु बाद में समझ कर निरन्तर रुचि से पढते थे। इसका उनके मन पर प्रभाव हुआ। इस सम्बन्ध में होने वाली चर्चा तथा भाषणों में भी उनकी रुचि बढ़ने लगी थी। एक बार वे अपने पिताजी के साथ एक भाषण सुनने के लिये गये। भाषण के विषय के अनुसार घर लौटने पर उन्होंने विदेशी शक्कर के बहिष्कार का आग्रह किया। उनके पिताजी जानते थे कि यह हठ केवल बाल स्वभाव के कारण है, किसी विषय को पूर्णरूप से समझकर करने की प्रतिक्रिया नहीं है। इतना जानते हुए भी केवल पुत्र का हठ पूर्ण करने के विचार से और यह समझते हुए भी कि इस हठ को पूर्ण करने में कोई हानि भी नहीं है उन्होंने उस समय से घर में विदेशी शक्कर का लाना बन्द कर दिया। किन्तु इस क्रिया ने एक परम्परा डाल दी और भविष्य में घर में विदेशी वस्तुओं का न लाना नियम सा बन गया।

नथूराम के पिता का स्थानान्तरण छोटे-छोटे ग्रामों में होते रहने के कारण उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध न हो पा रहा था। मराठी की चतुर्थ श्रेणी उत्तीर्ण कर अंग्रेजी शिक्षा के लिये उनको पूना में उनकी बुआ के पास रखा गया। चाद में तीन चार छात्रों ने मिलकर एक अलग कमरा लिया तो नथूराम भी वही जा कर रहने लगे। अवकाश के दिन नथूराम अपने घर आया करते थे।

कविता पढना, उसे कंठस्थ करना और स्वयं भी कविता रचना, यह अभिरुचि पाठशाला के दिनों में ही नथूराम में जागृत हो गई थी। लोकमान्य तिलक के उद्देश्य के अनुसार उस समय गणपति समारोह का सद्बुपयोग राष्ट्रभक्ति प्रज्वलित करने के लिये ही किया जाता था। लोकमान्य के वाद में भी यह प्रथा प्रचलित रही, खण्डित नहीं हुई। नथूराम उन दिनों मेले में गये जाने योग्य देशप्रेम से ओतप्रोत रचनाये रचने लगे थे। उन दिनों ही उन्होंने "लक्ष्मीतनय" नाम से एक छोटा सा पद्यसंग्रह भी प्रकाशित कराया था। 'रामरक्षा स्तोत्र' का छन्दोबद्ध रूपान्तर भी उन्होंने किया।

यद्यपि नथूराम की विचारप्रणाली तर्ककठोर थी किन्तु वाल्यावस्था में वह अत्यन्त भावुक प्रकृति के थे। बड़ी बहिन मथुरा का विवाह हो चुका था। उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहना था अतः निश्चय किया गया कि उसको मायके जाया जाय और यहाँ पर उसकी चिकित्सा की जाय। औपधोषचार किया गया किन्तु उसका सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकला। किमी ने मुझाव दिया कि बही इसका दैवी प्रकोप न हो इस कारण घर में कठपुतली की पूजा कराई जाय। घर



पर उसका पूजा कराई जाने लगी और सयोग की बात कि वहिन का स्वास्थ्य सुधरने लगा ।

यह पूजा नयूराम ही करते थे । पूजा की विधि थी कि कासे की थाली के बीच में काजल पोता जाता था, देवस्थान या अन्य किसी भी सुविधाजनक स्थान पर दीवार के समीप भूमि को लीपा पोता जाता था, पीढा रख कर वह थाली उस दीवार के समीप रखी जाती थी, पीढे पर दो दीपक प्रज्वलित रहते थे, उनका प्रतिबिम्ब काजल में पड़ता था । यह पूजा प्रायः सायंकाल सन्ध्या के बाद होती थी । पूजा करने वाला उस थाली के सामने बैठता था, वह गवाक्षत से पूजा करता था । एक दृष्टि से वह थाली के काजल की ओर देखता रहता था ।

पूजा करने वाले से प्रश्न पूछे जाते थे । उसके मुख से निकलने वाला उत्तर देवी का उत्तर माना जाता था । पूजा करनेवाले को उस कागज में कभी मूर्ति, कभी आकृति और कभी अक्षर दिखाई देते थे । प्रश्न पूछे जाने पर पूजा करनेवाले को उससमय काजल में जो दीखता था वह बता देता था । कई बार उसे उस प्रश्न का प्रत्यक्ष उत्तर समझ में नहीं आता था । तब उसका अर्थ समझने के लिये तर्क किये जाते थे । इस प्रकार नित्य आधा घंटे तक यह प्रक्रिया चलती थी ।

घर के सभी व्यक्तियों ने काजल में कुछ देखने का यत्न किया । किन्तु किसी को कुछ नहीं दिखा केवल नयूराम को ही ये दृश्य दिखाई देते थे । कभी कभी तो प्रश्न न पूछे जाने पर भी नयूराम को किसी समय में कहीं अन्यत्र देखे हुए देवी देवता अथवा मूर्तियाँ दिखाई देती । कभी कभी तो उनको अपने पढ़े हुए किन्तु जो कण्ठस्थ न हो पाये हो ऐसे श्लोकों के अक्षर उस पर दीखते थे जो तेजी से लहर की भाँति आते और आगे बढ़ते जाते थे । नयूराम उनको पढ़ने का यत्न करते तो उनके मुख से कोई श्लोकवद्ध स्तोत्र अथवा रुद्राष्टक का भाग निकलता था ।

पूजा समाप्त होने पर नयूराम को जब काजल में दीखनेवाला स्तोत्र अथवा श्लोक पढ़कर कहने के लिये कहा जाता तो वे सुना नहीं पाते थे, तबतक वे पुनः विस्मरण हो जाते थे । कण्ठाभरण के लिये यह अच्छा उपाय है, इस भावना से वह कठपुतली की पूजा प्रत्येक मंगलवार और शुक्रवार को करने लगे । किन्तु अगली पूजा में पिछली पूजा के अक्षर ही दिखाई दें ऐसी बात नहीं होती थी । तब किसी अन्य स्तोत्र अथवा श्लोक के अक्षर उभर आते थे । नयूराम में भी कुछ दैवी शक्ति है, ऐसी घरवालों की भावना बनने लगी थी ।

यह उन दिनों की बात है जब नयूराम की शिक्षा पूना में हो रही थी और वे छुट्टी विताने के लिए घर पर आये हुए थे । यह पूजा उन्हीं दिनों की गई

थी। तब उनकी आयु १५-१६ वर्ष की रही होगी। उसके बाद उन्होंने पूजा छाड़ दी, इसके लिए उनका कहना था कि उनकी श्रद्धा लुप्त होने लगी है।

नथूराम को उस काजल में मूर्ति या अक्षर दीखता था यह बात भौतिक विज्ञान की कसौटी पर खरी नहीं उतरती थी। भले ही अध्यात्मवादी इसको सत्य सिद्ध करने का यत्न करते रहे।

आदि शक्ति या माया सत्, रज्ज् और तम इन तीन गुणों से युक्त है ऐसा हम मानते हैं। मानव प्राणी उम शक्ति का ही परिणाम माना जाता है। इन तीन गुणों और माया की शक्ति के जीवन से मनुष्य के मन का वातावरण बनता है। मनुष्य जिस समय जैसा व्यवहार करता है उस समय उसमें उस गुण विशेष का होना माना जाता है।

मनको एकाग्र करने का तात्पर्य है स्वयं में सत्त्वगुण की वृद्धि करना, अर्थात् रज, तम के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली शक्ति को समाप्त करना। तब मन की एकाग्रता किस प्रयोजन से की जा रही है यह प्रश्न गौण है।

किसी विषय में मनुष्य की भावुकता अथवा श्रद्धा मन को एकाग्र करने में सहायक होती है। अतीत में देखी कोई घटना, पढ़ी हुई पक्तियाँ अथवा सुनी हुई वार्ता का प्रभाव मन पर अंकित होता है। यह बात भौतिक शास्त्र भी मानता है। उदाहरणार्थ जब कभी कोई व्यक्ति हमको मिलता है, हम उसको पहचानने का यत्न करते हैं, किन्तु उसका नाम स्मरण नहीं आता इससे हमको अडचन होती है। किन्तु बाद में जब पुनः वह व्यक्ति कभी हमारे सम्मुख न भी हो तो सहसा उसका नाम स्मरण हो जाता है। मन का प्रभाव जागृत होता है।

मन एकाग्र होने पर वह किसी भाव विशेष पर केन्द्रित हो जाता होगा और सामने अक्षर दीखने पर कण्ठस्थ किये स्तोत्र अथवा श्लोक के अनुसार मुख से शब्द निकलने लगते होंगे। अक्षर दिखाई दे रहे हैं इस धारणा का मूलाधार भी अक्षरों का ज्ञान होना ही होगा। एक प्रकार की समाधि अवस्था की स्थिति, बड़ी हुई आयु में विक्षेप शक्ति का प्रभाव अधिक होने के कारण मन का उस विषय विशेष पर एकाग्र होना कठिन हो जाता होगा।

सार्वजनिक कार्य में उत्साह दिखाना यह युवकों का स्वभाव होता है। किसी में यह गुण विशेष होता है। ऐसे विशेष गुणों वाले युवक प्रत्येक पीढ़ी में होते हैं। नथूराम उस आयु में सार्वजनिक कार्यों में सत्साह भाग लेते थे। सार्वजनिक कार्य का उस समय का अर्थ इतना ही होता था कि वह काम स्वयं के व्यवहार से अतिरिक्त हो। उदाहरणार्थ, कुओं को साफ कर देना, उसकी घास निकाल देना, किसी को यात्रा के लिये सहायता दे देना, मन्दिरों में होने वाले समारोहों में

अग्रसर रहना, रोगियों की सेवा करना, विवाह समारोह में सहायता देना आदि आदि कार्य सार्वजनिक माने जाते थे ।

नथूराम को तैरने का बहुत शौक था । वे और उनके मित्र जब जुटते थे तब वे मिल कर एक बड़ा सा पत्थर नदी के उस पार ले जाने का खेल खेला करते थे ।

जिन दिनों वे लोनावला में थे, उन दिनों अल्पायु होने पर भी वे तैराकी में निपुण हो गये थे । एक बार एक लड़का कुएँ में गिर गया । उसकी माता तथा तत्सम्य अन्य महिलायें रोने चिल्लाने लगी । उसी समय नथूराम और उनका एक मित्र उधर से जा रहे थे । नथूराम ने रोना चिल्लाना सुना तो उन्होंने कुएँ में झाँका लड़के को डूबता देख कुएँ में छलांग लगाई और वच्चे को निकाल कर ले आये ।

घरवालों को जब पता चला तो नथूराम को डाटा डपटा गया । वह इसलिये नहीं कि उन्होंने कुएँ में से लड़के को क्यों निकाला अपितु इसलिए कि उन्होंने महार के लड़के को कुएँ से निकाल कर घर आकर स्नान क्यों नहीं किया । महार "हरिजन" कहलाते हैं । अपनी यौवनावस्था में जातिभेद को मिटाने का जो कार्य नथूराम ने किया उसकी पृष्ठभूमि में एक यह घटना भी सम्भवतया मुख्य रही होगी ।

एक बार उनकी छोटी बहिन शान्ता घाट पर से नदी में गिर पड़ी और बहने लगी । नथूराम इस घाट पर तैर रहे थे । लड़की के डूबने पर चिल्लाहट हुई तो वे तैरते हुए उस पार गये और बहिन को उठा कर घाट पर ले आये ।

कण्ठाभरण, भाषा, इतिहास आदि में विशिष्टता प्राप्त करते हुए भी अन्यान्य सभी अन्यामों में भी वे उतने ही पखर हो यह बात नहीं थी । अंग्रेजी उनके लिये बहुत कठिन विषय था । एक समय ऐसा भी आया कि जब उनमें आवागमन लड़कों के चिन्ह देखे जाने लगे । उनके एक पुराने सहपाठी हाल में ही मुझे मित्रे । वे इस समय किसी उच्च पद पर प्रतिष्ठित हैं । वे कहने लगे कि मैं भी उस आवागमन में सम्मिलित होता था । सात रूपयों में हमें दो बार का भोजन मिलता था । उन दिनों चित्रपट पर मूक चित्रों का प्रदर्शन होता था । हमें चित्रपट देखने का चस्का लग गया । जब देखा कि पैसे अपर्याप्त होने लगे हैं तो हमने दो बार का अनेका एक बार भोजन करना आरम्भ कर दिया । उसके लिये चार रुपये रिये जाने थे । जब फिर भी पैसे की कमी अनुभव होने लगी तो विचार किया गया कि भोजन घर पर ही बनाना आरम्भ किया जाय । उसके लिये गवने अपने परिवारों को यह दिया कि भोजनालय का भोजन महंगा पड़ना है । उम्हिये हम जब स्वयं घर पर भोजन बनाया करेंगे । इस प्रकार अपने घर यात्रा में नय ने प्राथमिक आवश्यकता की वस्तुओं के कुछ न कुछ पैसे ले लिये ।

उनका कहना था, “हमने घर पर भोजन बनाने की योजना बनाई। तदनुसार प्रातः काल एक बार ही दो पदार्थ बना कर दोनों समय का भोजन करने का कार्यक्रम था। परन्तु अन्न और शाक-भाजी आदि छोड़ कर तावा, परात आदि वर्तन हमने खरीदे नहीं अपितु किसी से भाग कर काम चलाया। घर से आवश्यक सामग्री के लिये जो पैसे मगाये गये थे उससे हमने चित्रपट देखे। एक बार हममें से किसी के पिताजी अचानक हमारे कमरे में आ गये। कमरा बन्द था। उन्होंने पड़ोस में रहने वाले लोगो से पूछताछ की। किसी पड़ोसी ने भली प्रकार हमारी आत्मनिर्भरता का बखान उनके सम्मुख कर दिया। वे हमारे आने तक प्रतीक्षा करते रहे।

“अपने पिताजी को एकाएक आया देख कर उक्त लड़का चौक गया। उसने अपनी अनुपस्थिति का यह बहाना बता दिया कि हम सब लोग पढ़ाई के लिये बाहर गये हुए थे। उसके पिताजी उससे कुछ बोले नहीं। कुछ आगे बढ़े और सहसा अपने पुत्र की जेब में हाथ डाल दिया।

दुर्भाग्य कि बात कि चारों लड़कों के चित्रपट के टिकट उस समय उसी की जेब में थे। पिताजी को क्रोध आ गया और पुत्र की जेब में पड़ा हुआ हाथ जोर से उसके गाल पर लगा।

“थोड़ा बहुत समझा बुझा और कुछ डरा घमकाकर उस लड़के के पिताजी दूसरे दिन अपने घर को चले गये। ‘सस्ते ही छूटे’ यह समझकर हम लोगो ने सुख की सास लिया।

“किन्तु हमने देखा कि आठ-दस दिनों के भीतर सभी लड़कों के घर से पत्र आये कि अब तक जो पैसा तुम्हें भोजन व्यवस्था के लिये दिया गया है उसका विवरण दो और जो वस्तुयें खरीदी हैं उनके बिल आदि भेजो।

“हम लोगो के घरवालों को यह बात उस लड़के के पिताजी ने लिखी थी इसी के आधार पर हमसे यह स्पष्टीकरण मागा गया था। इससे भी बुरी बात यह हुई थी कि उन्होंने एक पत्र मुख्याध्यापक को भी लिखा था जिसमें उनमें प्रार्थना की गई थी कि वे उन चारों लड़कों पर दृष्टि रखें। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि जब कभी भी हमको पढ़ाई में कमजोर पाया गया तो छड़ियों से हमारी पिटाई की गई और कहा गया कि आवारगी के कारण हम उस पढ़ाई में कमजोर रह गये हैं। भले ही कमजोर रह गये हो। भले ही कमजोरी का कोई अन्य कारण भी रहा हो।

“परीक्षायें समीप थी, इसलिये हम भी सब कुछ छोड़ कर पढ़ाई में जुट गये।”

नयूराम का ध्यान राजनीतिक हलचल की ओर अधिक रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पढाई से उनका ध्यान हटने लगा। उन दिनों गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। उन्होंने पिताजी से सत्याग्रह में भाग लेने की अनुमती मांगी। पिताजी ने उनको सुझाव दिया कि चाकी की बातें बाद में सर्वप्रथम शिक्षा को महत्व दिया जाना चाहिये। फिर उन्होंने अपना नौकरी जाने का भय भी दिवाया। नयूराम यदि सत्याग्रह में भाग लें तो पिताजी की नौकरी जाने का पूरा भय था। इन सब बातों पर गम्भीरता से विचार कर उन्होंने सत्याग्रह में भाग न लेने का ही निश्चय किया।

परन्तु इनमें नयूराम को सन्तोष नहीं हुआ। तब उन्होंने सोचा कि बाहर से ही इस कार्य में कुछ सहायता की जाय। किन्तु जो स्वयं परावलम्बी हो वह बाहर से किस प्रकार सहायता कर सकता था। पुन होने के नाते थोड़ा बहुत हठ करने का अधिकार उसका होता है इस दृष्टि से उन्होंने और अधिक आग्रह करने का निश्चय किया। उस समय उनके पिताजी बम्बई-पूना मार्ग स्थित कर्जत में नियुक्त थे। छुट्टी के दिनों में नयूराम कर्जत जाया करते थे। इस बार दस-पन्द्रह सत्याग्रहियों का एक दल बम्बई जा रहा था। मार्ग में वह कर्जत में रुका था। गांव के मन्दिर में उन्होंने निवास किया। गांव छोटा सा होने के कारण उनके वहाँ ठहरने का समाचार सर्वत्र फैल गया और सत्याग्रह के विषय में जनसमूह में कुतूहल जागृत हुआ। पूरे गांव में वार्ता प्रसारित हो गई। नयूराम अवकाश के कारण वहाँ गये हुए थे अतः वे भी सत्याग्रहियों के दर्शनार्थ मन्दिर में गये। उस दल के प्रमुख से उन्होंने भेंट की। और उन्होंने उनसे भोजन के विषय में पूछा तो विदित हुआ कि कोई निश्चित प्रबन्ध नहीं है तब उन्होंने सत्याग्रहियों को उस दिन का भोजन अपने यहाँ करने का निमन्त्रण दे दिया। यह निमन्त्रण उन्होंने अपने पिता की ओर से दे दिया और अपना घर बतला दिया। दल प्रमुख द्वारा निमन्त्रण स्वीकार किये जाने पर नयूराम घर आ गये।

घर आकर इस विषय में उन्होंने कुछ नहीं बताया। समय से कुछ पूर्व ही भोजन करके वे पुन. मन्दिर में चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने कहा कि भोजन बन रहा है, आप तब तक चलकर स्नान ध्यान करिये। इस कार्य में भी लगभग दो घंटे तो लग ही जावेंगे। बात सुनकर सत्याग्रही उनके साथ उनके घर के लिये चल दिये।

नयूराम के पीछे पन्द्रह लोगो को कच्चे में तालिया डाले आते देख माताजी विस्मय करने लगीं। नयूराम ने आगे बढ़कर माताजी को कहा कि इन लोगो ने अभी भोजन नहीं किया है। केवल बेसन-भात ही यदि बन जाय तो

काम चल जावेगा। दोपहर बाद चार बजे की गाड़ी से इन लोगों को आगे जाना भी है।

मां कुछ उत्तेजित स्वर में बोली, “यह बात तुमने पहले क्यों नहीं बताई? अब क्या तुरन्त ही यह सब हो सकता है? कम से कम डेढ़ दो घंटा तो लग ही जावेगा भोजन तैयार करने में?”

“डेढ़-दो घंटे तक वे लोग यहाँ बैठेंगे, स्नान-ध्यान करेंगे। तात्या क्रोध करेंगे इस भय से पहले तुमको नहीं बताया था।” नथूराम ने स्पष्टीकरण करते हुए बता दिया।

शीघ्रता में जितनी अच्छी रसोई बन सकती थी वह माताजी ने यथासमय बनाकर तैयार कर दी। पत्तल परोसने से जूठन उठाने तक की सहायता नथूराम ने कर दी। मां को पुत्र की दक्षता देख आनन्दमय आश्चर्य हो रहा था।

सत्याग्रही भोजन कर ही रहे थे कि बीच में पिताजी आ गये। डाकखाने से जुड़ा हुआ ही घर था। उन्होंने देखा और स्थिति को समझा। सत्याग्रही जन सरकारी बस्ती में और एक सरकारी कर्मचारी के यहाँ भोजन कर रहे थे। छोटा-सा गांव। उच्चाधिकारियों को विदित हुआ नहीं कि नौकरी गई।

माताजी इस बात को न जानती हो ऐसी बात नहीं थी। किन्तु वे व्यवहार कुशल थी। पिताजी की मन स्थिति को उन्होंने भाप लिया और बोली, “दोपहर के भोजन के समय घर पर आये हुए अतिथियों को क्या कभी हमने वापस लौटाया है? ये सत्याग्रही हैं अथवा तीर्थयात्री हमें इससे क्या? क्या हमने कभी अतिथि से पूछा है कि वे कहाँ जाने वाले हैं?”

जैसे भी हो, पिताजी का थोड़ा बहुत समाधान हुआ। क्योंकि अब इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय भी तो नहीं था, क्योंकि भोजन करनेवाले तो भोजन कर ही रहे थे। बाद में भी बहुत दिनों तक उनके मन में अशान्ति तो रही किन्तु उन्होंने इस विषय में नथूराम पर कभी किसी प्रकार का क्रोध प्रकट नहीं किया। किन्तु उन्होंने उनकी इतना ही कहा कि फिर कभी ऐसा अवसर आवे तो बिना उन्हें सूचना दिये ऐसा काम न किया जाय। उन्हें बता दिया जाय वे उसकी समुचित व्यवस्था कर देंगे। गाँव में उनका अच्छा मान है, वे अपने घर के अतिरिक्त इस व्यवस्था को भली भाँति करा सकते हैं।

सत्याग्रहियों ने उनके घर पर भोजन किया। इसप्रकार का स्वल्प समाधान सा बहुत दिनों तक नथूराम के मन में रहा।

नूतन मराठी विद्यालय में नथूराम अध्ययन कर रहे थे। विद्यालय की अन्तिम परीक्षा में बैठे किन्तु अनुत्तीर्ण रहे। तब वे कर्जत आ कर रहने लगे।

पिताजी ने पुनः परीक्षा में बैठने का आग्रह किया। किन्तु नथूराम सोचते थे कि अध्ययन में उनकी बुद्धि नहीं चल रही है अतः कोई कला या हस्तव्यवसाय सीख लिया जाय। इस दृष्टि से काष्ठकारिता से सम्बन्धित कुछ साहित्य उन्होंने एकत्रित किया और घर पर छोटे-मोटे उपकरण रख कर कार्य प्रारम्भ करने की ठानी।

उन्हीं दिनों पिताजी का स्थानान्तरण रत्नागिरी को हो गया। १९-९-३० की यह बात है। यद्यपि पिताजी को तो नहीं किन्तु स्थानान्तरण की यह घटना नथूराम के जीवन को एक नया मोड़ देने वाली सिद्ध हुई।

उन दिनों स्वातन्त्र्यवीर सावरकर रत्नागिरी में ही रह रहे थे। रत्नागिरी की सीमा लावने पर उन पर प्रतिबन्ध था। उनके राजनीति पर चर्चा करने, व्याख्यान देने और लिखने आदि पर भी प्रतिबन्ध था।

उस समय सावरकर जी को लोग कठिनाई से ही पहचानते थे। उसी समय उनकी लेखमाला 'जन्मठेप' प्रकाशित हुई थी और कुछ समय बाद ही सरकार ने पुस्तक को प्रतिबन्धित कर दिया था। जिस पुस्तक पर प्रतिबन्ध होता है उसके विषय में उत्सुकता बढ़ जाती है। उस पुस्तक में कुछ ऐसा होगा जिससे उस पर प्रतिबन्ध लगा है, ऐसी लोगों की साधारण धारणा बन जाती है। विषयवस्तु से सम्बन्धित समाज का एक विशेषवर्ग उस पुस्तक की ओर आकर्षित होता है और येन-केन-प्रकारेण उसको हस्तगत करने का यत्न करता है।

नथूराम को सावरकर जी की महत्ता का ज्ञान हो गया था। हिन्दुस्तान की स्वाधीनता के लिये जो-जो महापुरुष प्रयत्नशील थे उनके प्रति नथूराम के मन में आदर भाव होता था। इस प्रकार वे सावरकर जी को ज्वलन्त देशभक्त समझते थे। जब उनको यह विदित हुआ कि पिताजी का स्थानान्तरण रत्नागिरी के लिये हो गया है तो यह समाचार सुनकर उनको उल्लास मिश्रित आनन्द हुआ। उनको यह स्पष्ट होने लगा कि अब वे वीर सावरकर सदृश क्रान्तिकारों के दर्जन सुगमता से कर सकेंगे।

कर्जत से पूना-कोल्हापुर मार्ग से होते हुए हम रत्नागिरी पहुँचे। आठ-दस दिन एक घर में रहे। उसे असुविधाजनक समझकर छोड़ दिया गया और बीच की गली में एक अन्य घर लिया।

वह घर स्वर्गीय बाल गंगाधर खेर के पिताजी का था। उनके पिताजी उसी घर में रह रहे थे। उसके एक भाग में हम रहने लगे।

घर में रहने वाले लोग जब किसी घर को छोड़ कर दूसरा घर बसा लेते हैं तो उन मिट्टी, चूना परतल मिश्रित टाँचे के प्रति कोई विशेष मोह अथवा भावना नहीं रखते। जाने अथवा अनजाने हमारे साथ हुआ यह कि उस घर के

जिस भाग में हम रहते थे उसे उसमें किसी समय जब सावरकर जी प्रथम बार रत्नागिरी आये थे तो रहते थे। बाद में वे उन्नी गली के एक छोर में अन्य मकान में रहने लगे थे। रत्नागिरी में हमारा पूरा डेढ़ वर्ष का बान श्री खेर के उस घर में ही रहा। सावरकर जी कभी कभी अपने व्याख्यानो में कहा करते थे, जिस किमी का भी मेरे साथ दूर अथवा निकट का सम्बन्ध आयेगा उन्हें आग में जलना नहीं तो झुलसना तो होगा ही, ऐसा दैव का विधान दीखता है। गोडसे घर से सावरकर जी का १९२९ के लगभग आया हुआ सम्बन्ध लगभग बीस वर्ष बाद शब्दशः वैसा ही चरितार्थ हुआ, जैसा सावरकर जी कहा करते थे।

हमारे रत्नागिरी पहुँचने के तीन दिन बाद ही नथूराम सावरकर जी से मिलने गये थे। वह उनकी प्रथम भेंट थी। उसके बाद वे नित्य ही उनके पास जाने लगे। १९-२० वर्ष के इस युवक में सावरकर जी ने कई गुणों को समाहित देखा। उन्होंने देखा कि उनका अध्ययन उनकी आयु से कहीं अधिक है। उन्हें प्रतीत हुआ कि नथूराम ने न केवल कहानी उपन्यास का ही अध्ययन किया है अपितु, इतिहास, तत्वज्ञान के ग्रन्थ एवं धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन भी किया हुआ है। उन्हें विदित हुआ कि नथूराम की स्मरण शक्ति भी तीव्र है और अपनी चर्चा में इसी आधार पर समय-समय पर महान् ग्रन्थों का उल्लेख करते रहते हैं। थोड़े दिनों बाद ही वे यह भी समझ गये कि नथूराम की वक्तृत्व शक्ति भी अद्भुत है।

सावरकर जी की लड़न की माया नथूराम को कभी कभी उनके ही मुख से सुनने को मिलती रहती थी। वे सावरकर जी से 'वार ऑफ डिरेन्सेस' को एक प्रति माग लाये और रात को बैठकर उनका अध्ययन करने लगे। जहाँ कहीं अर्थ उनकी समझ में न आता वे पिता जी से समझ लेते थे। जब वे पढ़ने बैठते तो पिताजी और माता जी सुनने बैठ जाते। सुनता तो दत्ता भी था किन्तु यह बात उसकी समझ से परे थी। समझदार श्रोता तो दो ही थे—माँ और पिताजी।

सावरकर जी उन दिनों जो लिखते थे उसकी प्रतिलिपि करने में नथूराम को आनन्द मिलता था। उन्हें इस बात का भी गर्व था कि सावरकर जी की रचना के प्रथम पाठक वे ही हैं। नथूराम कभी कभी सावरकर जी के मन्दर्भग्रन्थों को घर पर ले आया करते थे। सावरकर जी को जब आवश्यकता होती तो वे उनमें वापस मगवाते थे। नथूराम सोचते थे, कि जिस ग्रन्थ का एक बार उपयोग कर लिया उसको पुनः देखने की क्या आवश्यकता है। एक बार अपनी मर्चा उन्होंने सावरकर जी के सम्मुख रख भी दी। तब सावरकर जी ने उन्हें समझाया कि उनकी रचना



मे किसी प्रकार की मूल न रह जाय, उद्धरणों का उचित अर्थ एवं उपयोग हो रहा है इसका ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है, इसके लिये सन्दर्भग्रन्थों को बार बार देखना उपयुक्त होता है जिससे कि किसी प्रकार की टीकाटिप्पणी अथवा आलोचना-प्रत्यालोचना वाद में सुननी न पड़े।

लेखन के विषय में सावरकर जी सदा ही नयूराम का पथ प्रदर्शन किया करते थे। क्या पढ़ना चाहिये, किन प्रकार की टिप्पणी करनी चाहिए, विषय का किस प्रकार प्रतिपादन होना चाहिये यह सब वे उनको समझाया करते थे। उनके सम्पर्क से ही नयूराम राजनैतिक सभाओं में भी भाग लेने लग गये थे।

उस समय गान्धी जी के सत्याग्रह आन्दोलन का जो फैसला हुआ था। सावरकर जी भी समझते थे कि येन-केन-प्रकारेण जनता में ज गृति तो आ रही है। वे स्वयं तो वन्दी का जीवन व्यतीत कर रहे थे। इस अवस्था में वे जनता का पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकते थे।

रत्नागिरि के विट्ठल मन्दिर में समय समय पर धार्मिक विषयों पर व्याख्यान हुआ करते थे। एक बार ध्रुवाख्यान पर व्याख्यान था। नयूराम तो प्रत्येक व्याख्यान सुनने के लिये अवश्य ही जाते थे। पौराणिक विषयों एवं मंदिरों के व्यासपीठों का देशभक्ति के प्रचार के लिए प्रयोग हो ऐनी उनकी धारणा बनती जाती थी। उन्हें यह भी विश्वास था कि इसके द्वारा जागृति सहज सम्भव है। जिस दिन ध्रुवाख्यान वहाँ होनेवाला था उस दिन उन्होंने भी कुछ बोलने के लिये अनुमति चाही तो उनको अनुमति मिल गई।

अपने व्याख्यान में नयूराम ने कहा, जिस प्रकार ध्रुव का स्वाभिमान जागृत हो उसने अपने लिए सुस्थिर स्थान चाहा था आज उसी प्रकार हमारा भी स्वाभिमान जागृत हो चुका है और हम भी अपने लिये सुस्थिर स्थान चाहते हैं। अपने स्थान की प्राप्ति के लिये ध्रुव ने कठिन तप किया था, पिता द्वारा दिये गये प्रलोभनों में वह नहीं पड़ा था। इतना ही नहीं उसने सम्पूर्ण राज्य प्राप्ति के प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया था। उसने पिता की अपेक्षा वास्तविक दाता 'जगन्नाथ' को जान लिया था और उसी से प्रार्थना किया करता था।

"हमने तप करना आरम्भ कर दिया है। क्रूर विदेशी शासक कितने ही आघात करें, हमारे नेताओं को भले ही पकड़ लें, उन पर मुकदमें चलायें, उन्हें फाँसी दें अथवा हमें प्रलोभित करें तो भी हमें अब पीछे नहीं मुड़ना है। हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि बिना कष्ट सहन किये कोई भी फल सुलभ नहीं होता। कठिन प्रयत्न होनेवाला कार्य भी अपने प्रयत्नों से ही सरल हो सकता है, अस.घ्य को साध्य करना होगा। इस प्रकार विचार कर स्वतन्त्रतारूपी

ध्रुवतारे को अपनी दृष्टि के सम्मुख रखते हुए भक्त ध्रुव के समान स्थिरता एवं कष्टसाध्यता को अपना लक्ष्य बनाना होगा, तभी हम अपने उद्देश्य में सफल हो सकते हैं।”

अपने भाषण में उन्हें सन्त तुकाराम की वाणी, दासबोध का तत्त्वज्ञान और नवनीत की सूक्तियों को उद्धरित करने के लिये कभी कठिनाई नहीं हुई और न किसी उक्ति विशेष को स्मरण करने के लिये उन्हें कोई विशेष प्रयत्न ही करना पड़ा था। सभी बातें मुख से अनायास इसी प्रकार निकल रही थी मानो वे उनके अपने ही वाक्य हों। उपस्थित श्रोताओं को अपने भाषण से उन्होंने मन्त्रमुग्ध सा कर दिया था। सावरकर जी को जब यह वृत्त विदित हुआ तो उन्होंने उनकी पीठ ठोककर उनको प्रोत्साहित किया था।

यद्यपि उन दिनों सावरकर जी एक प्रकार से वन्दो का सा जीवन व्यतीत कर रहे थे किन्तु तब भी अछूतोद्धार का उनका कार्य जारी था। इस विषय में उनसे चर्चा करने के लिये देश भर के माननीय जन उनके पास आते जाते रहते थे। इस प्रकार की परिचर्चा में नथूराम तन्मयता से भाग लेते थे।

रत्नागिरी का पतित पावन मन्दिर समस्त भारत में ऐसा पहला ही मन्दिर था जिसमें चतुर्वर्ण हिन्दुओं का प्रवेश होता था। पूजा के लिये उस मन्दिर के द्वार सभी वर्ग एवं वर्ण के हिन्दुओं के लिये खुले रहते थे। कभी कभी वहां मह-भोज के कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते थे। नथूराम उनमें सोत्साह भाग लेते थे। किन्तु हमारे घर में इसको पसन्द नहीं किया जाता था। हिन्दुओं की रूढ़िवादिता के विषय में सावरकर जी के जो विचार थे उनको भी हमारे घर में पसन्द नहीं किया जाता था। नथूराम अब बालक तो थे नहीं कि उनको इन सब बातों में भाग न लेने के लिये रोका जा सके। अतः मौन विरोध होने पर भी वह अपने मन की बात किसी प्रकार मनवा ही लेते थे और इस प्रकार के समाज सुधार के कार्यों में अग्रणी रहते थे।

सावरकर जी के निमन्त्रण पर एक बार नेपाल के राजकुमार एवं वहां के प्रधामन्त्री रत्नागिरी आये थे। पतित पावन मन्दिर के प्रांगण में ही उनके और सावरकर जी के भाषण हुए थे। इस सारे आयोजन के प्रबन्ध का मुख्य भार नथूराम पर ही था।

नथूराम को इस बात का आभास था कि हम लोग परिवार पालन के लिये किसी प्रकार का कार्य नहीं करते। पिताजी की प्रबल इच्छा थी कि नथूराम को डाकखाने में भरती कराया जाय। किन्तु नथूराम ने निश्चय किया था कि वे नर-कारी नौकरी नहीं करेंगे। तथापि वे उस अवसर को प्रतीक्षा में थे जब कि वे अपने उद्योग का विकास कर सकें।

बड़ी बहिन मथुरा एक बार मायके में रहने के लिये रत्नागिरी आई थी। जब वह अपने पतिदेव के पास जाने लगी तो नथूराम उनको छोड़ने के लिये गये। हमारे वहनोई ईटारसी में सरकारी कर्मचारी थे। नथूराम कुछ दिन वहा रहे तो अपने वहनोई की सहायता से उन्होंने कुछ साहित्य एकत्रित कर बढईगीरी सीन्वी और इस कार्य में उन्होंने वहा रहते पर्याप्त प्रगति भी कर ली थी।

परन्तु उनका मन किसी एक कार्य में स्थिर नहीं रहता था। उन्हें इस बात का खेद रहता था कि देश के इस सकटमय काल में भी वे राजतोतिक कार्यों से अलस रहते हैं। इटारसी में हिन्दी का प्रचलन अधिक था इस कारण उन्होंने यहा रहते हिन्दी भली भाँति सीख ली थी। लोक जागरण के लिये उन्होंने वहा रहकर हिन्दी में कथा करना आरम्भ कर दिया। कभी-कभी वे वहा लगने वाले मेले में व्याख्यान भी देते थे।

इन सब गतिविधियों से वे वहा रहते पुलिस की दृष्टि में चुभने लगे। एकाध बार उनको धाने पर बुलाकर वहा रोका भी गया और प्रयत्न से उनको वहा से छुड़वाया गया था। किन्तु इस बात के लिये वहनोई एवं पिताजी को सावधान किया गया कि लडके पर नियन्त्रण रखा जाय। पिताजी को इसकी सूचना रत्नागिरी भेजी गई थी।

पिताजी को जब सारा विवरण विदित हुआ तो इस दृष्टि से कि कम से कम अपना लडका अपनी दृष्टि में रहेगा, नथूराम को इटारसी से रत्नागिरी बुला लिया गया। किन्तु रत्नागिरी आकर नथूराम सावरकर जी के सम्पर्क में आये और इटारसी में सीखा उद्योग यहाँ विलकुल भी नहीं चल पाया।

कुछ काल बाद पिताजी सरकारी सेवा से निवृत्त हुए। दत्ता, शाता, गोपाल और गोविन्द की शिक्षा तब तक पूर्ण नहीं हो पाई थी। परिवार को मांगरी भेज दिया गया। क्योंकि पूता की अपेक्षा सागली कम व्ययसाध्य था। एक वर्ष बाद शान्ता का विवाह हो गया। अन्य लडकों की शिक्षा जारी रही। नथूराम ने दर्जी का काम सीखा और “उद्यम मण्डल” नाम से दूकान की स्थापना कर दर्जी का कार्य आरम्भ किया।

उन दिनों हिन्दुओं के सुदृढ संगठन के रूप में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ प्रसिद्ध होता जा रहा था। डा० हेडगेवार इस संघ के प्रमुक्त थे। डाक्टर मुजे और बाबागव सावरकर का डाक्टर हेडगेवार को सक्रिय सहयोग प्राप्त था। रत्नागिरी में नूने हुए सावरकर को भी संघ कार्य की सूचना मिलती रहती थी। किन्तु सागली आने में पूर्व नथूराम को इस सन्ध्या के विषय में केवल परोक्ष ज्ञान ही था। कुछ दिनों डार पट कर और कुछ लोगों के मुँह ने सुन कर। तब तक उता गन में प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं आया था।

रक्षाधीनता प्राप्ति सुकार्य में मुस्लिम समाज की प्रवृत्ति कभी उदासीनता की नहीं थी तो कभी विरोध की। इस न्यूनता की पूर्ति के लिए हमारा हिन्दू समाज रागदित एव बलवान बने यह उस समय सच की दृष्टि समझी जाती थी। सावरकर जी ने इसी दृष्टिकोण को कालान्तर में सूत्रबद्ध किया था। “आयेग तो आपके साथ” आदि उनकी वह रचना थी।

नयूराम को सच की भूमिका उपयुक्त प्रतीत हुई। रत्नागिरी का पतित पावन मन्दिर तो ईंट पत्थर का एक ढाचामात्र था और वह भी रत्नागिरी तक ही सीमित। किन्तु सच तो सभी हिन्दूओं को आत्मसात करने, निस्सीम एव विद्यालवान् विहीन मन्दिर था। नमस्त भारत उसका कार्य क्षेत्र था। राष्ट्र को बलवान बनाने का सच का सकल्प था अतः स्वाभाविक ही स्वराज्य प्राप्ति का हेतु सच की प्रतिज्ञा में समाविष्ट था। सच की साखायें बनै बनै बढ़ रही थी।

सागली में भी सच की शाखा चालू हुई। श्री कागीनाथ पत लिमये उसके सच चालक थे। नयूराम तन्मयता से सच के कार्य में जुट गये। थोड़े दिनों में वे वहाँ के बौद्धिक कार्यवाह हो गये।

सावरकर जी उन दिनों “किलॉस्कर” मामिक में हिन्दू समाज की विमर्शितियों, भ्रष्टाचार भावनाओं और हानिकारक रूढ़ियों पर आलोचनात्मक लेख लिखते थे। सावरकर जी से प्रत्यक्ष परिचित होने के कारण उनकी तर्कपूर्ण रचनायें नयूराम अवगत पढ़ते थे। उन लेखों से भी वे प्रभावित थे।

यद्यपि नयूराम का मिलाई कार्य जारी था किन्तु इससे पर्याप्त धनार्जन न होने के कारण परिवार में अभाव रहता ही था। उन्होंने कुछ अन्य व्यवसाय भी करना चाहा। किन्तु अर्थभाव के कारण कोई और सफलता नहीं मिली।

पिताजी का स्थानान्तरण होकर जब वे रत्नागिरी आये थे तभी से नयूराम के विवाह की चर्चा चल पड़ी थी। किन्तु उनकी बहिनो भी विवाह योग्य हो गई थी अतः प्रथम उसका विवाह करना आवश्यक था, इस कारण नयूराम के विवाह के प्रश्न को कभी महत्व नहीं दिया गया। किन्तु जब कभी भी इस प्रकार का प्रश्न उपस्थित होता तो नयूराम स्पष्ट कह देते “मैं विवाह नहीं करूँगा।” हमारे माता-पिता समझते थे कि अभी छोटा हूँ ज्यो ज्यो आयु बढ़ेगी, वह स्वयं ही विवाह की इच्छा करने लगेगा।

सागली में रहते दूधे दत्ता ने इण्टर साइंस की परीक्षा दी। क्योंकि उसे परीक्षा में उच्च रैंक प्राप्त नहीं हुई थी अतः छात्रवृत्ति नहीं मिली। उससे आगे पढ़ने का विचार त्याग दिया। और कुछ प्रशिक्षण प्राप्त कर अपना छोटा सा उद्योग प्रारम्भ कर दिया। उसकी आयु भी विवाह योग्य हो गई थी। ज्ञान्ता का विवाह हो चुका था।

एक बार पिताजी अत्यन्त बीमार हो गये। उन्होंने आग्रह किया कि नयूराम विवाह कर ले। नयूराम के लिये यह कमीठी थी। एक ओर दण पिता का आग्रह दूसरी ओर अपना सन्त्य।

पिता जी के आग्रह के उत्तर में उनका कहना था कि विवाह के विषय में मैंने कभी विचार ही नहीं किया, यदि कभी किया भी तो यह यही कि मुझे विवाह नहीं करना है। आपसी यह धारणा है कि विवाह पर मैं मुगी जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ कि विवाह करने में मेरा जीवन मुगी नहीं होना। मेरा मन गृहस्थी के लिये नहीं करना। आगे आग्रह पर यदि मैं विवाह कर भी लूँ और बाद में फिर मुझे कष्ट और दुःख हुआ तो मैं अपना भी तो कष्ट और दुःख होगा। परिवार के सबने बड़े बड़े के नाते दूसरों की मुन्नी गृहस्थी देखने में ही मुझे मन्तोष होगा। अब आर दत्ता के लिये विवाह का प्रबन्ध कीजिये। यह अब विचारयोग्य हो गया है। मुझे विवाह का आग्रह एवं अनुरोध अब मत्त कीजिये।

नयूराम के उस उत्तर को सुन कर माता पिता विवश हो गये। और पिताजी ने उनके विवाह का विचार अपने मन से निवारा दिया। कुछ दिनों बाद उनका स्वास्थ्य भी ठीक हो गया और उसी वर्ष दत्ता का विवाह भी कर दिया गया।

१९३७ में जब जमनादास मन्त्रिमण्डल बना तो सावरकर जी पर से प्रतिबन्ध उठाया गया। उन्होंने रत्नागिरी में वम्बई के लिये प्रस्थान किया। वम्बई जाते हुए मार्ग में कोल्हापुर, मिरज, सागली आदि स्थानों पर सावरकर जी के व्याख्यान आयोजित किये गये।

इस यात्रा में नयूराम सावरकर जी के साथ स्थान स्थान पर घूमने लगे। उनके मन में यह कल्पना स्पष्ट हो गई कि ममस्त हिन्दू समाज को संघबद्ध एक माला में पिरोना अत्यावश्यक है। सध कार्य को राजनीतिक उत्थान की ओर मोटने की कल्पना भी उनके मन में आने लगी। दिनानुदिन उनकी दृष्टि व्यापक होती जा रही थी। उन्हें प्रतीत हुआ कि उनके कार्य के लिये सागली छोटा स्थान है।

नयूराम सागली छोड़ कर पूना चले गये। जीविकोपार्जन का घन्घा कपड़े सीने का ही था। किन्तु उनका अधिकांश समय सध और हिन्दू महासभा के कार्य में ही बीत जाता था।

सावरकर जी अपने ओज एवं तेज से भारत की राजनीति को एक नई दिशा प्रदान कर रहे थे। सध्रम की आधी में अभीतक भारतवासी अनुनय विनय द्वारा भारत की स्वाधीनता की मांग करते रहे। उनके मन में कभी यह कल्पना ही नहीं आई कि स्वाधीनता प्राप्ति के लिये स्वाभिमान का होना आवश्यक है।

राजनीतिक स्वाभिमान शब्द से अपरिचित थे। सावरकर जी का कथन था कि आत्महीनता की भावना को त्याग कर देशवासियों को अपना स्वाभिमान जागृत करना होगा।

उन्ही दिनों पूना की एक सभा में स्व० आचार्य अत्रे ने सावरकरजी को 'स्वातन्त्र्यवीर' की उपाधि से विभूषित किया। तबसे सावरकर के नाम के साथ 'स्वातन्त्र्यवीर' जुड़ गया। सावरकर जी में अथाह आत्मविश्वास था। वे कहा करते थे कि १९३८ में जो लोग यह कहते हैं कि उन्हें १९०८ की सावरकर की बातें तथ्यपूर्ण प्रतीत होती हैं उन्हें १९३८ के सावरकर को समझने के लिये १९६८ तक प्रतीक्षा करनी होगी। सावरकर जी में इतना अथाह आत्मविश्वास था इसी कारण आसेतु हिमाचल असह्य युद्ध उनकी विचारप्रणाली से प्रभावित हुए थे। नयूराम तो बहुत प्रारम्भ में ही उनसे प्रभावित हो चुके थे।

हैदरावाद में हिन्दुओं पर जो अत्याचार हो रहे थे उनके प्रति जो अन्याय हो रहा था उसके प्रतिकार के लिये हिन्दू महासभा ने सन् १९३८ में एक आन्दोलन करने का निश्चय किया। उस आन्दोलन को 'नि शस्त्र प्रतिकार' सजा दी गई थी। सत्याग्रह और नि शस्त्र प्रतिकार में यद्यपि लोगों को समानता प्रतीत होती थी किन्तु इसमें आधारभूत अन्तर था। सत्याग्रह में तो शस्त्रधारण करना ही पाप समझा जाता है जब कि नि शस्त्र प्रतिकार में यदि आवश्यकता पड़े अर्थात् इस प्रक्रिया से कार्य सिद्धि न हो तो फिर शस्त्र भी धारण किया जा सकता था। यदि बिना शस्त्र के ही कार्य सम्पन्न हो जाय तो शस्त्र धारण करने की क्या आवश्यकता? केवल यही भावना इस नि शस्त्र प्रतिकार आन्दोलन की थी। शस्त्र धारण न करने की कोई शपथ नहीं ली गई थी।

इस आन्दोलन में नयूराम ने पहले जल्ये का नेतृत्व किया। उनको तथा उनके सभी साथियों को एक वर्ष का कारावास का दण्ड मिला था जिसे उन्होंने हैदरावाद के कारागार में बिताया। आन्दोलन के परिणामस्वरूप हैदरावाद के निजाम और हिन्दू महासभा के नेताओं के मध्य एक समझौता हुआ। इस प्रकार यह आन्दोलन समाप्त हुआ।

अपने हाथ में किसी प्रकार का प्रचार यन्त्र न होने से हिन्दू सगठन के कार्य में पर्याप्त अड़चन आती थी। इस कमी को ध्यान में रखते हुए नयूराम ने अपने साथियों से परामर्श किया और विचार विनिमय के उपरान्त निश्चय किया गया कि हिन्दू महासभा के ध्येय के प्रचार-प्रसार के लिये एक दैनिक पत्र का होना नितान्त आवश्यक है। फरवरी १९४८ के मार्च मास में 'अग्रणी' नामक समाचार पत्र, जो पहले कभी प्रकाशित होता था, उसको पुनर्जागृत किया गया। उस समय द्वितीय विष्वयुद्ध चल ही रहा था इस कारण कोई नया समाचार-पत्र

प्रारम्भ करने की अनुमति सरकार नहीं देती थी। कालान्तर में अनेक वर्ष बाद उसी "अग्रणी" को 'हिन्दुराष्ट्र' के रूप में नामांतरित किया गया।

'अग्रणी' को अनेक वाधाओं का सामना करना पड़ता था। उससे एक के बाद एक अनेक बार सरकार की ओर से प्रतिभूति (सिक्केरिट्टी) मांगी जाती थी। नथूराम इसके सम्पादक थे और नाना आन्दे संचालक। ३१ जनवरी १९४८ को इसका अन्तिम अंक प्रकाशित हुआ था। उसके बाद यह समाचार पत्र बन्द हो गया।

१९४८ से पूर्व नथूराम के जीवन का ७-८ वर्ष का काल, लेख, दौरे, व्याख्यान, समाचार पत्र चलाने आदि जैसे कार्यों में ही बीता था। सीमित शब्दों में कहा जाय तो इतना ही पर्याप्त होगा कि हिन्दू सगठन के कार्य के लिये ही उनका तन-मन-धन समर्पित था।

नथूराम शान्त प्रकृति के उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे अपने ओजस्वी भाषणों में भी उन्होंने कभी समय नहीं खोया। राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने अनेक लोगों की कार्यविधि एवं ध्येय की आलोचना की हो किन्तु उन्होंने कभी किसी की व्यक्तिगत आलोचना नहीं की। हिन्दुत्व विरोधी राजनैतिक दलों के अनेक लोगों से उनकी मित्रता थी। एक बार पूना में एक छविगृह के उद्घाटन के अवसर पर संचालकों ने काका गाडगिल (नरहरि विष्णु गाडगिल) और नथूराम दोनों को ही एक साथ आमन्त्रित किया था। दोनों को परस्पर प्रेमालाप करते हुए देख लोगो को बड़ा विचित्र सा प्रतीत हो रहा था। इन्हें विस्मय होता था कि दो अत्यन्त विरोधी विचारों के व्यक्ति भी इस प्रकार प्रेमपूर्वक वात्सल्य कर सकते हैं।

एक बार नथूराम एक मेले में गये। स्वभावानुसार उन्होंने वही पर अपना व्याख्यान आरम्भ कर दिया। तब वही कुछ समयस्क लोगो ने बीच में ही उनको रोकते हुए कहा, "पण्डित! आज का दिन तुम्हारा नहीं है। तुम्हारे व्याख्यान सुनने के 'लिये हम शनिवार वाडे के सामने एकत्रित होंगे।" जिस सद्भावना और मनोरजनमय वातावरण में ये शब्द कहे थे सभी सुननेवाले इससे हस पड़े और नथूराम को भी इससे कोई अपमान की अनुभूति नहीं हुई। उन्होंने भी उसे मनोरजन ही समझा था। इस अवसर पर कोई अन्य व्यक्ति होता तो वह प्रतिकार करता। किन्तु नथूराम ने उसे स्वीकार किया था। तभी किसी ने गीत गाना आरम्भ कर दिया। नथूराम उसको सकेत से चुप करते हुए उस घर के भीतर चले गये और वहाँ से हारमोनियम निकाल लाये। किसी को कल्पना नहीं थी कि नथूराम वाजा भी बजा लेंगे। अतः उन्होंने गायक से कहा कि तुम उसकी ओर ध्यान नहीं दो और अपना गाना गाते जाओ।

किन्तु जब लोगो ने देखा कि नथूराम ने थोड़ी देर में स्वर साध लिये हैं और वे लय के साथ बाजा बजा रहे हैं तो उन्हें आश्चर्य मिश्रित आनन्द हुआ। क्योंकि नथूराम को सबके सामने बाजा बजाने का अवसर नहीं आया था अतः साथियो की धारणा भी उसी आधार पर बनी थी। इतना ही नहीं किन्तु बाद में स्वयं नथूराम ने भी दो तीन गीत सुनाये। उन्होंने अपना प्रिय गीत “दे हाता या गराणगता” भी हारमोनियम पर बजाकर सुनाया। नथूराम को आस्त्रीय संगीत का ज्ञान था। वे बासुरी भी अच्छी बजाते थे।

काफी नथूराम का प्रिय पेय था। जब से उन्होंने होश सम्भाला होगा सम्भवतया चाय उन्होंने कभी नहीं पी किन्तु काफी बहुत पीते थे। तथापि उसको उनका व्यसन नहीं कहा जा सकता। क्योंकि काफी के बिना कभी उनका काम रुक गया हो ऐसी बात नहीं हुई। काफी नमिलने पर बिना काफी के भी वे काम कर सकते थे।

जिन दिनों वे कालकोठरी में थे, एक बार मैं और करकरे उनके पास गये। अनायास ही वन्दीगृह के अधीक्षक भी वहाँ आ गये। नथूराम ने करकरे को काफी भेजने के लिये कहा। अधीक्षक ने पूछा, क्यों? ग़ाम की काफी को कितनी देर हुई है? “अधीक्षक का अभिप्राय यह नहीं था कि एक बार काफी पी लेने के बाद दुबारा नहीं मिलेगी किन्तु वे तो देखना चाहते थे कि कहीं काफी लाने में विलम्ब तो नहीं हुआ है।

नथूराम ने कहा, “मैं ग़ाम की काफी पी चुका हूँ। दुबारा पीने की इच्छा हो रही है। इसलिए मगाई है। आप भी थोड़ी पी लीजियेगा। फिर वे हसकर कहने लगे, “फासी तो आप लोग देंगे ही उसकी क्या चिंता करना। पर उससे पहले एक बार एक कप काफी तो दिलवा दीजिये। ( I do not mind the gallows but I must have a cup of coffee before the execution )

यही है सच्चेप में नथूराम का पूर्व चरित्र। अनेकानेक व्रान्तिकारियों का चरित्र पढ़ने एवं सुनने से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उनका अपना एक पृथक् अध्यात्मवाद होता है। उसी के आश्रय से वे मृत्यु में जूझते हैं, विचलित नहीं होते।

श्री रामदास गांधी के पत्र के उत्तर में नथूराम ने अपने पूर्वचरित्र के बारे में कुछ लिखा था। जैसा कि प्रारम्भ में मैंने श्री रामदास गांधी और नथूराम के उत्तर का संकेत किया है उन पत्रों के अनुवाद के साथ इस अध्याय को समाप्त कर रहा हूँ।



## श्रीरामदास-गांधी का पत्र

खलासी लाइस, नागपुर

दि० १३ जून १९४९

प्रिय श्री नथूराम गोडसे,

आपका दि० ३ जून १९४९ का पत्र प्राप्त हुआ।

आप सदैव विचार ग्रहण के लिए उद्यत हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

आपने जो मार्ग ग्रहण किया हुआ है, जिसके माध्यम से आप मातृभूमि की एकता की स्थिरता तथा चिरतन हिन्दू धर्म की रक्षा करते हुए किसी भी प्रकार के प्रचलित भेदभाव से स्वयं को अलिप्त रखने तथा भविष्य की सम्भावनाओं के विषय में मुझसे अथवा मेरे पिताजी के सहयोगियों से मुक्त हृदय से विचार विनिमय करने की आपकी आकांक्षा उत्साहवर्द्धक है।

तदनुसार भारतीय प्रशासन की ओर से तथा मेरे एवं मेरे साथ जो भी आवेगे उनकी ओर से, आपसे बातचीत करने के विषय पर किसी भी प्रकार का आश्वासन न देते हुए मैंने आज पण्डित जवाहरलाल नेहरू से श्री विनोबा भावे, श्री किशोरीलाल मश्रूवाला और मेरे स्वयं आपके साथ उपरिनिर्दिष्ट विषय पर चर्चा करने की अनुमति देने के लिए प्रार्थना की है। क्योंकि यह आपकी हार्दिक इच्छा थी अतः, मैंने ऐसा करना उपयुक्त समझा है।

यह चर्चा यदि वैधानिक समझौता गई तो ऐसा २५ जून १९४९ के बाद ही सम्भव हो सकेगा। क्योंकि नागपुर से दिल्ली तक आगे जहाँ आपको रखा गया है वहाँ तक पहुँचना हमारे लिए २५ जून से पूर्व सम्भव नहीं होगा। इस बात को आप ध्यान में रखियेगा।

मैं समझता हूँ कि “हम लोगो को सत्य ही बोलना चाहिये।” इस प्रकार की आपकी ओर से जो शर्त है वह वाछनीय नहीं। क्योंकि वह न तो मेरे सम्बन्ध में आवश्यक थी और न ही मेरे पिताजी के निकट सहयोगियों के ही सम्बन्ध में आवश्यक थी।

मेरी आपको सम्मति है कि इस बीच का पूर्ण समय आप आत्मसंशोधन में व्यतीत कीजिए। और वह भी परमेश्वर पर पूर्ण श्रद्धा के साथ। “वही” आप पर कृपापूर्ण सुदृष्टि रखेगा ऐसी प्रार्थना कीजिये। क्योंकि वैसी कृपा ही आपको आपका अपराध स्वीकार कराने में सहायक होगी ऐसी मेरी धारणा है। अनादर और आक्रमण से अपनी मातृभूमि और विशेषतया हिन्दूधर्म की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है इस बात को अन्त में गांधीजी भली भाँति जान गये थे, इस सत्य का मातान्तर भी आपको होगा। यदि आपने ऐसा किया तो मैं समझता हूँ कि

आपकी और हमारी जो प्रस्तावित भेंट है उसके अन्त में सौंदर्य और अर्थ से परिपूर्ण भगवद्गीता के १८ वें अध्याय के निम्न श्लोक को आप हमारे साथ प्रसन्नता से उच्चारण कर सकेंगे ऐसा मेरा विश्वास है —

नष्टो मोहः स्मृतिलब्ध्वा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।

स्थितोऽस्मि गतः सन्देहः करिष्ये वचनं तव ।

सद्भावनाओं सहित

आर० एम० गांधी

\* \* \*

नथूराम का उत्तर

मध्यवर्ती वन्दीगृह, अम्बाला

२४-६-१९४९

प्रिय श्री रामदास गांधी,

इसी मास के दिनांक तेरह का आपका पत्र मुझे २३ जून को प्राप्त हुआ और मैं आपके आग्रह से अवगत हुआ ।

आपने मेरी विनती को स्वीकार कर लिया है यह जान कर मुझे आनन्द हुआ । आपको जब भी सुविधा हो आजाइयेगा । मेरी फासी से एक दिन पूर्व भी आप मुझसे मिल सकते हैं । उस भेंट के लिये मैं अत्यधिक उत्तावला नहीं हूँ । मुझसे मिलने का आपका विचार है, यह जान कर ही मुझे पर्याप्त सन्तोष हुआ है । यदि किसी अड़चन के कारण आप मुझे न भी मिल सकें तो भी मुझे किसी प्रकार का खेद नहीं होगा । क्योंकि मुझसे मिलने की उत्कण्ठा आपने व्यक्त की है इससे ही आपकी आस्था का आभास प्राप्त हो रहा है, मेरे लिये यही पर्याप्त है ।

मेरी आपसे केवल यही विनती है कि मुझे मिलने की चेष्टा कीजियेगा ।

“जो सत्य है वही बोला जाय ।” यह अर्थ मुझे नहीं लिखनी चाहिये थी आपके इस प्रकार के विचार से मैं सहमत हूँ । विश्वास कीजिये वैसा लिखते समय आपके हृदय को ठेस पहुँचाने की मेरी मनोभावना किंचित् भी नहीं थी । परन्तु ऐसा लिखने के लिये मेरे पास दो कारण थे । इस युग में ‘सत्य’ के अनेको तथ्याकथित पुजारी मुझे मिले हैं । किन्तु उनके प्रत्यक्ष व्यवहार में मैंने इस प्रकार की कोई बात नहीं पाई । अपत्यपूर्वक विकृत सत्य बोलते हुए अनेक लोगो को मैंने न्यायालय के कठवरों में खड़े देखा है । और दूसरा कारण था कि हमारे वार्तालाप के समय मुझे कड़वा सत्य बोलना पड़ेगा, वह चाहे जो हो, कम से कम मेरी धारणा के आधार पर वह कटुसत्य ही होगा ।

कुछ भी हो, नीडरता से बोलने का भय मुझे नहीं रहना चाहिये, "आपके पत्र से मुझे ऐसा आश्वासन प्राप्त हुआ है। मैं प्रसन्न हूँ।

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा" भगवद्गीता का यह श्लोक आपने मुझे स्मरण कराया इसके लिये आपको धन्यवाद। मुझसे यदि आप नूछें तो गीता का न केवल यही श्लोक अपितु सम्पूर्ण गीता ही अर्थ और सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

"करिष्ये वचनम् तव" अर्जुन के ऐसा कहने के बाद श्रीकृष्ण ने उनको यह भी कहा था—“मामनुसर युद्ध च।” और अर्जुन ने इसे प्रत्यग्र कृति से सम्पन्न किया था।

श्री विनोबा भावे जन्म से ही महाराष्ट्रीयन हैं उनके माध्यम ने अथवा किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से मेरे साधारण चरित्र के बारे में अथवा व्यवहार के बारे में जितनी अधिक जानकारी आप प्राप्त कर सकें यदि करें तो उत्तम होगा। जिस व्यक्ति ने ऐसा क्रूर एवं अवैध कर्म किया है उसका पूर्व चरित्र समझ लेना कदाचित् आपके लिये उपयुक्त होगा।

सम्प्रति अधिक कुछ नहीं।

सद्भावनाओं सहित आपका

नधराम वि० गोडसे

२४-६-१९४९

## उत्सर्ग

दिल्ली के लाल किले में दि० १०-२-१९४९ के दिन गांधी वध के सम्बन्ध में गठित विशेष न्यायालय के न्यायाधीश स्वर्गीय आत्माचरण ने अभियोग का निर्णय घोषित किया। उन्होंने निर्णय में नथूराम गोडसे और नाना आपटे को तो मृत्यु दण्ड की घोषणा की थी और विष्णु करकरे, मदनलाल पाह्ला, गोपाल गोडसे, शंकर किन्तिया और डाक्टर परचुरे को आजीवन कारावास का दण्ड दिया। इसके अनिर्दिष्ट भी अन्य अनेक दण्डों का विधान था किन्तु वे उस मृत्यु दण्ड के अन्तर्गत ही आ जाते थे। दिगम्बर बड़गे को क्षमा प्रदान कर दी गई थी और सावरकर जी को निष्कलक मुक्त कर दिया गया था।

देवगौरेव सुभाषचन्द्र बोस के आजाद हिन्द फौज के अभियुक्तों के लिये लाल किले के एक भाग को बन्दीगृह में परिवर्तित किया गया था। उसी भाग को कुछ ठीक ठाक करके गांधी वध, के अभियुक्तों के लिये प्रयुक्त किया गया था।

किले के तट की मोटी दीवार के भीतर जो कक्ष (कमरे) निवाले जाते हैं उन कक्षों की पंक्ति को ही सामयिक बन्दीगृह के रूप में परिवर्तित किया गया था। सात कमरे अभियुक्तों के लिये नियत थे। कमरों के सामने बगामुद्रा था। बरामदे को काँटेदार तारों से बन्द किया गया था। दो कमरों के बीच बरामदे को दीवार देकर बन्द करके उनको शेष भाग से पृथक् कर दिया गया था।

बड़गे सरकारी गवाह बन गया था और शंकर किन्तिया ने ओझा की जा रही थी कि वह बड़गे की गवाही की पुष्टि करेगा। मन्त्रि ने उन दोनों को उन पृथक् स्थानों पर कमरों में रखा गया था। दोष पाँच कमरों में से एक एक

में मदनलाल, एक में नथूराम गोडसे और गोपाल गोडसे, एक में डाक्टर परचुरे, एक में नाना आपटे और विष्णु करकरे और एक में वीर सावरकर को रखा गया था।

निर्णय होते ही दण्डितों को इसी बन्दीगृह में लाया गया था। नथूराम और नाना आपटे को मृत्यु दण्ड घोषित हुआ था इसलिये उन्हें उस अलग भाग में रखा गया था। शेष पांच दण्डितों को दूसरे भाग में एक एक कमरे में अलग-अलग रखा गया था।

नित्य ही कमरा बदल दिया जाता था। इस प्रक्रिया को 'उड़दो' कहते हैं। एक ही कमरे में रखने से कैदी दीवार में छेद करके, छड़ काटकर या किसी अन्य प्रकार से भाग जाने का प्रयत्न कर सकता है ऐसी सम्भावना सदैव बनी रहती है, इसलिये पूर्व सावधानी के तौर पर ऐसा किया जाता है।

दीर्घकालावधि के बन्दी को तीन सेर वाली डडा बेडी पहनाने का नियम था। शाम को हम पाँच दण्डितों के पैरों में डडा बेडी पहनाई गई।

आजन्म कारावास निष्कासन की सजा होती है। सीमा पार करने तक बन्दी को बन्दीगृह में रखना अनिवार्य होता है। और जबतक वह बन्दीगृह में होता है उसे सश्रम कारावास भुगतना पड़ता है। इस नियम के अनुसार दूसरे दिन हमें लिकाफे बनाने के लिये दिये गये। यह कार्य प्रातः से सायंकाल तक चलता था, भोजन के समय अवकाश मिलता था।

अभियोग के निर्णय तक हम सभी को 'ब' श्रेणी दी गई थी। किन्तु निर्णय-पत्र में बन्दीयों के लिये किसी श्रेणी का निर्देश नहीं दिया था। अतः दण्ड प्रारम्भ होते ही हमें 'क' श्रेणी में रखा गया।

श्रेणी निर्धारण के लिये हमने आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। ३-४ दिन बाद मदनलाल ने अनशन प्रारम्भ कर दिया। अनशन ६ दिन तक चला फिर उसने वह छोड़ दिया। ३७ दिन बाद हम मात बन्दीयों में ६ को 'ब' श्रेणी मिल गई। वे ६ थे, नथूराम गोडसे, नाना आपटे, मदनलाल, करकरे, गोपाल गोडसे और डाक्टर परचुरे। शकर किस्तैया को व श्रेणी नहीं दी गई थी।

मृत्युदण्ड घोषित बन्दीयों को भी तत्कालीन गृहमन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल की उदारता से 'ब' श्रेणी प्राप्त हुई थी।

दण्ड के विरोध में पुनर्वासि माँगने के लिये पन्द्रह दिन का अवसर दिया गया था। दिल्ली में पत्राव सत्र के लिये उच्च न्यायालय निर्धारित था। उस समय पत्राव उच्च न्यायालय की पीठ शिमला में विद्यमान थी।

निश्चित अवधि के बाद दण्डितों ने अपने आवेदन-पत्र (अपील) दाखिल

किये । नथूराम को दण्डसहिता की धारा ३०२ के अतर्गत जो दण्ड हुआ था उसके विरोध में उन्होंने पुनर्न्याय की माँग नहीं की । उन पर जो अन्य आरोप लगाये गये थे उसके प्रतिकार में उन्होंने याचिका प्रस्तुत की थी ।

अपनी याचिका पर स्वयं बहस करने की अनुमति के लिये भी उन्होंने प्रार्थना की । उसको स्वीकार कर लिया गया था ।

किसी विशेष कारागार में मृत्युदण्ड का प्रवन्व करने की अपेक्षा जहाँ इसकी व्यवस्था हो और जहाँ से नथूराम को शिमला लाने ले जाने में सुविधा हो ऐसे कारागार में हम लोगों को भेजना निश्चित किया गया । तदनुसार दि० १-४-१९४९ को मोटर द्वारा पानीपत होते हुए हमें अम्बाला केन्द्रीय कारागार में प्रविष्ट कराया गया ।

हम सभी बन्दी एक ही मोटर में थे । मृत्युदण्ड प्राप्त बन्दी भी हमारे साथ थे और बहुत दिनों बाद हम लोग दिल खोल कर मिले थे । अतः सभी के मन प्रफुल्लित थे । वार्तालाप में हँसी-विनोद की बहार आ गई थी ।

हमें किस मार्ग से ले जाया जा रहा है इसका हमें ज्ञान नहीं था । जिस प्रदेश से हमको ले जाया जा रहा था वह भी हमें अपरिचित सा प्रतीत हो रहा था । हमारे साथ जाने वाले आरक्षी-दल के व्यक्ति एवं उनके अधीक्षक सभी अच्छे व्यक्ति थे । हमारे वार्तालाप में भी वे लोग कभी कभी भाग ले लेते थे । हमारा बाह्यन किस मार्ग से जा रहा था यह वे समय समय पर हमें बताते जाते थे ।

जब अधिकारी महोदय ने कहा कि अब पानीपत आने वाला है, यह सुनकर हमारे मनो में विचार आया कि क्षण भर के लिये उस भूमि पर उतर पड़े । प्रश्न केवल भावनाओं का ही होता है । महाराष्ट्र का पानीपत से बहुत निकट का नाता है । लगभग दो सौ वर्षों बाद भी हमारे मन में से वह भावना मिटी नहीं थी ।

जब हमने अधिकारियों से कहा कि हम यहाँ पर थोड़ी देर टहलना चाहते हैं, आपकी कृपा होगी यदि बाह्यन रुकवा दें तो उन्होंने बाह्यन रुकवा दिया । हम सब नीचे उतर गये । मार्ग के किनारे पर छायादार वृक्ष थे, उसी छाया में हमने कुछ क्षण विश्राम किया । फिर गाड़ी में बैठे और वहाँ से चल कर फिर गाड़ी ने अम्बाला कारागार में जाकर ही विश्राम लिया ।

उस कारागार में चार काल कोठरियाँ थी । नथूराम और नाना आपटे को तो वहाँ ले जाया गया । हम पाँचों के लिये कारागार के प्रवेश द्वार के निकट का एक भाग खाली किया गया था । उसमें दो बड़े कमरे थे, एक रसोईघर था । शौचालय अलग था, सामने आगन था जिसके चारों ओर ऊँची दीवार थी । ,

वहाँ हमें वेंत की कुर्सियाँ चुनने तथा चिकने परदे बनाने का कार्य दिया गया।

फासी की कोठी के समीप जा कर नयूराम तथा नाना से बार बार मिलने की हमें छूट थी। उनका भोजन भी हमारी रसोई में ही बनता था। दिल्ली के लाल किले के बन्दोगृह की अपेक्षा यह स्थान खुला था और बड़ा भी। इस कारण यहाँ धूमना, फिरना और खेल-कूद हो सकता था।

इससे भी अधिक सन्तोष अथवा आनन्द की बात थी अम्बाला कारागार के अधिकारियों का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार।

मेरी दृष्टि में इस सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के दो कारण थे। एक तो यह कि कुछ दिन तक हम सभी को अधिकारियों ने भली भाँति परखा था। यद्यपि विधानानुसार हमको 'क्रूरकर्म' सजा दी गई थी तथापि अधिकारियों ने हमको किसी प्रकार का भी क्रूरकर्म अथवा व्यवहार करते नहीं पाया। दूसरा कारण था देश विभाजन। पाकिस्तान बन जाने पर वहाँ पर जो मार काट हुई थी उनमें उन अधिकारियों के परिवार भी वही विनष्ट हो गये थे। अचल सम्पत्ति तो सबकी नष्ट हुई ही थी। किसी के पुरखा मारे गये, किसी की मा-बहिनो का अपहरण हुआ था तो कोई स्वयं ही घायल अवस्था में भारत पहुँचा था।

गांधी जी का वध क्यों हुआ? सरकारी नौकरी में होने के कारण वे इस विषय में कुछ बोल नहीं सकते थे, तथापि उसके कारणों को वे भली भाँति जानते थे। अपने अधिकारों में जो कुछ भी अधिकाधिक सहूलियत वे हमें दे सकते थे वह सब उन्होंने हमें दिया। इसके अतिरिक्त मनुष्य स्वभावानुसार परस्पर व्यवहार से जो प्रेम प्रतिफलित होता है वह भी उनकी ओर से हमें प्राप्त हुआ।

हमारा आवेदन सुनने के लिये उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीश श्री भण्डारी, श्री अच्युतराम और श्री खोसला को एक खण्डपीठ का गठन किया गया था। आवेदन सुनने का दिन भी निश्चित किया गया और जो भी अभियोग थे उनको टंकित करा कर उनकी एक एक प्रति हम लोगों को दी गई थी। हमने वह प्रति अपने वकील को दी थी। नयूराम को स्वयं अपनी याचिका प्रस्तुत करने की अनुमति मिल गई थी इसलिए उन्होंने स्वयं ही उन कागजपत्रों का अध्ययन आरम्भ कर दिया।

चूँकि नयूराम स्वयं ही अपना पक्ष प्रस्तुत करने वाले थे इसलिए उनको सिमला ले जाया गया था। उनका वहाँ निवास और उच्च न्यायालय के दक्षिण पृथक अद्वाराओं के विषय है। सजेन में यदि उनके वहाँ के निवास के बारे में कहा जाय तो यही कि वे स्वयं अपना पक्ष प्रस्तुत करने वाले हैं यह सबक लिने का गुरुहृ

का विषय बन गया था। और उस पर भी मृत्युदण्ड के विरोध में उन्होंने कोई आवेदन नहीं किया था, न ही उनको इस विषय में किसी प्रकार की शिकायत थी। तदपि मृत्युदण्डरूपी तलवार के सिर पर लटकते होने पर भी न्यायालय जैसे स्थान पर सम्बन्धित विषय का सुसंगत विवेचन वह व्यक्ति स्थिरचित्त होकर किस प्रकार कर पावेगा यह जिज्ञासा सभी के मन में रहती थी।

न्यायालय में जाने के लिये अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी, उसके अभाव में किसी को प्रविष्ट होने नहीं दिया जाता था। अतः स्थानीय लोग जो इसमें रुचि रखते थे वे प्रवेश-पत्र प्राप्त करते थे और तब न्यायालय में अभियोग सुनने के लिये जाया करते थे। जिस दिन से नथूराम का वक्तव्य प्रारम्भ हुआ उस दिन से ही न्यायालय खचाखच भरा रहने लगा।

आरक्षी अधिकारियों और न्यायालय के अधिकारियों की सुकृपा से अनेक लोग नथूराम को उनके बन्दीगृह में मिलने भी जाया करते थे। ऐसे अवसरों पर कभी-कभी आगन्तुकों को उनके साथ थोड़ी बहुत गम्भीर चर्चा का अवसर भी सुलभ हो जाता था।

शिमला न्यायालय का प्रेक्षक समुदाय उच्चवर्ग से सम्बन्धित ही होता था। क्योंकि शिमला में प्रायः उच्चवर्ग के व्यक्ति ही निवास करते हैं। मौलाना आजाद ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' के पृष्ठ २२५ पर लिखा है "सम्प्रान्त परिवारों की कतिपय महिलाओं ने अपने हाथ से बुनकर के नथूराम को ऊनी स्वेटर भेजे थे।" इस उद्धरण को उद्धृत करने का हमारा उद्देश्य केवल यह समझाना है कि उच्च कहे जाने वाले परिवारों में श्री नथूराम को वीर पुरुष माना जाता था।

मौलाना ने गलत लिखा हो ऐसी भी बात नहीं है। उनका उल्लेख ठीक ही है। सहानुभूति रखने वाले जेल अधिकारियों के माध्यम से नथूराम को यह सन्देश मिलता था कि हम सभी मिलकर यह स्वेटर आपको भेंट कर रहे हैं कृपया आगामी पेशी के अवसर पर इसी स्वेटर को पहन कर न्यायालय में आइये। नथूराम को भी इस प्रकार का निवेदन स्वीकार कर लेने में कुछ आपत्ति अथवा अड़चन नहीं थी। क्योंकि इससे मुकदमे पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता था। शिमला में सर्दी थी ही और स्वेटर भी नथूराम पहनते ही थे। फिर इस अथवा उस स्वेटर में उनको कोई अन्तर नहीं था। अतः भेंटकर्ताओं की प्रमत्तता के लिये वह उनका आग्रह मान लेते थे।

नथूराम के वक्तव्य से लोग कितने प्रभावित हुए थे इसका उल्लेख तत्कालीन न्यायाधीश श्री खोसला ने अपनी पुस्तक में किया है। उनका कहना है "प्रेक्षक वर्ग के लिये नथूराम का वक्तव्य ही एकमात्र आकर्षण का विषय था।



प्रेसकों से भरे हुए न्यायालय में कितना भावावेश था इसका आभास कभी जनसमुदाय के उच्छ्वास अथवा सिसकियों से मिलता रहता था। उनके अश्रु-पूरित नेत्र अथवा झरते हुए अश्रु भी दिखाई देते थे। यदि न्यायालय में समुपस्थित उन सभी प्रेसकों से कहा जाता कि वे इस अभियोग में न्यायदान का कार्य करें तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि “नथूराम निर्दोष है” यह निर्णय प्रचण्ड बहुमत से दिया जाता।”

“The high light of the appeal before us was the discourse delivered by Nathuram Godse in his defence. He spoke for several hours discussing, in the first instance, the facts of the case and then the motive which had prompted him to take Mahatma Gandhi's life ”

( The murder of the Mahatma, P. 338 )

“The audience was visibly and audibly moved. There was a deep silence when he ceased speaking. Many women were in tears and men were coughing and searching for their handkerchiefs. The silence was accentuated and made deeper by the sound of an occasional subdued snift or a muffled cough . . .

“I have however no doubt that had the audience of that day been constituted into a jury and entrusted with the task of deciding Godse's appeal, they would have brought in a verdict of 'not guilty' by an overwhelming majority ”

( The Murder of the Mahatma, P. 234 )

नथूराम की न्यायालय को वास्तव में यह याचना तो थी भी नहीं कि उनको निर्दोष घोषित कर उन्हें मृत्युदण्ड से मुक्त किया जाय। उच्चन्यायालय के निर्णय-पत्र में ही न्यायमूर्ति ने लिखा था—“नथूराम ने सिद्ध हुए आरोप और भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३०२ के अन्तर्गत सुनाई गई फाँसी की सजा के विरोध में पुनर्न्याय की माँग नहीं की थी। उन्होंने अपना अभियोग वकील के द्वारा नहीं अपितु स्वयं ही चलाया और उस समय भी वे अपने आवेदन की सीमा के भीतर ही रहे।”

“of all the appellants Nathuram V Godse has not challenged his conviction under sec 302 of the Indian Penal code

...., nor has he appealed from the sentence of death passed on him in respect of the offence. He has confined his appeal and also his arguments at the Bar only to the other charges which have been found proved against him" ( High Court Judgment )

अन्त तक उनके मन में यही भावना थी कि मैंने मानव-हत्या की है अतः उसके दण्डस्वरूप में मृत्युदण्ड महर्षि स्वीकार करता हूँ। यदि मुझे मृत्युदण्ड नहीं दिया गया तो वह न्याय के साथ ही अन्याय हो जायगा। मेरी भावनाओं के हत्या की चरमसीमा पर पहुँचने में जो पृष्ठभूमि कारण बनी वह यदि सही मित्र हो तो उस पर विचार होना चाहिये। क्योंकि उसका ऐतिहासिक महत्त्व है, यही आशय उन्होंने अपने वक्तव्य के समापन अंश में स्पष्ट किया था।

अभियुक्त द्वारा की गई हत्या उपयुक्त है अथवा नहीं इसका निर्णय करने के लिये उसकी पार्श्वभूमि को देखने की न्यायालय को कुछ सीमित एवं विशिष्ट मर्यादाएँ होती हैं। किन्तु नथूराम द्वारा की गई हत्या की पार्श्वभूमि तो अत्यन्त विशाल थी, दशाब्दियों का इतिहास था, न्यायालय की विचार-परिधि में उसका आना सम्भव नहीं था। नथूराम यह जानते थे। अन्यथा प्रेक्षकवर्ग क्यों न्यायालय ही उनको निर्दोष घोषित कर देता, यदि उस पार्श्वभूमि को परखने की उसकी सीमा होती तो। न्यायमूर्ति श्री खोसला के अभिमत का निष्कर्ष केवल इतना ही था कि यदि उस विशाल पार्श्वभूमि को "सत्यासत्य की कसीटी" मान लिया जाता और प्रेक्षक-वर्ग को न्यायासन पर आसीन मान लिया जाता तो निश्चय ही वह नथूराम के कृत्य का समर्थन कर उसे निर्दोष घोषित कर देता।

अस्तु, उपरिउल्लिखित नथूराम के शिमला निवास तथा उनके द्वारा दिया गया वहाँ का वक्तव्य, इनका उल्लेख आगे के किन्हीं अध्यायों में किया जायेगा।

उच्च न्यायालय ने दि० २२-६-४९ को अपना निर्णय घोषित किया। तदनुसार शकर किस्तीया और डॉ० परचुरे को निर्मुक्त कर दिया गया। अन्य पाँचों अभियुक्तों का दण्ड पूर्ववत् ही रहा। गोपाल गोडसे के सम्बन्ध में न्यायालय ने अपने निर्णय में शासन से अनुरोध किया कि अपने अधिकारक्षेत्र में वह उस पर दयाद्रव्यता का भाव प्रदर्शित करे।

नथूराम शिमला से अम्बाला लौट आये थे। वहाँ हमारी भेंट होती रहती थी। १५-११-४९ का दिन फाँसी का निश्चित किया गया था। मृत्युदण्ड प्राप्त दोनों व्यक्ति नथूराम गोडसे और नाना आपटे तथा आजीवन कारावास का दण्ड प्राप्त करने वाले अन्य तीनों बन्दी विष्णु करकरे, मदनलाल पाहुवा और गोपाल गोडसे, ये सभी अम्बाला बन्दीगृह में ही थे। अधिकारियों की कृपा से मृत्युदण्ड

प्राप्त एवं आजीवन कारावास का दण्ड प्राप्त करने वालों में परस्पर भेंट होती रहती थी।

मृत्युदण्ड की तिथि निश्चित हो जाने पर दोनों मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्तियों के सम्बन्धियों के अन्तिम वार मिल लेने की दृष्टि से उनके घर वालों को अधिकारियों की ओर से पत्र भेजे गये थे।

नथूराम ने आवेदन किया था कि मेरे माँ-बाप वृद्ध हैं और वे पूना में रहते हैं। इतनी लम्बी यात्रा वे नहीं कर सकते अतः मुझे येरवडा (पूना) वदीगृह में ले जाया जाय जिससे कि माँ-बाप के अन्तिम समय में दर्शन कर सकूँ। किन्तु सरकार ने इस आवेदन को स्वीकार नहीं किया।

जो सम्बन्धी और नातेदार मिलने के लिये अम्बाला आ सकते थे वे सब १३-११-४९ को अम्बाला पहुँच गये थे। किन्तु उनकी भेंट १४-११-४९ को कगई गई।

भेंट के लिये आये हुए व्यक्तियों की संख्या ३०-३५ के लगभग थी। १४-११-४९ को प्रातः काल १० बजे से ७-८ के गुट के रूप में मिलने का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। नथूराम और आपटे दोनों ही मिलने वालों से बड़ी सरलता और सहजता में बात करते थे। किसी भी भेंटकर्त्ता ने यह परिलक्षित नहीं किया कि ग़ज़्र प्राप्त होने वाले मृत्युदण्ड के कारण वे किंचित् भी विचलित हुए हों। उनके मन पर उसका किसी प्रकार का प्रभाव नहीं दीखता था। भेंट के लिये आने वालों का भावाभिभूत होना स्वाभाविक था। परन्तु उन्हें इस बात का भी स्पष्ट ज्ञान था कि यह मृत्यु असहाय अवस्था में ही आ रही है ऐसी बात नहीं, अपितु स्वयं ही इन्होंने इसका वर्ण किया है, अतः उन्होंने भी अपना सतुलन बनाये रखा था।

नाना आपटे और उनकी पत्नी सौ० चंपूताई की भेंट बड़ी हृदयस्पर्शी थी। नाना बोले, “कल से तो तुम्हें रोना ही है। मैं यदि कहूँ कि “किसी प्रकार का भी दुःख नहीं मानना चाहिये।” तो भी दुःख तो होगा ही और होता ही रहेगा। कोई किना भी कुछ कहे। फिर भी ये कुछ क्षण हमको परस्पर वार्तालाप के लिये मिले हैं अतः दुःख मनाने की अपेक्षा यदि हम इन्हें समाधान में वितायें तो उपयुक्त होगा।”

पति की यह अन्तिम इच्छा थी। अपने हृदय पर पत्थर रख कर पत्नी को इसे लिभाना था। किसी भी प्रकार से मन की भावनाओं को दबाकर पति की उस इच्छा को पूर्ण करने में चंपूताई गफ्त हुई। नाना अपनी पत्नी में परिजनों की कुशल-क्षेम पूछते रहे। चंपूताई ने शान्तचित्त से उनके सब प्रश्नों का उत्तर दिया। कारागार की आग घटे की पति-पत्नी की वह अन्तिम भेंट बहुत ही महत्त्वपूर्ण और भाव ही उत्तम ही संयमपूर्ण मन स्थिति में परिपूर्ण हुई।

मेंट करने के लिये आये हुए लोग बहुत सारे खाद्य पदार्थ लाये थे। अधिकारियों ने भली प्रकार उनकी जाँच कर सब वस्तुएँ हमें सौंप दी। मेंट का यह भावुकतापूर्ण कार्यक्रम शाम के पाँच बजे तक चलता रहा।

नयूराम गोडसे और नाना आपटे, जिनको हमारे दिन ही फाँसी के फंदे में लटकना था, उनको मिलने आये हुए परिजनो एवं मित्रो की मर्मस्पर्शी मेंट का दृश्य कारागृह के अधिकारियों ने भी देखा। मृत्युदण्ड-प्राप्त बन्धियों की धीरोदात्तता का ऐसा उदाहरण उनकी दृष्टि में कभी नहीं आया था। उनलोगो को अब तक ऐसी मुलाकातो में रोदन-क्रन्दन ही देखने-सुनने को मिला था। इस मेंट के अवसर पर अधिकारी भी अनेक बार भावविभोर होते देखे गये। आखिर वे भी तो मनुष्य-प्राणी ही थे।

नयूराम और नाना का भोजन हमारी ओर से ही जाता था। भेटकर्त्ता जो खाद्यान्न लाये थे उस शाम वही हमने उनके भोजन के लिये भेजा था। कल आने वाली मृत्यु का विचार कर न तो उनकी भूख भाग गई थी और न ही उनके मन में यह भावना थी कि कल तो मरना ही है अतः आज जितना अधिक से अधिक खाया जा सके उतना खा लिया जाय। वे जानते थे कि ये पदार्थ उनके आँभियों द्वारा भेजे हुए हैं, उनसे सम्बद्ध भावना का मूल्य भी वे समझते थे। अतः प्रत्येक वस्तु को उन्होंने उसी भावना से चखा। और हमारे द्वारा सम्बन्धियों तक उन्होंने यह भी सन्देश दिलवाया कि पदार्थ बहुत ही स्वादिष्ट थे, जिससे कि क्षणिक ही सही, उनको भी कुछ समाधान हो।

रात्रि के आठ बजे मैं, करकरे और मदनलाल तिनो जने नयूराम और नाना आपटे से मिलने के लिये गये। हम लोगो ने गीता के कतिपय अध्यायो का वहाँ अध्ययन एवं पारायण किया। नयूराम गीता के दूसरे, ग्यारहवें और अठारहवें अध्याय को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। कभी-कभी हम उन विषयो पर चर्चा किया करते थे। प्रस्तुत मेंट में भी गीता-पाठ के अनंतर हमारी बहुत बातचीत हुई। मेंट करने के लिये आये जनो का बोलना, उनके साथ किया गया विनोद, पूर्व स्मृतियाँ आदि अनेकानेक विषयो पर हमारा वात्सलाय होता रहा। इस प्रकार दो घंटे वहाँ उनके साथ व्यतीत कर हम अपने निवास में वापस आये।

देश का वर्तमान पश्चिमी प्रदेश पंजाब प्रान्त भारत-विभाजन के कारण अत्यधिक एवं प्रत्यक्ष रूप में उलझा हुआ था। जनमानस में डमकी जो प्रतिक्रिया थी वह हमारी भावनाओ को भली-भाँति समझती थी। हममे मेंट करने के लिये आने वाले व्यक्तियों ने भी इस विषय में अपने अनेक अनुभव सुनाये। दिल्ली से अम्बाला वाली गाडी में काफी भीड़ का उनको सामना करना पड़ा था, रात्रि गाडी में खड़े-खड़े ही वितानी पड़ी थी। अन्य यात्रियों ने अनुभव किया कि ये

कुछ लोग देश के इस भाग के नहीं हैं, अपितु किसी अन्य भाग के हैं और जब उन लोगों को यह विदित हुआ कि ये लोग महाराष्ट्र के हैं तथा गांधी-बघ काण्ड में मृत्युदण्ड प्राप्त नथूराम गोडसे एवं नाना आपटे से मिलने के लिये जा रहे हैं तो उन लोगों ने अपने स्थान इन लोगों को दे दिये तथा वे स्वयं खड़े हो गये ।

कुछ यात्री उनके साथ ही अम्बाला स्टेशन पर उतरे । उन लोगों ने इन भेंट करने के लिये आये हुए यात्रियों से अम्बाला में ठहरने के प्रबन्ध के विषय में पृच्छताछ की । जब उनको विदित हुआ कि अमुक स्थान पर उनके निवास की व्यवस्था की गई है तो फिर उन्होंने उनके तंगे आदि की व्यवस्था कर दी । उन्होंने तंगे वालों को भी समझा दिया कि ये परप्रदेशी यात्री किस विशेष कारण से अम्बाला आये हैं । परिणामस्वरूप जब ये लोग निश्चित स्थान पर उतरे तो तंगे वालों ने भाड़ा लेने से ही इन्कार कर दिया । उनका कहना था कि हमारे लिये आपके लोगों ने, जिनसे आप भेंट करने के लिये आये हैं, जान पर खेला है । अतः उनका आग्रह था कि सहानुभूति के इस आदान-प्रदान में हमें भी कुछ भाग लेने का अवसर प्रदान किया जाय ।

अम्बाला के भोजनालय अथवा उपहारगृह में जाने पर प्रथम अपरिचित से लगने वाले इन व्यक्तियों से साधारण पूछताछ की जाती थी । किन्तु जब उनको उनके आने का कारण विदित होता था तो वे लोग भोजन आदि का मूल्य नहीं लेते थे । ऐसे भावनापूर्ण दृश्य उन लोगों को देखने को मिले ।

फाँसी लगने के दूसरे दिन जब ये भेंटकर्ता अपने स्थान को वापस जा रहे थे उस दिन अम्बाला स्टेशन पर स्थानीय लोगों की भारी भीड़ उपस्थित थी । उन लोगों ने स्टेशन को नारों से गुँजा कर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की ।

फाँसी मिलने के पहले दिन की घटना है कि दो युवक इन भेंटकर्ताओं के पास आये और प्रार्थना करने लगे कि हम लोग भी गोडसे और आपटे के दर्शन करना चाहते हैं, आप कृपा कर अपने साथ ही हमारा नाम भी सम्बन्धी जनो के साथ लिखवा दीजिये । किन्तु सम्बन्धी जन इन अपरिचितों को इस प्रकार अपने साथ लेने के लिये उद्यत नहीं थे । उनको शका थी कि कौन जाने गुप्तचर विभाग ने ही इन व्यक्तियों को अपना कार्य करने के लिये भेजा हो । अतः उन्होंने कह दिया कि हम आप लोगों को इस प्रकार अपने समूह में समाविष्ट नहीं करेंगे । उन्होंने कह दिया कि अधिकारियों से मिल कर आप अपनी भेंट का सीधा प्रबन्ध कर सकते हो तो कर लीजिये । विवश उन लोगों को वहाँ से जाना पड़ा ।

जब से हम लोगों को अम्बाला कारागार में लाया गया था तब से ही हम पर विरोध पहरदारों की नियुक्ति की गई थी । उनका सारा व्यय केन्द्रीय सरकार को

बहन करना पड़ता था। किसी भी फाँसी के प्रथम दिन विशेष सावधानी बरती जाती थी। फिर नथूराम गोडसे और नाना आपटे की फाँसी तो अत्यधिक महत्त्व की थी अतः इस अवसर पर और भी अधिक सावधानी बरतने का आदेश था। इस अवसर पर विशेष पहरा दिया जा रहा था।

लगभग रात के पौने दो बजे एक पहरेदार ने देखा कि दो नवयुवक बाहर खड़े हैं, उनको देखते ही उसको तो कँपकँपी आ गई। उसने सोचा कि ये दो बन्दी हैं जो भागने का प्रयत्न कर रहे हैं। उसके पास शस्त्र था, कुछ साहस बटोर उसने उनको रोका। आगन्तुक युवक निश्चल खड़े रहे। उन्होंने केवल इतना ही कहा “हमें नथूराम गोडसे और नाना आपटे के दर्शन भर करा दो, फिर हम वापस हो जायेंगे।” यह सुन रक्षक को कुछ सन्तोष हुआ। वह उनके समीप गया, उनकी तलाशी ली और जब देखा कि उनके पास कोई शस्त्र नहीं है तो फिर वह उनको अपने प्रमुख अधिकारी के समीप ले गया।

इस घटना से अधिकारियों में भागदौड़ आरम्भ हो गई। एक बार किसी बात का सन्देह हुआ कि फिर वह असीम हो जाता है। वे सोचने लगे कि कहीं फाँसी वालों को भगा कर ले जाने की कोई चाल तो ये लोग नहीं चल रहे हैं। इन लोगों के पीछे और भी कोई है अथवा नहीं इस बात की छानबीन होने लगी। आरक्षक दल को सावधान कर दिया गया और कारागार के चारों ओर पहरेदारों की सख्या में पर्याप्त वृद्धि कर दी गई।

अधिकारियों ने जब उन नवयुवकों से पूछताछ की तो उन्होंने अपने साथ बीती घटना को स्पष्ट कर दिया। उनका कथन था कि वे बनारस से केवल इस निमित्त आये हैं कि नथूराम गोडसे और नाना आपटे के अन्तिम दर्शन कर सकें। एतदर्थ उन्होंने उस दिन मध्याह्न के समय जेल के अधिकारियों से प्रार्थना की थी किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दी। फिर वे मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्तियों के सम्बन्धियों से मिले और उनसे विनती की कि वे उनको अपने दल में सम्मिलित कर दर्शन का सुअवसर प्रदान करें। उन्होंने भी उनकी विनती को स्वीकार नहीं किया। तब उन्होंने इस प्रकार का कृत्य किया। क्योंकि यदि वे आज रात तक उनके दर्शन नहीं कर पाते हैं तो कल प्रातः काल तो उनको फाँसी दे दी जायगी जिससे उनका भौतिक शरीर सदा-सर्वदा के लिये दृष्टि से दूर हो जायगा। फिर तो वे कभी दर्शन कर ही नहीं पावेंगे।

बन्दीगृह की दीवार को बढ़ाने का कार्य चालू था। इसके लिये दीवार के समीप तत्सम्बन्धी सामग्री अर्थात् ईंट, रोडा आदि पड़े थे। उसी ढेर में उनको दो सीढ़ियाँ दिखाई दी। उसको उठाकर उन्होंने दीवार के सहारे लगाया। उनका

विचार था कि वहाँ तक तो पहुँच जायें, फिर अन्दर जाने की बात सोचेंगे। इसी विचार से उन्होंने यह साहसिक कार्य किया था किन्तु उन्हें इस पर भी भेंट का अवसर प्रदान नहीं किया गया और वाद में हमने सुना कि कई दिनों बाद उन दोनों युवकों की खूब छानवीन के बाद कारागार से मुक्त कर दिया गया।

जिस दिन फाँसी की सजा मिलनी थी उस दिन बहुत प्रातः पुनः हम उन लोगों से मिले। रात को बारी-बारी से बन्दीगृह के पहरेदार रात भर उनके द्वार पर पहरा देते रहे। उन लोगों के साथ हमारे सम्बन्ध इतने बढ़ गये थे कि एक प्रकार की आत्मीयता-सी अनुभव होने लगी थी। इस कारण रात के सारे पहरेदार भी उस समय वही थे, उनका विचार था कि प्रातः काल बन्दीजनों से मुलाकात कर उनसे दो-दो बात कर लेंगे। उसके बाद तो फिर न उनसे भेंट हो सकती है और न सम्भाषण।

प्रातः मिलने पर हमने गीता के १-२ अध्यायों का पाठ किया। दोनों ने प्रातर्विविध समाप्त कर स्नान किया। दोनों ही प्रसन्नचित्त प्रतीत होते थे।

मैं नयूराम को अण्णा कह कर सम्बोधित करता था। मैंने कहा, “अण्णा! दाढी बनाओगे क्या?” “किसलिये? किसी सभा-समाज में थोड़े ही जाना है।”

“नहीं, सभा-समाज में तो नहीं जाना है। आपने स्नान किया, इसीलिये मैंने पूछा था।”

“अपनी स्वतः की प्रसन्नता भी तो कोई चीज होती है न? अभी तो मुझे ढाई घण्टा और जीना है न? मन की प्रसन्नता के लिये शारीरिक स्वच्छता सहायक होती है। दाढी तो कल ही बनाई थी, उसकी आज कोई बात नहीं है। और कुछ समय बाद तो यह सारा शरीर ही भस्मीभूत होने वाला है अतः दाढी बनाने अथवा न बनाने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। जितना समय मैं दाढी बनाने में लगाऊँगा उतना ही बातलाप में भली प्रकार व्यतीत कर सकता हूँ। यह देखो ये पहरेदारों के अधीक्षक अभी आये हैं, इन्हें मुझसे बात करनी है।”

उपरिलिखित दो युवकों की कथा हमें रात को हमारे कमरे के पहरेदार ने सुना दी थी। वह कहानी मैंने प्रातः काल नयूराम को सुनाई। मेरी बात सुनकर नयूराम बोले, “मुझे यह पहले से ही ज्ञात है और मैं अपनी बात अविकारियों को बता चुका हूँ।”

मैंने फाँसी के समय अपने उपस्थित रहने की अनुमति चाही तो उस समय वे कहने लगे कि वे कोई उच्चाधिकारी तो हैं नहीं जो इस प्रकार की अनुमति प्रदान करें। फिर उन्होंने कहा था “परन्तु फाँसी ने पूर्व आधे घंटे तक मेरा अधि-कार है, तब तक तुम प्रसन्नता में मिलो।”

नथूराम काफ़ी पिया करते थे। उन्हें चाय नहीं सुहाती थी। हमने काफ़ी और चाय मँगवाई। सभी ने अपना-अपना पेय पदार्थ पिया। दूर की यात्रा के लिये जब मनुष्य जाने लगता है तो उसको जिस प्रकार विदाई दी जाती है, उसी प्रकार हमने उन्हें विदाई दी।

दोनों मृत्युदण्ड प्राप्त बन्धियों ने अपने माता-पिता की प्रतिमाओं का पूजन किया। हम लोगों को उन्होंने सावधानी से रहने का उपदेश भी दिया।

उस समय हममें से कोई भी शोकाकुल प्रतीत नहीं होता था। यदि वे प्रसन्न थे तो हम भी स्थिर थे, उदासीन तो निश्चित ही हम लोग नहीं थे।

आगे की विधि की तैयारी में आरक्षकगण फाँसी वालों को देने के लिये वाले कपड़े लिये खड़े थे, तब हमने उनसे अन्तिम विदाई ली और वहाँ से चले आये।

अखण्ड भारत का मानचित्र, भगवाव्वज और भगवद्गीता ये वस्तुएँ दोनों ही व्यक्तियों के हाथों में थी। प्रातः के ८ बजने वाले थे। सूरज की किरणें अभी मृदु लग रही थी।

फाँसी का तस्ता फाँसी कोठरी के पिछली ओर था। कोठरी से बाहर आते ही उनको सूर्यकिरण दृष्टिगोचर हुई। वे किरणें उनके अग पर पड़ी। नथूराम तो एक बार शिमला जाने के लिये इस कोठरी से बाहर निकले भी थे किन्तु आपटे आज प्रथम बार ही कोठरी से बाहर निकले थे। सूर्य का प्रकाश उनको चहुँप भाया और बोले, “पण्डित! सूर्य की किरणें कितनी कोमल हैं।”

नथूराम ने उसके उत्तर में कहा, “शिमला में तो लगभग सदैव ही ऐसा आह्लादकारी दृश्य रहता है।”

फाँसी के बरामदे में पहुँच कर दोनों ने “अखण्ड भारत अमर रहे” और “बन्दे मातरम्” का घोष किया—

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे,  
त्वया हिन्दुभूमे सुखं वद्धितोऽहम् ।  
महामंगले पुण्यभूमे त्वदर्थे,  
पतत्त्वैप कायो नमस्ते नमस्ते ।

एक बार कारागार के वायुमण्डल में यह स्वर गुंजायमान हुआ और फिर फाँसी देने वालों ने फाँसी का फंदा खींचा कि दो प्राण पचत्व में विलीन हो गये।

\* \* \*



## सात

### “मेरी राख सिंधु-सरिता में बहा देना।”

“देखो पण्डित ! मैं पहले ही तुमसे कहता था कि पैसों की गणना के सप्ताह में मत पड़ो। तुम्हारे इस कृत्य से अब अभियोजक जो कुछ भी अर्थ लगावेंगे उसको अत्यधिक महत्त्व मिलेगा।” इस प्रकार नाना आपटे सदा स्वरूप में मिछली बातों का छिद्रान्वेषण किया करते थे। जिन दिनों हमारा अभियोग विचाराधीन था उन दिनों हमारे लिये वार्तालाप का विषय उस दिन की साक्षी का हुआ करता था।

नयूराम को आरक्षकों के अधीन किया गया तो उनके पास से जो वस्तुएँ मिली उनकी सूची बनाई गई। उन वस्तुओं में उनकी एक दैनिकी भी थी जिसमें संक्षेप में स्मृति के लिये अनेक नाम, अनेक स्थान, नियत किये गये भेंट के समय, यात्रा का व्यय, रुपये-पैसों की छोड़ी बहुत गिनती, इस प्रकार की बातें अंकित थी। उस दैनिकी को भी आयोजकों ने साक्षी के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत किया था। उन्होंने न्यायालय का ध्यान रुपये-पैसों की उस लिखत की ओर आकृष्ट किया था और वे उसके अर्थ अपनी इच्छानुसार लगाने का यत्न कर रहे थे।

एक स्थान पर अंकित था ‘बडोपंत को पैसे दिये।’ बड़गे ने अपनी गवाही में बडोपंत से अभिप्राय स्वयं को बताया था। उसमें यह भी लिखा था कि नाना आपटे को इतनी राशि दी अथवा गोपाल को इतनी राशि दी, इतनी राशि अपने पास रखी, इस प्रकार की कुछ बातें उसमें अंकित थीं। पडयन्त्र सिद्ध करने के लिये नयूराम का यह लिपिबद्ध लेख बहुत काम आयेगा, अभियोजकों की ऐसी धारणा बन जाना स्वाभाविक था।

ऐसे कार्य में सलग्न व्यक्ति का अपने पास दैनिकी रखना बहुत हानिकारक होता है। क्योंकि जिनका उस पडयन्त्र से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है, यदि उनका नाम किसी प्रसंग में उसमें अंकित है तो उन्हें भी कष्ट भोगना पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त पडयन्त्र से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों का सूत्रवद्ध समावेश उसमें प्राप्त हो जाता है। उसका उपयोग अभियोजक के लिये लाभप्रद सिद्ध होता है।

अतः ऐसे समय में दैनिकी का अपने पास होना बहुत ही हानिकारक है। परन्तु धन का व्यौरा रखने के विषय में नथूराम की अपनी एक धारणा थी। उनका कहना था, “हम लोगो से पैसे लेते हैं, हिन्दूराष्ट्र लिमिटेड नामक सस्था के लिये। उसमें से एक निश्चित राशि हम अपने लिये भी व्यय करते हैं। उसके अतिरिक्त होने वाले व्यय की गणना यदि हम अपने लिये न भी करें तो भी कभी कोई हमसे आय-व्यय का व्यौरा मांग ले तो कुछ तो उसको समझा सकने की स्थिति में हमें होना ही चाहिये। इसके अभाव में तो न किसी प्रकार का विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है और न स्पष्टीकरण ही।”

नाना कहते थे, “लोग क्या कहेंगे? यही कि इन दोनों ने पैसे खा लिये। उन्हें बँसा कहने दो। हम यह भली-भाँति जानते हैं कि हमारी स्थिति क्या है। उनके आरोप से जब हमारा तनिक भी सरोकार नहीं तो फिर हमें उससे विचलित होने की क्या आवश्यकता है?”

नथूराम नाना से पूछते, “हम कुछ न कर पाये और सारा धन व्यय करते गये तो फिर लोगो को क्या कहेंगे?”

नाना कहा करते, “क्या तुम प्रत्येक को यह स्पष्टीकरण देते फिरोगे कि हमारे पास अमुक योजना थी, वह असफल हो गई, उसी में यह खर्च हुआ है। क्या लोगो का तुम पर विश्वास होना चाहिये? हमारे हाथ से कुछ होने वाला होगा तो होगा, नहीं तो नहीं। किन्तु तुम यह हिसाब-किताब मत रखा करो।”

परन्तु नथूराम ने उनका यह कहना नहीं स्वीकार किया। “हिन्दू राष्ट्र मर्यादित” इस सस्था के वे अधिकारी थे। हमने लोगो से ऋण लिया है उसके प्रति हम उत्तरदायी हैं, लोगो ने जिस विश्वास के साथ अपनी सस्था की सहायता की है, हमको उस विश्वास के योग्य होना चाहिये। उनकी यह हार्दिक आस्था थी। यह आस्था इतनी प्रभावी थी कि उसके जोश में, अग्नि के समीप बैठकर गोला-बारूद की गिनती की तरह उन्होंने ज्वालामुखी पहाड़ पर बैठकर पैसे के व्यवहार के धोखे में डालने योग्य टिप्पण कर रखे थे। और अन्त में सावधानी रखने का विचार मन में होते हुए भी असावधानतावश वह दैनिकी उनके अपने पास ही रह गई थी।

अभियुक्तों को दोषी सिद्ध करने के लिये अभियोजकों की ओर से उम दैनिकी का भी लाभ प्राप्त हुआ था।

गलतियाँ अनेकों से हुई थी। परन्तु जो गलती सामने आती थी उसके सम्बन्ध में उस दिन चर्चा हुआ करती थी। मानो पुन नये से वह गलती हुई है इस धारणा से सम्बन्धित व्यक्ति अन्य अभियुक्तों का लक्ष्य बनता था।

आज नथूराम की वारी थी। नाना आपटे और नथूराम परस्पर बराबरी के नाते में बोलते थे। न्यायालय ने भी उनसे बराबरी का ही व्यवहार किया, क्योंकि नाना आपटे को भी नथूराम के साथ ही फाँसी की सजा सुनाई गई थी।

नथूराम ने गोली चलाई और उन गोलियों से गांधी का देहात हुआ यही आरोप उन पर था। और उन्होंने उसे स्वीकार भी किया था। तथा इस अपराध के लिये उनको फाँसी का दण्ड दिया गया, यह भी उन्होंने स्वीकार किया। परन्तु नाना आपटे ने गोली चलाई और उसके कारण गांधी की मृत्यु हुई ऐसा आरोप तो नाना पर नहीं था। पडयन्त्र में एक घटके की जो सजा हुई वह सभी घटकों को हो सकती है यह निर्वच व्याप्त में रखते हुए भी सभी अपराधियों को फाँसी की सजा नहीं दी गई थी। जितना नथूराम का दोष था उतना अन्य अभियुक्तों का नहीं था यह तो स्पष्ट है। नाना का कृत्य भी नथूराम के कृत्य के समान नहीं था। परन्तु उन्हें भी फाँसी की सजा हुई थी। अर्थात् नथूराम को जो सजा मिली उसके अनुपात में उनको कुछ अधिक सजा मिली थी। इसे न्यायालय का नाना पर रोप ही कहा जावेगा। क्या नाना का दोष अनुपात में नथूराम से अधिक था ?

न्यायालय ने अपने निष्कर्ष में बताया था कि इस पडयन्त्र का सारा संचालन नाना के आदेश पर किया जा रहा था। उपलब्ध प्रमाणों की छानबीन करके ही न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा था। उच्च न्यायालय ने भी उसी निष्कर्ष को मान्यता प्रदान की थी।

किसी धार्मिक समारोह में अनेक लोगों को एकत्रित कर लेना सरल होता है, क्योंकि उसमें भावना प्रधान होती है। यद्यपि उसके लिये सगठन चातुरी चाहिये परन्तु पहले से ही सम्बन्धित विषय में श्रद्धा विद्यमान होने से समारोह सम्पन्न करने में सुविधा होती है। इसी प्रकार किसी राजनीतिक विषय पर समान विचार वाले विभिन्न जनों को एकत्रित कर लेना भी सम्भव हो जाता है परन्तु अपने प्राणों को हथेली पर लेने के लिये लोगों को तैयार करना और फिर उन्हें एक मंच पर एकत्रित कर देना इसमें सगठक वा व्यक्तित्व ही प्रभावी होता है। नीचे भाषनायें तो अनेकों की होती हैं परन्तु उनमें भी श्रेणियाँ बना करती हैं। ऐसे अंगारों पर अनेक लोग अनेक प्रकार की बात करते हैं और चाहते हैं कि श्रेय का कार्य उन्हें सौंपा जाय, अन्य छोटे-मोटे सहायक कार्य कोई अन्य करे। कुछ

ऐसे भी होते हैं जो तात्कालिक उत्साह दिखाकर समय आने पर खिसक जाया करते हैं।

मुझे इस अवसर पर एक प्रसंग स्मरण आ रहा है। मैं उस समय प्राथमिक पाठशाला में था। उन दिनों संत पाचलेगाविकर महाराज साँपो के सम्बन्ध में सप्रयोग जानकारी दिया करते थे। किन्तु साँपो में विष होता है, किन्तु मैं नहीं होता और मनुष्य सामान्यतया भय से ही कैसे मर जाया करते हैं, इस विषय में उन्होंने अनेक व्याख्यान दिये थे। उन्हें सर्पदश की औपधि भी आती थी। साँप से डँसवा कर दिखाना भी उनका एक कृत्य हुवा करता था। अपने व्याख्यान के अन्त में वे कहते, “बोलो, कौन हैं जो साँप डँसवाने का प्रयोग करने के लिये उद्यत हैं?”

लोग उत्साह से भरे हुए थे, संत महाराज के व्याख्यान से प्रभावित हुए थे। बीस-तीस व्यक्तियों ने हाथ ऊपर उठा दिये।

“वाह, बहुत आनन्द की बात है। अपने हाथों को उठाये रखिये।” ऐसा कह कर उन्होंने अपने समीप बैठे शिष्य से कहा, “जाओ, जरा भीतर से टोकरी तो ले आओ।”

टोकरी लाई गई। जब उसे खोला गया तो उसमें से पूरा पाँच फीट लम्बा साँप निकल कर महाराज के पास आकर रुक गया।

महाराज ने अपने शिष्य से कहा “गिनो तो कितने लोगों के हाथ ऊपर हैं?”

तब तक देखा तो चार-पाँच हाथ ही उठे हुए दृश्य थे। महाराज ने जिस समय टोकरी लाने का आदेश दिया था तभी से कई लोगों के हाथ ऐंठने से लग गये थे। धीरे-धीरे उन्होंने हाथ नीचे कर लिये। कई लोगों ने तो शायद यह सोचा कि कदाचित् प्रसाद-वितरण करने के लिये टोकरी मँगाई जा रही है। किन्तु जब उन्होंने लाई जाने वाली टोकरी की प्रसाद की टोकरी से कुछ भिन्न आकृति देखी तो प्रसाद का मोह त्याग अपने हाथ नीचे कर लिये। कई लोगों ने नाग को देखा तो भावना में ही उनके हाथ नीचे लटक गये।

वहाँ बैठे हुए बालकों में शोर मच गया। किसी ने कहा कि वर्षा तो हुई नहीं, फिर यह आर्द्रता कहाँ से आ गई? आस पास के लटके ‘मैंने नहीं, मैंने नहीं’ का शोर मचाने लगे।

अन्त में केवल तीन व्यक्ति निश्चय से खड़े हुए। महाराज ने उनमें से एक को चुन लिया और फिर उन्होंने उस पर सर्पदश वा तथा उसका विष उतारने का तात्कालिक प्रयोग वहीं पर किया।

मैं स्वयं किस वर्ग में था यह बात न बोलना ही अच्छा रहेगा। लोगों की

भावनाओं को जागृत कर उन्हें एकत्रित करने पर भी कौन अन्त तक साथ निभा-  
येगा, इसका निश्चय करना अति कठिन होता है। इस अभियोग में न्यायालय का  
कथन था कि प्राणों की आहुति देने की सिद्धता रखने वाले लोगों का सगठन करने  
में नाना आपटे का प्रमुख भाग था।

नाना से अच्छा परिचय रखने वाले आज भी अनेक हैं। कभी-कभी इस  
संसार में ऐसी भी घटनाएँ घटित होती हैं कि उन पर विश्वास करना कठिन हो  
जाता है। मेरा और नाना का परस्पर थोड़ा-सा ही परिचय पहले से था। इस-  
लिये वे कैसे आगे बढ़े, उनका आस पाम का वातावरण कैसा था, इस सम्बन्ध में  
मुझे प्रत्यक्ष जानकारी नहीं है। परन्तु जो व्यक्ति उनसे परिचित है वे कहते हैं  
कि नाना और पंडयन्त्र यह बात तो विश्वसनीय हैं ही नहीं। यह विचित्र घटना  
है। नाना को इस पंडयन्त्र का सूत्रधार मानना यह तो विरोधाभास की चरम  
सीमा है।

महाराष्ट्र के इतिहास के अन्वेषण में साठोत्तरी के जो व्यक्ति आज विद्यमान  
हैं वे सभी नाना आपटे के पिता स्वर्गीय श्री दत्तोपन्त आपटे से परिचित हैं।  
उनमें से अनेकों के वे गुरु भी थे। स्वर्गीय महादेव चिमणाजी आपटे के ट्रस्ट  
द्वारा पूना की आनन्दाश्रम संस्था का संचालन होता है। स्वर्गीय श्री दन्तोपन्त उस  
संस्था के व्यवस्थापक थे। वे स्वयं भी इतिहासज्ञ थे। इसके अतिरिक्त इतिहास-  
संशोधन की आवश्यक भाषा और लिपियों का अध्ययन भी उन्होंने किया था।  
संस्कृत, गणित, भूगोल, खगोलशास्त्र आदि विषयों में भी उनका प्रवेश था।  
जब लोकमान्य तिलक का क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध आया था तो इस प्रसंग में  
विदेश से शस्त्रास्त्रों के मँगाने में दत्तोपन्त भी एक माध्यम थे। परन्तु बाद में वे  
विद्याव्यासग में व्यस्त हो गये थे।

नाना आपटे का जन्म सन् १९११ में हुआ था। उनकी बड़ी बहिन तपस्वी  
बाबा पराजपे की बहू थी। उनकी दो और भी बहनें थी। नाना के चार भाई  
थे, बलवत, विष्णु, माधव और मनोहर। वे सब अपने-अपने व्यवसाय में हैं।  
मनोहर तो उच्च शिक्षा के लिये विदेश भी हो आये हैं।

नाना ने बी० एस-सी० उत्तीर्ण किया था और अहमदनगर में उनको शिक्षक  
की नौकरी मिल गई थी। उन्हीं दिनों उनका विवाह भी हो गया। उनके एक  
मुपुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु बाद में वह नहीं रहा।

अध्यापन-क्षेत्र में नाना ने उल्लसित की, उनकी ख्याति बढ़ने लगी थी। वे  
शिष्या-वर्ग चत्राने थे। प्रत्येक विद्यार्थी चाहता था कि वह उनसे पढ़े। नाना ने  
अनुभव किया कि उनकी लोकप्रियता बढ़ रही है। उन्होंने बी० टी० करने का  
निश्चय किया और वह परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली।

गौरवर्ण, सुडौल, स्वस्थ शरीर, प्रसन्नवदन नाना आपटे मित्र एवं परिजनो में प्रिय थे। सज्जजन कर रहने का उन्हें बहुत शौक था। वचन के दिन उनके गरीबी में बीते थे। किन्तु आज पैसा उनके पीछे लगा था। अपने वचन के दिनों से मानो बदला ले रहे हो इस प्रकार खान-पान एवं परिवार में जो उत्तम वस्तु हो उसका ही प्रयोग वे उन दिनों किया करते थे।

महाराष्ट्रीय सुसंस्कृत घरों में हिन्दुत्वनिष्ठा की सहज प्रवृत्ति है। घर के संस्कार वैसे होने के कारण नाना के मन पर भी हिन्दुत्वनिष्ठा का प्रभाव था। जब उनकी बुद्धि कुछ विकसित हुई तो थोड़ी निष्ठा विलुप्त हो गई। अब वे प्रत्येक बात को विज्ञान की कसीटी पर कस उसको ग्रहण करते थे। इसी क्रम में १९३७ में उनकी भेंट स्वातन्त्र्यवीर सावरकर से हो गई। वे उनसे प्रभावित हुए और उनके द्वारा प्रतिपादित हिन्दुत्ववाद की ओर आकृष्ट हो गये। नाना ईसाइयों द्वारा संचालित विद्यालय में शिक्षक थे। उस विद्यालय में हिन्दू विद्यार्थी भी अध्ययन के लिये जाते थे। प्रत्येक विद्यार्थी को वह चाहे किसी भी मत, पंथ अथवा सम्प्रदाय का हो, उससे वहाँ अनिवार्यरूपेण ईसाई प्रार्थना करवाई जाती थी। नाना ने इस परिपाटी को रक्खा दिया। यही उनकी हिन्दुत्व निष्ठा का प्रथम प्रमाण और प्रत्यक्ष प्रायोगिक कार्य था।

हिन्दू महासभा की नीति के अनुसार सैनिकीकरण के मार्ग को प्रशस्त करने के लिये नाना ने-स्थान-स्थान पर "रायफल क्लबो" की स्थापना की। कांग्रेस का शासन होने पर भी इस कार्य के लिये नाना ने सम्बन्धित पदाधिकारियों से मान्यता प्राप्त कर ली थी।

नाना का सगठन सौष्ठव विकसित हो रहा था। हिन्दू महासभा के अधिवेशनों के माध्यम से नाना और नथूराम का सम्पर्क बढ़ रहा था। अधिक सन्पर्क में आने पर दोनों ने परस्पर यह अनुभव किया कि दोनों में कुछ न कुछ गुण अवश्य हैं। १९४४ के आरम्भ में दोनों ने मिल कर योजना बनाई कि दैनिक-पत्र का प्रकाशन किया जाय। इस योजना के अन्तर्गत 'अग्रणी' का जन्म हुआ। जिसका संचालकत्व नाना ने और सम्पादकत्व नथूराम ने संभाला। उन दोनों का संचालक-सम्पादक का नाता इतना अटूट रहा कि गांधी-वध अभियोग के अवसर पर भी न्यायालय ने इन दोनों का ही तदरूप षडयन्त्र के संचालक-सम्पादक की सजा से विभूषित किया।

समय-समय पर योग्य एवं उपयुक्त व्यक्तियों को ये अग्रणी अथवा हिन्दू राष्ट्र-संस्था में बुला कर उन्हें समाचार-पत्र के महत्त्व से अवगत कराना तथा वृत्तपत्र के प्रति एवं अपने कार्य के प्रति उनमें विश्वास जमाने का कार्य नाना बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ करते थे। कहीं पर किसी से मिलने जाना हो तो उनको किसी महत्त्वपूर्ण

अपेक्षा नहीं होती थी। संयोग कहिये अथवा उनका व्यक्तित्व कि जहाँ कहीं भी वे जाते उनको सफलता ही मिलती थी। किसी भी अधिकारी से वे अपना कार्य करवा लेते थे।

उस समय हिन्दुत्व के जागरण की वृत्ति शासको को रुचिकर नहीं थी। क्योंकि शासन कांग्रेस का था। हिन्दुत्ववादी जन मुस्लिमपरस्ती अथवा मुस्लिम तुष्टीकरण का घोर विरोध करते थे। कांग्रेसी जानते थे कि वे पाकिस्तान-निर्माण की ओर अग्रसर हैं और वे यह भी जानते थे कि पाकिस्तान-निर्माण में हिन्दुत्ववादी कदाचित् बाधा उपस्थित करें। इसलिये तत्कालीन कांग्रेसी शासको ने हिन्दुत्ववादी समाचार-पत्रों को दवाने के लिये अपने अधिकार का दुरुपयोग किया। इसी प्रकरण में 'अग्रणी' से भी एक के बाद एक इस प्रकार अनेक प्रतिभूतियाँ 'सिक्वोरिटो' माँगी गईं। शासको का उस समय का यह इतिहास गांधी-वध अभियोग के अभिलेख में समाविष्ट हुआ है। नाना और नयूराम को परेशान किया जाता था। भीतर के तूफान को दबाकर वे लोग प्रसन्नवदन इन घटनाओं का सामना करते थे। भावी घटनाओं के विश्लेषण के आधार पर अब हम यह कह सकते हैं कि गांधी पर नाना के क्रोध का एक कारण यह भी रहा होगा।

गांधी के समस्त उस समय एक यही समस्या प्रमुख थी कि कांग्रेस जनो से लेकर अन्य जनसाधारण तक के गले में मुस्लिमपरस्ती को किस प्रकार उतारा जाय। समकालिक लेखकों की कृतियों का अध्ययन करने से हमें इस तथ्य का आभास मिलता है। एक बार गांधी पाचगणी आये तो पचीस युवकों के एक गुट ने उनके आगमन का विरोध किया। नाना उस गुट के प्रमुख थे। यह घटना २२-७-१९४४ की है। श्री देवलकर नामक एक आरक्षक अधिकारी उन दिनों पाचगणी में गांधी की सुरक्षा के लिये नियत थे। गांधी-वध अभियोग में उनकी भी साझी हुई थी। नाना के गुट द्वारा गांधी के उस आगमन के विरोध का उन्होंने अपनी गवाही में उल्लेख किया था।

जब गांधीजी ने आकर नई दिल्ली की भंगी वस्ती में अपना डेरा जमाया तो उस समय भी नाना ने उनके विरोध में एक प्रदर्शन का आयोजन किया था। उस समय नाना का गांधी से कहना था, "हिन्दुओं की खून पसीने की कमाई को छीन कर मुसलमानों को मत दो, क्योंकि इससे भी वे सन्तुष्ट होने वाले नहीं हैं। इस दान से उनकी तृप्ति नहीं होगी। देश का विभाजन मत कराओ। नोआखाली के हिन्दू हत्याकाण्ड से कुछ शिक्षा ग्रहण करो। मुसलमानों की धमकियों से मत डरो। हिन्दू युवकों का आवाहन करो। प्रतीकार के लिये वे प्राणपण से सन्तुष्ट रहेंगे।" इतनी बात बताना मात्र उनका खास उद्देश्य था।

गांधीजी की सभी प्रतिज्ञायें और आश्वासन व्यर्थ अथवा विफल सिद्ध हुए।

देश का विभाजन हुआ। देश में रक्त की नदियाँ बही। केश्मीर पर पाकिस्तान समर्थित कवाडलियो का आक्रमण हुआ। हमारे सैनिकों की क्षति हुई। पाकिस्तान को दिये जाने वाले ५५ करोड़ रुपये के समर्पण का निर्णय बदल दिया गया था। गांधी की हत्या हुई।

न्यायालय के सम्मुख नाना ने अपनी नीति के प्रतिपादन को स्पष्ट करते हुए कहा कि गांधी की मुस्लिम परस्ती उनको बिल्कुल भी पसन्द नहीं थी, उन्होंने उसके विरोध में समय-समय पर प्रदर्शन किये। ऐसा ही एक अन्य प्रदर्शन २०-१-१९४८ को भी करने की उनकी योजना थी। ३०-१-१९४८ की हत्या की घटना से उनका किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं था। उनमें और नथूराम में मतभेद हो गया था। नथूराम क्या करने वाले थे इसका उन्हें ज्ञान नहीं था। हम दोनों की दियारें अलग-अलग हो गई थी।

परन्तु न्यायालय ने स्पष्ट परिलक्षित किया कि नाना का अनेक लोगों से सम्बन्ध था। शस्त्र और पैसा एकत्रित करने के लिये नाना ने किस प्रकार अनथक प्रयास किया था इसका चित्रण करने के लिये भी कई साक्षी न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किये गये। भिन्न-भिन्न स्तर के लागो को पडयन्त्र में गूँथा गया था। बिना किसी सूत्रधार के इस प्रकार का गुट निर्मित हो जाना नितान्त असम्भव है और नाना में वे नभो गुण विद्यमान हैं तथा किसी न किसी प्रकार से वे पडयन्त्र-कारियों से सम्बन्धित अथवा परिचित हैं अतः इस पडयन्त्र का अधिकाधिक भार नाना पर डाल कर ही उन्हें फाँसी का दण्ड सुनाया गया था।

जिन दिनों हम पर अभियोग चल रहा था उन्ही दिनों भारत सरकार ने हैदराबाद के रजाकारों का दमन कर राज्य की सत्ता को अपने हाथ में लिया था। सरदार पटेल के इस साहसिक कार्य से नाना और नथूराम को इतनी प्रमत्तता हुई थी कि इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पादन के लिये उन्होंने सरदार वल्लभ भाई पटेल को वधाई का सन्देश भेजा था। यह बात १९ या २०-९-१९४८ की है। आगे चलकर मैं औरंगाबाद बन्दीगृह में अपना बन्दीवास भुगत रहा था। वहाँ के बन्दीजन उस समय की पुलिस कार्यवाही का वर्णन किया करते थे। वे लोग यह भी सुनाया करते थे कि वहाँ के मुसलमान कहा करते थे कि यदि आज गांधीजी जीवित होते तो उन पर और उनके गांधी के माध्यम से राज पर यह विपत्ति का प्रसंग नहीं उपस्थित होता। मुसलमानों के इन उद्गारों से गांधी भक्ति नहीं, अपितु अपना उल्लू सीधा करने की वृत्ति झलकती थी।

फाँसी का दण्ड निश्चित हो जाने पर नथूराम और नाना ने अपनी एक ही इच्छा व्यक्त की थी कि उनकी भस्मी को सिंधु नदी में विसर्जित किया जाय। अपने मृत्युपत्र में उन लागा ने लिखा था कि भारत भू का भाग बन कर जब विन्ध्य नदी



भारत में आयेगी तो उस समय यह भस्मी उसमें विसर्जित की जाय । इसमें चाहे कितने ही वर्ष लगे अथवा कितनी ही पीढ़ियाँ बीते किन्तु यह तभी किया जाय जब सिन्धु नदी भारत का अंग बन जाय ।

मैंने उस समय उनसे पूछा था कि उनको सिन्धु का स्मरण कैसे हो आया । नयूराम से तो इस विषय पर मेरा वार्तालाप हुआ था । नाना से मैंने पृथक् में यो ही कहा था कि “नाना ! बहुत हुआ तो हम इन अस्थियों को गंगाजी में विसर्जित कर देंगे ।”

तब नाना का कहना था, “गोपाल ! मनुष्य के मर जाने पर उसका प्रेत अथवा उसकी भस्मी का किस प्रकार क्या करना है, मृतक की दृष्टि से इसका कोई मूल्य नहीं होता । परन्तु मनुष्य तो मृतक की भावनाओं को समझने और उनका आदर करने की चेष्टा करता है । हमारी निष्ठा पुराणपन्थी निष्ठा मात्र नहीं है । साधारण-रूप से हमारे यहाँ गंगाजी में ही अस्थि-विसर्जन किया जाता है । किन्तु फिर भी गंगा, सिन्धु, सरस्वती आदि सभी नदियों को हम पवित्र मानते हैं । हमारी मृत्यु राजनैतिक एवं राष्ट्रीय स्वत्त्व की है । तदनुसार हमारी राष्ट्रीय भावना को ध्यान में रखना भी स्वाभाविक है । फिर भी जब तुमने प्रश्न पूछा है तो उसका उत्तर देना परमावश्यक है । हमारे मन में दो कसक हैं, उनका ज्ञान आप लोगों को हो इसलिए ही सिन्धु नदी में अस्थि-विसर्जन का आग्रह हमने किया है । यह इच्छापत्र तो हमने मृत्यु के पूर्व ही लिख कर रख दिया है ।”

उन्होंने अपने वार्तालाप में कसक शब्द का प्रयोग किया था । अतः मुझे उत्कण्ठा हुई तो उनसे पूछा, “अपनी कसक के बारे में तो आपने बताया ही नहीं ।”

नाना बड़े क्षोभ से बोले, “हिन्दूराष्ट्र की भूमिपर हिन्दू रस का गोपण करने पड़ा हुआ यह पाकिस्तान । स्वतन्त्रता और पृथक् जीवनरूपी राक्षस एवं जल मिश्रण ही जन्मे अवशिष्ट हिन्दुस्थान को अपमानित करने का उपक्रम प्रारम्भ कर दिया है । हमने स्वयं ने सम्बन्धित बातों तक ही विचार किया क्योंकि हमारी मर्यादा उतनी ही थी । गांधीजी के देहान्त के बाद यदि किसी ने उनका अपमान किया है तो वह पाकिस्तान ने ही किया है । तुम्हें जिन्ना का शोक-सन्देश स्मरण है ?”

एकता के लिये हिन्दुओं को दबाये रखा और इस प्रकार मुसलमानों की स्वतन्त्र एवं पृथक्तावादी मनोवृत्ति में निरन्तर वृद्धि के कारण बने। उन गांधी के प्रति कम से कम उनकी मृत्यु के बाद तो वे कृतज्ञता-ज्ञापन कर अपने कर्तव्य का पालन करते ? विभाजन से पूर्व गांधीजी को यदि हिन्दुस्थान का नेता कहा जाता तो भी उसमें उनका अपमान नहीं था। क्योंकि अन्त में पाकिस्तान ने इसी भूमि पर जन्म लिया था और कृतज्ञता की भावना से मुस्लिम राष्ट्र को भी गांधी को अपना राष्ट्रपिता मानना चाहिये था। इसलिये जिस राष्ट्र में गांधीजी केवल हिन्दू के नाते अपमानित हुए हैं उस हिन्दू द्वेप पर खड़े हुए राष्ट्र को तोड़कर सम्पूर्ण सिन्धु नदी अपने ध्वज के नीचे आने के बाद उसमें हमारी अस्थियाँ विसर्जित की जायें यही हमारी इच्छा है।”

मैंने कहा, “मरते समय गांधीजी ने ‘हे राम’ बोला था। क्या ऐसा प्रचार गांधीजी के शिष्यों ने नहीं किया ? तब यदि जिन्ना ने उन्हें हिन्दुओं का नेता कहा तो क्या गल्ती की ?”

नाना बोले, “शिष्य द्वारा गुरु को पराजित करने का यह पहला ही उदाहरण नहीं है गोपाल। गांधीजी या तो उनको समझे नहीं या फिर वे दोगी थे। सीधा-सा तथ्य विचारणीय है। राम-रहीम, कृष्ण-करीम, ईश्वर-अल्ला इस प्रकार साथ-साथ नामोच्चारण में ही जिस व्यक्ति ने अपना जीवन व्यतीत किया हो वह व्यक्ति मरते समय रहीम छोड़कर केवल राम कहे, करीम छोड़कर केवल कृष्ण कहे या अल्ला छोड़कर केवल ईश्वर कहे और मरते समय तो केवल राम नाम ही सच्चा है ऐसा मानो लोगों को कहे क्या शिष्यों का यह प्रचार गांधीजी पर कठोर अन्याय करने वाला नहीं ? गांधीजी को यदि विचार करने का अवसर होता तो वह राम ही क्यों कहते, रहीम क्यों नहीं बोलते अथवा राम और रहीम क्यों नहीं बोलते ? केवल हिन्दुओं की भवनाओं को उभारने के लिये उनके भक्तों ने गांधीजी के मुख में सहसा ‘राम’ शब्द ठूस दिया। और वे चाहे कुछ भी उपदेश देते रहे हो अन्त में वे थे हिन्दू ही। मुस्लिम विश्व के ध्यान में यह बात बिठाने के लिए मुस्लिम राष्ट्र के नेताओं ने उनको केवल हिन्दुओं का नेता बनाकर उनका अपमान किया है। यह कसक हमारे मन में है, हमारे शरीर में है इसलिये हमारी हड्डियों में भी उसका अस्तित्व रहने वाला है। स्वतन्त्र सिन्धु नदी के जल में निमग्न होने के बाद ही वह प्रवाहित हो सकता है।”

मैंने पूछा, “आपकी दूसरी कसक कौन-सी है ?”

“गांधीजी की भस्मी का क्या हुआ ? इसका तुन्हें कुछ स्मरण है ?”

“हाँ, उसे ससार की सभी प्रमुख नदियों में विसर्जित किया गया।”

“ठीक है। उनकी भस्मी को ससार की प्रमुख नदियों में विसर्जित करने की

योजना भारत सरकार की थी। विदेशियों की धार्मिक भावनाओं का हिन्दुस्थान ने आदर किया है यह ज्ञात हो जाने पर किसी भी देश की किसी भी नदी में उस भस्मी को विसर्जित करने में किसी प्रकार की कटिनाई नहीं आई। किसी भी नदी में उस भस्मी के विसर्जित किये जाने से उस नदी का जल अपवित्र हो जावेगा, ऐसी किसी भी देश के किसी भी निवासी ने दुर्भावना व्यक्त नहीं की।

“और पाकिस्तान।” नाना बड़े झुन्ध से बोल रहे थे, “श्री श्रीप्रकाश उस समय वहाँ भारत के उच्चायुक्त थे। उन्होंने बड़ी निराशा के-से स्वर में कहा कि “पाकिस्तान सिन्धु नदी में गांधीजी की भस्मी विसर्जित करने की अनुमति नहीं दे रहा है।” मानो वह भस्मी कोई इस प्रकार शस्त्रास्त्र हो जिसके प्रवेश पर पाकिस्तान को आपत्ति होना स्वाभाविक है। सम्भवतया पाकिस्तान किसी अवसर पर शस्त्रास्त्र जाने की अनुमति दे देता क्योंकि उसमें प्रश्न भावना का नहीं, अपितु राजनीति का होता है। किन्तु यहाँ तो प्रश्न भावनाओं का था वह भी हिन्दू भावनाओं का। अपनी दृष्टि से उन्होंने हिन्दुओं की भूमि पर अपने लिये एक “पाक” अर्थात् पवित्र स्थान निर्माण किया था, उस पर वे चिपक कर बंटे थे। उस पवित्र स्थान का पवित्र जलप्रवाह एक काफिर की राख से अपवित्र हो जाता, ऐसा वे क्यों करने देते। “हमारे पवित्र मुस्लिम राज्य में हिन्दुओं के नापाक तीर-तरीके हमें सह्य नहीं” ऐसा तक कहने की उद्दता पाकिस्तान में पनपने लगी।

“हमारी वारणा थी कि हमारा शासन गांधीजी की अस्थियों के कुम्भ को सिन्धु में विसर्जित करने के लिये सुरक्षित रखेगा और जब भी अवसर सुलभ होगा उसमें विसर्जित कर देगा। किन्तु पाकिस्तान की अस्वीकृति को किसी प्रकार का अमान नहीं माना गया। यद्यपि भारत को इस बात से सबसे अधिक चिढ़ उत्पन्न होनी चाहिये थी कि जिन कांग्रेसियों ने पाकिस्तान के निर्माण के लिये अपने दो-दो हाथों से मत्त प्रदान किये थे, उन गांधीजी के शिष्य कहलाने वालों को जिन्होंने सद्भावना से ही पाकिस्तान दे दिया था, उनकी भावनाओं को पाकिस्तान के उस दुष्कृत्य से किसी प्रकार को ठेस ही नहीं लगी। वर्षों तक जिनकी अस्मिता को अस्तित्वहीन कर दिया गया हो उनको पाकिस्तान द्वारा किया हुआ वह अपमान कोई अपमान ही प्रतीत नहीं हुआ। किन्तु जो कुएं में नहीं है वह डोलची में कैसे आ पावेगा। सत्य की रक्षा करने का अभिप्राय अर्थात् सफुचित वृत्ति की यह शिक्षा जिनके कानों में निरन्तर पड़ती रही हो उनको मानापमान की भावना क्या समझ में आवेगी। अहिंसा ही जीवन का नवीञ्च तत्त्व है इसका उपदेश देते हुए कयूरता अथवा भययुक्त व्यवहार को ही अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में उच्च तत्त्व का चिन्ह मानने लगे। गांधीजी को अस्थियों का जो अपमान हुआ है उसका बदला भी सिन्धु नदी के उस पवित्र जल

में प्रवाहित करने से ही पोया जा सकेगा। फिर चाहे कभी वह जल का प्रवाह रक्त का प्रवाह ही क्यों न बना रहे उनके बाद ही यह अस्त्य-विसर्जन हो यही हमारी इच्छा है।”

मैंने पूछा, “नाना ! क्या हम कभी अपमान की चोट को समझेंगे भी ?”

नाना बोले, “ऐसी बात नहीं। अपमान की चोट, यह भी एक प्राकृतिक प्रक्रिया होती है। मनुष्य का ऐसा स्वभाव है। यदि ऐसी भावना विद्यमान न होती तो तब गांधी-न्याय के बाद महाराष्ट्र में अग्निकाण्ड हो सकते थे ? इनने लोग जो मारे गये क्या धैर्य हो सकता था ? हेतु का आरोप यदि हम न लगावें तो हमें भगना पड़ेगा कि जो लोग गांधी को देवता समान मानते थे उनकी दृष्टि में एक ब्राह्मण द्वारा गांधी की हत्या हुई इस लिये उन्होंने सम्पूर्ण ब्राह्मण जाति से उगवा प्रतिगोध लेने का निश्चय लिया। कल्पना करो, यदि लोगों के मन में यह भावना भरी भरी होती कि अपना देग अर्थात् भारतमाता जननी एवं देवीस्वरूप है तो यही अस्मिता जननी एवं देवीस्वरूपिणी इस भारतमाता के सङ्घटित होते समय घषक उठती और पाकिस्तान न बनने देने के लिये विकराल रूप धारण कर लेती। पाकिस्तान ने सिन्धु नदी में गांधी की मस्मी को विसर्जित करने नहीं दिया, उमन हमारा अपमान हुआ है इसका भी यदि सकेत हमारे नेताओं ने किया होता तो भारतवासी पाकिस्तान को शिक्षा देने के लिये सहज्रादपि भुजाओं में शस्त्र-पाण्य कर अपने अपमान का प्रतीकार करने के लिये सन्नद्ध हो जाते।

“निदान, महाराष्ट्र में तो यह अनुभव नया नहीं है। सम्भाजी की मृत्यु के बाद दक्षिणस्थित औरंगजेब की सत्ता को इन्हीं लोगों के पूर्वजों ने ही तो तग कर दिया था। मनुष्य में प्रतीकार की भावना तो विद्यमान रहती ही है उसको मोड़ देने वाला कुशल नेता होना चाहिये। वह दिशा यदि मिल जाय तो इसी अस्मिता के बल पर सारे भारतवर्ष की रक्षा कर पाना संभव है।”

“क्या आपने इस विषय पर नथूराम से वार्तालाप किया था ?” मैंने उनसे पूछा।

वे बोले, “ठीक इसी विषय पर तो नहीं। परन्तु हम सदा विचार-विमर्श करते रहते हैं। क्यों, “तुम्हारा पूछने का अभिप्राय क्या है ?”

“मो हीट्ट आप सब को दोष देते हैं। परन्तु आप स्वयंसेवकों की ऊँची श्रेणी के स्वयंसेवक प्रतीत होते हैं। इस लिये मैंने पूछा था।”

“मैं तुम्हारा अभिप्राय नहीं समझा।”

“परसों ही इस बात पर मेरी नथूराम से चर्चा हुई थी। जिस प्रकार आपने सूत्र रूप में बात बताई वैसे ही उन्होंने भी कहा था। यदि कुछ अन्तर था

तो वह केवल वाक्य-रचना का ही। एक विचार, एक आचार और एक उच्चार यह सधीय प्रणाली आप दोनों में शतश चरितार्थ हुई है। इससे मुझे कुतूहल हो रहा था।”

नाना हँस पड़े। कहने लगे, “विचारों के सम्बन्ध में यदि पूछोगे तो देखोगे कि अनेक बार हमारे विचार एक जैसे ही होते हैं। यह पिछले चार-साढ़े चार वर्षों का हमारा अनुभव है। ऐसा बहुत बार हुआ है कि नथूराम ने कही से अग्र-लेख लिख कर भेजा हो और मैंने उसी तरह का अग्रलेख लिखकर भुजित किया हो। और यदि सघ के सम्बन्ध में कहोगे तो ‘पतत्त्वेप कार्या नमस्ते नमस्ते।’ इस प्रतिज्ञा की कृति के साथ कहने वाले स्वयंसेवक हम दोनों ही हैं।”

मैं मुस्कुराया।

“गोपाल। मुझे तुमसे एक प्रश्न करना है। मैं समझता हूँ कि प्रश्न करने का मेरा अधिकार भी है।” उत्तेजित से नाना ने कहा।

“नाना। आपका अधिकार न भी हो तो भी आप प्रश्न पूछिये।”

वे बोले, “गधे। मेरा इतना समय क्यों बरबाद किया? तुमने पहले क्यों नहीं बताया कि इस विषय पर तुम नथूराम से वार्तालाप कर चुके हो।”

“नाना आपको कोई कही की गाड़ी थोड़ी पकड़नी है जो मेरे वार्तालाप से छूट जाती। फाँपी ही तो चढ़ना है, वह समय टलने नहीं देंगे। क्यों व्यर्थ में खिन्न होते हैं।”

“गोपाल। तू बहुत बोलने लगा है। पड़ोस की कोठरी खाली है। जमादार को यदि कह दिया जाय तो वह तुरन्त तुमको वहाँ बन्द कर देगा।”

मैंने कहा, “नाना। यदि कल्पना ही करनी है तो फिर ऐसे ही करेंगे कि आप अपनी कोठी खाली करो मैं उनमें आकर रह लूँगा। आप लोगों का नेतृत्व कर सकूँगे। आप अपने स्वप्नों का हिन्दू राष्ट्र कुछ ही वर्षों में खड़ा भी कर लेंगे। वम में वम उनकी योजना तो बना ही सकेंगे।”

फाँपी की छाया तले कालकोठरी में हुए गम्भीर सवादों के मध्य कभी-कभी उन प्रश्नों का उपहान भी हो जाता था, इनको आभासी से सच नहीं समझा जा सकता। हिन्दु उन भूमिगत में चलने-फिरने में मनुष्य अन्यस्त हो जाता है और रजभूमि पर भूमिगतों में जिन प्रकार की एक निश्चिन्ता की वृत्ति दृष्टिगोचर होती है वही वही भी दृष्टिगोचर होती थी। यह मैंने अपने ही नहीं, अपितु अन्य भी लोगों से सुना है।

सौभाग्यवश गम्भीरता को नाना ने कहा था, “मनुष्य की जमरता पर यदि तुम्हारी श्रद्धा हो तो फिर समझो कि तुम सौभाग्यवती ही हो। अपने बाह्य

सौभाग्यचिन्हों के साथ ही तुम चल-फिर सकती हो। उससे ही तुम्हें मेरे अस्तित्व का भान होता रहेगा।”

सी० चम्पूताई रानी लक्ष्मीबाई स्मारक मण्डल में बालकों की शाला में अघ्णपिका का कार्य करती हैं।

मित्रता कितनी दृढ़ होनी चाहिये ? ‘राजद्वारे श्मशाने च’ स्थिर रहने वाली मित्रता सच्ची होती है ऐसा सुभाषित है। इसको यदि चरितार्थ में देखना हो तो वह नथूराम और नाना के मध्य टिकी हुई अलग मित्रता को देखा जा सकता है। यह भी सयोग की बात है। विपत्ति समुपस्थित होने पर कौन सहायता के लिये सम्मुख आता है ? इसका उत्तर नाना ने अपनी मित्रता से निभाया है। तुम आगे बढ़ो, मैं तुम्हारा अनुगमन करूँगा ऐसा कह कर पीछे और पीछे की ही ओर खिसकने वाले लोग गांधीजी के सत्याग्रह में भी अनेक हुआ करते थे।

दि० ३१-१-४८ को नाना ने बम्बई से दिल्ली एक तार भेजा था। उसमें नथूराम को अपने वचाव की ओर ध्यान देने के लिये आग्रह किया गया था। वह तार उनके प्रति आरोपित अभियोग में साक्षी के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता था। किन्तु नाना तो नथूराम के पग पर पग रखने के लिये ही सदा उद्यत रहने वाले व्यक्ति थे और इस प्रकार की उन्होंने सिद्धता भी रखी थी। नाना ने वह तार पहले ही लिखकर श्रीमती मनोरमा साठवी के माध्यम से भेजने का प्रवन्ध किया था, ऐसा सुनने में आया था। श्रीमती मनोरमा की गवाही नहीं हुई थी। क्योंकि अभियोजकों का कथन था कि वह विरुद्ध जाने वाली अर्थात् होस्टाइल गवाही है।

मैंने १९६१ में अपनी सजा के सम्बन्ध में प्रवन्ध आदि के विषय का एक आवेदन मुद्रित करके सर्वोच्च न्यायालय को भेजा था। परिमाण में वह बहुत बड़ा हो गया था अतः उसके साथ एक समर्पण पत्रिका भी नत्थी कर दी गई थी। आवेदन की क्रम संख्या पिटीशन सं० १६, १९६२ थी।

जब उसको ग्रन्थ का रूप दिया गया तो मैंने उसके साथ अपना समर्पण भी प्रस्तुत किया। मैंने उसे नथूराम और नाना को समर्पित किया था। नथूराम के गुणों की प्रशंसा तो न्यायालय ने भी की थी। उनके गुणों के लिये उनका और नाना ने जो उनके साथ अन्त तक मित्रता निभाई उनकी इस दृढ़ मित्रता की भावना के लिये उनको भी मैंने वह समर्पित किया था। उस समर्पण में मैंने लिखा था—

“आदरणीय वन्धु नथूराम को और नथूराम के मित्र नारायण दत्तात्रय आपटे को जिन्होंने जिस प्रकार सुख के दिनों में मित्रता निभाई उसी प्रकार दुःख के दिनों में भी वे उससे विमुख नहीं हुए, जो अन्त में नथूराम के साथ हाथ में हाथ देकर, कबू से कबा लगाकर ससार की दृष्टि में सर्वाधिक अमूल्य वस्तु प्राणों का भी उत्सर्ग कर जात और अज्ञात विश्व को जोड़ने वाले सेतु पर खड़े हुए। जिन्होंने नथूराम के साथ मनीषि वकिम के मन्त्रमुग्ध करने वाले ‘वन्दे मातरम्’ शब्दोच्चारण के साथ इन चर्मचक्षुओं के दृष्टिमान विश्व से विदा ली,

उनको सादर समर्पित।

★ ★ ★

## आठ

### अभियुक्त विनायक दामोदर सावरकर

गांधी-वध के अभियोग में देहली में विधेय न्यायालय के सम्मुख प्रत्यक्ष में नौ अभियुक्तों को लाया गया था। उन नौ अभियुक्तों में से आठवें अभियुक्त थे स्वातन्त्र्यवीर श्री विनायक दामोदर सावरकर।

किसी अवैधानिक कृत्य को सम्पन्न करने के लिये जब एक से अधिक व्यक्ति उसमें सम्मिलित हो कर गुप्त सकेतो द्वारा कार्य निष्पन्न करने की योजना बनाते हैं उसे पडयन्त्र मान लिया जाता है। वे दो या उससे अधिक व्यक्ति उस पडयन्त्र के घटक माने जाते हैं। अतः पडयन्त्र के एक घटक को जो दण्ड दिया जावेगा अन्य घटक भी उसी दण्ड के पात्र समझे जावेंगे।

इस पडयन्त्र में प्रत्यक्षरूपेण असंपृक्त व्यक्ति से भी यदि किसी पडयन्त्रकारी को उन दिनों कोई साहाय्य प्राप्त हुआ हो तो उस व्यक्ति को भी उस पडयन्त्र में सम्मिलित समझा जाता है। वह साहाय्य फिर उस अवैध घटना के समय एवं स्थान पर उपस्थिति का हो, धन आदि का हो, शस्त्र प्रदान का हो अथवा अन्य भी जिस किसी प्रकार का हो, उस सहायक का उस पडयन्त्र में भाग एवं हाथ है ऐसा माना जाता है। किसी व्यक्ति ने उन भावी पडयन्त्रकारियों को यदि किसी प्रकार का आशीर्वाद दिया हो अथवा उनके किसी कार्य के प्रति शुभकामनायें व्यक्त की हो, तो भी वह शुभचिन्तक उस पडयन्त्र का घटक मान लिया जाता है।

किसी को पडयन्त्र का घटक सिद्ध करने के लिये न्यायालय मूलतः दो बातों को देखता है। एक तो यह कि किसी द्वारा सम्पन्न किसी अवैध कृत्य का उस दूसरे व्यक्ति को जिसको कि घटक सिद्ध करना है, कार्य सम्पन्न होने से पूर्व उस कृत्य का आभास था और यदि उसको ज्ञान था तो उसके उस



कृत्य को सम्पन्न करने के लिये उसने किसी प्रकार की सहायता प्रदान की थी ? केवल ज्ञान हो किन्तु उस घटना का वह घटक न हो उसको पडयन्त्र का भागी-दार नहीं माना जाता । इसी अभियोग में इसका उदाहरण है प्राध्यापक जगदीश चन्द्र जैन । उन्होंने अपनी साक्षी में कहा था कि इस पडयन्त्र के सम्बन्ध में मदनलाल ने उनको पूर्व सूचना दी थी । दि० २०-१-४८ को मदनलाल ने गावी-जी की प्रार्थना-सभा में वम का विस्फोट किया यह समाचार उन्होंने २१-१-४८ को समाचार-पत्रों में पढ़ा या और वे भी इस सम्बन्ध में मोरारजी देसाई से मिले थे और मदनलाल ने जो कहा या वह उन्हें उन्होंने बताया था, ऐसा उन्होंने अपनी साक्षी के समय कहा । किन्तु वह पूर्वज्ञान प्राध्यापक जगदीशचन्द्र जैन को इस पडयन्त्र का घटक सिद्ध करने के लिये अपर्याप्त था ।

हम यह कल्पना भी यदि कर लें कि प्राध्यापक जैन ने अपने वक्तव्य के अनुसार मदनलाल ने उनसे जो कुछ कहा था उन्होंने वह सब किसी को नहीं बताया किन्तु पुलिस को किसी प्रकार उस बात का ज्ञान हो गया और फिर प्राध्यापक जैन ने भी उसकी पुष्टि कर दी तो भी इस स्थिति में भी श्री जैन का पूर्वज्ञान उन्हें पडयन्त्र में सम्मिलित करने के लिये पर्याप्त नहीं समझा जा सकता था । क्योंकि उनका इस कृत्य का पूर्व ज्ञान और उस पर भी उनका मौन धारण करना इस घटना की उद्देश्यपूर्ति में कहीं भी किसी प्रकार भी सहायक नहीं सिद्ध किया जा सकता था, उसके लिये कोई प्रमाण भी नहीं था ।

दूसरी बात जो न्यायालय देखता है वह है पडयन्त्रकारियों को सहायता देना । वह सहायता फिर धन की हो, साहित्य की हो, शस्त्रास्त्र की हो अथवा केवल पडयन्त्रकारियों के प्रति शुभकामना मात्र हो । यदि यह सिद्ध भी हो जाय कि पडयन्त्र में सहायता दी गई तो फिर यह भी देखना होता है कि वह सहायता पडयन्त्र के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हुई अथवा नहीं । यदि छानबीन करने के बाद यह सिद्ध हो जाय कि अमुक व्यक्ति की अमुक प्रकार की सहायता पडयन्त्र के उद्देश्य में सफलता के लिये हुई है तो फिर उस व्यक्ति को भी पडयन्त्रकारी मान लिया जाता है, अन्यथा नहीं । इस प्रकरण में इसी अभियोग का एक उदाहरण है ।

अभियोग के मध्य सरकारी पक्ष की ओर में दो साक्षियों, श्री दीक्षित और श्रीकृष्ण जीवन को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया । उन्होंने अपनी साक्षी में बताया कि उन्होंने नाना आपटे को शस्त्रास्त्र क्रय करने के लिये द्रव्य रूप में सहायता की थी । शस्त्रास्त्र के क्रय के लिये सहायता करना स्वतन्त्र रूप में एक अवैधानिक कृत्य हो सकता है, किन्तु इस विशिष्ट उद्देश्य के लिये उन्होंने सहायता की थी अथवा उनकी सहायता का इसके लिये उपयोग किया गया यह आरोप सिद्ध न हो सकने के कारण उनको पडयन्त्र का घटक अथवा पडयन्त्रकारी नहीं

माना गया। पूर्व तैयारी में प्रस्ताव विस्तार में उल्लेख किया जा चुका है अतः यहाँ संक्षेप में उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया गया है।

दि० २३-५-४८ को पहले-गहलू अभियुक्तों को न्यायालय में लाया गया था। उन दिन और उनके पचासों दिन बाद भी प्रारम्भिक व्यवस्था की दृष्टि में ग्यामात्र्य भंग था। अभियुक्तों पर दि० २१-६-४८ को आरोप लगाये गये। पहले दिन तीन अभियुक्त क्रमांक ४, दिगम्बर, रामचन्द्र बज्जे को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। गंगाधर बट्ट सरकारी गवाह बन गया था अतः उसे क्षमा प्रदान की गई तथा अभियुक्तों की सूची में वे पृथक् कर दिया गया। परिणामस्वरूप उनके आगे के अभियुक्तों की क्रमशः भी परिवर्तन हो गया। अब सावरकर-जी अभियुक्त क्रमांक ८ ने अभियुक्त क्रमांक ७ हो गये। सरकार की ओर से प्रमुख चीफ़ श्री दपनरी ने न्यायालय के सम्मुख अभियोग की रूपरेखा प्रस्तुत की।

( ग्रन्थ ६, पृष्ठ ४६ )

### श्री सावरकरजी पर लगाये गये आरोप

सावरकरजी के विरुद्ध अभियोजकों का जो कहना था वह मुद्रित अभिलेख के भिन्न पन्नों में अलग-अलग आया है। उन सब आरोपों को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है —

“नयूराम और नाना आपटे का सावरकरजी से घनिष्ठ परिचय था। नयूराम और नाना आपटे द्वारा संचालित “हिन्दूराष्ट्र” दैनिक में सावरकरजी और उनकी विचारधारा का चित्रण हुआ करता था। नयूराम और नाना आपटे को सावरकरजी ने आर्थिक सहायता दी थी। नयूराम और नाना आपटे का सावरकरजी से परस्पर पत्रव्यवहार होता रहता था। गांधी-वचन का ज्ञान सावरकरजी को घटना से पूर्व ही था। इस हत्या की पूर्ति में सावरकरजी ने भी हाथ बटाया था। सावरकरजी के साथ इस घटना में सम्बन्धित अन्य कुछ अभियुक्तों की भेंट हुई थी। सावरकरजी ने इस पड़यन्त्र के घटकों को शुभकामना एवं आशीर्वाद प्रदान किया था। अभियुक्तों के दिल्ली पहुँचने पर भी दि० १९-१-४८ को टेली-फोन द्वारा श्री सावरकरजी से सम्पर्क स्थापित करने का यत्न किया गया था।”

अभियोजकों ने इसमें एक और तीखापन भी जोड़ दिया था। उनका तो यहाँ तक कहना था कि अभियुक्त क्रमांक ७, विनायक दामोदर सावरकर ने ही नयूराम और आपटे के माध्यम से गांधी की हत्या करवाई थी। ये दोनों व्यक्ति सावरकर को गुरु के स्थान पर मानते थे। वे सदा मार्गदर्शक के नाते उनका आदर करते रहते थे। परदे के पीछे रहकर सावरकरजी ने यह सारा कृत्य करवाया था।

अभियोजकों ने न्यायालय को बचन दिया था कि वे अपने आरोपों को सप्रमाण सिद्ध करेंगे।

अभियोजको के कथनानुसार यदि आरोप सिद्ध हो जाता तो इन घटना का सम्पूर्ण दायित्व सावरकरजी पर आने वाला था और फिर यह भी निश्चित था कि मृत्युदण्ड के अतिरिक्त इससे कम उनको दण्ड भी नहीं दिया जाता ।

अभियोग सिद्ध करने का कार्य आरम्भ हुआ और सावरकरजी के विरुद्ध एक-एक करके प्रमाण प्रस्तुत किये जाने लगे । कालक्रमानुसार उन प्रमाणों का सम्बन्ध जोड़ा जाने लगा ।

### अभियुक्तों के साथ पत्र-व्यवहार

गांधी-वध के ठीक अगले दिन दि० ३१-१-४८ को पुलिस अधिकारी श्री नागरवाला और श्री प्रचान ने सावरकरजी के घर की तलाशी ली । वहाँ से उन्होंने पत्र-व्यवहार के कई ढेर और कुछ अन्य कागजात अपने स्वाधीन किये । वह पचनामा प्रमाण क्र० पी० २४४ सजा से न्यायालय में प्रस्तुत है ।

( अभिलेख ग्रन्थ ४, पृष्ठ १८२-८४ )

पत्र-व्यवहार की १४३ फाइलें थी । उनमें लगभग दस हजार कागजात होंगे । इन सबकी छानबीन में गुप्तचरविभाग को तीन मास लग गये ।

उन पत्रों में नथूराम और आपटे के सम्मिलित तथा अलग-अलग लिखे हुए पत्र भी मिले । बढगें के भी दो-तीन पत्र थे । उन सब पत्रों के ढेर में ने प्रमाण के लिये २०-२५ पत्र न्यायालय में प्रस्तुत किये गये । उनको क्रमांक सख्या २७७ से २९९ दी गई । उनमें सावरकरजी द्वारा लिखित पत्रों का भी निर्देश था ।

जब साक्षी से पूछा गया कि नथूराम के लिये कितने पत्र मिले तो उन्होंने बताया कि उनके द्वारा लिखित १०१ पत्र हैं । क्योंकि वे पत्र प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत नहीं किये गये थे इस लिये न्यायाधीश ने इस प्रश्न एवं इसके उत्तर को भी कार्य-वाही में अंकित न करने का आदेश दिया ।

यद्यपि पत्र-व्यवहार में किसी प्रकार की कोई भी बात आपत्तिजनक नहीं थी परन्तु पत्रों के प्रमाणों से सरकारी पक्ष यह सिद्ध करना चाहता था कि १—नथूराम और आपटे की सावरकरजी से घनिष्टता थी और उसी प्रकार बढगें का भी उनसे परिचय था, २—नथूराम और आपटे सावरकरजी के साथ दौरे पर जाया करने थे और ३—नथूराम और आपटे के केवल वचन-पत्र के आधार पर ही सावरकरजी ने उन्हें १५ हजार रुपये ऋण दिये थे ।

इन आरोपों में से किसी एक को भी सावरकरजी ने अस्वीकार नहीं किया । उन्होंने प्रत्येक बात का स्पष्टीकरण दिया था । बढगें के पत्रों को पी० ८७, ८८ और ८९ प्रमाण दिया गया था । बढगें हिन्दूधर्म का कार्यकर्ता था । हिन्दू-धर्म का यह सर्वोच्च एवं अर्चनीय दोनों प्रकार का कार्यकर्ता रहा । बढगें शम्भू-

भण्डार का संचालन करता था। वडगे का कथन था कि १९४७ तक उस शस्त्र-भण्डार में ऐसे शस्त्र रखे जाते थे जिन पर लैसेन्स आवश्यक था। वडगे के द्वारा लिखे गये पत्रों में दो पत्र सन् १९४३ के थे। उन पत्रों में उसने सावरकरजी को अपने शस्त्र-भण्डार का विवरण प्रस्तुत करते हुए उनसे उसके लिये आर्थिक सहायता का निवेदन किया था।

सावरकरजी ने दि० २०-११-४८ को न्यायालय में अपना वक्तव्य दिया था। वडगे के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था—

“मैं यह प्रचार करता था कि शस्त्रों पर से रोक-प्रणाली को समाप्त किया जाय। शस्त्रों को बेचने और उनके प्रयोग के लिये मुक्तहस्त से लाइसेंस प्रदान किये जायें और युवकों को सैनिक शिक्षा दी जाय। मैं इस प्रकार का प्रचार किया करता था। हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष के नाते शस्त्रवितरण-कार्य का विवरण मेरे पास आया करता था और इसके लिये आर्थिक सहायता की मांग करने में सम्बन्धित अनेक पत्र मेरे पास आते रहते थे। (ग्रन्थ २, पृष्ठ १९१)

वडगे का तीसरा पत्र दि० २६-३-४७ का था। हिन्दूमहासभा के धर्मई कार्यालय से विभिन्न पुस्तकालयों को पुस्तकों की भेंट दी जाया करती थी। वडगे शस्त्र-भण्डार के साथ-साथ एक पुस्तक-भण्डार भी चलाता था। उसकी सहायता के लिये ३६ रुपये के ग्रन्थ और ‘तुकाराम गाथा’ की दो प्रतियाँ तथा अन्य भी कई ग्रन्थ भेजे गये थे। वडगे का वह पत्र उन ग्रन्थों की साभार पहुँच की सूचना थी। सावरकरजी ने कहा, “अभियोजकों के हाथों में मेरे पत्रों की फाइलें हैं। उसमें इस प्रकार अनेक प्राप्ति-पत्र प्राप्त होंगे। उनमें यह प्रतीत होगा कि यह प्रतिवर्ष सैकड़ों रूपयों के ग्रन्थ भेंट के रूप में भेजा करता था। प्रस्तुत अभियोग से सामने लाये गये प्रमाण का तनिक भी सम्बन्ध नहीं है। पत्र-व्यवहार में आपत्तिजनक कोई बात नहीं है। यही मेरा कथन है।”

(ग्रन्थ २, पृष्ठ १९१)

सैनिकीकरण हिन्दूमहासभा का प्रमुख कार्यक्रम हुआ करता था। नाना आपटे उन दिनों नगर (अहमदनगर, महाराष्ट्र) में थे। उन्होंने वहाँ सैनिकीकरण और शस्त्रविद्या की शिक्षा का कार्य चलाया था। वे हिन्दूमहासभा के कार्यकर्ता थे। नगर में उस वार हिन्दूमहासभा के बहुमर्या में सदस्य निर्वाचित हो कर आये थे। वह सारा विवरण आपटे ने सावरकरजी को भेजा था। आपटे ने उस समय के गृहमन्त्री का, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का, अनुज्ञा से एक “रायफल क्लब” चलाया हुआ था। उन दिनों आपटे की नियुक्ति आनरेरी टेक्नीकल रिक्रूटिंग ऑफिसर के पद पर थी। आगे चल कर उन्हें हवाई

दल में 'किंग कमीशन' मिला था। आपटे के पत्रों में बहुत करके सैनिकीकरण के कार्य का वृत्तान्त और हिन्दूसभा के कार्य की चर्चा होती थी।

नाना आपटे का प्रमाण में लाया गया पहला पत्र दि० १३-२-३८ का था। (अमिलेख ग्रन्थ ५, पृष्ठ ९, प्रमाण डी २२) बम्बई के मुख्यमंत्री श्री खेर और गृहमंत्री श्री मुन्शी को नगर के जिला अधिकारी के माध्यम से रायफल क्लब के लिये अनुज्ञापत्र देने के लिये प्रार्थना करने का निर्देश उसमें है। आगे के पत्र में आपटे की जिले में संचार करके रायफल क्लब चलाने की मांग की प्रार्थना का निर्देश है। पूना के रायफल क्लब का उद्घाटन श्री न० वि० गाडगिल के द्वारा होने की सूचना भी १०-५-३९ के पत्र में है। ग्रन्थ ५, पृष्ठ १२, आगे चल कर इस सम्बन्ध में सावरकरजी से मार्गदर्शन की प्रार्थना की है। 'हिन्दूराष्ट्र' अग्रणी इन वृत्तपत्रों का जब विचार हो रहा था तब के, और यह पत्र लिखने के बाद के अनेक पत्र हैं।

नयूराम का पहला पत्र दि० २८-२-३८ का है। (ग्रन्थ ५, पृष्ठ १७) उस पत्र में उन्होंने कांग्रेस के ५७ वें अधिवेशन में हुए देशगौरव सुभाषचन्द्र बोस के अध्यक्षीय भाषण की समालोचना की है। जातीय समस्या, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रलिपि के सम्बन्ध में हिन्दुस्थान का दृष्टिकोण समझने के लिये विदेश में प्रचार, आर्थिक और औद्योगिक विकास, सामाजिक समस्या के तत्त्व का स्वीकार, अंग्रेजों से लड़ने के विषय में स्पष्ट चुनौती, राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल स्थापित करने का महत्त्व आदि प्रश्नों पर अपना मत व्यक्त करते हुए हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष के नाते सावरकरजी को भी क्या-क्या करना अपेक्षित है इस प्रकार का उल्लेख भी उस पत्र में किया गया है।

उसके बाद के अन्य पत्रों में भी हिन्दूमहासभा के कार्य का इतिवृत्त तथा उनसे दौरे पर आने के लिये प्रार्थना आदि बातें लिखी गई हैं। 'अग्रणी' जो कालान्तर में 'हिन्दूराष्ट्र' नाम से प्रचलित किया गया, के प्रारम्भ करने के उद्देश्य के विषय में भी पत्र लिखे गये। हिन्दू राष्ट्रदल के कार्य का विवरण आदि-आदि विषयों पर पत्र लिखे जाते रहे। इस प्रकार के पत्र सावरकरजी को नाना आपटे और नयूराम गोडसे दोनों ही लिखते करते थे। कभी-कभी दोनों मिल कर भी लिखते थे।

हिन्दूमहासभा के कार्यकर्ताओं में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा सावरकरजी के प्रति अधिक आदर-सम्मान की भावना होती थी। और सावरकरजी भी 'ये यया मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्' की नीति के आधार पर निष्ठावान कार्यकर्ताओं के प्रति अधिक प्रेमभाव रखते थे। 'अग्रणी' या 'हिन्दूराष्ट्र' नामक समाचार-पत्र के लिये नयूराम और नाना आपटे के मातृ वचनपत्र के आधार पर सावरकर-

जी ने उनको पन्द्रह हजार रुपये दिये थे। इस दैनिक पत्र की रीति-नीति का संचालन केवल नयूराम और नाना आपटे द्वारा ही हो, इस प्रकार की व्यवस्था अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों से कर लेनी चाहिये इस विषय में उन्होंने एक पत्र द्वारा उनको सूचित किया था। (पत्र दि० ४-४-४५, प्रमाणपी० ३०२, अभिलेख अन्व ४, पृष्ठ २२४)। इनमें से किसी एक बात को भी अस्वीकार करने की आवश्यकता सावरकरजी ने नहीं समझी और न ही उनको इन बातों को स्वीकार करने में किसी प्रकार के भय की प्रतीति होती थी। उन्होंने अपना स्पष्टीकरण देते हुए कहा—

“हिन्दू महासभा के अनेक कार्यकर्ता होते थे। नयूराम और नाना आपटे भी उनमें से ही थे। कार्यकर्ता के नाते मेरा और उनका परस्पर अच्छा परिचय था। मैंने उनके दैनिक पत्र को आर्थिक सहायता भी दी थी। न केवल उनको ही मैंने विक्रम और फ्री हिन्दुस्थान आदि अन्य समाचार-पत्रों को भी सहायता दी थी। नयूराम द्वारा लिखे गये पत्रों में इसका उल्लेख प्राप्त हो सकता है। दौरे पर जाने पर मेरे साथ अनेक लोग हुआ करते थे, उनमें से ये दो व्यक्ति भी होते थे। दैनिक पत्र की रीति-नीति निश्चित करने के विषय में यह बात उन्हीं दोनों के मन की थी। आपटे अथवा नयूराम से मेरा किसी प्रकार का अवैव सम्बन्ध था, इस प्रकार का प्रमाण आपको किसी भी पत्र में प्राप्त नहीं होगा।”

दैनिक पत्र के शीर्ष पर प्रकाशित होने वाला चित्र

‘अग्रणी’ या ‘हिन्दूराष्ट्र’ दैनिक पत्र के प्रथम पृष्ठ के शीर्ष पर सावरकरजी का चित्र प्रकाशित हुआ करता था। अभियोजकों ने इस बात का विशेष उल्लेख किया था। उनका कहना था कि इस चित्र को देखकर यह स्पष्ट होता है कि ‘अग्रणी’ की नीति से सावरकरजी की सहमति थी। सावरकरजी ने कहा, “समाचार-पत्रों में इस प्रकार के चित्र प्रकाशित करने की इस देश में सामान्य प्रथा-सी बन गई है। अनेक समाचार-पत्रों पर गांधीजी का चित्र प्रकाशित हुआ करता था। ऐसे पत्रों पर भी उनका चित्र प्रकाशित होता या जिनको कभी गांधीजी ने पढ़ा तो क्या, देखा भी नहीं होगा। पूना के सुविख्यात समाचार-पत्र ‘केसरी’ पर लोकमान्य तिलक का चित्र होता है। परन्तु उस पत्र की आज की नीति के लिए स्वर्गीय लोकमान्यजी की आत्मा उत्तरदायी है, ऐसा तो कोई अध्यात्मवादी भी आज किसी न्यायालय में ऐसा कहने का दुस्साहस नहीं करेगा। वास्तव में और न्याय की दृष्टि से भी नेताओं के चित्र प्रकाशित करने के लिए समाचार-पत्र का सम्पादक ही उत्तरदायी माना जाना चाहिये। जिन नेताओं का चित्र समाचार-पत्र के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होता है उन्हें उसकी नीति के लिए उत्तरदायी नहीं माना जाना चाहिए।”

अभियोजको का आरोप था कि नाना आपटे और नय्यराम दोनों ही सावरकर-जी को अपना गुरु मानते थे, अतः गांधी-वचन करने से पूर्व उन्होंने उनके साथ विचार-विनिमय अवश्य ही किया होगा, इसके उत्तर में सावरकरजी ने कहा, "अनेक अभियुक्त जिनको दण्ड प्राप्त हो चुका होता है, किसी न किसी धर्मोपदेशक के अनुयायी कहलाते हैं। किन्तु अपराध करने से पूर्व उन्होंने अपने गुरु से परामर्श किया होगा, इस प्रकार वा अभिप्राय निकालना क्या उचित एवं उपयुक्त है ? गांधीजी पर श्रद्धा रखने वाले अनेक व्यक्तियों ने जिन्हें उनका शिष्य कहा जाता था १९४२ में गुस्तेखेग अस्वाचार किया था। विदेशी राज के विरोध के लिए इस प्रकार का अस्वाचार उचित था अथवा अनुचित यह इस समय विचारणीय नहीं है। किन्तु केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गांधीजी ने इस प्रकार के अस्त्र-प्रयोग का निषेध किया था। किन्तु गांधीजी के उन शिष्यों के मार्गदर्शन में लोगों ने विप्लव किया, रक्तपात किया और ऐसा करते हुए वे लोग महात्मा गांधी की जय के नारे भी लगाते रहते थे। वे लोग जो गांधीजी के प्रति आदर व्यक्त करते हैं और अपना कार्य करते समय गांधीजी की जय भी बोलते हैं, अतः इसका अभिप्राय यह हुआ कि उन्होंने विदेशी घात-पात और लूटपाट करने के लिए गांधीजी से परामर्श किया ही होगा, ऐसा आरोप तो ब्रिटिश सरकार ने भी नहीं लगाया था। अभियोजको के प्रमाण—'ऐसा हुआ होगा' अथवा 'ऐसा होना सम्भव है'—इस प्रकार के सन्देहास्पद निष्कर्षों पर आधारित है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यो-ज्यो ठोस और प्रत्यक्ष प्रमाण मिलने असम्भव होते गये त्यों-त्यों अभियोजक विविध असम्बद्ध एवं असंगत तर्कों का आश्रय लेने लगे। इसको प्रतिष्ठा का प्रश्न समझ कर उसकी सुरक्षा के लिए वे इस प्रकार के अनुपयुक्त एवं तर्कहीन प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए उद्यत हुए हैं।"

### मदनलाल की प्रशंसा

अभियोजक चाहते थे कि प्रो० जगदीशचन्द्र जैन, श्री मोरारजी देसाई और अगद सिंह के कथन का एक भाग पार्श्वभूमि के रूप में श्री सावरकरजी के विरुद्ध प्रयुक्त किया जाय। डॉ० जैन का कथन था कि दिल्ली आने के एक-दो दिन बाद मदनलाल उनसे मिला था। इस प्रकार की एक भेंट के अवसर पर अगद सिंह थोड़े समय के लिए उनके समक्ष उपस्थित था। तब मदनलाल ने जो कुछ कहा था उसका सारांश डॉ० जैन ने बताया था। मदनलाल ने अहमदनगर में निर्वासितों के पुनर्वास की व्यवस्था के लिए एक सघ की स्थापना कर ली थी। करकरे उनको आर्थिक सहायता दिया करते थे। उस सघ ने अनेक स्वास्थ्य एवं वि-फोटक पदार्थ एकत्रित कर लिये थे। यह सब सामग्री को एक-

दन में छिपा कर रखा गया था। हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष वीर सावरकरजी को जब मदनलाल के क्रिया-कलाप का ज्ञान हुआ तो उन्होंने उसको अपने पास बुलवाया और उससे एक-दो घंटे तक चर्चा की। उन्होंने उसकी पीठ थपथपाई थी और 'चलने दो' इस प्रकार का उसको प्रोत्साहन प्रदान किया था। मदनलाल ने कहा था कि उन्होंने एक नेता को मारने का निश्चय किया है।

अगर्दासिंह बीच में ही आ गये थे। 'अहमदनगर के निर्वासितों के पुनर्वास की व्यवस्था के लिए हमने एक संघ स्थापित किया है,' इस कथन के पूर्व ही वह वहाँ से चले गए थे ऐसा श्री जैन का कथन था। अगर्दासिंह के कथनानुसार वह जब श्री जैन से पुन मिले तो उन्होंने उनको मदनलाल द्वारा बताई गई बात को बताया था।

श्री जैन ने बम्बई के चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट श्री आस्कर ब्राउन के समक्ष दि० २६-२-४८ को बयान दिया था। जब उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछा गया तो श्री जैन ने कहा, "मैंने उस बयान में ऐसा नहीं कहा था कि मदनलाल ने उनसे कहा था कि उसने लोगों से शस्त्र एकत्रित कर जंगल में छिपा कर रखे हैं और वीर सावरकर ने उसको बुलाकर प्रोत्साहित करते हुए उसकी पीठ थपथपाई थी।" उनका कहना था कि उन्होंने उस वक्तव्य में अगर्दासिंह का भी उल्लेख नहीं किया था। (ग्रन्थ १, पृष्ठ १३३)

श्री जैन ने अपने बयान में कहा था कि मदनलाल की बात को उन्होंने दि० २१-१-४८ को श्री मोरारजी देसाई के समक्ष रखा था श्री मोरारजी देसाई ने अपने बयान में इसका उल्लेख किया था। यदि उन दोनों के कथन से सावरकरजी का सम्बन्ध हो सकता है तो केवल यही कि उसने जब अहमदनगर में पुनर्वास शिविर की स्थापना का उल्लेख किया होगा तो उसके लिये उन्होंने उसकी पीठ थपथपाई होगी। किन्तु अगर्दासिंह को अपनी साक्षी में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता आ पड़ी होगी। अगर्दासिंह का कहना था कि मदनलाल ने श्री जैन को कहा था कि इस पडयन्त्र की पृष्ठभूमि में सावरकरजी हैं और यह बात श्री जैन ने उनको बताई थी। (ग्रन्थ १, पृष्ठ १४८)

सावरकरजी ने न्यायालय के सम्मुख यह सिद्ध किया था कि यह साक्षी सारहीन एवं अविश्वसनीय हैं। उनके कथन का सारांश निम्न प्रकार है —

"मूलतः इन तीनों साक्षियों में से एक ने भी अपने-अपने बयान तथा परस्पर एक-दूसरे की बातों को कही भी कलमबन्द कर सुरक्षित नहीं रखा था और मोरारजी देसाई ने भी स्वीकार किया है कि उन्होंने भी कभी इस प्रकार की किसी बात को लिखित रूप में अंकित कर सुरक्षित रखा हो। स्मृत 'सील' प्राणी



जैसे फिसलती है। मनुष्यस्वभाव विस्मरणशील है, तथा सुनी-सुनाई बात कितनी विकृत हो जाती है यह अगदसिंह की साक्षी से स्पष्ट परिलक्षित होता है। सम्भावना यही है कि श्री जैन और मदनलाल में परस्पर लेन-देन का सम्बन्ध होने के कारण कही भविष्य में मदनलाल से उनका सामीप्य सिद्ध न हो जाय इस भय से बचने के लिये श्री जैन तुरन्त गृहमन्त्री के पास गये होंगे क्योंकि उस दिन के समाचार-पत्रों में इस प्रकार का समाचार प्रकाशित हुआ था कि यह कोई पडयन्त्र होगा। श्री जैन ने इस अवसर से लाभ उठाने के लिये और स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने की दृष्टि से यह कथा रची होगी। मदनलाल से षडग्रन्थकारियों के नाम जानने की शायद उनको आवश्यकता नहीं पड़ी होगी। अन्यथा वे उनका भी नामोल्लेख करते जो कि वे कर नहीं सके। एक बात और, जिस समय मदनलाल पडयन्त्र के बारे में बताते हैं ठीक उसी समय अगदसिंह कैसे अनुपस्थित हो जाते हैं।

“श्री जैन ने जब मजिस्ट्रेट के समक्ष अपना वयान दिया तो उस समय उन्होंने मेरी और मदनलाल की भेंट का कोई उल्लेख नहीं किया। जब उनसे इसके विषय में पूछा गया तो वे कहने लगे कि मैंने पुलिसवालों को और गृहमन्त्री को इसके विषय में बता दिया था, किन्तु उन दोनों में से किसी ने भी उनकी बात को कलमबन्द करके सुरक्षित नहीं रखा। इसके अतिरिक्त अन्य साधारण बातों का श्री जैन ने मजिस्ट्रेट के सम्मुख उल्लेख किया था।

“यदि समझ लें कि मदनलाल ने जैन के सम्मुख कुछ बताया होगा तो मदनलाल से मेरा सम्बन्ध नगर की हलचल से उन्होंने जोड़ लिया। किन्तु उस प्रमाण की पुष्टि करने में वे असमर्थ रहे हैं। मदनलाल का कहना है कि ऐसी कोई बात कभी नहीं हुई है। अतः मेरा कथन है कि प्राध्यापक जैन से मत्रियों तक की सारी साक्षी असंपुष्टित, अविश्वसनीय एवं सुनी-सुनाई मानकर उसको रद्दी की टोकरी में डाल देना चाहिये।”

नयूराम, आपटे की सावरकरसदन को भेंट, दि० १४-१-४८

दि० १४-१-४८ को नयूराम और आपटे की सावरकरसदन में हुई भेंट का विवरण बाद में प्रस्तुत किया गया। दि० १४-१-४८ को नयूराम और नाना आपटे दोपहर की गाड़ी से पूना से बम्बई आये थे। जिन गाड़ी से वे लोग आये थे उसी गाड़ी में श्रीमती शान्ता मोडक भी थी। दि० ३-८-४८ को उनकी साक्षी हुई। उन्होंने कहा, “मेरा टिकट दूसरी श्रेणी का था। डिब्बे में चढ़कर मैं गिडकी के समीप की जगह खोजने लगी। किसी ने मुझसे पूछा, “आप क्या खोज रही हैं?” उन्होंने पूछा, “खिडकी के समीप स्थान।” मैंने उत्तर दिया, “तो वे नग्न बोलें, “लैजिये, आप इस मेरे स्थान पर ही बैठ जाइये। ठीक

“हेगा ?” इतना कहते हुए वे उठ खड़े हुए। मैं उस स्थान पर जाकर बैठ गई। मेरे सामनेवाला स्थान खाली था, वे सज्जन उस स्थान पर जाकर बैठ गये। गाड़ी चलने ही वाली थी कि इतने में एक अन्य सज्जन आ गये। वे उस पहले वाले सज्जन के पास में आकर बैठ गये। मुझे ऐसा लगा कि दोनों का कुछ पूर्व परिचय-सा था। श्रीमती शान्ता मोडक ने पहचान के अवसर पर नाना आपटे को पहला सज्जन और नयूराम को दूसरा सज्जन बताया। आगे उन्होंने बताया—

“जिन्होंने स्थान दिया उन्होंने मुझसे पूछा, “आप विवा तो नहीं ?” मैंने स्वीकृति में सिर हिलाया। यह मेरा रजतपट पर कार्य करने का नाम था। अपने वातचीत के दौरान मैंने इतना और बताया था कि मुझे दादर उतरना है। इस बीच और कोई वातचीत नहीं हुई। जब दादर समीप आने लगा तो उन्होंने मेरा पता पूछा। मैंने “शिवाजी उद्यान” बता दिया। वे बोले, यदि आप अकेली ही जाने वाली हो तो हम आपको वहाँ तक छोड़ देंगे। उनके बोलने से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वे सावरकरसदन में जाने वाले हैं। मैंने कहा कि, मुझे लेने के लिये मेरा भाई स्टेशन पर आनेवाला है, यदि वह नहीं आया तो मैं आपके साथ चलेगी।

“हम दादर पहुँचे। मुझे लेने के लिए मेरा भाई आया हुआ था। उसके पास जीप थी। तब मैंने उन दोनों को कहा कि, मैं ही आपको शिवाजी उद्यान पर छोड़ दूँगी। उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। मेरा घर और सावरकरसदन एक ही मार्ग पर तथा सड़क के एक ही ओर है। पहले हमारा घर आता है, उसके बाद सावरकरसदन। हमने सावरकरसदन के पास गाड़ी रोक दी, वे दोनों जब उतर गये तो हमने गाड़ी घुमा ली।”

प्रतिप्रश्न करने पर श्रीमती शान्ता मोडक ने कहा, “मैंने उन्हें सावरकर-सदन में प्रविष्ट होते हुए देखा नहीं था।” (अथ १, पृ० १२२-१२४)

सावरकर सदन में नीचे की मजिल पर श्री अ० स० भिडे रहते थे। सावरकर जी के कार्यवाहू थी दामले और श्री अप्पा कासार भी नीचे की मजिल पर ही रहते थे। उस मजिल का बीच का भाग हिन्दू महासभा के कार्यकर्त्ताओं के लिये कार्यालय के रूप में था। सावरकर पहली मजिल पर रहते थे। सावरकर-सदन में या कार्यालय में आने वाले लोग सावरकरजी के यहाँ जाते ही थे ऐसा कोई नियम नहीं था। ये सब बातें प्रमाण में आई थी।

नयूराम और आपटे सावरकरजी के यहाँ आनेवाले थे, ऐसा कोई आश्रय उन्होंने दिया ही यह भी शान्ता मोडक ने अपनी गवाही में नहीं कहा था। साक्षी ने यह कहा कि उसने उन्हें सावरकरसदन में प्रवेष्ट होते हुए नहीं देखा था। यदि सावरकरसदन में जाते हुए देखा भी होता तो भी वे सावरकर-

जी के ही पास गये थे अथवा जानेवाले थे ऐसा भी सिद्ध नहीं हो सकता था। वे लोग सावरकरजी के यहाँ गये इतना कहने मात्र से ही सावरकरजी को उस पड़यन्त्र में गूँथना अयुक्तिक था। किन्तु यहाँ पर तो इसी साक्षी की ओर से भी यह प्रश्न उपस्थित नहीं किया गया था। सावरकरसदन की ओर उसकी निचली मजिल की अवस्था क्या थी इसका निर्देश सावरकरजी ने किया था और इस गवाही का कोई भी सम्बन्ध इस बात से नहीं आता, ऐसा न्यायालय का कथन था।

( ग्रन्थ २, पृष्ठ १९१ )

### बढ़गे का वक्तव्य

अमा के साक्षी बड़गे की गवाही का कुछ अण सावरकरजी पर लागू होता था। ऐसी बातों को कहनेवाले की ध्वनि भी किसी और शक्ति से ही आया करती है। बड़गे और सावरकरजी का परस्पर परिचय था। अपनी गवाही में यह सिद्ध करने के लिये बड़गे ने पार्श्वभूमि के रूप में प्राथमिक वक्तव्य-सा दिया। उसने अपने वक्तव्य में कहा, “१९४४-४५ में गवालिया टैंक पर सावरकरजी का भाषण हुआ। उसके बाद ३०-४० व्यक्ति उन्हें मिलने के लिये उनके घर गये थे। मैं भी उनमें से एक था। वहाँ एक अनौपचारिक सभा हुई, उसमें भी सावरकरजी ने भाषण दिया। उसके बाद मेरा परिचय कराते हुए मुझे शस्त्रभण्डार का स्वामी बताया गया और साथ ही उन्होंने एक प्रकार से सन्तोष व्यक्त करते हुए यह भी कहा कि मैं वहाँ पर अच्छा कार्य कर रहा हूँ। अन्त में उन्होंने कहा कि मैंने इनको वही कार्य करते रहने का परामर्श दिया है।

“हिन्दूमहासभा शस्त्रों पर से प्रतिबन्ध हटाने के लिये प्रयत्न किया करती थी। बड़गे जो शस्त्र वैचता था उनकी गणना निर्वन्वित शस्त्रों में आती थी। बड़गे का मैंने उस प्रकार परिचय करा दिया था और मैंने उसके लिये प्रशंसोद्गार प्रकट किये थे यह यदि मान भी लें तो इसमें आक्षेप के योग्य तो कुछ भी नहीं है” ऐसा वीर सावरकरजी का कथन था।

बड़गे ने १९४६ के अन्त अथवा १९४७ के प्रारम्भ की किसी अनौपचारिक बैठक का उल्लेख किया था उसके कथनानुसार उस बैठक में सावरकरजी ने कहा था, “कांग्रेस की नीति हिन्दुओं के लिये हानिकारक है। मुसलमानों का आर्थिक बहिष्कार करना चाहिये और यदि उन्होंने हम पर आक्रमण किया तो हिन्दुओं को उसके प्रतिकार की सिद्धता रखनी चाहिये। इसलिये हिन्दुओं को शस्त्र-विद्या सीखनी चाहिये।”

इस विषय में सावरकरजी का कहना था कि ऐसी कोई भी बैठक मेरे घर पर नहीं हुई थी और यदि हुई भी हो तो बड़गे के कथन में कोई ऐसी बात

नहीं है जिसके शब्दों को आपत्तिजनक सिद्ध किया जा सके। प्रस्तुत तथाकथित षडयन्त्र से उस बैठक का कोई सम्बन्ध भी नहीं प्रतीत होता।

किसी समय श्री परमेकर, श्री वखले, डॉ० मुजे, वीर सावरकर आदि का एक सामूहिक चित्र खिंचवाया गया था। उसमें वडगे भी था, ऐसा उसका बहना था। यह प्रमाण भी निरर्थक एवं असम्बद्ध होने से निकाल देना चाहिये ऐसा सावरकरजी का कथन था।

### पुनः सावरकरसदन, बडगे की गवाही

इस पार्श्वभूमि के उपरान्त वडगे ने क्रम-क्रम से सावरकरजी के विषय में बताना आरम्भ किया। उसने कहा, “दि० १४-१-४८ की रात को ९ बजे के आसपास नथूराम, आपटे और मैं, अर्थात् वडगे सावरकरसदन की ओर निकले। वहाँ पहुँचने पर आपटे ने मुझसे शस्त्रास्त्रों की थैली ली और मुझे बाहर ही ठहरने के लिये कहा। आपटे और गोडसे भीतर गये। पाँच-दस मिनट बाद ही वे लोग वापस आ गये। बाहर आने पर वह थैली आपटे के हाथ में ही थी।”

इसके प्रतिवाद में सावरकरजी का कहना था, “सावरकरसदन में जाने का अभिप्राय सावरकर के यहाँ जाना नहीं होता और वडगे यह भी नहीं कहता कि उसने वह शस्त्रों की थैली सावरकरसदन में रखी थी। वडगे का कहना है कि वह थैली दीक्षितजी महाराज के यहाँ रखी गई। फिर नथूराम और आपटे इस भेंट से इनकार करते हैं। इस घटना का कोई सबब दीखता नहीं है। प्रमाण की दृष्टि से ‘वडगे और थैली’ इस काल्पनिक कथा का कुछ भी मूल्य नहीं है।”

वडगे का आगे का कथन इस प्रकार था, “आपटे, गोडसे और मैं दीक्षितजी महाराज के घर से बाहर निकले और आँगन में खड़े रहे। १५-१-४८ को आपटे ने मुझसे कहा कि मैं उनके साथ दिल्ली चलूँ। मैंने कार्य के विषय में पूछा तो आपटे ने कहा कि सावरकरजी ने तय किया है कि गांधी, नेहरू और सोहरा वर्दी को समाप्त किया जाय, और यह कार्य उन्होंने हमारे अर्थात् गोडसे एवं आपटे के ऊपर छोड़ा है।”

इसके उत्तर में सावरकरजी ने कहा, “वडगे ने यह नहीं कहा कि आपटे अथवा नथूराम को ऐसा कहते हुए मैंने सुना। उसका कथन सुनी-मुनाई बात पर है। मान लीजिये कि यदि आपटे ने वडगे को ऐसा कहा भी हो तो उसने सच ही कहा है इसका क्या प्रमाण। आपटे और गोडसे इस घटना को भी स्वीकार नहीं करते। पुलिस के दबाव में आकर वडगे इस प्रकार की गवाही दे रहा होगा। इस घटना की कही से भी संपुष्टि नहीं होती।”

## ‘यशस्वी होकर आइये’

इसके बाद के एक प्रसंग का उल्लेख करते हुए बडगे ने कहा, “गोडसे, आपटे और मैं तथा शंकर किस्तैया एक दिन टैक्सी में घूम रहे थे कि नयूराम ने कहा ‘हमें सावरकरजी के अन्तिम दर्शन कर लेने चाहिये।’” उसके कहने पर हम सावरकर-सदन गये। शंकर को आँगन के बाहर ठहरने के लिये कहा गया। हम तीनों सावरकरसदन में गये। आपटे ने मुझसे निचली मजिल पर ही ठहरने के लिये कहा। गोडसे और आपटे ऊपर गये। पाँच-दस मिनट में ही वे वापस नीचे आ गये। उनके पीछे तुरन्त ही तात्याराव आये। वह बोले, “यशस्वी होकर आइये”। यह शब्द उन्होंने आपटे और गोडसे के लिये कहे थे। इसके बाद हम बाहर आ गये। बाहर आकर हम चारों टैक्सी में बैठे और रुद्धा कॉलेज की ओर निकले। टैक्सी में आपटे ने मुझसे कहा, “तात्याराव का कहना है कि गांधीजी के सौ वर्ष पूरे हो चुके हैं, अपना काम यशस्वी रूप से पूर्ण होगा इसमें सन्देह नहीं। इसके बाद हम अफजलपुरकर के घर की ओर चले गये। यह घटना दि० १७-१-१९४८ की है।

सावरकरजी ने इस प्रसंग को अस्वीकार करते हुए कहा, “आपटे और गोडसे मुझसे नहीं मिले थे। ‘यशस्वी होकर आइये,’ ऐसा मैंने किसी से नहीं कहा। गांधीजी की आयु सौ वर्ष की पूरी हो चुकी है इस प्रकार की भविष्यवाणी भी मैंने नहीं की। बडगे के कथनानुसार आपटे, गोडसे और बडगे मेरे पास मिलने के लिए आये थे यदि इसे मान भी लिया जाय तो भी वह आगे यह कहता है कि गोडसे और आपटे मुझसे मिलने ऊपर आये थे। वे मुझसे मिलने आये थे या घर में किसी अन्य से मिलने के लिए आये थे यह समझना उसके लिए सम्भव नहीं है। यदि यह भी मान लिया जाय कि वे लोग मेरे पास आये थे तो भी हमने परस्पर क्या वार्तालाप किया वह तो वह जान नहीं सकता। अतः उन लोगों ने मुझसे पण्डित के विषय में बात की थी ऐसा बडगे के वक्तव्य के आधार पर यह मान लेना न्यायोचित नहीं होगा। उस दिन आपटे और गोडसे बहुत स्थानों पर गये और अनेक लोगों से बोले, हैदराबाद राज्य का आन्दोलन तथा ‘हिन्दू राष्ट्र’ के प्रकाशन के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत लोगों से वार्तालाप किया तथा पैसा एकत्रित किया ऐसा अभियोजकों का कथन है। किन्तु मेरे साथ वे केवल पण्डित के विषय में ही बोले ऐसा आरोप लगाना क्या न्यायोचित होगा? यदि बडगे का यह कथन मान लिया जाय कि मैंने उन्हें ‘यशस्वी होकर आइये’ ऐसा कहा भी तो यह कथन किसी अन्य कार्य के लिए क्यों नहीं हो सकता? गांधीजी के सौ वर्ष पूरे हो चुके हैं मेरा यह कथन बडगे ने स्वयं सुना ऐसा वह नहीं कहता। उसका कहना है कि यह उसको आपटे ने कहा है, अतः उसके लिये मैं किस प्रकार

उत्तरदायी हो सकता है ? फिर भी आपटे और गोडसे इस घटना को भी अस्वीकार करते हैं ।

### टैक्सी ड्राइवर की गवाही

वम्बई के एका टैक्सी ड्राइवर का नाम ऐतप्पा कोटियन था, जिसकी टैक्सी एक दिन सावरकरसदन के आसपास चक्कर काटती रही । वडगे, शंकर किर्स्तिया, नयूराम और आपटे उसमें बैठकर सावरकरसदन गये थे, ऐसा अभि-योजको का आरोप था । साक्षी के कथनानुसार उसकी गाड़ी गिवाजी उद्यान के एक ओर खड़ी की गई, चारों सवारियाँ नीचे उतर गईं, वे लोग कोने के दाईं ओर को मुड़ कर दूसरे घर तक गये इतना ही उस ड्राइवर ऐतप्पा को दिखाई दिया था ।

उसकी गवाही से यह किंचित् भी आभास नहीं मिलता कि जिस घर में उसकी टैक्सी की सवारियाँ गई हैं उस घर का नाम सावरकरसदन था और साक्षी को उसका ठिकाना ज्ञात है, वे लोग उतर कर कहाँ गये इसका उसको तनिक भी ज्ञान नहीं । वह ऐसा भी नहीं कहता कि वे लोग उतरकर उस दूसरे घर में गये थे । उसका कहना है कि वे लोग पाँच मिनट में ही वापस आ गये थे । किन्तु वडगे की गवाही के आधार पर टैक्सी से घर तक जाने के पाँच मिनट और फिर घर के भीतर ऊपर की मजिल में जाने-आने में पाँच-दस मिनट तथा पाँच मिनट वापस टैक्सी पर पहुँचने में, इस प्रकार बीस-पच्चीस मिनट का समय लगता है । दोनों साक्षियों के कथन में इस प्रकार की विसंगति का का ध्यान सावरकरजी ने न्यायालय को दिलाया । आपटे और गोडसे ने इस प्रसंग को, वडगे की कल्पना, कह ही दिया था । न्यायमूर्ति के पूछने पर शंकर किर्स्तिया ने कहा था कि गिवाजी उद्यान तक वह उन लोगों के साथ टैक्सी में गया था । किन्तु आपटे, वडगे और नयूराम टैक्सी से उतर कर कहीं गये थे, वह स्वयं टैक्सी में ही बैठा रहा । सावरकरसदन का तो उसने नाम तक नहीं सुना था । वस्तुस्थिति से इसकी भी विसंगति की ओर सावरकरजी ने ध्यान आकर्षित किया ।

सावरकरजी द्वारा गाबीजी की आयु के विषय में की गई भविष्यवाणी की शंकर किर्स्तिया की गवाही में पुष्टि होनी चाहिये थी, क्योंकि वडगे के कथनानुसार आपटे ने उसको यह बात टैक्सी में बैठने के बाद बताई थी । न्यायमूर्ति के पूछने पर शंकर किर्स्तिया ने कहा, 'मैं ड्राइवर के पास बैठा था । शेष तीनों पिछली सीट पर बैठे थे । वे मराठी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में बोलते थे । मुझे न तो उनका बोलना साफ-साफ सुनाई देता था और न ही मेरी समझ में आता था ।'

बढ़गे के कथन की दोनो गवाहियों में से किसी एक ने भी पुष्टि नहीं की। सावरकरजी ने न्यायमूर्ति के ध्यान में यह वैठा दिया कि उसकी बात को सीधे ही काटा जा सकता है।

मैं सावरकरजी की आज्ञा से पडयन्त्र में गया —बड़गे

मैं सावरकरजी का एकनिष्ठ अनुचर था अतः सावरकरजी के विषय में कहा गया मेरा कथन प्रामाणिक होना चाहिये, इस बात को सिद्ध करने के लिए बड़गे ने एक अन्य वक्तव्य दिया। बड़गे स्वयं इस पडयन्त्र में क्यों सम्मिलित हुआ इसके विषय में बताते हुए उसने कहा कि गोडसे और आपटे ने अनेक बार उसकी आर्थिक सहायता की थी। उनका आभारी होने के कारण वह सदैव ही उनके कथनानुसार कार्य करता था। अतः नथूराम और आपटे के कहने पर ही वह गांधीजी तथा अन्यो को मारने के लिये उनके साथ दिल्ली गया था। इस पर भी इस काम को करने की सावरकरजी की आज्ञा थी इस प्रकार की कल्पना भी आपटे ने उसको करा दी थी। इसलिए उनकी अर्थात् सावरकरजी की आज्ञा का पालन करना वह अपना कर्तव्य समझ उनके साथ गया था।

इस प्रकार इस पडयन्त्र से सावरकरजी का सम्बन्ध जोड़ने के लिये बड़गे का उपरिलिखित कथन सर्वोच्च स्थान रखता था। सावरकरजी की आज्ञा है ऐसा यदि उसको नहीं कहा जाता तो वह इस पडयन्त्र में सम्मिलित नहीं होता। न केवल इतना, नथूराम और आपटे भी इस दुष्टकार्य को अपने कंधे पर नहीं ले सकते थे। इस प्रकार की भावना बड़गे के इस कथन से परिलक्षित होती है।

यह प्रमाण भी मुनी-मुनाई बातों पर आधारित होने के कारण उसका उत्तर देने के लिये सावरकरजी को कोई विशेष श्रम करने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। बड़गे के इस कथन के लिये किसी प्रकार की स्वतन्त्र पुष्टि नहीं थी। सावरकरजी ने कहा, “बड़गे जैसा साहसी, धैर्यवान, सुपरिचित व्यक्ति मनुष्य के सहज स्वभाव के अनुसार स्वयं मुझसे ही उस आज्ञा के सम्बन्ध में पूछ सकता था। ‘यशस्वी होकर आइये’ ऐसा मैंने कहा यह उसने सुना और देखा ऐसा उनका कथन है। आपटे और गोडसे समीप ही थे। उससे भी अधिक वह मुझसे स्वयं पूछ सकता था, ‘यह आज्ञा आपकी ही की है न?’ परन्तु बड़गे ने ऐसा नहीं किया। यदि बड़गे स्वयं को इतना एकनिष्ठ आज्ञाकारी मानता है तो वह २० जनवरी को गांधीजी पर सामने से हमला करना छोड़कर अपनी जान बचाने के लिये क्यों भाग गया हुआ ? मैं समझता हूँ कि यदि बड़गे दिल्ली गया भी होगा तो उमना एगनाथ उद्देश्य यही रहा होगा कि किसी प्रकार निर्वाणितो को अपने अर्थव्यय अथवा बेचकर अधिक धन कमाने की इच्छा से ही गया होगा।”

## बडगे की उच्चता

बडगे की गवाही के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर सावरकरजी ने उसके चरित्र एवं व्यवहार का न्यायालय के सम्मुख प्रत्यक्षीकरण करते हुए कहा कि बडगे कहता है—“मैं बिना लाइसेंस के वम तथा पिस्तौल आदि बेचता था। मैंने खरात के घर में शस्त्रास्त्र का धैला रखा था, क्योंकि अगर मैं पकड़ा जाऊँ तो शस्त्रास्त्र मेरे पास न मिलें यह मेरा हेतु था। दिल्ली में झाइवर की जानकारी के बिना मैंने दोनो पिस्तौल टैक्सी में रखी क्योंकि यदि वे पकड़ी जाती तो टैक्सीवाला सकट में पड़ जाता और मैं बच जाता। मैं बिना टिकट यात्रा करता था और कर्मचारियों को रिस्वत देता था। मैं पैसा चाहता था। मैं चाहता था कि मुझसे पिस्तौल लेकर दीक्षितजी महाराज मुझे कम से कम ३५० रुपये दें। इसलिये वह पिस्तौल मुझे बदले में मिलने पर भी उसे मैंने खरीद लिया है ऐसा मैंने उनसे झूठ ही कहा था।” यह सब बडगे ने अपनी गवाही में विभिन्न अवसरों पर कहा था।

## परस्थ दूरध्वनि (ट्रक कॉल)

दि० १९-१-४८ को प्रातः काल ९-२० पर दिल्ली के टेलीफोन न० ८०२४ से बम्बई के टेलीफोन न० ६०२१० पर एक ट्रक कॉल बुक कराई गई। दिल्ली का नम्बर हिन्दू महासभा भवन का है और बम्बई का सावरकरसदन का। अभियोजको की ओर से यह आरोप लगाया गया था। उनका कथन था कि ट्रक कॉल वैयक्तिक था ऐसा उनके कागज-पत्रों से विदित होता था। नथूराम, आपटे, करकरे, मदनलाल, बडगे और शंकर ये लोग दिल्ली में थे और हिन्दू महासभा भवन में ठहरे थे, यह अभियोजक पहले ही कह चुके थे। अभियोजको का कथन था कि वह ट्रक कॉल कासार या दामले के नाम से था। कासार सावरकरजी के अग्ररक्षक का नाम था और दामले उनके कार्यवाहक का। आपटे और नथूराम उन दोनों से परिचित थे। इसलिये उन्होंने ही वह कॉल बुक कराई होगी और वह सावरकरजी के लिये ही होगी ऐसा तर्क अभियोजक प्रस्तुत करते थे।

टेलीफोन सावरकरसदन में निचली मंजिल पर था। निचली मंजिल पर हिन्दू सघटन-कार्यालय था और उस कार्यालय में अनेकानेक कार्यकर्ता आते-जाते रहते थे यह भी न्यायालय को ज्ञात था।

वह ट्रक कॉल अनुत्तरित हुआ था। उसमें कोई बातचीत नहीं हुई थी क्योंकि बम्बई कार्यालय से यह कहा गया कि अपेक्षित व्यक्ति उपस्थित नहीं है। दिल्ली की ओर से कॉल को रद्द करा दिया गया था और उसको पुस्तिका में ‘रद्द’ अंकित कर दिया गया था।



प्रतिप्रश्नों के अवसर पर अडवोकेट भोपटकरजी ने इस कथन का विरोध किया और सावरकरजी ने अपने कथन का योग्य स्पष्टीकरण किया। वह दूर-ध्वनि कासारे और दामले के लिये नहीं था यह वकीलो ने उस साक्षी से ही कहलवा लिया था। चिट्ठी पर एक नाम था 'कसैया' और दूसरा था 'दलाल'। आगे चलकर दलाल काटकर डी मँलो लिखा गया था। यह दोनों नाम कासारे और दामले से सादृश्य रखते हुए भी दूसरी ओर इस नाम के व्यक्ति न मिलने पर किसी भी प्रकार का निष्कर्ष इस कथन से निकाल लेना न्याय के विरुद्ध हो जाता था।

उस ट्रक कॉल का भुगतान दो रुपया बारह आना १९-५-४८ को किया गया था। हिन्दूमहासभा के कार्य के लिये एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय को कॉल बुक कराई गई होगी, ऐसा स्पष्टीकरण युक्तियुक्त था। दिल्ली से किसने कॉल बुक कराई इसका कोई लेखा-जोखा और प्रमाण प्राप्य नहीं था।

जो दूरध्वनि जन्म से पूर्व ही मर चुकी थी उसके विषय में क्या पूछना, जो जन्मा ही नहीं अथवा जो हुआ ही नहीं, उसकी क्या वार्त्ता करना इस रीति से सावरकरजी ने अपने वक्तव्य में इसका उल्लेख किया था।

#### विधायक अंग

अपने विरोध में प्रस्तुत साक्षियो एव प्रमाणों का सटीक सप्रमाण उत्तर देने के उपरान्त सावरकरजी ने अपने वक्तव्य का मुख्य विधायक अंश प्रस्तुत किया। विधायक कार्य के प्रमाणों के लिये उन्होंने समय-समय पर प्रकाशित किये गये पत्रको को प्रस्तुत किया। उनमें एक पत्रक ६-११-४० को प्रकाशित किया गया था। जिनमें नेहरू को सजा होते ही उनके पति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए नेहरू की देशभक्ति की प्रशंसा की गई थी। अगस्त, १९४२ में जब कांग्रेसी नेताओं को बिना किसी प्रकार के आरोप एव प्रमाण के जेलों में ठूँसा गया था उस समय सावरकरजी ने जो पत्रक प्रकाशित किया था वह उन्होंने प्रस्तुत किया। गांधीजी के अनशन की समाप्ति के लिये उन्होंने २२-४-४३ को एक पत्रक प्रकाशित किया था वह भी प्रस्तुत किया गया। कस्तूरबा के देहान्त पर दि० २३-२-४४ को गांधीजी को भेजे गये सवेदनात्मक पत्र की प्रतिलिपि, गांधीजी की मुक्ति के बाद दि० ७-५-४४ को प्रकाशित किया गया पत्रक आदि ये सब पत्रक उन्हीं में समाविष्ट थे।

सावरकरजी के ऊपर तीखी टेढ़ी दृष्टि क्यों ?

मावंगरजी की कान्य-रचना आज आकाशवाणी पर अनेक बार सुनाई जाती है। सावरकरजी की मृत्यु के उपरान्त उनके प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित

करते हुए शासनाधिष्ठित व्यक्तियों ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। मैंने कही पढा है अथवा सुना है कि माननीय श्री बालासाहेब देसाई ने कहा है कि सावरकर-जी जैसा ज्वलन्त देशभक्त आज तक ससार में कोई हुआ ही नहीं। आकाशवाणी पर भी सावरकरजी की जीवनी सुनाई गई और उनका यशोगान किया गया।

काश्मीर पर आक्रमण करने के हेतु से पाकिस्तान ने १९६५ में पैतरा बदला था। उसके प्रत्युत्तर में हमारी भारतीय सेना ने पाकिस्तानी घुसपैठियों को भारत की सीमा से खदेड़ते हुए लाहौर तक मार भगाया था। इस स्वाभिमानयुक्त कृति से वीर सावरकरजी आनन्दित होंगे, इस धारणा के वशीभूत शासन की ओर से उनको गीघ्र युद्धवार्ता सुनाने का प्रबन्ध किया गया था, यह भी हमने पढा अथवा सुना था। केन्द्रीय गृहमन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने सावरकरजी को मानधन देने का प्रस्ताव किया था और प्रादेशिक सरकार ने भी उनको वृद्धावस्था की पेंशन देने का कुछ निश्चय किया था। इस प्रकार का समाचार भी सुनने में आया था। सावरकरजी को अमुक मान नहीं दिया गया, अथवा उनको अमुक उपाधि से विभूषित नहीं किया गया, इस प्रकार के विचार कभी-कभी अपने मन में आते हैं। परन्तु उन्हें कुछ न कुछ दिया गया था, इससे ऐसा निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि सावरकरजी के प्रति शासन की दृष्टि सुघरने लगी थी, द्वेष-भावना कम होने लगी थी, शासन की यात्रा स्वर्णिल राजनीति से व्यवहार्य राजनीति की ओर हो रही थी। पुराने रोग में सहसा सुधार नहीं होता। अतः जितना भी सुधार हो रहा हो उसका यथावत् मूल्यांकन होना चाहिये। हम कहाँ थे और कहाँ तक पहुँचे हैं यह देखने पर पुराना रोग तथा उससे होने वाली निवृत्ति ध्यान में आयेगी। उसी प्रकार सावरकरजी पर धार क्यों थी यह भी समझ में आयेगा।

उच्च शिक्षा के लिये इंग्लैंड जाने से पूर्व सावरकरजी ने देशमुक्ति के लिये प्रयत्न किया था। स्वतन्त्रता का स्तोत्र, चाफेकर बन्धु का पवाड़ा आदि काव्य से और मित्र मेला या अभिनव भारत इन सस्थाओं की स्थापना से और विदेशों कपड़ों से, अग्निकाण्ड से उनकी स्वयंभू स्वतन्त्र प्रेरणा स्पष्ट हो चुकी थी। राष्ट्र स्वतन्त्रता के ध्येय के लिये यथासाध्य साधन का अपनाना केवल समर्थनीय ही नहीं, आवश्यक भी होता है, यह उनका तत्त्व था। उस तत्त्व के अनुसार सनका व्यवहार भी समय पर शस्त्राचारी हो जाना स्वाभाविक है।

लंदन में इडिया हाउस में जो युवक एकत्रित हो जाते थे उनको राष्ट्रप्रेम की दीक्षा दी जाती थी। पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला हरदयाल आदि का पथ-प्रदर्शन उन्हें प्राप्त होता रहता था। स्वयंप्रज्ञ सावरकरजी ने उस समय भारतभवन को प्रभावित किया था।

गांधीजी और सावरकरजी की प्रथम मेट इंग्लैंड में ही हुई थी। उनकी परस्पर मतभिन्नता एवं विचारभिन्नता उस समय से ही चली आ रही थी।

गांधीजी के चरित्र को हमने शुद्ध मन से देखा और परखा तो भी गांधीजी जिन तत्त्वों के लिये प्रसिद्ध थे क्या उन तत्त्वों से उनका व्यवहार सुसंगत था ऐसा प्रश्न समुपस्थित होता है। मन में ऐसा सम्भ्रम निर्माण होता है कि उन्होंने अहिंसा को जीवन का मुख्य तत्त्व माना था, या स्वतन्त्रता को माना था, या राजनिष्ठा को माना था।

गांधीजी को सावरकर गुट का शस्त्राचारी मार्ग सुहाता नहीं था। 'मार्गे काटो का पथ' नामक पुस्तिका में उन्होंने क्रान्तिमार्ग एवं क्रान्तिकारियों की निन्दा की थी। इसका उल्लेख श्री शि० ल० करवीकर ने अपनी पुस्तक सावरकरजी की जीवनी के पृष्ठ १५५ पर किया है। क्रान्तिकारियों के झुण्ड की ओर खिंचते चले जानेवाले युवकों को वे वचाना चाहते थे। श्री इंदुलाल याज्ञिक ने लाला हरदयाल की जीवनी लिखी है। दि० ३-१२-१९०६ को गांधीजी ने जो पत्र डॉ० पी० जे० मेहता को लिखा है उसका उसमें उल्लेख है। उस पत्र में गांधीजी लिखते हैं—“श्यामजी का मार्ग सत्य से दूर है। उनको कार्य-पद्धति भी धर्मानुकूल नहीं है। वे न तो ईश्वर के अस्तित्व को मानते हैं और न पुनर्जन्म को। भारतभवन के आसपास केवल विपाक वायुमण्डल ही बना रहता है। आप श्यामजी की सीख का अनुकरण करते हैं, ऐसा मैं समझता हूँ। मेरी उनसे बातचीत हुई है उसके परिणामस्वरूप ही मैं मयमीत होकर उस मार्ग से पीछे हटा हूँ।”

वास्तव में शस्त्राचार क्रान्तिकारियों का ध्येय न कभी होता है और न हुआ है। लोगों को केवल मारना यह भी उनका उद्देश्य नहीं होता। इस बात को गांधीजी ने कभी गम्भीरता से सोचा ही नहीं। सरदार भगतसिंह ने लोकमभागृह में जो पत्रक बिखेरा था उसमें क्रान्तिकारियों के जीवन-दर्शन का सम्यक् दिग्दर्शन कराया गया था। उस पत्रक में कहा गया था—

“हम मनुष्य के जीवन को बहुत पवित्र मानते हैं। हम ऐसे सज्ज्वल भविष्य पर विश्वास करते हैं कि जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति का और स्वातन्त्र्य का अवसर सुलभ होगा। हमको अनिवार्य रूप से जब मानवी रक्त प्रवाहित करना पड़ता है तब हमें दुःख भी बहुत होता है। परन्तु क्रान्ति के माध्यम से सभी को समान स्वतन्त्रता प्रदान करना और मनुष्य द्वारा मनुष्य के ही किये जाने वाले शोषण को समाप्त करना ही हमारा उद्देश्य है। ऐसी क्रान्ति में कुछ न कुछ रक्तपात होना अनिवार्य है।” क्रान्ति के प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारियों की यही भूमिका रही है। यदि सहज ही स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती तो शस्त्रप्रयोग द्वारा

अपने शीश हथेली पर रख कर प्राणों की आहुति देने का दुष्कर कार्य वे कभी न करते ।

अहिंसा तत्त्व का सहारा लेने के कारण गांधीजी को क्रान्तिकारियों का मार्ग अनुचित प्रतीत हुआ यदि इस बात को मान लिया जाय तो फिर जो कोई भी शस्त्रप्रयोग करने वाला होगा उन सभी का मार्ग उनको अनुचित ही प्रतीत होना चाहिये । परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा किया जाने वाला शस्त्राचार उन्हें अनुचित एवं अधर्म्य प्रतीत नहीं हुआ, इसका उल्लेख हमें उन्हीं के चरित्र में मिलता है । अंग्रेजों ने झुलूओं के विरोध में युद्ध प्रारम्भ किया था । उसके सम्बन्ध में गांधीजी लिखते हैं “झुलू लोगों ने हिन्दुस्थानी लोगों को भी कोई हानि नहीं पहुँचाई थी । उन लोगों पर विद्रोह करने का आरोप भी किसी प्रकार लगाया गया था । उन लोगों की बड़ी क्रूरता से हत्या हो रही थी । परन्तु फिर भी उन लोगों के विरोध में अंग्रेजों ने युद्ध घोषित करके स्वयंसेवकों की माँग की यह सुनते ही मैंने स्वयंसेवक बन कर अंग्रेजों की सेना में भरती हो लडाई में यत्किंचित् भाग लेने का निश्चय किया । क्योंकि मैं अंग्रेजी साम्राज्य को विश्व पर उपकार करनेवाला साम्राज्य समझता था । उस साम्राज्य का विनाश न हो यह मेरी हार्दिक इच्छा थी ।”

गांधीजी जो अहिंसा के पुजारी बनते थे उन्हें ऐसे अवसर पर कहना चाहिये था, “ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा झुलू समुदाय पर किये जानेवाले अत्याचारों का प्रतिरोध किया जाना चाहिये क्योंकि वह हिंसक अत्याचार है इसलिये अधर्म्य है । ससार पर उपकार के नाम पर की गई अहिंसा वन्दनीय और क्रूरता करने के नाम में की गई अहिंसा निन्दनीय है, अहिंसा की ऐसी द्विविध व्याख्या नहीं हो सकती । कोई भी भारतीय अंग्रेजों के इस हिंसक युद्ध के लिये कोई सहायता न करे ।” गांधीजी के तत्त्व उचित थे अथवा अनुचित इस प्रश्न की अपेक्षा वे अपने उस तत्त्व से सुसंमत रहे ऐसा हम आज कह सकते हैं, यदि उन्होंने इस प्रकार के विचार व्यक्त किये होते ।

हमें यह भलीभाँति ज्ञात है कि भारत में आ कर गांधीजी ने ‘अप्रत्यक्ष प्रतिकार’ का अवलम्ब लिया था । केवल वह उपाय पर्याप्त नहीं होगा ऐसा सावरकरजी का विचार था । इस विषय पर उनकी ‘काळ’ नाम दैनिक के लिये लिखी हुई एक वार्ता हमें देखने के लिये मिली । उन्होंने उस वार्ता में दक्षिण फ्रान्स के वागवानो, वहाँ के शासकों के साथ हुए कलह और उसके निरोध के लिये अपनाये गये उपायों के विषय में संकेत किया है । इस सम्बन्ध में दि० १९-७-१९०७ को सावरकरजी द्वारा लिखे गये पत्र का सारांश इस प्रकार लिया जा सकता है—“दक्षिण फ्रांस में संघटित रूप से अप्रत्यक्ष क्रान्ति का अव-

लम्बन लिया गया था। शासन की सेवा न करना शासन के अधिकारक्षेत्र में स्थित पाठशालाओं, न्यायालयों आदि का बहिष्कार करना, शासन के बैंक में धन जमा न करना, शासन को ऋण न देना, लगान न देना आदि इस प्रकार का वे विरोध व्यक्त कर रहे थे। राज्यद्रोह का उत्तरदायित्व न उठाते हुए, हाथ में शस्त्र धारण न करते हुए, और रक्त की एक भी बूँद न गिराते हुए अप्रत्यक्ष प्रतिरोध से राज्यक्रान्ति इस प्रकार की एक नई पद्धति का प्रारम्भ होने लगा। किन्तु ज्यों ही यह आन्दोलन अपनी सफलता के चरम पर पहुँचा त्यों ही शासकों ने सेना और शस्त्र के बल से उसको विफल करने का विचार कर लिया। उस समय आन्दोलनकारियों ने भी फिर अप्रत्यक्ष प्रतिकार का विचार छोड़ शस्त्र हाथ में लिये। इससे यह सिद्ध होता है कि अप्रत्यक्ष प्रतिकार की सफलता के लिये भी शस्त्रों को दृष्टि में रखना आवश्यक होता है।

“अप्रत्यक्ष प्रतिकार की इस तत्त्व-प्रणाली में हम दो बातें मान लेते हैं। वह यह कि प्रत्येक व्यक्ति उदात्त होगा और वह पूर्णरूप से सहयोग देगा। सभी लोग शासकीय सेवा का त्याग करेंगे यह मान लेने पर यह बात फिर विचारणीय नहीं रह जाती कि कगाली से निष्काचन हुए व्यक्तियों में, इच्छा होती हुए भी, इतनी उच्च त्यागवृत्ति नहीं पनपती। दूसरी बात यह कि विरोधी पक्ष बहुत ही प्रबल है, नियम एवं निबन्धों को वह भंग नहीं करेगा, डठे का प्रयोग वह नहीं करेगा, गला घोटनेवाला नियम वह लागू नहीं करेगा ऐसा हम मान लेते हैं। जो शासन शोकमत के विरुद्ध जाने तक की निकृष्ट बात सोच सकता है—वह समय पर नया कानून बना कर और पुराने विधान को विघटित कर अप्रत्यक्ष प्रतिकार को बल से दबा देने की सीमा तक क्रूर भी होता है, यह हमें ध्यान में रखना चाहिये।”

“विश्वामित्र ने वशिष्ठ की कामधेनु की माँग की थी। वशिष्ठ के इनकार करने पर विश्वामित्र ने तुरन्त निश्चय किया कि वह उसे बलपूर्वक ले जायेंगे। यदि विश्वामित्र से कहा जाय कि वे उदात्त हैं, तो वह शायद सुनने के लिये राजी हो जायें इस भावना से वशिष्ठ ने उनसे कहने का निश्चय किया और यह दिखाने का यत्न किया कि कम से कम उनके गाय ले जाने के दुष्प्रयत्न का हम प्रतिरोध नहीं करते, इससे शायद उनमें बुद्धि का विकास हो जाय और वह गाय न ले जाना स्वीकार कर लें। किन्तु विश्वामित्र में तो वह उदात्ता थी नहीं। कामधेनु को रक्षार्थ शस्त्रधारियों का वशिष्ठ ने आह्वान किया तो उन्होंने विश्वामित्र के सैनिकों को प्रेरित कर कामधेनु का अपहरण होने से बचाया। ऐसी पुराणों में क्या आती है।”

स्वराज्य-प्राप्ति के इतिहास पर यदि हम दृष्टिपात करें तो उसमें भी इस प्रकार का विवेचन प्रतिफलित होता प्रतीत होता है। असहयोग आन्दोलन को

दवाने के लिये अंग्रेजों ने-वलप्रयोग किया। भारतीयों का गला घोटने के लिये भाँति-भाँति के नियम बनाये गये। रौलट ऐक्ट के विरुद्ध आवाज उठाने का लोगो को साहस ही न हो इसके लिये जलियाँवाला बाग का हत्या-काण्ड किया गया। १९४२ के आन्दोलन में आन्दोलनकारियों ने निःशस्त्रता का परित्याग कर दिया।

सावरकरजी के इस सन्देश का कि—“सेना में जा कर शस्त्र-विद्या प्राप्त करो,” देशगौरव नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने दि० २४-६-४४ को एक वक्तव्य द्वारा सम्मान किया। सेना में भरती हुए भारतीयों का उपयोग कर नेताजी ने अंग्रेजों की सेना के छक्के छुड़ाये थे। युद्ध में अंग्रेजों की विजय होने पर भी उन्हें यह भली-भाँति आभास हो गया था कि अब वे अधिक काल तक भारत पर एक छत्र राज्य नहीं कर पावेंगे। इंडियन फ्रीडम ऐक्ट प्रसारित करते समय इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमन्त्री एटली ने भूतपूर्व प्रधानमन्त्री चर्चिल से कहा था। १—भारतीय सेना की अब अंग्रेजों के प्रति निष्ठा समाप्त हो गई है, २—हिन्दुस्थान को अपनी मुट्ठी में रखने के लिये अंग्रेजों की बहुत बड़ी सेना को भारत में रखना ब्रिटेन लिये हितकर नहीं होगा। इसलिये ब्रिटेन सत्ता का हस्तान्तरण कर रहा है।

( Britain is transferring power due to the fact that (1) the Indian Mercenary Army is no longer loyal to Britain and (2) Britain cannot afford to have a large British Army to hold down India.

उपरिलिखित अनुभव एटली को सच सम्भूत था। १९४६ के प्रारम्भ में ब्रिटिश अधिकारोपगण एवं भारतीय सैनिकों के भव्य मन-मुटाव का वातावरण एक विशिष्ट रूप धारण करता जा रहा था। कराची, लाहौर, बम्बई और दिल्ली के वायुसैनिकों ने हड़ताल करके एक ऐसा कार्य किया था जो कि सेना के इतिहास में अभूतपूर्व घटना थी। इस प्रकार की अपेक्षा सैनिकों से कभी नहीं की जा सकती थी। १९ और २१ फरवरी, १९४६ को नौसैनिकों ने आन्दोलन किया। दोनों ओर से मुक्तरूप से गोलियों की वर्षा हुई थी। अंग्रेज सत्तावाहियों को स्पष्ट अनुभव हो रहा था कि सेना अब उनके अधिकार में अधिक समय तक रहने वाली नहीं है। शस्त्रबल का सामर्थ्य स्वराज्य के आन्दोलन की सहायता करता है, यही इसका इतिहास है।

१९१० में लोकमान्य तिलक के देहान्त के उपरान्त भारतीय गजनीति का नेतृत्व गांधी के थाह में आ गया था। सावरकरजी उस समय बन्दीगृह में थे। कारागार से मुक्त होने पर भी, १९२४ से उन्हें रत्नागिरि में स्थानबद्ध करके

रखा गया था। यद्यपि वे कारागृह में नहीं थे किन्तु किसी भी प्रकार की राजनीति में भाग लेने पर उन पर प्रतिबन्ध था। न वे किसी प्रकार का भाषण दे सकते थे और न ही कोई लेख प्रकाशित कर सकते थे। किन्तु फिर भी गुप्त रूप से कभी-कभी वे राजनीति के विषय पर अपने विचार व्यक्त करते रहते थे।

सावरकरजी चाहते थे कि गांधीजी सशस्त्र क्रान्तिकारियों को भले ही प्रोत्साहित अथवा पुरस्कृत न करें किन्तु कम से कम उनसे घृणा तो न करे। वे युवकों में जागृत चेतना को कुचलें नहीं, उनको अपमानित न करें। सावरकरजी का मत था कि जो समाज शस्त्रपराङ्मुख हो चुका है उसे अहिंसा की धूँट पिलाकर पूरे देश का ही विनाश किया जा रहा है। सावरकरजी बड़ी प्रखरता से क्रान्तिकारियों की देशभक्ति की प्रशंसा एवं गांधीजी के अहिंसावाद की आलोचना किया करते थे। गांधीजी के वक्तव्यों में व्यक्त परस्पर विरोधों विधान की वे खुल कर आलोचना करते थे। गांधीजी अपने लोगों से कहा करते थे कि जो सच्चा सत्याग्रही है वह कभी मन में इस प्रकार का विचार भी उत्पन्न नहीं होने दे सकता कि वह शस्त्र का स्पर्श भी कभी कर सकता है। यहाँ तक कि हाथ में लाठी धारण करना भी सत्याग्रही के लिये निषिद्ध है। प्रथम विद्व-युद्ध में बिना शर्त अंग्रेजों की सहायता करने के लिये सेना में भरती होने का विचार गांधीजी ने किया था इस विषय में उनका कहना था कि ऐसा उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रेम के कारण किया था। गांधीजी के इन कृत्यों का सावरकर-जी अपने लोगों को आभास देते रहते थे। अंग्रेज लोग किंचित् भी सज्जन नहीं और न ही उनका इस देश पर राज्य करना किसी न्यायाधिकरण द्वारा प्रदत्त आज्ञा के अधीन है और न ही उनको यहाँ से भगाना अन्याययुक्त है। उसके लिये अपनाये गये किसी भी मार्ग को पापमय नहीं मानना चाहिये। इस प्रकार का प्रतिपादन सावरकरजी करते रहते थे। गांधीजी के प्रेममूलक प्रचार से वे बहुत दुःखी होते थे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा था—“इस गडबड़ा ने राष्ट्र का कितना अहित किया है और राष्ट्र को कितना अपमानित किया तथा उसे किस प्रकार अकर्मण्य बनाकर रख दिया है जब इसका विचार मन में आता है तो मन क्रोध एवं घृणा से भर जाता है।” यह उन्होंने दि० ११-८-१९२७ को लिखा था।

क्रान्तिकारियों का किसी प्रकार भी उल्लेख न करना अथवा उनके कार्य की निन्दा करते हुए अपमानपूर्ण लेख लिखना सावरकरजी को सह्य नहीं था। एक बार गांधीजी ने अपने ‘यंग इंडिया’ में क्रान्तिकारी गोपानाय साहा का उल्हेय कर उनका अपमान करते हुए उन्हें ‘अपराधी’ तक लिख डाला था।

गांधीजी ने लिखा था 'उनके उद्देश्य की प्रशंसा करना भी पाप है।' क्योंकि क्रान्तिकारी हिंसक प्रवृत्ति के होते हैं। सारे देश में गांधीजी के इस विचार की खूब आलोचना हुई थी। जब क्रान्तिकारी यतीन्द्रनाथ का देहान्त हुआ तो उनके विषय में बोलते अथवा लिखते हुए गांधीजी ने उनके सम्मान में 'हुतात्मा' शब्द का प्रयोग नहीं किया था। केवल इतना कहकर गांधी ने अपनी झोंप मिटानी चाही थी कि 'वे अपराधी नहीं थे।' किन्तु अपने पत्र में यतीन्द्रनाथ के वलिद न की गाथा प्रकाशित करने को उन्होंने टाल दिया था।

क्रान्तिकारियों के वचाव के लिये देश भर में न्याय-सहायता-निधि स्थापित की गई थी। किन्तु गांधी जी ने उसके लिये किंचित् भी सहायता नहीं दी थी। सहायता न करने मात्र से ही गांधी जी को सन्तोष नहीं हुआ अपितु अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने यह भी कहने की घृष्टता की थी कि इस प्रकार की सहायता निधि एकत्रित करना अनुपयुक्त है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गांधी जी को यह अनुभव होने लगा था कि उनके इन दुष्कृत्यों से उनकी कुख्याति फैल रही थी। उससे बचने के लिये उन्होंने एक चाल चली। वह यह कि वे कारागार में क्रान्तिकारियों से मिलने के लिये गये। वहाँ जब उनसे आठे हाथों यह पूछा गया कि आपने उस निधि का विरोध क्यों किया तो गांधीजी अपना दामन वचाने के लिये उत्तर दिया—“इसलिये कि कोई अच्छा बड़ा वकील पैरवी के लिये आगे आ सके।”

क्रान्तिवीर यतीन्द्रनाथ का उल्लेख न करके और मेरठ अभियोग निधि के विषय में गांधी जी के सदिग्ध उत्तरो की आलोचना करते हुए १६-११-१९२९ को सावरकर जी ने लिखा—“हुतात्मा यतीन्द्रनाथ सशस्त्र क्रान्तिकारी था। आग को निगलने वाले भगत, दत्त, साहा, यतीन्द्र आदि क्रान्तिवीरों का सम्पूर्ण देश ने हुतात्मा, देशभक्त, देशवीर कहकर सम्मान किया तो इसमें मेरे अर्थशून्य, ठलाक अहिंसा के सिद्धान्त पर से देशवासियों का विश्वास हटने लगा और उस अनुपात में यद्यपि मेरा व्यक्तिगत नहीं, क्योंकि व्यक्तिगत प्रश्न पृथक् है, तो भी पाथिक महात्म्य का प्रस्थ कम होता है, इसलिये मैं यतीन्द्रनाथ को हुतात्मा नहीं कहता ऐसा यदि गांधी जी स्पष्ट रूप से कहते तो इससे बहुत कुछ बात स्पष्ट हो जाती। इसी प्रकार मेरठ के लोग भी सशस्त्र क्रान्ति के आरोप में बन्दी थे। उनके लिये यदि देशवासी निधि स्थापित करते हैं तो इससे उनका सम्मान होता है अन्यथा किसी एक वकील के निधुल्क पैरवी के लिये उद्यत हो जाने पर उसको राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये निधि स्थापित करने से ही उसको राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो सकता है, ऐसा विचार कर ही यह कार्य किया गया था। यह सोच समझकर ही मेरठ सहायता निधि स्थापित की गई थी।



परन्तु देश में भरे होते हुए क्रान्तिकारियों की इतनी प्रशंसा हो इससे मुझे चिढ़ होती है ( गांधी जी को इस विषय में बोलते बोलते कितनी चिढ़ उठती थी इसका ज्ञान उन अनेक सज्जनों को है जिनका गांधी जी की इस विचारधारा से विरोध था ) ऐसे भ्रुतात्माओं की जय-जयकार का अभिप्राय है मेरे सदृश अहिंसावादी सिद्धान्त के प्रतिवादक का अपमान । ऐसे क्रान्तिकारियों के समर्थन के लिये एकत्रित की जाने वाली निधि अहिंसावादियों की राष्ट्रीय निन्दा के बराबर है, यह मैं भली भाँति जानता था, इसलिये कोई भी ऐसे क्रान्तिकारियों की प्रशंसा करे यह मुझसे सहा नहीं जाता, इसलिये मैंने मेरठ अभियोग निधि का विरोध किया ऐसा यदि गांधी जी स्पष्ट रूप से कह डाल तो सच-मूठ आदि के बहाने खोजने की आवश्यकता ही न रहे । कम से कम भविष्य में ही वे ऐसे अप्रामाणिक तथा उनका छोड़कर अन्य किसी को भी न फसानेवाले कार्यक्रम करना वह छोड़ दें । इससे उनका मत कितना ही विरुद्ध क्यों न हो किसी को फिर किसी प्रकार का दुःख नहीं होगा । ”

हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रयोग में भी गांधी जी का अहिंसा तत्व कसौटी पर खरा नहीं उतर रहा था । गांधी जी ने अपने यंग इंडिया में इस्लाम को शान्ति का प्रतीक घोषित किया था । और उसी लेख में उन्होंने यह भी लिखा था—“इस्लाम की तलवार के साथ अधिक भी साठ-गाठ होती है यह सच है । परन्तु यह तो परिस्थिति दोष का परिणाम है । ” तलवार को हिंसा का प्रतीक मानकर फिर परिस्थितिबश उसके उपयोग को उपयुक्त सिद्ध करना गांधी जी के सिद्धान्त के विरुद्ध होना चाहिए । यह प्रश्न तो बिल्कुल पृथक् ही है कि इस्लाम के तलवार का उपयोग करना उसकी शान्तिप्रियता की ओर इंगित करता है अथवा आक्रामक नीति की ओर । किंतु गांधी जी ने तो प्रतिपक्षियों के अन्याय एवं अत्याचार तथा हिंसाचार के प्रतिकार में भी स्वयं शस्त्राचार का मार्ग नहीं अपनाया, इसके विपरीत हिन्दुओं को अहिंसा सिखाने के लिये अपनी सारी शक्ति का अपव्यय किया ऐसा हमें उनके जीवन की घटनाओं को देखने से प्रतीत होता है ।

सावरकर जी गांधी जी के एकपक्षीय प्रयोगों पर सदा शका एव सन्देह व्यक्त करते थे । उन्हें उनकी अहिंसा की नीति पर कभी विश्वास नहीं जमा । उन्हें इससे स्पष्ट आभास मिलता था कि उससे मुसलमानों की आक्रामक नीति को प्रोत्साहन मिलता है । दि० ७-१-१९२७ को लिखे अपने लेख में उनके विचार इस प्रकार व्यक्त किये गये थे—“वास्तविकता तो यह है कि अधिकांश मुसलमानों को यह हिन्दुस्थान अपना देश प्रतीत नहीं होता । और उसमें भी हिन्दुओं का निवास तो उनको काँटों की भाँति चुभता है । देश भर

में ये जो दगे-फसाद होते हैं उनकी पृष्ठभूमि में यही भावना कार्य करती है। कतिपय समसुदार मुसलमानों को छोड़कर अधिकांश मुसलमानों के मन में यही भावना उभर रही है कि तुर्किस्तान, अफगानिस्तान अथवा ईरान की भांति यह हिन्दुस्थान भी एकमेवाद्वितीय इस्लामी राज्य बन जाय। इस देश को ऐसा बनाने पर ही वे इसके साथ अपने देश का सा व्यवहार कर सकेंगे और इसके प्रति अपना प्रेम प्रकट कर सकेंगे।

“गांधी वध होने के कारण पक्षपात से परे हैं यह यदि मान लिया जाय तो जिस प्रकार अपनी जाति के साथ पक्षपात करना अनुचित है उसी प्रकार दूसरी जाति की ओर झुकना भी पक्षपात ही कहलायेगा। शब्दकोष में इसके लिये कोई अन्य शब्द उपलब्ध नहीं हो सकता।”

इसमें यदि सुधार किया जाय तो उचित होगा। इस्लाम के शान्ति, सहिष्णुता और भूतदया के जो उपदेश गांधी जी को ज्ञात हैं वे सब वस्तुतः यग इडिया के माध्यम से गांधी जी अपने मुसलमान भाइयों को ही सिखायें तो उत्तम होगा। और उनके शिष्य अली वन्धुओं के जिस प्रकार खिलाफत आन्दोलन के विषय में व्याख्यान हुए उस प्रकार के व्याख्यान इस्लामी शान्तिमन्त्रों पर करवाने चाहिये। कभी कभी मुसलमानों को राष्ट्रभक्ति जगाने के लिये कड़वा किन्तु प्रभावी उपदेश भी देना चाहिये।

गांधी जी द्वारा इस देश में मुसलमानों की आक्रामक प्रवृत्ति को परिरोपण प्राप्त हुआ जिसका प्रदक्ष परिणाम हम आज पाकिस्तान के रूप में देख रहे हैं।

१९३७ में सावरकर जी पर से प्रतिबन्ध हटाये गये। अब वे रत्नागिरि से अन्यत्र आने जाने के लिये स्वतन्त्र थे। इन्हीं दिनों से सावरकरवाद और गांधी-वाद का प्रत्यक्ष रूप में आमना सामना होना प्रारम्भ हुआ। स्वराज्य प्राप्ति के लिये आन्दोलन करने के साथ ही सावरकर जी को एक अन्य कार्यक्रम भी अपने हाथ में लेना पड़ा और वह था गांधी जी की इस एक पक्षीय अहिंसा प्रणाली की घातक शिक्षा का खण्डन करना। उसी का विश्रायक स्वरूप था हिन्दूसघटन।

राजनीति में गांधी जी का प्रवेश होने से पूर्व अर्थात् १९०३ में ही सावर-जी ने स्वतन्त्रता देवी स्तोत्र कहा था। आज तो वह आकाशवाणी पर भी सुनने में आ जाता है। उन्होंने स्वतन्त्रता की देवी का आह्वान करते हुए कहा था—‘तुज साठि मरण ते जनन, तुज जनन ते मरण।’ अर्थात् तुम्हारे लिये मरना यह जन्म है और तुम्हारे लिये जोना मृत्यु है। स्वयं उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिये कितनी यातनायें सही इसका उल्लेख करने की हम आवश्यकता नहीं समझते। स्वराज्य के लिये बलिदान करनेवालों का वे सदा सम्मान करते थे। १९३७ के

वाद तो प्रकट रूप से सभाओं में वे उनका गुणगान एवं अभिवादन करते थे। हिन्दू सगठन के अन्तर्गत हिन्दुओं को ही केवल एकाधिकार प्राप्त हो ऐसी उनकी भावना नहीं थी। परन्तु सहिष्णुता के नाम पर हिन्दुओं के अधिकार छीन कर दूसरों को दे देने के वे विरोधी थे। हिन्दुओं पर अन्याय किया जाय तथा उनके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाय यह उन्हें बरदाश्त नहीं था। हिन्दू महासभा और कांग्रेस में यदि परस्पर विरोध अथवा संघर्ष का विषय था तो केवल यही था।

हिन्दु महासभा तो राजनीति में पहले से ही पदार्पण कर रही थी। कांग्रेस के प्रचारतन्त्र की व्यवस्था ठीक हो गई थी। सावरकर जी के नेतृत्व में हिन्दू महासभा हिन्दु सघटन का अधिष्ठान था और था गांधी जी के नेतृत्व एवं कांग्रेस की हिन्दू मुस्लिम एकता की नीति का विरोध। इस बात को लेकर गांधी जी एवं कांग्रेस का प्रचार तन्त्र यह प्रचार करता था कि हिन्दू महासभा स्वराज्य विरोधी है, वह प्रगतिगामी है, आदि आदि। और इस प्रकार का प्रचार उस वातावरण में आसानी से खप जाता था। शस्त्रविद्या सीखने के लिये सेना में भर्ती होना चाहिये, स्वयं सुलभ इस प्रकार के सुअवसर को ऐसे समय में ठुकरा नहीं देना चाहिये, यथोचित समय पर शस्त्र का उपयोग किस प्रकार करना है इसको समझना चाहिये। सावरकर जी के इस प्रकार के प्रचार का विपरीत अर्थ लगाया जाता था। उसका परिणाम यह हो रहा था कि हिन्दू हितों के विरोध को देश-भक्ति का नाम दिया जा रहा था और हिन्दू महासभा के कार्यकर्ताओं पर किये जाने वाले आक्रमणों को स्वराज्यप्राप्तिका मार्ग माना जाने लगा था।

इस प्रकार के अप-प्रचार का उत्तर देने के लिये कभी तो स्वतन्त्र विचारों के समाचार पत्र आगे आ जाते थे, किन्तु सर्वदा एवं सुसंगठित रूप से ऐसा कोई प्रयत्न सम्भव नहीं हो पाया था। तब साधारण कोटि के दो चार समाचार पत्रों का संचालन हिन्दु महासभा के लिये किया जाने लगा। आज यदि कोई कहे कि शराब बन्दी का कार्यक्रम सफल हो गया है तो सम्भवतया हम लोग हसते हैं। किन्तु उस समय कोई यदि कहता कि हिन्दूमुस्लिम एकता का प्रयास सफल हुआ है, तो उस समय हसने की सुविधा नहीं थी। उस हिन्दूमुस्लिम एकता के विरोध में कोई ठोस सप्रमाण लेख भी यदि लिखा जाय तो उस लेखको प्रकाशित करनेवाले समाचार पत्र को दण्डित किया जाता था।

युद्धकाल में शासकीयस्तर का प्रचार तन्त्र विपक्षी को चकमा देने के लिये किया जाता है। उस समय कांग्रेस ने इस बात का भी ख्याल नहीं किया कि उनका स्वकीय कौन है और परकीय कौन। यदि उन्होंने प्रचारतन्त्र का भी उपयोग किया तो आत्मवचना के लिये ही। मुस्लिम राष्ट्र का यदि निर्माण हुआ तो वह

हिन्दुओं की भूमि पर हो भारत के बाहर के किसी देश की भूमि पर नहीं। अखण्ड हिन्दुस्थान यही हमारे देशभक्ति की कर्मभूमि थी। जिन लाहौर में दि० २६-१-१९२९ को पण्डित नेहरू ने सम्पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पारित किया था विभाजन के बाद वही लाहौर भारतवासियों के लिये विदेश बन गया। भले ही प्रचारतन्त्र के आधार पर कांग्रेस ने यह प्रचलित किया हो कि उसने द्विराष्ट्रवाद का सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया। स्वराज्य प्राप्ति के समय १९४२ के आन्दोलन के आसपास अंग्रेज शासकों ने पूरे देश में १५ सहस्र से अधिक लोगों को मार डाला ऐसा कांग्रेस महासमिति की कार्यवाही में अंकित है। सुभाष बाबू की आजाद हिन्द सेना तो मोर्चे पर ही लड़ी थी। नौसेना ने जब विप्लव किया था तो उस समय भी अनेकों का बलिदान हुआ था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये हिन्दू मुस्लिम एकता के जो मार्ग अपनाये गये उसकी परिणति हुई स्वतन्त्रता प्राप्ति के अवसरपर प्रान्तों के प्रान्तों में रक्त में लयपय जन साधारण के रूप में। और उसी प्रचारतन्त्री की एक तूलिका से वे यह रक्तरजित अध्याय पोछते हैं और तनिक भी न हिचकिचाते हुए कहते हैं—“रक्त की एक वृद्ध भी न गिराते हुए हमने स्वतन्त्रता प्राप्त की।” उस प्रचार तन्त्र में अपने हितशत्रुओं को फसाने की शक्ति तो थी नहीं। हा, अपने ही हितवन्धुओं को फसाने में हमने अपना और अपने देश का गौरव समझा।

गांधी जी को इस देश की जनता ने नेतृत्व दिया इस बात को भले ही अस्वीकार न किया जाय किन्तु शासन की धारणा तो आज यह बन गई है कि यदि उनकी असफलताओं का वह बखान करेगा तो उससे उनकी प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचेगी। इसलिये गांधी की झूठी प्रशंसा को स्थायी बनाने के लिये अथवा उसकी बढ़ाने के लिये वह प्रचारतन्त्र आज भी कार्य करता है।

उस समय वस्तुस्थिति का वर्णन करनेवाले व्यक्ति या दल बहुत ही कम थे। ऐसे ही अल्पसंख्यकों के सावरकर जी अन्वयु थे। हमको सदा के लिये पीड़ा पहुँचानेवाले पाकिस्तान का जब निर्माण हो गया तभी भारत को भी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

उस खण्डित हिन्दुस्थान में तो कम से कम हिन्दू हितों का होम न होने दो, क्योंकि इससे स्वतन्त्रता फिर खतरे में पड़ जावेगी, इसके लिये शस्त्र शक्ति का सचय करो। एक पक्षीय अहिंसा का प्रचार मत करो आदि आदि बातों पर ही सावरकर जी का आग्रह था। सावरकरवाद और गांधीवाद में यही मूलभूत अन्तर था।

केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में भी एक गुट ऐसा बन गया था जिसको गांधीजी की नीति का खोखलापन दृष्टिगोचर होने लगा था। नेहरू और मौलाना आजाद का

गुट यदि गांधी जी की संक्षीण मान प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील था तो सरदार पटेल प्रभृति का झुकाव वास्तविकता की राजनीति की ओर था। इसप्रकार का आभास हमें मौलाना आजादलिखित पुस्तक “इंडिया विन्स फ्रीडम” से भी स्पष्ट मिलता है। इस खीचातानी के बीच में ही गांधी जी ने पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपया दिलाने के लिये अनशन तक की धमकी दी और उन्हीं दिनों गांधी जी का अनशन, दिल्ली के हिन्दुओं पर लादी गई शर्त, गांधी जी की प्रार्थना सभा में स्फोटक का विस्फोट और १० दिन बाद गांधी जी का वध, ये सारी घटनाएँ बड़ी शीघ्रता से सम्पन्न होती गई।

हिन्दू हितों की हठपूर्वक उपेक्षा करने के कारण ही गांधी जी का वध हुआ, ऐसा समझने में शासन को कोई समय नहीं लगा। हिन्दू हितों की रक्षा करने-वाले नेता सावरकर जी ही थे इसलिये शासन का सीधा उन पर रोष हीना भी साधारण सी बात थी। यही कारण है कि प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त न होने पर भी किसी दूर सूत्र द्वारा उन्होंने इस हत्याकांड में सावरकर जी को फसाने का निश्चय किया। चूंकि अभियोजकों को शासन का पक्ष मजबूत करना था इसलिये सावरकर जी की प्रेरणा से और आदेश से गांधी वध किया गया होगा। ऐसा तर्क न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया गया।

शासन की ओर से हिन्दू हितों को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से सावरकरवादी गुट पर येन-केन-प्रकारेण किसी प्रकार के प्रतिबन्ध लगाकर फिर अपनी मन-मानी करने के उदाहरण हमें उसके बाद भी मिले हैं। ज्यों ही नेहरू-लियाकत चर्चा का विषय प्रारम्भ हुआ था, त्यों ही सावरकरजी तथा अन्य अनेकों कार्य-कर्ताओं को १९४० में स्थानवद्धता का दण्ड दिया गया था। मानो हिन्दुओं का अहित कर के ही हिन्दुस्थान और पाकिस्तान के सम्बन्ध सुदृढ़ हो सकते थे। हिन्दू हितों की आहुति दे कर धर्मनिरपेक्षता को निभाने के लिये उस समय के शासकों ने इस प्रकार का हिन्दू द्वेष विद्यमान था। इसी धारणा के बगीमूल सावरकर जीको गांधी वध काण्ड में शासन द्वारा फंसाया गया था। सावरकर जी के प्रति इस द्वेष भावना को कम होने में अनेक वर्ष लगे।

### सावरकर जी का व्यवहार

जब सावरकर जी को गांधी वध काण्ड में फसाकर कारागार में रखा गया तो उन्होंने अन्य अभियुक्तों को इस प्रकार नहीं कहा कि वे लोग उनके साथ किसी प्रकार का सम्पर्क सूत्र न रखें, क्योंकि इनसे अभियोजकों को अपने पक्ष को पट्ट करने के प्रमाण प्राप्त होंगे। जिन दिनों गांधी हत्याकाण्ड के सहयोगियों की भोज जारी थी उन दिनों बन्दी बनाये गये सभी अभियुक्तों को दम्वई के गुप्तचर

विभाग के कार्यालय में रखा गया था। सावरकर जी को आर्थर रोड के बन्दीगृह में रखा गया था। अधिक समय मागने के लिये एक बार उनको चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट के न्यायालय में उपस्थित किया गया, उसी दिन अन्य अभियुक्तों के लिये भी अधिक समय की माग करनी थी अतः उनको भी वहाँ उपस्थित किया गया था। सावरकर जी को सम्मुख देखते ही जो पहला प्रश्न मन में उठा वह यह था कि क्या वे बोलने की मनस्थिति में हैं ?

वाहन की प्रतीक्षा में कुछ क्षणों के लिये हम लोग बरामदे में रुके थे। कुछ तो भी बोलने के उद्देश्य से नाना आपटे सावरकर जी से बोले, “ये पुलिस के अधिकारी बोलते समय तो ऐसा प्रतीत होता है कि मुख में शक्कर भरकर बोलते हैं ?” सावरकर जी ने खुले मन से उत्तर देते हुए कहा, “इसके लिये आपको उन्हें घन्यवाद देना चाहिये। क्योंकि वैसा करने के लिये उनपर कोई बन्धन नहीं है।”

सावरकरजी का उत्तर सुनकर यह प्रतीत होता था कि इस गिरफ्तारी से सावरकर जी हताश अथवा सिन्न नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता था कि उन्होंने यह धारणा बना ली थी कि जो हो न्यायालयीय कार्यविधि से उनको गुजरना पड़ेगा ही। इस दृष्टि में उन्होंने अपनी मानसिक स्थिति बना ली होगी। आज तक हमने सावरकर जी को सकट में सीना तान कर ही खड़े पाया था और आज हम उनको उन्नी प्रकार देख रहे थे।

दिल्ली के लाल किलेवाले बन्दी गृह में शकर किस्तिया और बडगें को छोड़ कर शेष सभी एक साथ ही रहते थे। हम सबकी पहली खुली भेंट दि० २७-५-१९४८ को हुई थी। आपटे और नथूराम के साथ सावरकरजी का घनिष्ठ सम्बन्ध था। न्यायालय अथवा कारागार में भी उसी प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध निभाने से किसी प्रकार का सन्देह हो सकता है अतः वैसा न किया जाय यह बात सावरकरजी के मन में कभी नहीं आई। न्यायालय में भी अवकाश के क्षणों में हमलोगों के साथ वे वार्ता में खूब निमग्न रहते थे।

जब हम प्रथम बार मिले तो उन्होंने प्रत्येक से पूछा कि पहली भेंट में न्यायालय ने किससे क्या क्या कहलवा लिया है। हम लोगों की बातों को सुनकर उन्होंने बताया कि हमारे बयानों से किसके विरुद्ध क्या-क्या प्रमाण एकत्रित किये जा सकते हैं। मारी सम्भावनायें उन्होंने हमारे सम्मुख स्पष्ट की।

नथूराम को सावरकर जी ‘पण्डित’ शब्द से गौरवान्वित किया करते थे। इससे उनपर किसी प्रकार की आँच आवेगी ऐसा उन्होंने कभी नहीं सोचा। अपने लिखित बयान में भी उन्होंने नथूराम के साथ पण्डित शब्द को जोड़ा था। बहुत वर्ष पूर्व किसी एक व्याख्यान में जिसको टेप रिकार्ड कर लिया गया था,

उसमें भी उन्होंने नथूराम को पण्डित विशेषण से ही सम्बोधित किया है।

नथूराम और आपटे के समान ही अन्य अभियुक्तों के साथ भी उनका स्नेह सम्बन्ध था। एक दिन जब नाना आपटे के विरुद्ध गवाही हुई तो उन्होंने आपटे से पूछा, “यह गवाह आपके विरुद्ध आने का क्या कारण है ? नाना बोले, कभी आरक्षकों से बोलते हुए मेरे मुँह से कोई बात निकली होगी, मेरी उस बात को जाँच करने के लिये जब प्रयत्न किया गया तो उनको यह गवाह मिल गया।” सावरकर जी ने कहा, अकारण ही आप लोगों ने अपने चारों ओर एक त्रिचित्र वायुमण्डल का निर्माण कर लिया है। मुझे लगता है कि यह हानिप्रद सिद्ध होगा। क्या सभी ने गर्दन कटवाने का निश्चय कर लिया है ?” बात तो हो चुकी थी, यह तो सच था। नाना इस पर क्या बोलते ?

यद्यपि सावरकरजी का अभियुक्त क्रमांक ७ था, तथापि न्यायालय में उनके बैठने की इस प्रकार व्यवस्था की गई थी कि जिससे वे न्यायाधीश के निकट रहें। उनके समीप ही नथूराम बैठते थे। कई बार गवाहों के वयान दूनरो के बचाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत होते थे, अथवा कभी किसी गवाह से किसी विद्वान से उससे कोई विशिष्ट प्रश्न पूछा जाना चाहिये ऐसा विचार उनके मन में उत्पन्न होता था। ऐसे अवसर पर वे नथूराम को सकेत से उस भाग को लिखकर रखने अथवा स्मरण रखने के लिए कहते थे। उसके बाद न्यायालय के मध्यान्तर अथवा बन्दीगृह में उसपर चर्चा होती थी।

डाक्टर परचुरे के विरुद्ध उपस्थित किये गये एक साक्षी से डाक्टर परचुरे को पहचानने के लिए कहा गया। वड़े विस्वास के साथ साक्षी बन्धियों के पिंजड़े के समीप आया और उसने उँगली से सकेत कर बताया। किन्तु उसकी उँगली सदिग्ध रूप में उठी हुई थी। न्यायामूर्ति ने साक्षी को और निकट जा कर सकेत करने के लिए कहा। न केवल इतना ही बल्कि उन्होंने डाक्टर को हाथ से स्पर्श करने का आदेश दिया। साक्षी ने आगे बढ़कर जो हाथ रखा वह डा० परचुरे पर न होकर सावरकर जी पर था।

न्यायालय में इससे हँसी का मानो विस्फोट सा हुआ। साक्षी को लगा उससे कुछ भूल हो गई है। क्षण भर उसने इधर उधर देखा और फिर उसने डाक्टर परचुरे का स्पर्श किया।

बचाव पक्ष ने न्यायमूर्ति को कहा कि वाद का सकेत मान्य न माना जाय। इसके विपरीत आयोजकों का कहना था कि कदाचित् प्रकाश की चकाचौंध में वह साक्षी को पहचानने में प्रथम बार भूल कर गया हो।

सावरकर जी खड़े हुए और न्यायमूर्ति से बोले, “साक्षी ने मुझे प्रत्यक्षरूप से छुआ है।” न्यायमूर्ति बोले, “मैंने इसे अंकित कर लिया है।” इस प्रकार यह विवाद बन्द हो गया।

साक्षी क्र० पी० डब्ल्यू० ५३ जगन्नाथ सिंह, ( दि० १५-७-४७, अभिलेख ग्रन्थ १ पृष्ठ ७४-७५ ) साक्षी बना कर लाया गया था। सावरकर जी का विचार था कि इस बात को यदि न्यायाधीश के ध्यान में लाया जाय तो उससे डा० परचुरे का लाभ होगा।

तत्कालीन बम्बई राज्य के गृहमन्त्री श्री मोरारजी देसाई की साक्षी जारी थी। प्रतिप्रश्न में अपने वकील के द्वारा नथूराम ने न्यायालय के सम्मुख यह स्पष्ट किया कि अग्रणी और हिन्दू राष्ट्र दैनिक को मोरारजी देसाई ने किस प्रकार तग किया था। इस वस्तुस्थिति से गांधी वक्ता की पार्श्वभूमि का ज्ञान करवाया था। मोरारजी देसाई स्पष्ट उत्तर देने की अपेक्षा धुमा-फिरा कर उत्तर देते थे। कुछ समय तक नथूराम यह देखते रहे। एक उत्तर से तो उन्हें बहुत खेद हुआ। वे तुरत खड़े होकर न्यायमूर्ति से बोले, “मन्त्री महोदय उचित उत्तर नहीं दे रहे हैं। ३० जनवरी को मैंने जो कृत्य किया है उसके द्वारा इनके साथ जो छल हुआ है वह इनको असहनीय होना इसका एक कारण है और इसके लिये ये गृहमन्त्री महोदय भी उस कृत्य के लिए उत्तरे ही उत्तरदायी हैं।

क्षण भर तक तो न्यायालय में स्तब्धता सी छा गई। नथूराम के ‘मेरे कृत्य के लिये’ यह शब्द अभियोजकोको महत्वपूर्ण प्रतीत हुए। क्योंकि वह उनकी स्वीकारोक्ति थी। नथूराम का यह वक्तव्य लिख लेने की प्रार्थना उन्होंने न्यायमूर्ति से की। “• मैं अपना वक्तव्य आपको यथासमय लिखकर देनेवाला हूँ। परन्तु इस पर भी यदि आप इस वाक्य को अभी लिख लेना चाहते हो तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है” ऐसा नथूराम ने कहा था। परन्तु तभी नथूराम के वकील श्री ओक ने न्यायमूर्ति को ध्यान दिलाया कि यह समय अभियुक्तों के वक्तव्यों का नहीं है। न्यायमूर्ति ने उसे स्वीकार कर लिया। अभियोजको ने भी अधिक आग्रह नहीं किया। इस प्रकार नथूराम के वे उद्गार लिखे नहीं गये। किन्तु इससे उपस्थित जनों को यह आभास मिल गया कि अर्द्धसत्य अथवा असत्य या धुमाफिरा कर दी गई साक्षियों अथवा उत्तरों से नथूराम कितने उद्ध्विग्न होते हैं।

न्यायालय से वापस आते समय सावरकर जी ने नथूराम से कहा, “नथूराम! आज तुमने मोरारजी को सहाय्य दिखा दिया।”

नथूराम स्वीकारोक्ति दें इस प्रकार की सूचना वकीलों के द्वारा कभी कभी सावरकर जी के पास पहुँचती थी। तब सावरकर जी कहते, “उनने कहे, ‘सेतो का सतुवा, नानी का सराव’ करना आसान है। स्वयं उस भूमिका में है ऐसा क्षण भर सोच कर फिर उस पर सम्मति दी जानी चाहिये।”

हिन्दुओं में स्वाभिमान जागृत करने की सावरकर जी में आकांक्षा थी। उनकी जीवन पद्धति में अन्यो पर अन्याय करने के लिये स्थान नहीं था। किन्तु अपना स्वतन्त्र त्याग न करने के लिये किसी भी प्रकार का त्याग करने की सिद्धिना



मनुष्य में होनी चाहिये यही उनकी विचारप्रणाली थी। अपने लिये तो उन्होंने इस प्रकार की सिद्धता रखी थी 'आपुले कुलही त्यामधि ईश्वराश निर्वश होउनि ठरेल अखंड वश।' अर्थात् अपना कुल भी ईश्वर का अश है और निर्वश होकर भी उसका अखण्डवश ठहरेगा। अथवा 'अशीच सर्व फुल खुडावी श्रीराम चरणी अर्पण करावी' काही सार्थकता लाभावी या नश्वर देहाची। अमर होय ती वशलता निर्वश जिचा देवा करिता' अर्थात् किसी तरह सभी पुण्य तोड़े जायें और श्रीराम के चरणों में समर्पित होकर इस नश्वर देह को सार्थक करें। वह वशलता अमर होती है। जिसको भगवान पर चढावा चढाने के लिए तोड़कर निर्वश किया जाता है। सत्वरक्षण में से गांधी वध की पृष्ठभूमि तैयार हुई यह स्पष्ट प्रतीत होते हुए भी तथा उस तत्त्वज्ञान के जनक सावरकर जी स्वयं ही मृत्यु की छाया में विचरण कर रहे थे, फिर भी उन्होंने अपने तत्त्वज्ञान को कभी गलत नहीं समझा। नथूराम या आपटे उस तत्त्वज्ञान के या हिन्दू महासभा के समर्थक नहीं थे इस प्रकार का वचाव उन्होंने कभी नहीं किया। नथूराम या आपटे अपने वक्तव्य में हिन्दूमहासभा या सावरकरजी के तत्त्वज्ञान से स्वयं को सम्बन्धित न दिखावें, ऐसा निर्देश भी सावरकर जी ने कभी उनको नहीं दिया था।

नथूराम अपना वक्तव्य स्वयं तो मराठी में लिखते थे फिर उसका अनुवाद किया जाता था। नथूराम चाहते थे कि सावरकरजी भी कुछ भाग लिखें। सावरकरजी कहते—“मुन्हारे लिये मुझे लिखने की आवश्यकता नहीं। अपना लिखा हुआ मुझे दिखाते जाओ, यदि आवश्यकता हुई तो कुछ हेर फेर मैं सुझा दूंगा।”

क्योंकि समय बहुत कम रह गया था, इस कारण अपने वक्तव्य के कुछ पृष्ठ नथूराम ने हडबडी में लिखे थे। उनकी इच्छा थी कि विषयवस्तु की रचना अच्छे ढंग से की जाय किन्तु उपलब्ध समय में वह सब सम्भव नहीं प्रतीत हो रहा था। सावरकरजी ने उनको सान्त्वना देते हुए कहा, जो वक्तव्य तैयार हो गया है उसमें कोई विशेष कमी नहीं है। यदि इस समय उसमें कुछ हेर-फेर किया गया तो इससे उसकी सुसूत्रता को हानि पहुँचेगी। यह कोई व्यासपीठ पर दिया जानेवाला उपदेश तो है नहीं। अपने प्राणों को देश के लिये बलिदान करने की भावना से उनको कुछ समझने की पराकोटि तक किस प्रकार मन की स्थिति पहुँची है उसका प्रकटीकरण करनेवाले ये मन के बुलबुले, तरंग अथवा आवेग हैं। अतः दुःख के बाद जिस प्रकार सिसकिया मुक्तता धारण कर लेती हैं अथवा अतीव आनन्द के उपरान्त जैसा अनिर्वन्ध हास्य प्रस्फुटित होता है वैसे ही यह मन का आवेग भी मुक्त या अनिर्वन्ध प्रतीत हो तो भी उसकी पृष्ठभूमि की भावना निश्चित रूप में और अकृत्रिमता से समझी जा सकती है। इस दृष्टि से तुम्हारा वक्तव्य परिपूर्ण है।’

नयूराम ने यह तो निश्चय किया कि उसके वक्तव्य के लिये न्यायालय में तर्क-वितर्क वे स्वयं करेंगे किन्तु उसमें उनको कठिनाई थी तो एक यही कि वे अग्रेजी में बहस नहीं कर सकते थे। उन्हें दुःख था कि विश्वविद्यालय की उपाधि तो दूर रही सामारण पाठशाला का प्रमाणपत्र भी वे प्राप्त नहीं कर पाये थे तो न्यायालय में अग्रेजी में बहस किस प्रकार कर पावेंगे।

दि० १६-१२-१९४८ को नयूराम ने अपना बयान शुरु किया जो दूसरे दिन पूर्ण हुआ। बयान प्रारम्भ करने के कुछ क्षणों बाद ही ऐसा प्रतीत होने लगा कि न केवल न्यायालय में उपस्थित जनसमुदाय अपितु न्यायाधीश एवं सरकारी पक्ष के वकील तक को उन्होंने अपने वक्तव्य से अभिभूत कर लिया है। बिना किसी रयान पर अटकते हुए, किसी योग्य घट्ट की किसी प्रकार की खोज न करते हुए विषय को पकड़ कर तथा समय-समय पर सन्दर्भ देते हुए वे घंटों तक बोलते रहे।

अपना वक्तव्य देते समय सम्भवतया नयूराम यह भूल गये थे कि उसकी गर्दन के चारों ओर फासी की रस्सी लटक रही है। वे निर्भीकता से वक्तव्य दे रहे थे किन्तु कोई भी श्रोता अपने अन्तर्मन से उस रस्से को उनकी गर्दन में लिपटा स्पष्ट देख सकता था। अन्यथा नयूराम का वक्तव्य कैसा रहा इसका इतना महत्व नहीं था अपितु इसमें अधिक महत्व था इस बात का कि फासी के फंदे में फंसी हुई गर्दन के बाद भी नयूराम ने किम प्रकार अपना वक्तव्य दिया। श्रोताओं के लिये इसका महत्व अधिक था।

नयूराम ने अपने वक्तव्य में कहा, “जिमको सुखी जीवन कह सकते हैं, उस प्रकार का ही मेरा जीवन था। परन्तु जायद मनुष्य इतने पर सन्तुष्ट नहीं रह पाता। सहजीवन की कल्पना में से राष्ट्र की कल्पना का निर्माण हुआ। विश्व कुटुम्ब की कल्पना के लिये राष्ट्र की वारणा आवश्यक है। बिखरा हुआ समाज राष्ट्र नहीं कहा जा सकता। कहा भी जाय तो राष्ट्र के नाते वह टिक नहीं सकता। क्योंकि उसके घटकों के हित समान नहीं होंगे और समाज के घटक इस दृष्टि से सहजीवन की कल्पना से एक रस नहीं होंगे। सुमघटित राष्ट्रों का सहजीवन ही विश्वकुटुम्ब होता है। सुमघटित राष्ट्र विश्व कुटुम्ब की योजना रच सकता है। व्यक्ति की मर्यादा राष्ट्र की भावना तक सीमित रहती है।

राष्ट्र की कल्पना में से ही समवेदना और सहानुभूति के भावों का परिपोष होता है। जनसमूहों के किसी घटक के राष्ट्रीय स्तर का जो दुःख होगा वही मेरा भी दुःख होगा, राष्ट्र का हित ही मेरा हित, राष्ट्र के स्वातन्त्र्य की रक्षा ही मेरी स्वातन्त्र्य रक्षा होगी, इस प्रकार की भावना हृदय में उत्पन्न होती है। ‘वैष्णव जन तो तेणे कहिये, जे पीर पराई जाणे रे’ इस प्रकार के अनेक सन्तों की शिक्षा मन में गूजायमान होती रहती है।

अपने वैयक्तिक एवं आनन्दमय जीवन में भी मुझे असन्तोष सा प्रतीत होने लगा था। जिस महाराष्ट्र प्रान्त में न तो विभाजन की आच आई थी और न ही वहाँ किसी प्रकार का रक्तपात हुआ था ऐसे प्रान्त में मैं रहता था। जिन प्रान्तों का विभाजन हुआ था वहाँ के विभाजनग्रस्त जन मेरे कोई नहीं थे और उनके रक्तप्रवाह का मेरे लिये क्या शुभाशुभ ? इस प्रकार की भावना मेरे मन में स्थान ही नहीं पा सकी।

विभाजन की प्रत्यक्ष आच हमारे प्रान्त को यद्यपि न छू पाई थी तथापि निर्वासितों के जल्ये के जल्ये हमारे प्रान्त में प्रविष्ट हो रहे थे। स्थान-स्थान पर निर्वासितों के शिविर स्थापित थे। मानो कांग्रेसी नेताओं की गलत नीति के सजीव स्मारक खड़े हो। उनके अनजाने ही उनकी पवित्र भूमि पर इस्लामी राष्ट्र का निर्माण हो गया। उन्हें उनके प्राण और धन-सम्पत्ति का आश्वासन दिया गया था किन्तु वे अनुभव कर रहे थे कि प्रत्यक्षरूप में तो उस राष्ट्र में उनके प्राण सकट में हैं, उनका भवितव्य मृत्यु रूप में खड़ा है। या तो उनका वहाँ से निष्कासन होगा अन्यथा भ्रष्टीकरण। वे लोग उस नवनिर्मित राष्ट्र के घटक नहीं थे क्योंकि वह उस धर्म के नहीं थे जिस धर्मवालों के लिये उस राष्ट्र का निर्माण हुआ था, यही उनका अपराध सिद्ध हुआ था।

“चूँकि वे इस राष्ट्र के ही घटक थे, इस राष्ट्र में ही वे एक रूप हो सकते थे तथा सहारा लेने के लिये ऐसा कोई अन्य राष्ट्र भी उनको नहीं था इस भूतल पर, अन्य कोई ऐसा देश भी उनके लिये नहीं था।

असह्य हिन्दुओं की हत्या करने और अवशिष्ट हिन्दुओं के निष्कासन के जो कारण थे उनको निमन्त्रण देते हुए हमारे शासकों ने कहा—‘आप वापस आ जाइये, हमारा देश धर्मनिरपेक्ष है, आप कैसा भी व्यवहार क्यों न करें हम तो आपने भला ही व्यवहार करेंगे, आवश्यकता हुई तो आपने जिन निर्वासितों को हमारे देश में भेजा है उनको खुले मैदान में रखकर भी हम आपके घर आपको वापस करायेंगे और आपके घरों को यदि कोई खाली नहीं करेगा या आपको मारने के लिए कोई हाथ उठायेगा तो उनका पूरा नाश करने के लिये हमने अपनी सेना को सज्जित किया हुआ है। हमारी बन्दूक आपके ऊपर कभी नहीं तनेगी क्योंकि उसने हिंसा होने का भय है, इससे विश्व में हम बदनाम हो जावेंगे।

‘इस प्रकार निर्वासितों को पुन निर्वासित बनने की वारी भी आई।’

सहिष्णुता के नाम पर अन्याय की सीढ़ी किस स्तर तक पहुँच चुकी थी इसकी भीमासा साधार और सन्दर्भ सहित करते हुए नथूराम अपने वक्तव्य के उत्तमम बिन्दु की ओर जा रहे थे।

अपने राष्ट्र में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जो सम्यता और गिष्टाचार

से परिचित न हो। जो प्रश्न चर्चा एवं वार्तालाप द्वारा हल हो सकता है उसको उसी प्रकार हल करने में भी किसी को किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती। दृढ़ि के दल से प्रतिपक्ष को अपना दृष्टिकोण जवा देने की क्षमता हममें होनी चाहिये। परन्तु उसके साथ ही साथ यदि किसी ने शस्त्र दल की धमकी दी तो उसका प्रत्युत्तर भी उसी प्रकार देने की क्षमता तो हममें होनी ही चाहिये। यह सूत्ररूप में स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अपने वक्तव्य में शास्त्र का एक वचन उद्धृत किया था—‘अप्रतश्चतुरो वेदा पृष्ठतः सशरधनुः, इदं ब्राह्म इदं क्षात्र शाण्ड-दपि शरादपि ।’

ब्रिटिशरम के युग में क्रांतिकारियों को न्यूनातिन्यून लोकप्रियता प्राप्त होती थी। किन्तु मेरे तो इस अभियोग में राजसत्ता भी मेरे विरुद्ध है और लोगो को भी कदाचित्त यह कार्य अप्रिय है इस कारण दुगुने रोप के मध्य में मैं स्थित हूँ। किन्तु मेरी धारणा है कि विभाजन से प्रारम्भ कर पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपया मुआवजा देने के सभी कृत्य गांधी जी की नीति का ही परिणाम थे। उन पर आरोप लगानेवाला कोई न्यायालय बन पावेगा ऐसा जब मुझे असम्भव प्रतीत हुआ तब मुझे वह वास्तव में अप्रिय प्रतीत होनेवाली बात करनी पड़ी। अब इसके परिणामो की भी मुझे कोई चिन्ता नहीं है।

विगतकाल में चारदत्त को भी इसी प्रकार उस समय की किसी धारा ३०२ के अन्तर्गत बन्दी बनाकर न्यायालय में खड़ा किया गया था। वह दोषी नहीं था, किन्तु उस पर दोष मढ़ा जा रहा है, यह जानकर उसे दुःख होता था। उसे मृत्यु का भय नहीं था। वह कहा करता था—‘न भोतो मरणादस्मि केवल दूषितं यश ।’ अर्थात् मृत्यु का भय तो मुझे नहीं है, लोगो मे मेरे सम्बन्ध में अप्रियता, कटुता अथवा घृणा निर्माण होगी या निर्माण की जायेगी इसका भी मुझे भय नहीं है। मेरे कृत्य के हेतु का विपर्यास न किया जाय इतनी ही मेरी इच्छा है।

न्यायालय पूर्णरूप से भरा हुआ था। सभी श्रोता एकचित्त होकर सुन रहे थे। हृदय में निकलनेवाले उस समय के उद्गारो को कही प्रकट करने का अवसर नहीं था। विचार स्पष्ट थे। सुने हुए भाषण से ही लोगो के कंठ रुध गये थे। अश्रुकण आँसो से बाहर निकल आये थे।

नथुराम ने कहा—मराठी क्षेत्र में विख्यात व्याख्याताओ की श्रेणी में मेरी गिनती है। विषय से एकरूप होकर बोलने के कारण ही कदाचित्त वह स्थान मुझे प्राप्त हुआ हो। यदि मैं कहूँ कि मैंने अनेक सभाओ मे अपने भाषण से रूख घूमघाम मचाई थी तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। लोगो ने मुझे खूब पुष्पमालाओ से लाद रखा है। फूलो की वे मालायें यदि मेरे भाषणो का पुरस्कार समझ कर-

मैंने उन्हें सहर्ष स्वीकार किया है तो अपने किये हुए अवैध कृत्यके लिये पुरस्कार रूप में यह फासी का फदा भी मैं उसी प्रकार सहर्ष स्वीकार कर रहा हूँ ऐसा आप लोगो को प्रतीत होगा। क्योंकि प्रस्तुत विषय से भी मैं उतना ही एक रूप हूँ।

यह सुनकर ओताओ की आँखों की पलकों में अटके हुए आसू टप-टप गिरने लगे। रुँधे हुए कण्ठ सिसकने लगे। न्यायालय में सन्नाटा छा गया। यदि कोई व्यक्ति बोलने का यत्न भी करता तो उसकी आवाज भारी और भर्राई प्रतीत होती थी। नामोल्लेख करने की अनुमति मैंने ग्रहण नहीं की है अतः मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि अभियोजको में से एक वरिष्ठ व्यक्ति की सुग्रहिणी नथूराम के भाषण में इतनी तल्लीन हो गई थी कि उसकी सिसकिया निकल गई थी। उन्हें ध्यान ही नहीं रहा कि वे न्यायालय में बैठी हैं अथवा किसी वरिष्ठ व्यक्ति की पत्नी हैं। स्थियो का अन्त करण भावनाप्रधान होता है। अनेक पुरुषों के जब आसू टपक रहे थे तो महिलाओं की अवस्था वैसी होना स्वाभाविक ही है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

नथूराम की इस प्रकार की ओजस्वी वाणी सुनकर सावरकरजी को मानन्द मिश्रित आश्चर्य हुआ था। उनकी भाषण कला से वे रत्नागिरी से ही परिचित थे। उनके प्रति उन्हें अपनापा एवं विश्वास था। उन पर उनका इतना विश्वास था कि कभी किसी अनौपचारिक वार्तालाप में कोई उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करता तो वे कहते, 'इसका उत्तर हमारा नथूराम देगा।'

नथूराम के वक्तव्य का प्रथम दिन समाप्त होने पर हम लोग वन्दीगृह में आये। सावरकर जी साधारण रूप से दूसरे कमरे में नहीं जाते थे परन्तु उस दिन वे मेरे और नथूराम के कमरे में आये और नथूराम से बोले।

भापा का भय तुम कथो करते हो? साक्षात् सरस्वती तुम्हारी जिह्वा पर विराजमान थी। तुमने तो 'वाचमर्यानुवाचति' का प्रमाण प्रस्तुत किया है।'

दूसरे दिन मकान को वापस आने के बाद सावरकर जी अत्यन्त ही उत्साहित प्रतीत होते थे। गद्गद् कण्ठ में वे नथूराम से बोले, मैंने घीमरा को निकट से केवल एक ही बार देखा था। अन्य कोई भी रत्नागिरी में आते तो मुझसे मिल कर जाते थे। परन्तु उनके अभियोग में अटक जाने के बाद उनसे भेंट नहीं होती थी। परन्तु न जाने क्या योग है कि मैं यहाँ तुम्हें प्रतिदिन देख रहा हूँ।'

अपने वक्तव्य के पन्ने जैसे- जैसे सावरकर जी लिखते जाते थे वैसे-वैसे मुझको देते जाते थे। उनको लेकर मैं उनकी साफ स्पष्ट प्रतिलिपि लिखकर तैयार करता था।

यदि उच्च न्यायालय में जाना पड़ जाय तो उसके लिये भी उन्होंने अपनी याचिका का प्रारूप तैयार करके रख लिया था। जब मैं उनसे कहता, 'तात्या। आपके विरुद्ध जो प्रमाण लाया गया है उससे आप दोषी सिद्ध हो सकें ऐसा तो प्रतीत नहीं होता। इसके उत्तर में वे कहते 'यदि उन्होंने मुझे मुक्त किया तो क्या मैं यही रहूँगा ? मुक्त होने पर भी मैं क्या पुनरावेदन करूँगा ? जो प्रमाण वे प्रस्तुत कर रहे हैं वे कितने प्रभावी हैं इसका ज्ञान शासन को है। फिर भी उन्होंने अभियोग लगाने का निश्चय किया है न ? न्यायाधीश यदि खीचखाच कर उससे अपने अनुकूल अर्थ लगाने का निश्चय करें तो ? इसलिये किसी भी परिस्थिति से निपटने की अपनी सिद्धता होनी चाहिये ?'

क्या सावरकर जी पर अभियोग लगाना न्याययुक्त था ?

सावरकर जी के विरुद्ध जो प्रमाण एकत्रित किये गये थे वे प्रत्यक्ष न हो कर संकेतात्मक प्रमाण अभियोग के लिये पर्याप्त हैं ऐसा यदि मान लिया जाय तो अभियोग में गवाह रूप में लाये गये अमुक व्यक्तियों पर त्रैराशिक दृष्टि से अभियोग करना पड़ जाता था। इसके अतिरिक्त जिन्हें साक्षी के लिये लाया गया था ऐसे भी अनेक व्यक्तियों पर पडयन्त्र का आरोप लगाना गणितशास्त्र के अनुसार गलत होता था। क्योंकि उनके वर्तव्य से ही उनके विरुद्ध संकेतात्मक प्रमाण मिल जाता था। सावरकर जी पर यदि आरोप था तो केवल यही कि 'उन्होंने गांधी वध के लिये आदेश दिया होगा। उस कृत्य के लिये आशीर्वाद दिया होगा।

सावरकर जी का चरित्र जिन्होंने सूक्ष्म रूप से पढ़ा होगा, या जो सावरकर जी के सम्पर्क में आये होंगे उन्हें यह ज्ञात है कि सावरकर जी का स्वभाव ऐसा नहीं है कि वे किसी को तुम ऐसा करो इस प्रकार कोई आदेश दें। वे सदा अपनी ही जान के साथ खेले हैं दूसरों की जान के साथ नहीं। उनके तबज्जान में जो शक्ति थी, व्यक्तित्व में जो प्रेरणा थी उससे स्वयं स्फूर्त हो अपनी जान के साथ खेलनेवाले लोग उनके चारों ओर एकत्रित हुए परन्तु 'मेरी इच्छा है कि अमुक कार्य सम्पन्न होना चाहिये और इसके लिये अमुक व्यक्ति कार्य करे ऐम्ग उन्होंने कभी किसी को नहीं कहा, फिर भले ही वह मदनलाल घोषरा हो या वामुदेव बलवन्त गोगटे।

नथूराम और आपटे ऐसे नासमझ व्यक्ति के नहीं थे कि सावरकर जी इस प्रकार का कोई आदेश दें और वे उसे चुपचाप सुनकर उस पर कार्य करने की योजना बना लें। उसकी प्रज्ञा स्वतन्त्र थी, उनका अचार-विचार स्वतन्त्र था उन्होंने सावरकर जी को भी जो पत्र लिखे हैं उसमें यही लिखा है - 'हिन्दू महा-सभा के अध्यक्ष के नाते आप से अमुक अमुक विषयो विचार विमर्श अथवा पथ-

प्रदर्शन प्राप्त करना है।' इसलिये आदेश का प्रश्न कम से कम नयूराम और आपटे के सम्बन्ध में तो किञ्चिन्मात्र भी लागू नहीं होता था।

रहा प्रश्न आशीर्वाद का। इस सम्बन्ध में बडगे ने जो कहानी गढ़ी है वह दृष्टत उथली है। उसका यह सिद्ध करना कि सावरकर जी के साथ नयूराम और आपटे की जो कुछ भी गुप्त बातें हुई हैं उन बातों की समाप्ति कमरे में न करते हुए वे उन बातों को सूत्र लेकर चलते हुए सीडियो से उतरते समय बातें करते आये थे और सामने एक साधी खड़ा है यह देख कर भी बोले यशस्वी हो कर आइये। अभियोजको ने इस कहानी के आधार पर अपना यह अर्थ निकालते हुए कि यशस्विता का कार्य गांधी वचन का था, और इसके आधार पर सावरकर जी पर अभियोग लगाया गया।

कमरे तक तो गुप्तता रखना और कमरे के बाहर आकर उस गुप्तता की वाच्यता करना ऐसा उच्छृङ्खलापन सावरकर जी के वक्तव्य में नहीं था। इसलिये बडगे की कहानी उपेक्षणीय है। हम यह मान लें कि नयूराम और आपटे यह कहने के लिये सावरकर जी के पास गये कि अमुक कार्य होनेवाला है अथवा वे उसे करने वाले हैं अर्थात् यह समझा जाय कि वह बात उनको विदित थी, तो क्या इतने मात्र से ही यह मान लेना चाहिये कि सावरकर जी उस पड्यन्त्र के घटक थे? क्या यह निष्कर्ष उचित होगा? क्या ऐसा उन पर आरोप लगाना न्याययुक्त होगा?

इस स्थिति में अधिक से अधिक यह आरोप लगाया जा सकता है कि एक सम्भ्रान्त नागरिक के नाते उन्हें यदि घटना होनेवाली है इस प्रकार का कोई ज्ञान था तो उसको योग्य अथवा उचित अधिकारी को बताने का प्रवृत्ति क्यों नहीं किया। उसी सीमा तक उन पर आरोप लगाया जाता और उन्हें बचाव का अवसर दिया जाता तो उसे हम अन्याय नहीं कहते। परन्तु उन्हें पहले से विदित था केवल इसी अनुमान पर वे पड्यन्त्र के आरोप के पात्र थे ऐसा निष्कर्ष निकाला गया था।

इस प्रकार तो प्राध्यापक जैन भी पड्यन्त्र के घटक थे और उन पर ऐसा आरोप लगाना उचित हो सकता था। उन्होंने मोरारजी देसाई को यदि जानकारी दी भी तो तब जब उन्होंने समाचार पत्र में यह पढ़ लिया कि मदनलाल ने बम फेंका है और उससे गांधी जी घायल भी नहीं हुए। उससे पूर्व उन्होंने किसी प्रकार की जानकारी किसी भी योग्य अधिकारी को नहीं दी थी। कल्पना कीजिये कि गांधी जी का वचन २० जनवरी को ही हो गया होता, तब क्या श्री जैन मोरारजी भाई को बताने के लिये गये होते?

श्री मोरारजी कहते हैं "मेरा नाम जाहिर मत करो। जिन व्यक्तियों को इसमें फसाया गया है और जिस दस्ती में मैं रहता हूँ उसका ध्यान करो। नहीं तो

मेरे जीवन को खतरा है।" ऐसा जैन ने कहा था उनका आगे मोरार जी से कहना था कि "जब मुझे नागरवाला मिले तो उन्हें मैंने यह नहीं बताया कि इस षडयन्त्र की सूचना मुझे कहा से मिली थी।" ( अभिलेख ग्रन्थ १ पृष्ठ १६७ )

यदि श्री जैन के कथन से निष्कर्ष निकालना हो तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि "अभी तरु तो काम पूर्ण हो जाता, किन्तु काम बिगड़ गया है। मेरे मन्त्री को मिलने के कारण काम बिगड़ गया है ऐसा यदि षडयन्त्रकारियों को विदित हो गया तो वे मेरी मरम्मत कर देंगे" ऐसा मन में आने के कारण जैन ने अपना नाम प्रकट न करने का आप्रह् मोरारजी से किया। अर्थात् षडयन्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति को ही ऐसा भय लग सकता है। श्री ग० वि० केतकर ने जब श्री बाबूकाका कानिटकर से बातें की तब उन्हें ऐसा भय नहीं था। कानिटकर को भी बाबासाहेब खेर को पत्र लिखते समय ऐसा भय नहीं था।

जब मन्त्री ने प्रा० जैन से पूछा कि इस विषय में पहले क्यों नहीं बताया तो उन्होंने उत्तर दिया, 'ऐसे क्रोध से बोलने की तो निर्वासितों को आदत ही थी। और मदनलाल को मैंने उस विचार से परावृत्त किया है ऐसा मुझे विश्वास हुआ (पृष्ठ १६७)। परन्तु प्राध्यापक जैन के कथन के अनुसार उन्होंने इस षडयन्त्र के सम्बन्ध में श्री जयप्रकाशनारायण और उनके महाविद्यालय के ही एक व्यक्ति श्री ए०बी० याज्ञिक को बताया था (पृष्ठ १३२, १३४)। जब उनसे पूछा गया कि आरक्षक अधिकारी को क्यों नहीं बताया तो उनका कहना था "व्यक्तिशः मैं किसी आरक्षक अधिकारी को नहीं जानता था। और मुझे ऐसा भी लगता था कि आरक्षकों को बताने में अपनी सुरक्षा नहीं।" इस उत्तर का भी निष्कर्ष निकाला जा सकेगा। जैन के वर्तव्य के कारण आरक्षक उसको षडयन्त्र का घटक समझेंगे, ऐसा उनको भय प्रतीत होता था इसलिये वे आरक्षक अधिकारी के पास नहीं गये।

श्री जैन ने कहा, "इस षडयन्त्र की खोज में सहायता करने की मुझ में क्षमता है क्योंकि मुझे षडयन्त्र की जानकारी है। ऐसा मैंने मन्त्री को कहा। एक नागरिक के नाते इस षडयन्त्र की छानबीन में उनकी सहायता करने की मेरी इच्छा थी (पृष्ठ १३४)।

मोरार जी के कथन के अनुसार, "मेरा नाम प्रकट मत कीजिये, मेरे जीवन को इससे खतरा है।" ऐसा जैन ने कहा था। इससे यह स्पष्ट है कि दो में से कोई न कोई तो असत्य भाषण कर ही रहा है। इसका प्रस्तुत विषय से इतना ही सम्बन्ध है कि विस्फोटन से पूर्व श्री जैन ने इसकी सूचना किसी योग्य अधिकारी को नहीं दी थी। 'जानकारी था' ऐसे सदिग्ध सहाय से सावरकर जी षडयन्त्र के



आरोपी के नाते से पकड़े गये। जैन को भी उसी कारण से आरोपी बनाया जा सकता था क्योंकि उन्हें तो जानकारी थी, इसमें तो मगय था ही नहीं।

और मोरारजी देसाई पर आरोप क्यों नहीं लगाया गया। आरोप लगाना ही तो उनकी असावधानी हेतुपूर्वक थी ऐसा कहा जा सकता है। श्री जैन का कहना केवल अपने सिर पर न रखते हुए आरक्षक और जैन का वे मेल करा देते तो ठीक रहता। क्या जैन को मरत्तन देने की शक्ति शान्तन में नहीं थी।

श्री जैन ने कहा, “मेरा नाम आगे मत बटाओ।” और मोरार जी ने इस बात को मान लिया। इसका अभिप्राय तो यही हुआ कि गांधी जी के वक्त्र के सम्बन्ध में जो कुछ भी होता है उसे होने दो बाद में देखा जायगा, इस प्रकार की उदासीन वृत्ति का उन्होंने परिचय दिया था। इसके आगे भी यदि सयुक्तिक रूप से आरोप लगाना हो तो इस प्रकार लगाया जा सकता है कि ‘तुम अपना काम पूर्ण करो, तब तक हम हाथ नहीं डालेंगे’ ऐसा पडयन्त्रकारियों को भीतर से संकेत करने के हेतु से मन्त्री महोदय ने निष्क्रियता अपनाई।

निष्क्रियता द्वारा यदि किसी अवैध कृत्य को सहायता प्राप्त होती हो तो वैसी निष्क्रियता दिखानेवाला व्यक्ति उस अवैध कृत्य के कर्ताओं का सहायक ही माना जाता है। प्रहरी तथाकथित स्थान से थोड़ा दूर हटकर यदि चोर को अवसर दे तो ऐसे प्रहरी को निर्दोष नहीं कहा जा सकता। कांग्रेस के भी अनेक नेताओं को गांधी जी की राजनीति से अशुचि पैदा हो गई थी। यह उस समय की वस्तु-स्थिति थी जब वे लोग गांधी जी और उनकी राजनीति से थक गये थे और उसमें उन्हें विरक्ति निर्माण हो गई थी। गांधी जी के अन्तिम अनशन से तो बल्लभ भाई के मन में गांधी जी के सम्बन्ध में घृणा ही निर्माण हुई थी। क्योंकि बल्लभ भाई के हाथ बांधने के लिये ही वह अनशन था, यह बात बाद में पूर्णतया स्पष्ट हो ही गई थी। वे दिल्ली छोड़ कर चल गये थे। गांधी जी अनायास मर जायेंगे तो ठीक है, उससे आगे की दुर्दशा तो रुक जावेगी ऐसा किसी को प्रतीत होना असम्भव नहीं था।

जिसका गांधी जी के प्रति प्रामाणिक प्रेम था, गांधी जी की मृत्यु के बाद उनका दुःख भी प्रामाणिक माना जाना चाहिये। गांधी जी के देहान्त के क्षण तक जो लोग गांधी जी की आलोचना करते थे, गांधी जी के देहान्त के बाद उन लोगों ने जो दुःखावेग नाट्य किया वह प्रामाणिक नहीं था। गांधी जी जहां स्वयं मृत्यु को निमन्त्रण दे रहे हैं वहां हम बीच में क्यों पड़ें ऐसा जिनका वर्तन था उन्होंने गांधी वक्त्र के बाद जो दुःख प्रदर्शन किया वह दुःख केवल अपने वर्तन को ढकने के लिये था।

सावरकरजी तो स्पष्ट रूप से गांधीवाद के विरोधी थे। गांधीवाद ने क्या हानि की है इसका दिग्दर्शन वे सदैव कराते रहते थे। उन्हें गांधी वध का वृत्त पहले से ज्ञात होगा इस सन्देह में उनको अभियुक्त बनाया गया था। चूँकि वह आसान था। इससे एक तो उनके अपने कारनामों पर पर्दा पड़ जाता था और दूसरे लोगों का ध्यान उनसे हट कर दूसरी ओर करने का यह सस्ता उपाय भी था। जिन्होंने उस अवसर पर झूठा दुःखावेग प्रकट किया वास्तव में उनका स्थान न्यायालय के कठघरे में होना चाहिये था। क्योंकि क्या होनेवाला है इसका उन्हें भलीभाँति ज्ञान था और इस दुर्घटना को टालने की सावधानी बरतने के साधन भी नियति के बाद उनके ही हाथ में थे। सत्यासत्य का निर्णय न्यायालय ने किया होता।

अन्यथा केवल सशय में सावरकर जी को अभियुक्त बनाना पूर्णतया अन्याय था। शासन के सूत्र हाथ में लेना और उसे सावरकर जी के हाथ में सौंप देना ऐसा यह पडयन्त्र नहीं था। जनस्तुति नहीं अपितु जनहिंसा यही सावरकर जी का मन्त्र था। किसी भी सम्मान अथवा पद या उपाधि की आकांक्षा उनको नहीं थी। 'मैं व्यवहारी राजनीति करता हूँ और वह भी गांधीवाद का जिस ओर प्रवाह है उसकी विपरीत धारा की ओर खड़ा होकर करता हूँ। परिणामस्वरूप उपेक्षा और घृणा का ही अधिकारी होना पड़ेगा' ऐसा वे जानते थे। और उनके हिस्से में उपेक्षा और घृणा ही आई भी थी। इसलिये गांधी वध से किसी प्रकार का सम्मान का स्थान प्राप्त होगा इसकी कल्पना भी उनको छू नहीं गई थी। सौभाग्य की बात है कि इस प्रकार का कोई आरोप शासन की ओर से उन पर लगाया भी नहीं गया था। फिर भी केवल सशय में उन पर वध का आरोप लगाना और उसके लिये उन्हें अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिये बाध्य करना भी अन्याययुक्त तो था ही।

ऊपर के विवेचन में जिन नामों का निर्देश आया है उनका इस पटयन्त्र से सम्बन्ध था, इस प्रकार कोई भी संकेत करने की मेरी इच्छा नहीं है। सरदार वल्लभ भाई पटेल के सम्बन्ध में तो 'उनका इस पडयन्त्र से सम्बन्ध था, ऐसा मानना उन पर अन्याय करना होगा।' ऐसा मैं पहले भी एक जगह लिख चुका हूँ। आगे होनेवाली घटना का ज्ञान होना, उसके सम्बन्ध में मोन रहना या अकर्मण्यता प्रकट करना यह सब एक जगह पडयन्त्र का आरोप लगाते समय उतना दोषार्ह नहीं ठहरा, किन्तु दूसरी जगह पर ठहर गया इसकी तुलना मुझे स्मरण करनी है। वह अनवधानता जानबूझ कर थी, आपद्धर्म के लिये थी, नीति के कारण थी या ढीलेपन के स्वरूप की थी यह समझने के लिये कोई भी सम्बन्धित आधार नहीं था। आरोप केवल एक ही व्यक्ति पर आरोपित किया गया था।

सावरकरजी ने नयूराम और आपटे को आगे किया। इस आरोप का उत्तर देने के लिये क्या ऐसा नहीं कहा जा सकता कि जिन-जिन लोगों ने गांधी जी की मृत्यु के बाद झूठा दुःख प्रदर्शन किया उन्होंने ने सावरकर जी के तत्त्वज्ञान को आगे किया और अपना स्वार्थ सिद्ध किया ? प्रमाण तो दोनों स्थानों पर उपलब्ध नहीं था किन्तु आरोप एक ही स्थान पर किया गया था। सावरकर जी के तत्त्वज्ञान के आधार पर उनके अनुचर ने स्वयं को आगे प्रस्तुत किया है ऐसा तो अभियोग में माना नहीं गया है। यह बात दूसरी है। न तो मगनी के आधार पर टिकने वाला वह तत्त्वज्ञान ही था और न वे व्यक्ति ही ऐसे थे। इस तत्त्वज्ञान के आधार पर कोई भी व्यक्ति आत्मसमर्पण के लिये खड़ा दीखेगा। सावरकर जी के शब्दों में यदि कहा जाय तो यही कि हुतात्मा मन से दृढ़ और पक्का हुआ होगा तभी यह मानना चाहिए कि ऐसा अवसर आया होगा।

### निर्णय

सावरकर जी ने लोगों को क्रान्तिकारियों का सम्मान करना सिखाया था। चाफेकर बन्वु का स्वागत उन्होंने इंगलैंड जाने से पूर्व ही कर दिया था। रत्नागिरि में स्थानबद्ध होते हुए भी वासुदेव बलवन्त गोगटे का उल्लेख उन्होंने एक पौराणिक कहानी के रूप में किया था। जलियावाला बाग के जालिम भायकेल और डायर को ऊबमसिंह ने मार दिया था। वह समय युद्ध की घूमघाम का था। १९४० में शनिवार वाडे के आगे जो उन्होंने व्याख्यान दिया था उसमें उन्होंने ऊबमसिंह का उल्लेख किया था।

सावरकर जी को १९१० में पकड़ कर हिन्दुस्थान लाया गया था। उनका भवितव्य भारत का न्यायालय तय करनेवाला था। शासन तो विरोध में था ही और सर्वत्र भय का वतावरण उत्पन्न कर दिया गया था। इस कारण लोग क्रान्तिकारियों की प्रशंसा करने का साहस नहीं जुटा पाते थे। सावरकर जी को उस समय उपेक्षा ही मिली थी।

मुझे मृत्यु दण्ड दिया गया तो क्रान्ति का कार्य कौन करेगा, लोगों को उत्साहित कौन करेगा, उनका नेतृत्व कौन करेगा ऐसा विचार उनके मन में उत्पन्न हुआ हो अथवा नहीं किन्तु फिर भी इतने में उनके मन ने उन्हें समझाया, कितना अहंकारी है तू ? क्या तेरे बिना कुछ अटका रह जावेगा ? तू ही कर्ता है, ऐसा तू समझता है। उस समय के उनके उद्गार इस प्रकार हैं—

“पड़ले शत शत मत्सम त्रिंश अगतिक असेल भारत हा।

थो कृष्ण सारथी यद्वय हाकाया सदा उभा रत हा।”

लोग अपना अनुगमन करेंगे या नहीं, यह क्रान्तिकार्य चलावेंगे या नहीं, वे लोग मेरी प्रशंसा करेंगे या नहीं अथवा निन्दा करेंगे, इन विचारों के परे वे गये थे।

दि० २४-१२-१९१० को न्यायालय ने उन्हें आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया । दि० ३१-१-१९११ को उन्हें पुन आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया ।

लगभग ४० वर्ष बाद पुन सावरकर जी पर बैसा ही प्रसंग आ पडा था । शासन विरुद्ध था और लोग भी विरुद्ध थे । तिरस्कार की वेदी पर उनको खड़ा किया गया था ।

दि० १०-२-१९४९ का दिन सभी अभियुक्तों का निर्णय सुनाया जानेवाला था । सावरकर जी का विधि लिखित भी उसी दिन के गर्म में छिपा था ।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है उस समय का शासन का दृष्टिकोण सावरकर जी को विरुद्ध रोपपूर्ण था । मानो मुस्लिम राष्ट्र और हिन्दू राष्ट्र में युद्ध छेडा गया हो । मानो मुस्लिम राष्ट्र का नेता मारा गया हो । आपने हमारा नेता मारा हम आपका नेता मारेंगे ऐसे प्रतिशोध से जलनेवाले मुस्लिम राष्ट्र ने हिन्दू राष्ट्र के सेनानी को घेरने की प्रतिज्ञा की हो । ऐसे अर्थार्थ अहंकार में अपने ही शानन ने ज्वलन्त राष्ट्रभक्त सावरकर जी को घेरने का निश्चय किया था । अपने ही पैरो पर कुल्हाडी मार लेने का वह प्रकार था । लोकसत्ता की पद्धति के कुछ सकेत सभालना आवश्यक था । इसलिए उनके चारो ओर बेरा डालने के पहले न्याय मन्दिर की सीढियाँ बढकर जाना शासन तक को प्राप्त था ।

उनके असम्बद्ध सूत्रो को एकत्रित कर अभियोजको ने उसका फन्दा बनाया था । यह फन्दा लीजिये, यह सावरकर जी के गर्दन के चारो ओर ठीक बैठेगा ऐसा उन्होंने न्यायदेवता के सम्मुख निवेदन किया था ।

कारागार में भी मूँज कूटने के अभ्यस्त सावरकर जी ने उन फन्दे का रेशा-रेशा अलग अलग कर न्यायदेवता के सामने रख दिया था । उन्होंने कहा था— जिस रेशे में धक्का न हो उसमें टूटन कैसे आ सकती है । और जिम डोर में एंटन न हो उसको डोर नहीं कहा जा सकता । और जो डोर न हो वह मुझे फामेगी किस प्रकार ?

वास्तव में न्यायदेवता कभी कभी अन्धी मानी जाती है । परन्तु वह देवता है, उसे अत चक्षु है, उसको स्पर्श ज्ञान है, नवेदना है । अभियोजको द्वारा प्रस्तुत फन्दा को न्यायदेवता ने टटोला । सावरकर जी की सहायता में उन फन्दे की बुनाई की विलगता को अनुभव किया और जमानों में टूटने वाले उस फन्दे के छट से टुकडे करके उन्हें अभियोजको के नामने फेंक दिया । न्यायदेवता ने अभियोजको की प्रताडना करते हुए मानो कहा हो—शानन को जा कर बनाओ कि मेरी प्रस्थापना किसी को भी और किसी भी फन्दे से फानने के लिये नहीं की गई है ।

सावरकर जी व.। सम्बोधित कर न्यायदेवता ने कहा—सावरकर जी ! आप निरपराध हैं, आप निष्कलंक हैं । अपने राष्ट्र की ही भाति आप भी स्वतन्त्र हैं ।

लाल किले के बाहर प्रचण्ड जन-समुदाय एकत्रित था । दम्बनमुक्त सावरकर जी लाल किले से बाहर आ रहे थे, जन समुदाय ने हिलोरे ली । आकाश में प्रतिध्वनित होने वाले स्वर से उस जनमागर ने सावरकर जी का अभिवादन किया ।

स्वातंत्र्य लक्ष्मी की जय ! अखण्ड भारत अमर रहे !!

स्वातंत्र्यवीर सावरकर की जय !

\* \* \*

नौ

## वियोग के दिन

रात के आठ बज रहे थे, लोहे की कैचिया जोड़ने का कार्य जारी था। गरम किये हुए रिबेट घणाघातो से गोलाकार बन रहे थे।

भट्टी के पखे के लिए विजली का प्रवन्ध नहीं था। दो लड़किया बारी बारी से पखा घुमाती थी तब कहीं इस प्रकार एक घंटे तक भट्टी घघकती रहती थी।

लड़कियों की मा कैचिया जोड़ने के काम में व्यस्त थी। उसको तनिक अवकाश है यह देखकर उसकी एक लड़की ने उसे धीरे से कहा, “मां कल हम चावल और वेसन यहीं लायेंगे ताकि भट्टी पर ही चावल और वेसन बनाकर गरम गरम खाया जा सके।

इससे उसकी माँ को ध्यान में आया कि लड़कियों को भूख लगी है, वे थक गई हैं। घर जा कर रसोई बनाने तक वे अपनी भूख को नहीं रोक पावेंगी और भूखी ही सो जावेंगी। उसने अपनी लड़की का समाधान करते हुए कहा, “अच्छा कल ऐसा ही करेंगे।”

भट्टी में डाले गये कीले शीघ्र ही लाल हो गये, उन्हें पीटा गया। नौ बजने की प्रतीक्षा न करते हुए, माँ ने काम बन्द कर दिया और लड़कियों को लेकर वह घर की ओर चल पड़ी।

मेरी पत्नी का नाम सिन्धु है। हमारी दो कन्याये हैं, एक का नाम त्रिबुल्लता और दूसरी का नाम असिलता। मुझे फरवरी १९४८ में जब सजा हुई थी तो उस समय बड़ी कन्या की आयु दो वर्ष की थी और छोटी कोई ३-४ मास की। मा और पिता दोनों का ही उत्तरदायित्व सिन्धु ही निभाती थी। इस प्रकार वह कन्याओं का पालन करती थी।

मेरे बड़े भाई, नयूराम से जो छोटे हैं, 'दत्तात्रय उद्यम इजीनियरिंग' नामक एक उद्योगालय चलाते थे। सिन्धु वही रहती थी और 'उद्यम' में काम करती थी।

सगे-सम्बन्धियों में किसी प्रकार की कटुता अथवा दूरत्व न आ जावे इस दृष्टि से सिन्धु ने पाच छ वर्षों बाद अलग जाकर रहना आरम्भ कर दिया। कन्याओं को लेकर वह वहाँ रहने लगी। 'प्रताप इजीनियरिंग' नाम से उसने एक छोटा सा उद्योगालय वहा स्वतन्त्र रूप से चलाना आरम्भ कर दिया।

छोटे-छोटे कामों से स्थायित्व पाकर पाच छ श्रमिक रखने तक 'प्रताप' ने उन्नति कर ली थी। सिन्धु स्वयं भी काम करती थी। कैचिया बनाने का एक बड़ा काम उसने अपने हाथ में लिया था। परिस्थिति यह थी कि एक निश्चित अवधि में वह कार्य पूर्ण करके देना था। इतना ही नहीं यदि नियत समय पर काम पूर्ण न हो तो उसके लिये प्रति दिन के हिसाब से कुछ जुर्माना भी था। काम ने अच्छी गति पकड़ी थी।

और ऐन समय पर कुछ घरेलू समस्या के कारण उस दिन दो श्रमिक काम पर नहीं आये थे। श्रमिक महत्व के थे। कैचिया दूसरे दिन दोपहर तक देनी थी। सिन्धु के सम्मुख समस्या खड़ी थी।

कन्याओं की शाला में ५-६ दिन का अवकाश था। उन्हें साथ लेकर ही सिन्धु उद्योगालय में जाती थी। रहने का स्थान तपकीर गली में था तो उद्योगालय जंगली महाराज मन्दिर के सामने। दोनों स्थानों में लगभग एक मील का अन्तर था।

साढ़े तीन या चार बजे उठ कर नित्यकर्म से निवृत्त हो भोजन आदि बनाकर, कन्याओं को उठाना, उनको स्नानादि कराना फिर उनको अल्पाहार देना, उनके टिफिनबक्स में भोजन रखना और आठ बजे पूर्व उद्योगालय में पहुँच जाना। इस प्रकार का कार्यक्रम नित्य होता था सिन्धु का। वापस आने पर दाल भात पका कर रात्रि का भोजन करती थी। सोने में पूर्व कन्याओं की पढाई देखना, उनमें कुछ कठस्थ करा लेना यह सब वह नियमित रूप से करती थी।

आने जाने के लिये वाहन का प्रयोग करना उस समय उसकी परिस्थिति के बाहर की बात थी। दोपहर को पैदल घर जाकर भोजन करके आने में समय अधिक नष्ट होना था, इसलिये दोपहर का भोजन वह उद्योगशाला में ही ले जाया करती थी।

पत्र उद्योगाग्न्य जाकर उसको विदित हुआ कि काम के दो विशिष्ट कारीगर आज अनुपस्थित हैं तो उनको कुछ परेशानी हुई। उसने दूसरे श्रमिकों को काम सौंपना चाहा। वे कहने लगे, 'हमने तो कभी यह काम किया ही नहीं है, हम कैसे

करेंगे ?" तब उनने उन्हें समझाया कि 'जिस प्रकार मैं कहूँ उस प्रकार करते जाओ।' भट्टी जलाई गई और कन्याओं को पग्या घुमाने पर लगा दिया। वह न्यय कभी घन चलाती तो कभी कीलें ठीक स्थान पर लगा कर उस पर सासा रखती। इस प्रकार करने से रात तक काम कुछ बश में आया और दूसरे दिन दो-तीन घंटे काम करने के बाद कैचिया पूर्ण होनेवाली थी।

लटकियों को भी उद्योगशाला के काम में रस आता था। ड्रिलिंग मशीन की नोहे की पट्टी पर पानी डालना, पट्टी तोड़ी जाते समय दूसरे छोर को पकड़ना, कोयला चुनना, भट्टी पर ध्यान रखना इत्यादि कार्य वे चाव से करती थी। परिस्थितिवश खेलने-कूदने की आयु में ही यह खेल विधाता ने उनको प्रदान किया था।

आज का काम उनके लिये मात्र खेलने जैसा नहीं था। वास्तविकता में काम की विचित्रता में भी आनन्द आता है। एक ही काम करते रहने से मन ऊब जाता है। परन्तु आज दिन भर तो एक यही काम करना होगा इसका आभास उनकी हो चुका था। हाथ से भी मन यदि अधिक थक गया हो तो भी थकान प्रकट करने का अथवा 'थक गई' शब्द उच्चारण न करने का उन्होंने मन ही मन निश्चय कर लिया था। अपनी कन्याओं को उनकी सामर्थ्य से बाहर का काम कग्ना पड़ रहा है, इतना उनकी माता जानती थी। किन्तु एक ही दिन का प्रदन था और फिर उनके थम का परिहार भी तो वही करनेवाली थी। काम का महत्व था। इसलिये अपनी पुत्रियों के प्रति माया प्रकट करने का भी उसको आज अवसर नहीं था। काम के विलम्ब के कारण दण्ड होने पर भी काम देनेवाले (शाहको) को जो हानि पहुँचेगी उससे उसकी भरपाई नहीं हो सकेगी इसकी कसक उसके मन में थी, क्योंकि वह काम भी तो अपने ही राष्ट्र के सुरक्षा विभाग का था। देश की सुरक्षा के लिये विधायक दृढ़ता लाने की योजना को सिधु सहयोग देती थी।

वचन के अनुसार दूसरे दिन कार्य पूर्ण हो गया था। तैयार माल को यथा-स्थान पहुँचाया गया।

क्रान्तिकारियों को जेल होते ही उनके परिजनो, सम्बन्धियों यहाँ तक कि परिचितों तक को यातनार्थ प्राप्त होनी आरम्भ हो जाती है। इतिहास की यही परम्परा है। मानव स्वभाव ऐसा है कि ऐसे अवसरों पर निकट सम्बन्धी भी किनारा काट जाते हैं, सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि क्रान्तिकारियों के परिवारों से हम सम्बन्ध रखेंगे तो न जाने हमें ही न पकड़ लिया जाय। ऐसा भय उनके मन में होने के कारण रास्ते में कभी आने से सामने आकर भी परिचय दिखाने से जी चुराते हैं।



क्योंकि भीतिग्रस्त वायुमण्डल तैयार किया जाता है, इस कारण ही वन व्यक्तियों के मनो में भय रहता है, उसका ही यह परिणाम है, इनमें उनका दोष नहीं। आज के समाज में अव जाति से पृथक् करने की व्यवस्था नहीं रही। तदपि शासन इतना कठोर कर दिया जाता है कि उससे एक प्रकार से क्रान्ति-कारियों के सम्बन्धियों का दम सा ही घोट दिया जाता है।

गांधी वध काण्ड में लगभग दस सहस्र हिन्दुओं को पकड़ा गया था। प्रत्येक व्यक्ति उस समय यही सोचता था कि कहीं उसका भी सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार गांधी वध काण्ड से न जोड़ा जाय। जिनको पकड़ा गया था वे भी सोचते थे कि न जाने किस प्रकार से उनका सम्बन्ध गांधी वध में जोड़ा जाता है। लोगों को पकड़ने के वहाने भी अनेक प्रकार के थे और विचित्र भी। कुछ तो ऐसे लोगों को पकड़ा गया था जो बिल्कुल ही मामूली थे। किसी के घर पर अखण्ड भारत का मानचित्र मिला, किसी के घर पर सघ की टोपी टगी देती गई, किसी के पास सावरकर जी का कोई ग्रन्थ दिखाई दे गया, किसी के घर में अनेक देवमत्तों के चित्र टंगे दिखाई दे गये किन्तु उनमें गांधी के चित्र को नहीं देखा किसी ने किसी को अपने पत्र। में कहीं से गोडसे (मराठी में क्रिया विगेषण है गोड-से) अर्थात् मीठा-सा शब्द का प्रयोग किया हुआ, किसी के घर में एक से अधिक लाठिया दिखाई दे गई, वह लाठिया सघ की थीं ऐसा उनके पड़ोसियों ने बता दिया, और जिन घरों में इस प्रकार का कुछ भी न मिला हो, किन्तु किसी द्वेष के कारण उनको पकड़ना हो तो यह सोचा गया कि जिन जिन घरों में हिन्दुत्व के स्वत्व की रक्षा की जाती है ऐसा सशय था उन घरों तक के लोगों को शासन ने अपने आधीन कर लिया।

पकड़े हुए लोगों में से प्रत्येक का किसी न किसी प्रकार गांधी वध से संबंध जोड़ कर निर्णय करने का कार्य यदि न्यायालय पर सौंपा जाता तो मैं सोचता हूँ कि यह कार्य आठ दस वर्ष तक भी पूर्ण नहीं हो पाता। पकड़े गये लोगों में से अनेक ऐसे भी थे जिनका शासन के वरिष्ठ अधिकारियों से भी कुछ न कुछ सम्बन्ध निकलता था, ऐसी स्थिति में वीरबल की भाँति कुछ रेशम के फन्दे भी तैयार करके रखने पड़ते थे। (जैसे सोने का शूल राजाधिराज को, क्योंकि वह भी तो किसी का जवाई है)।

परन्तु पकड़े हुए लोगों में से सभी को न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत नहीं किया गया। शासन का कार्य केवल आतंक फैलाना था, वह उसमें सफल हुई थी। 'नयूराम से अथवा पडयन्त्रकारियों से हमारा सम्बन्ध नहीं' यह बात अनेकों ने चिल्ला-चिल्लाकर और किसी ने साधारण रूप में कही थी। किसी ने तो बिना पूछे ही यह कह दिया कि वह मैं नहीं हूँ।' उस समय नयूराम से सम्बन्ध

का अर्थ था गांधी वध से सम्बन्ध । किन्तु नयूराम से सम्बन्ध गांधी हत्या से सम्बन्ध यह एक नियम नहीं हो सकता । अथवा यह अनिवार्य नहीं कि नयूराम से सम्बन्ध का अभिप्राय गांधी वध से भी सम्बन्ध, इतना विवेकपूर्ण विचार करने की मन स्थिति उस समय लोगो की नहीं रही थी ।

क्रान्तिकारी के विषय में ही यदि कहना हो तो यह सभी जानते हैं कि जिस समय क्रान्तिकारी किसी प्रकार का कार्य करने का निश्चय कर लेता है तो वह तभी ठान लेता है कि वह अग्नि से खेल रहा है और उसका जीवन उसके अधिकार में नहीं है, यह बात वह उस क्षण से ही गाँठ बांध लेता है । तब उसके हाथ में रह जाता है तो केवल इतना ही कि इस जीवन का जितना अधिक से अधिक उपयोग उस सुकार्य के लिये हो सके, जिसका उसने निश्चय किया है, उतना करने का यत्न करना । माता-पिता का वात्सल्य, पत्नी का प्रेम, सम्बन्धियो अथवा परिजनो का मोह, यह सब नाते बन्धन वह तोड़ देता है । जिस समय कोई सैनिक युद्ध क्षेत्र के लिये प्रस्थान करता है उस समय उसके घरवालो को एक विशिष्ट प्रकार की कल्पना एव अनुभूति रहती है । और वे उस समय उस सम्बन्ध में जितनी परिसीमा तक सोच सकते हैं उसकी भी कल्पना कर लेते हैं । किन्तु क्रान्तिकारी जब किसी कार्य पर जाता है तो वह इस स्थिति में नहीं होता कि अपने परिजनो को उससे परिचित करावे । जब वह घर से निकलता है तो घर का त्याग करके ही निकलता है । उसके घर से जाने के बाद उसके घर का क्या होगा इसकी चिन्ता उसको नहीं रहती । 'संन्यास दीक्षा' तो लेना थी परन्तु भ्रष्ट विद्याने वाली है, इसलिये रुक गया हू । इस प्रकार की बात जो करेगा उसके पाव कभी घर से बाहर निकल ही नहीं सकते । जिसको बाहर निकालना होता है उसका जी घर की बीजो पर अटका नहीं रहता ।

किसी न किसी सीमा तक क्रान्तिकारियो का इतिहास आज या कल, लोगो के सामने आता ही है । और उनके कृत्य की पृष्ठभूमि में अवस्थित भावना का भी आदर होता ही है । एक समय के 'सिर फिरे' कालान्तर में उसी समाज की भावी पीढी में राष्ट्रभक्तो के नाते सम्मानित किये जाते हैं । किन्तु जिन्होंने उनको सिरफिरे कहा था उस पूर्व पीढी को भी वे दोष नहीं देते । क्योंकि वे जानते हैं कि भय के कारण, आतंक के परिणाम के कारण उनको वैसा कहना पडा था ।

जिस परिवार से क्रान्तिकारी सम्बन्धित होते हैं उनके पीछे उस घर का क्या होता है, उनके आश्रितो की अवस्था क्या होती है, साधारण रूप से इस और समाज का ध्यान नहीं जाता । वस्तुस्थिति तो यह होती है कि क्रान्तिकारी स्वयं जो यातनायें सहता है उतनी ही यातनायें उसके सम्बन्धियो अथवा आश्रितो को

भी सहनी पड़ती है। उनके चारो ओर आतक का वडवानल प्रज्वलित रहता उनको कोई अपने घर में नहीं आने देता, अपने द्वार की ओर झांकने की भी अनुमति नहीं देता। परिचित होने से इन्कार कर देते हैं। वे दूर से ही किनारा काट जाते हैं। इस प्रकार एक प्रकार से अलिखित सा बहिष्कार उन पर लाद दिया जाता है।

बीरान रेगिस्तानी मैदानों में भी कभी कभी नैसर्गिक उर्वरा भूमि के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। उसके आस पास हरियाली दीखती है, ऐसी ससार की विचित्र रचना है। क्रान्तिकारियों के सम्बन्धियों को अपनानेवाले लोग वडवानल का भय रखते हुए भी कभी कभी सामने खड़े दिखाई दे जाते हैं, यह भी ससार की उस रचना के अनुसार ही इतिहास की विस्मयकारी परम्परा है। अपेक्षा न होते हुए भी कोई पास आता है, कहता है—“अपने को निराश्रित मत समझो, हम तुम्हारे साथ हैं, तुम्हारा तो भविष्य होगा उसमें हम भी साथी बनेंगे, निराश होने की आवश्यकता नहीं। साहस एवं धैर्य से जीवन बिताने से सब काम सुलझ जाते हैं।” तब लाचारी एवं अनिच्छा से ऐसे व्यक्तियों के आश्रय से चलना पड़ जाता है।

तब आश्रयार्थी मन में सोचने लगता है कि जहाँ अधिकार के नाते वे जा सकते थे उन लोगों ने तो तुरत उनसे किनारा काट लिया और जिनका कदाचित् दूर का सम्बन्ध तो क्या परिचय मात्र होगा उन्होंने सहारा दिया। स्वामिमानों मन इस प्रकार सोचता तो है किन्तु उपकार का बोझ सिर पर होने पर भी वह उसको प्रकट नहीं कर सकता।

कई सम्बन्धियों को गांधी हत्या का वहाना करके महाराष्ट्र में ही निर्वासित किया गया। ऐसे अनेक जनों ने इस प्रकार के अनुभव किये हैं।

बड़े भाई श्री दत्तात्रय ने ‘उद्यम इंजीनियरिंग’ उद्योगशाला को गांधी वध से कई दिन पूर्व लिमिटेड बनाया था। विचार में कई योजनाये थी, उम्मीदृष्टि से कार्य भी किया जाने लगा था। किन्तु गांधी वध के निमित्त श्री दत्तात्रय को भी वन्दो बना लिया गया था। आठ मास तक उनको कारावास में रखा। इस अवधि में उद्योगशाला नष्ट हो गई। मुक्त होने पर उन्होंने नया प्रयास किया। नया प्रयास सफल होने के लक्षण दिखाई दिये। यद्यपि कई कार्य हानि उठाकर भी करने पड़े। इसमें प्रगति में बाधा आती रही। आपत्तियों के एक साथ एग्रीत होने पर उस ‘मर्यादित’ उद्योगशाला का स्वेच्छिक अवसान जैसा (बहालटरी लिक्विडेशन पैमा) अपमानजनक अवसर उत्पन्न हुआ। स्वयं रोपे हुए वृक्ष दो अन्यो से खाद पानी मंगाकर बढ़ाने के बाद फल की प्रतीक्षा करने की शक्ति न रहने के कारण अपने हाथ से ही उस वृक्ष को तोड़कर उस मूखे लकड़ी

के मूल्यहीन टुकड़े को वाँटने की वारी आये इससे जो दुःख होता है वह उस वृक्ष को रोपनेवाला ही जानता है। तब उस पर आरोप लगाया जाता है कि दूसरे के धन का उचित उपयोग नहीं किया गया। किन्तु इस आरोप का कोई उत्तर तो दिया ही नहीं जा सकता। पराश्रय की टीस मन में होती है। व्यवसाय वृद्धि की दृष्टि से सार्वजनिक रूप से भी ऐसी घटनाओं का अवांछनीय परिणाम होता है। नया उद्योग करनेवाले पर फिर विश्वास नहीं किया जाता।

गांधी वध के बाद घर छोड़ने पर वाघ्य होकर मेरी पत्नी कई दिन तक अपनी कन्याओं को लेकर अपने मायके में रही। मायके के लोगों ने उनको निडरता से वहाँ रखा लिया। कुछ दिनों तक तो उन्होंने मेरे माता पिता को भी अपने पास रखा था। कई मास के बाद श्री० शान्तादाई गोयले ने मेरे माता-पिता को अपने घर में रहने के लिये स्थान दिया। उन समय की उनकी वह सहायता ही अमूल्य समझी जाती है।

गांधी वध प्रकरण की खोज के लिये हम सभी आरोपियों को वर्मर्ड गुप्तचर विभाग के कार्यालय में रखा गया था। घर के लोगों को मिलने की स्वतन्त्रता होती थी। पहली एक दो मुलाकात में घर का समाचार मिला था। अभी तब सबों के घरों के लोगों की मुलाकातें सम्पन्न नहीं हुई थी। मिलकर नहीं गये थे। इससे सभी को अपने घर की स्थिति समझ में नहीं आई थी।

श्री दत्तात्रय के बन्दी बनाये जाने के बाद घर का वारोवार उनकी पत्नी सरोजिनी कर्तृत्व के साथ देख रही थी। श्री गोविंद हम बन्धुओं में सबसे छोटा था, वह भी 'उद्यम' में काम करता था। अपनी शक्ति के अनुसार वह भी काम कर ही रहा था।

सिन्धु के पास जो पैसे थे वे एक दो मुलाकातों में ही समाप्त हो गये थे।

अदालती कार्यवाही की व्यवस्था आदि के लिये और अधिक मुलाकातों की आवश्यकता थी। अपने मायके में पैसे मागना उनको अच्छा नहीं लगा था। अगले कोई उद्योग करना उन समय सम्भव न होने के कारण हमने घरों में पड़े पोंते और पानी भरे जैमे छोटे-छोटे दो तीन ताम आरम्भ कर दिये।

कुछ पत्नियां सुन ली थी। उन्होंने अपनी पत्नी के पास जा कर कहा, जब वह लड़की कपड़े धो चुके तो उसे मेरे पास भेज देना।

उस स्त्री ने, जिसे सिन्धु आत्याबाई अर्थात् फूफी कहती थी, अपने पति का सन्देश उसकी सुनाया। शायद कुछ और धोने के लिये होगा, इसका विचारकर सिन्धु उनके पास चली गई। किन्तु वस्त्र तो धोने के लिये थे नहीं। अण्णा को कुछ कहना ही था। उन्होंने सिन्धु से पूछा, “तुम क्या गा रही थी?”

“कव ? मैं तो कुछ नहीं गा रही थी।”

‘कुछ समय पूर्व तुम कौन सी कविता गुनगुना रहीं थी ?’

“अच्छा, उसके विषय में पूछ रहे हैं। कुछ तो भी गुनगुनाते रहने से काम की थकावट अनुभव नहीं होती और कार्य भी औघ्रता से पूर्ण हो जाता है, कम से कम ऐसा प्रतीत तो होता ही है।”

“कौन सी कविता थी ?

“दि मिलर औफ दि डी।”

“पूरी कविता आती है ?”

“आती है।”

“सुनाओ सही।”

सिन्धु ने सम्पूर्ण कविता सुना दी। उसके स्पष्ट उच्चारण, उत्कृष्ट स्वर से अण्णा को विस्मय हुआ। वे बोले, “यह कव पढी थी ?”

“हमारी अग्रेजी की चौथी कक्षा की पुस्तक में थी।”

“फिर आगे क्यों नहीं पढी ?”

“पढी थी।

“कितना पढा ? “मैट्रिक तक ?”

“जी हाँ।”

फिर क्या कॉलेज नहीं जा सकी ?”

“कॉलेज गई थी।”

“मैंने बी० ए० किया है।

सिन्धु की प्रत्येक बात से अण्णा का विस्मय क्षण क्षण बढ़ता जाता था। उपाधि प्राप्त लड़की कपड़े धोने का कार्य कर रही है, यह क्या मामला है। उनकी समझ में बात नहीं आ रही थी। जिस प्रकार मजदूर लोग टालमटोली से काम करते हैं उस प्रकार का काम यह लड़की नहीं करती, ऐसा अण्णा की पत्नी उनको बता चुकी थी। स्वास्थ्य की पूछताछ, और सेवा सुश्रुषा भी वह घर के व्यक्ति की ही भांति करती है, यह भी उनके सुनने में आया था। इस सुशील कन्या पर

किसी न किसी प्रकार की आपत्ति आई होगी, ऐसा अण्णासाहब ने विचार किया। इससे पूर्व उन्होंने उसका पता बगैरह कुछ भी नहीं पूछा था। किन्तु आज पूछे बिना न रह सके। उन्होंने पूछा, “तुम कहाँ रहती हो ?”

सिन्धु ने अपने रहने का स्थान बता दिया। अण्णा को सन्तोष नहीं हुआ। लड़की विवाहित दीखती थी। कुछ और जानने के उद्देश्य से अधूरा प्रश्न किया, “तुम्हारे पति ?”

“वे कारावास में है।”

“कारावास में ? क्यों ?”

“माघी वध के बाद जो लोग पकड़े गये थे उनमें से एक वे भी हैं।”

“तुम्हारा पूरा नाम क्या है ?”

“सिन्धु गोपाल गोडसे।”

“यानी-यानी गोपाल गोडसे की पत्नी हो तुम ? नयूराम की भाभी ?”

“जी हाँ।”

“कितना संकट है यह ” मानो अपने मन में अण्णासाहब कह रहे हो। इसके बाद ही उनकी आँखें क्षरने लगी और सिसकिया निकलने लगी। रोना बेकार हो गया।

सिन्धु को वहाँ खड़ा रहना कठिन प्रतीत होने लगा। दो-तीन मिनट रुक कर उसने पूछा, ‘अच्छा तो मैं जाऊँ ?’

हाथ से ही उन्होंने रुकने का इजारा किया। कुछ क्षणों में ही उन्होंने अपने दुःखावेग को सयत किया, आँखें पोछी और भरायी आवाज में वे बोले, “तुम यह काम क्यों करती हो ?”

“गृहस्थी है, मुझे दो कन्यायें हैं। अपने पति को मिलने के लिये भी बम्बई जाना पड़ता है।

कील पर टगे कोट की जेब में से अण्णा ने बीस रुपये निकाले और बोले, “तुम यह काम मत करो, मैं तुम्हें हर मास पैसे देता जाऊंगा।”

“मुझे बीसे पैसे नहीं चाहिये। कम से कम आज की स्थिति में तो चाहिये ही नहीं। मैं सुशिक्षिता हूँ, सुसंस्कृता हूँ। समय पर शारीरिक श्रम से और कभी बुद्धि श्रम में स्वावलम्बिनी बनने की मेरी क्षमता है। संप्राप्त विपत्ति में मुझे यदि टिका रहना न आया तो फिर मेरी शिक्षा दीक्षा का क्या उपयोग ? मैंने कभी यह नहीं सोचा कि शारीरिक श्रम का कार्य तुच्छ होता है और बौद्धिक श्रम का कार्य श्रेष्ठ। मेरी ऐसी धारणा कभी नहीं रही।”

अण्णा ने स्वयं को सम्भाल लिया। वे बोले, “मैं तुम्हें ये पैसे वैसे ही नहीं दे रहा। मेरे कुछ कानूनी कागज-पत्र हैं। तुम उनकी प्रतिलिपि बना कर दे दो। किसी न किसी को तो मुझे वह काम देना ही था, वह तुम कर दो।”

“मैं आनन्द से वह कार्य करूँगी और अच्छी तरह कर दूँगी।”

“मुझे ऐसा ही विश्वास है।” वे बोले और फिर कहने लगे, “परन्तु कल से तुम ये कपड़े धोने के लिये मत आना।

“क्या? आपके ही शब्दों में आपके यहाँ नहीं तो किसी न किसी न किसी के यहाँ तो मैं यह काम करूँगी ही। आत्मावाई (फूफी) को भी अब अच्छा लगने लगा है। उन्हें मेरे थोड़े से सम्पर्क ने ही उत्साह प्रतीत होता है ऐसा वे कहती हैं। अभी पन्द्रह दिन तक मैं और आऊगी तब तक वे पूर्ण स्वस्थ हो जावेंगी। बाद में फिर मैं आना बन्द कर दूँगी।”

इसके बाद सिन्धु को उस घर की महरी नहीं अपितु घर की ही एक सदस्या के रूप में माना जाने लगा था।

नौकरी के लिये सिन्धु कई सस्थाओं में गई थी। कई स्थानों पर प्रथम उसकी मौखिक परीक्षा ली जाती थी, उसमें वह सफल होती थी। निर्णय लेने वाले अधिकारी और ही होते थे। जब वे देखते कि नाम गोडसे है और उस पर भी गोपाल गोडसे की पत्नी, इस कारण उसको अस्वीकार कर देते थे।

एक सस्था के एक वरिष्ठ अधिकारी कुछ सहानुभूति रखनेवाले थे। मौखिक परीक्षा के बाद उन्होंने सिन्धु को भेंट के लिये बुलाया। भेंट में वे तुरन्त ही बोले “आप अपने मायके का नाम इस समय धारण कर लीजिये और यहाँ पर काम आरम्भ कर दीजिये।”

सिन्धु ने कहा, “आपकी इस सहानुभूति के लिये धन्यवाद। किन्तु मैंने गोडसे बनी रहने के लिये ही विवाह किया था और वही मैं अन्ततक बनी भी रहूँगी। यदि मेरा पतन हुआ तो वह भी गोडसे नाम से ही होगा उद्धार हुआ तो वह भी उही नाम से होगा। ऐसा लगता है कि गोडसे नाम से आपकी सस्था को भी आपत्ति आने का भय आपको है। आप अपनी सस्था को निरपवाद रहने दीजिये। आपकी सहानुभूति के लिये धन्यवाद। मैं चलती हूँ। नमस्कार।”

एक बार दीपावली के अवसर पर सिन्धु को एक पत्र आया। खोलकर देखा तो उसमें पच्चीस रुपये और एक पत्र था। वह उत्ती वरिष्ठ अधिकारी का था। उन्होंने उस पूर्ण घटना का स्मरण कराया था और उस अवसर पर वे

उसकी सहायता नहीं कर सके थे इसका खेद भी व्यक्त किया। उसके साहस की प्रशंसा की थी और दीवाली की भेंट के रूप में भेजे गये पचीस रुपये स्वीकार करने की प्रार्थना की थी।

गांधी वच पडयन्त्र के अभियुक्त को न्यायिक सहायता देने के लिये एक समिति का गठन किया गया था। समिति का निश्चय था कि घन एकत्रित कर विधि विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त की जाय। स्व० ल० द० भोपटकर, स्व० जमनादास मेहता, स्व० रामभाऊ मण्डलिक, स्व० ज० स० करदीकर, श्री ग० वि० केतकर, श्री ज० श्री० तिलक आदि लोगों ने उसमें अपना योगदान दिया था।

वचाव पक्ष के वकीलों की व्यवस्था इस निधि में से हुई थी। लगभग एक लक्ष रुपये का आदान प्रदान हुआ। इस निधि का निर्देश करते हुए श्री ग० वि० केतकर ने एक बार कहा था “यही एक निधि ऐसी थी जिसके लिये अपने दिये हुए घन की रसीद भी नहीं मांगी गयी।”

कभी-कभी आगन्तुक रूप से श्रेय लेने का प्रयत्न कई लोगों का होता है। ऐसे प्रयत्न में अवलम्बितों को कष्ट ही पहुँचता है। सिन्धु के साथ इस प्रकार की कई घटनाएँ हुई थी।

न्याय सहाय्य के लिये निधि एकत्रित की जाती थी। आरोपी कितने होंगे उस समय इसकी ठीक कल्पना नहीं थी। न्याय सहाय्य का वृत्त समझने के लिये सिन्धु एक बार ‘केसरी’ कार्यालय में गई। उस समय तात्या अर्थात् श्री ज० स० कान्दीकर बाहर निकल रहे थे। सिन्धु को देखकर वे रुक गये। उन्होंने पूछा, “सिन्धु! क्या तुम्हारी साड़ी फट गई है? खरीदनी है?”

प्रश्न नितान्त अनपेक्षित था। सिन्धु को भलीभाँति ज्ञान था कि उसकी साड़ी पुरानी होने पर भी फटी हुई नहीं है। उसने प्रतिप्रश्न किया, “किसने कहा?”

“अभी निधि के सम्बन्धित लोगों की बैठक हुई थी, किसी ने उस समय इस प्रकार का प्रस्ताव रखा था कि तुम्हारी सास तथा तुम्हारे लिये साड़ी खरीदने के लिये निधि में से चालीस रुपये दिये जावें।”

सिन्धु को विस्मय हुआ। उसने पूछा, “क्या निर्णय लिया गया?”

“कोई निर्णय नहीं लिया। अगली बैठक में इसका निश्चय होगा।”

सिन्धु ने कहा, “यह देखिये, अभी तो तीन मास ही हुए हैं। इतने में ही साड़ियों के विदीर्ण होने और उनके लिये याचना करने का समय नहीं आया। अपने जैसे घरों में केवल एक-दो ही साड़ियाँ नहीं हुआ करती और हमारे पुरुष लोग हमारी साड़ियाँ लेकर तो दिल्ली गये नहीं थे।”



तात्या खुले मन से हसे और बोले, “ठीक है। पर कभी ऐसी अडचन, आवे तो संकोच मत करना।”

सिन्धु ने कहा, “तात्या ! मुझे आपके या सम्बन्धित निधि के किसी व्यक्ति के पास जाने के लिये किसी मध्यस्थ की आवश्यकता होगी क्या ? यदि किसी ने स्वेच्छा से कभी ऐसा प्रस्ताव किया तो उसकी छानबीन करवा लीजियेगा। अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि न्याय्य सहायता के लिये एकत्रित निधि न्याय सहायता का अवसर आने से पूर्व ही फटी साड़ियों में न उलझ जाय। क्योंकि जो आरोपी होंगे उनसे सम्बन्धित हम दो ही, ( मैं और मेरी सास ) ही स्त्रियाँ नहीं होगी।

सामाजिक निधि को जिस कार्य के लिये एकत्रित किया गया है उसका उपयोग उमके लिये ही होना चाहिये ऐसा तत्त्व सिन्धु ने अपने कथन से स्पष्ट किया था। तात्या को इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई। इतने सकट की परिस्थिति में यह लड़की होते हुए भी उसमें अभिव्यक्ति के तीनों लक्षण अभिधा, व्यजना और लक्षणा यथावसर विद्यमान हैं और उसका तेज तनिक भी क्षीण नहीं हुआ इससे उन्हें विशेष आनन्द एवं विस्मय हुआ।

सिन्धु ने अपना स्वतन्त्र उद्योग खड़ा करने का निश्चय किया। उद्योगशाला के लिये और रहने के लिये स्थान देखा। उसने उद्योग प्रारम्भ कर दिया। ऐसा भारी उद्योग अथवा व्यवसाय आजतक किसी महिला ने किया हो ऐसा कोई अन्य उदाहरण ज्ञात नहीं है। इससे कभी-कभी वह हतोत्साह भी हो जाया करती थी। किन्तु उसने थोड़े ही दिनों में यह सिद्ध कर दिया कि ऐसा उद्योग केवल पुरुष वर्ग का ही एनस्व है, ऐसी बात नहीं है। उस क्षेत्र में व्यवसाय करने वाले लोगो ने देखा कि ‘प्रताप उद्योगालय’ का कार्य निम्न श्रेणी का कभी नहीं होता।

स्त्रार्थी सहानुभूति दिखाने की पद्धति कई लोगो की होती है। ‘आपकी दशा को ध्यान में रख कर यह कार्य आपको दिया जाता है, इसलिये इस भाव से ही आप इसे ग्रहण कीजिये।’ ऐसा आग्रह करनेवाले भी लोग होते हैं। अपने कर्तृत्व और कार्य की सिद्धता पर सिन्धु का विश्वास था। ऐसे अवसरों पर वह कह देती “मेरी दशा को देखने की आवश्यकता नहीं। वस्तु की श्रेष्ठता अथवा कार्य की उत्कृष्टता तथा मूल्य की उपयुक्तता यदि आपको प्रतीत हो तो हमारे साथ व्यवहार कीजिये। काम में यदि दोष रहा तो उसे मुधारने का दायित्व मेरा है। यदि इसके लिये हानि उठाना पड़े तो वह मैं उठा सकती हूँ।”

कभी-कभी किसी सस्या के लिये ‘प्रताप’ ने बिना लाभ के भी काम किया है। केवल इतना ही नहीं कई संस्थाओं को निर्मूल्य वस्तुएँ भी बना कर दी है।

समीपस्थ एक गांधी स्मारक संस्था ने आठ सौ रुपये का एक काम देने की इच्छा व्यक्त की। 'सार्वजनिक संस्था होने के कारण आप अपने सहयोग के रूप में बिना पारिश्रमिक लिये यह कार्य कर दीजिये, क्योंकि आपने अमुक संस्था के लिये ऐसा किया था', ऐसा उसके सचालको ने कहा।

सिन्धु ने कहा, उस संस्था की स्थिति निर्बल है। आपकी वह स्थिति नहीं है। तो भी मैं एक शर्त पर बिना मूल्य काम करके देने के लिये तैयार हूँ।

कौन सी शर्त ?

मैं उस पर यह अंकित करवाऊंगी 'हुतात्मा पण्डित नथूराम गोडसे और नाना आपटे की स्मृति में भेंट।' यदि आपको स्वीकार हो तो बताइये।

सचालक का कथन था, "यह कैसे सम्भव है ? आप तो उनके कृत्य की प्रशंसा कर रही हैं।"

सिन्धु ने कहा, "कृत्य के पीछे की भावना की प्रशंसा होती है। उन्होंने जो अवैध कृत्य किया था उसके लिए तो उनको न्यायोचित मृत्यु दण्ड मिल ही गया। परन्तु उन्होंने कुछ अराष्ट्रीय कृत्य किया ऐसा उन पर कोई आरोप नहीं था। अराष्ट्रीय कृत्य के पीछे की भावना निश्चय ही दोषार्ह है। जितनी आपकी संस्था सार्वजनिक है उतनी ही उनकी मृत्यु भी सार्वजनिक थी यह आप जानते ही हैं। आपकी जानकारी के लिये कहती हूँ स्वयं फासी पर चढ़ने से पूर्व पण्डित नथूराम की एक राष्ट्रीय सार्वजनिक समारोह के लिये दी हुई १०१ रुपये की भेंट को शासनाविधि व्यक्ति ने स्वीकार किया है। आप बिना मूल्य काम मांगते हैं, आपके पास पैसे होते हुए भी इस प्रकार का काम मांगते हैं, और आप यह भी देखते हैं कि इस उद्योग से मेरा पेट भी अच्छी तरह नहीं भर पाता है फिर भी आप बिना मूल्य काम मांगते हैं, तभी यह शर्त का प्रश्न उपस्थित हुआ है।"

"अर्थात् काम टालने के लिये आपका यह सब कथन है ?"

"आप गलती कर रहे हैं। आप पैसे दीजिये। तब शर्त का कोई प्रश्न ही नहीं। काम करने के लिये ही तो मैंने यह कारोबार किया है।"

"शर्त यदि मान लो गई तो आप काम कब तक करके दे देंगे ?"

"चार दिन के बाद जब भी आप कहेंगे उस दिन आपको मिल जावेगा।"

"आपको शर्त हम मण्डल के सम्मुख रखेंगे, उसके निर्णय से आपको अवगत कर देंगे।" ऐसा कह कर वे लोग चले गये।

दो दिन बाद वे लोग फिर आये। उन्होंने कहा, "मण्डल का निश्चय है कि हमें आपसे ही काम करवाना है, किन्तु आपकी शर्त पर नहीं अपितु मूल्य चुका कर।"

निश्चित अवधि में 'प्रताप' ने उनका कार्य पूर्ण करके दिया । फिर आस-पास की एक दो और भी गांधी स्मारक संस्थाओं का कार्य 'प्रताप' ने किया । उनके संचालकों में सफुचित वृत्ति नहीं थी । शासकीय संस्थाओं ने भी किसी प्रकार का भेदभाव न रखते हुए 'प्रताप' से कार्य करवाया था ।

व्यवसाय के यश के लिये उसके स्वामी का कर्तृत्व कारण होता है किन्तु वही एकमेव कारण होता है ऐसी बात नहीं है । उसके कर्तृत्व को अक्सर मिलना भी तो अनेकों अन्य बातों पर निर्भर रहता है । समाज के व्यक्ति एक दूसरे की सहानुभूति के सहारे ही खड़े रहते हैं । सिन्धु का उद्योग स्थिर रह सका इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण बात उसके उद्योग को समाज द्वारा मिला हुआ प्रामाणिक प्रोत्साहन था । ऐसी प्रामाणिक सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों के कारण ही उसके कर्तृत्व को अवसर मिला । इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं ।

जिस तपकीर गली में सिन्धु रहती थी वहा का वातावरण और पास-पड़ोस अच्छा नहीं था । किसी अन्य स्थान पर कहीं जगह नहीं मिलती थी । यदि कहीं स्थान मिलता भी तो उतने पैसे पास में नहीं होते थे जिससे कि उसको लिया जा सके । श्री भाऊराव (न०१००) अम्यकर जी का घर जगली महाराज के रास्ते पर था । उस घर में एक मजिल का निर्माण किया जा रहा था । सिन्धु ने अनु-रोध किया तो उन्होंने उसको उसमें स्थान दे दिया ।

श्री भाऊराव की पत्नी में-भाभी-और सिन्धु में मित्रता थी । सान्निध्य से वह मित्रता गहरी हुई । उद्योगालय और घर सम्भालने का दुगुना बोझ सिन्धु पर था । इस बात को स्मरण रखते हुए ही भाऊराव ने सिन्धु की सहायता की थी । अम्यकर दम्पति सिन्धु को अपनी कन्या समझते थे ।

मेरी मुक्ति के लिये सिन्धु सरकारी अधिकारियों के पास आया जाया करती थी । यशवन्तराव चव्हाण उस समय बम्बई के मुख्य मन्त्री थे । बन्दी का वर्तवि सब दृष्टि से अच्छा है, ऐसा मुक्त कण्ठ से कहा जाता था । किन्तु मुक्ति के प्रश्न को केवल टाला जा रहा था । सिन्धु ने एक बार यशवन्तराव से भेंट में कहा, "ऐसा दिखता है कि आप उमावाई की तरह मेरी भी अवस्था करनेवाले हैं । कल आपकी सीमा पर आक्रमण हुआ तो युद्ध के लिये देने को मेरे पास लड़का नहीं है ।"

—बड़े बाजीराव के सरदार खण्डेराव दामाडे लडाई में मारे गये थे । एक लडाई पर जाते समय रास्ते में बाजीराव खण्डेराव की पत्नी उमावाई के पास ठहरे थे । विदा होते समय उमावाई की आँखों में आसू आ गये । बाजीराव ने सान्त्वना दी, "उमावाई ! जो कुछ हुआ उसको टालने का कोई उपाय नहीं है । अब तो माहस और वैर्य से ही काम लेना होगा ।"

तब उमावाई ने कहा था, “श्रीमंत ! आप स्वयं मुझे सान्त्वना देने के लिये आये हैं। पति निवन का दुःख मनाते हुए मैं कैसे बैठूँ ? आज आप युद्ध के लिये जा रहे हैं, आपके साथ भोजन के लिये मेरे पास लडका नहीं है। मुझे तो दुःख इस बात का है।”

इतिहास की इस बात को स्मरण कर सिन्धु के मुख से निकले उद्गारों से यशवन्तराव का मन भी एक बार हिलोर गया था। परन्तु वह तो यशवन्तराव नामक व्यक्ति का मन उद्विग्न हुआ था न कि बम्बई के मुख्य मन्त्री यशवन्तराव चव्हाण का।

गोआ का मुक्ति संग्राम जारी था। अनेक युवकों ने उसमें भाग लिया था। सात लोगों के एक जल्ये में नारायण दत्तात्रय कुलकर्णी नामक एक युवक भी था। सिन्धु नारायण के (नाना के) पड़ोस में रहती थी। नाना का चसके यहाँ आना-जाना चलता था। उद्योग के लिये वह वर्षा से पूना आकर रहने लगा था। परिश्रमी मिलनसार और लम्बे चौड़े डील डीलवाले स्वच्छन्द स्वभाव के इस व्यक्ति में भी एक कसक थी। उसको वचपन में मा का वात्सल्य प्राप्त नहीं हुआ था। सवेदनशील मन को कई प्रसंगों में विगेषतया बहुत दुःख अथवा आनन्द के प्रसंगों में इस बात की त्रुटि का तीव्रता से अनुभव होता है। उस समय “तीन लोक का स्वामी भी मा के अभाव में भिक्षुक सा बन जाता है।” तब सामान्य व्यक्ति की तो बात ही क्या।

सिन्धु ने वात्सल्य की पूर्ति की। नाना हमारे घर में आज भी मुँह बोले पुत्र के नाते से रहता है।

१९६२ में मेरा तवादला नासिक से औरंगाबाद बन्दीगृह में की गई। सर्वोच्च न्यायालय में मेरा एक आवेदन था। उसके सम्बन्ध में मुझे परामर्श चाहिये था। उसके लिये कई पुस्तकें भी भगानी थी। उसके लिये सिन्धु को हमसे दो तीन बार मुलाकात करना आवश्यक था।

इसकी अनुज्ञा के लिये सिन्धु इन्स्पेक्टर जनरल ब्रिड्जनर्स से मिली। उन्होंने कहा, “गोडसे हमारे नियम नहीं मानते, वे नियमों के विरुद्ध वर्तव्य करते हैं। हमसे झगड़ते हैं, इसलिये हमने उन्हें औरंगाबाद भेजा है। अगर ऐसा ही उनका वर्तव्य रहा तो इससे भी कड़े उपाय हमें करने पड़ेंगे। कोई उनको सम्झावे। अधिक मुलाकात का समय हम नहीं दे सकते।”

सिन्धु जानती थी कि वे एक ही घर के घटक हैं और चस पर हुए अन्याय का उन पर भी प्रभाव पड़ेगा। उसने कहा, “आदर्शयुक्त व्यवहार का उदाहरण प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति कहकर जिनके विषय में मन्त्रियों से लेकर नीचे तक के अधिकारियों को कहा जाता हो, उसका व्यवहार सहसा विपरीत कैसे हो गया,

क्या इसका किसी ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया है ? उसकी जड़में कहीं न कहीं कुछ दोष हैं उसके बिना कोई भी व्यक्ति अपने बर्ताव में सहसा इस प्रकार का परिवर्तन नहीं ला सकता। उस व्यक्ति को परेशान करके आप उसके बर्ताव में सुधार की किस प्रकार अपेक्षा रखते हैं ? छल करने से अन्याय का निराकरण नहीं होगा और न विगड़ा हुआ व्यक्ति ही छल-बल से ठीक हो सकता है।

“भूषण कहिये अथवा दूषण, १९४८ की कई घटनाओं से पागल बन कर जिन्होंने सर ह्यूेली पर रक्खे, फिर वह सिर ह्यूेली पर रहा या जमीन पर गिर गया इसकी परवाह वे नहीं करेंगे, इस बात को आप ध्यान में रखिये। छल से मुक्ति पाने के लिये अपना जीवन किस प्रकार परिपूर्ण होना चाहिये यह बन्दी भली भाँति जानते हैं, और आप भी इस तथ्य से अवगत हैं। छल के लिये बन्दी तो आपके अधिकार में हो, और मैं उसको उपदेश करूँ, इसे आप किस प्रकार व्यवहार्य मानते हैं ? यदि आप यह अपेक्षा रखते हो तो मुझे मुलाकात का अवसर नहीं चाहिये।”

यह सुनकर अधिकारियों के स्वर में कुछ नम्रता आई। अपनी इम मेट का वृत्तान्त मिन्बु ने मुझे अपने दि० १-४-६२ के पत्र में लिखा था।

मुझे तो वास्तव में फँसाया गया था। बन्दीगृह के अधीक्षकों की आज्ञानुसार और उनके निर्देशन पर यदि बन्दी कार्य करता है तो उसके परिणाम स्वरूप उसकी कारागार की अवधि में राज्य की ओर से छूट मिलती है। उसको प्राप्त हुई छूट उसके बर्ताव की दिग्दर्शक होती है। अभूक्त कार्य शीघ्रता से पूर्ण करना है, अधिक समय लगाकर वह कार्य पूर्ण किया जाय, उसके लिए अलग छूट दी जावेगी ऐसा आश्वासन शासन की ओर से अधीक्षक देता है। यदि बन्दी ने तदनुसार कार्य किया तो अधीक्षक अपने मौखिक आश्वासन को लिपिबद्ध कर लेते हैं और हर तीन या छ मास बाद उसके लिये शासन की स्वीकृति प्राप्त करते हैं। वह टिप्पणी स्वीकृत करने का अभिप्राय यह होता है कि बन्दी की मुक्ति का दिन उसको मिले हुए दिनों के परिमाण में समीप आया है। अधिक काम करने वाला बन्दी और अधिक काम न करने वाले बन्दी में इस प्रकार का अन्तर पड़ जाता है।

वही बात रक्त दान करने पर भी होती है। मैंने बन्दीगृह में सात बार रक्तदान किया था। प्रत्येक रक्तदान के लिये दस दिन की छूट अथवा पांच रुपये दिये जाते थे। दो बार मैंने प्रतिदान के रूप में छूट की मांग की थी। रक्त देने के बाद अधिकारियों ने उस आश्वासन को लेखबद्ध कर लिया था और उचित समय पर सरकार से उसकी स्वीकृति भी ले ली। इस प्रकार जिन्होंने रक्तदान नहीं किया था उनकी अपेक्षा मेरी मुक्ति की तिथि में बीन दिन का अन्तर हो गया। अन्य पांच बार का रक्त दान मैंने ‘दान’ के रूप में किया था।

परन्तु अधीक्षको ने अपना बीस दिनो का लिखित आश्वासन भी नहीं निभाया। वे शानन की ओर उँगुली दिखाते। “मेरे हाथ से बन्दी को क्यों फसाते हैं ?” किन्तु ऐसा उन्होंने भी कभी शासको से नहीं पूछा। “बन्दी को मैंने शासन की ओर से लेखबद्ध आश्वासन दिया है और शासन ने उसे स्वीकार किया है।” यह बात शासन के ध्यान में कभी नहीं लाई गई। रक्तदान का बन्दीगृह के किमी भी नियम से सम्बन्ध नहीं है। ऐसी जानकारी उन्होंने कभी शासन को नहीं दी। “आजन्म कारावास” इस दण्ड के “आजन्म” शब्द पर और इसके लिए बन्दी के जीवन से खेलते रहने का उनको अधिकार, है, ऐसा वे मानने लगे। न्यायत जीवन समाप्त करने के लिए जिस बन्दी को अधीक्षक के कब्जे में दिया गया होगा उससे काम, अधिक काम या रक्त नहीं लेते, उसको छूट का झूठा प्रलोभन भी नहीं दिखाते यह तुलना अधिकारियों ने अपने ध्यान में नहीं रखी। मेरा जीवन यदि उन्हें समाप्त करना था तो मुझे पहले वैसा कहना चाहिये था। रक्तदान के सम्बन्ध में कहना हो तो प्रथम आने पर जिसने पाँच बार बिना प्रतिदान के रक्तदान दिया वह और दो बार भी बिना किसी प्रतिदान के दे सकता था। परन्तु कहा यह गया था कि ‘एक बार रक्तदान करो तुम्हारी सजा में दम दिन की कटौती करा दूँगा। पुन एक बार दो तो और दस दिन की कटौती हो जावेगी।’ इस अविकृत आश्वासन पर विश्वास कर मैंने रक्त दान किया। रक्त सच्चे रूप में लिया गया किन्तु छूट झूठ स्वरूप में दी गई।

गाँवो वध काण्ड के एक अभियुक्त को हमने अपने अधिकार से किस प्रकार फँसाया, उसका किस प्रकार उपहास किया, वह विवश है यह जानकर हमने किस प्रकार उससे प्रतिशोध लिया, लाठी का प्रयोग न करते हुए भी उससे किस प्रकार क्रूरता का व्यवहार किया इस पर शासन को भले ही गर्व हो किन्तु ‘प्रामाणिकता’ इस शब्द की यथार्थ व्याख्या करनेवाले लोग इस वर्तव को शासन के श्वेत वस्त्र पर असत्य का एक कलक ही कहेंगे। अपनी छूट वापिस करो और उसके बदले में पैसे लो ऐसी मुझे सूचना दी गई थी किन्तु मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। मैं समझता था कि प्राप्त हुई छूट बिकने की वस्तु नहीं होती। मुझे उतने दिन पहले मुक्ति चाहिये थी। मुझे अपनी लाश पर रखने के लिये पैसे नहीं चाहिये थे। वास्तव में शासन की ओर से इस प्रकार व्यापार करना ही मूलत लज्जा की बात थी। जनता द्वारा लगान के रूप में दिये हुए पैसे हमारे पास हैं परन्तु प्रामाणिकता और मनुष्यता का हमारे पास दुर्भिक्ष है यही बात शासन ने अपने इस व्यवहार से प्रकट की थी।

विश्वास के लिये अयोग्य सिद्ध अधीक्षक के प्रति प्रेमभाव रखना मेरे लिये सम्भव नहीं था। वर्षों से दिन रात दिलोजान से काम करते मैं थक गया था।

जितनी ठगी मेरे साथ हो चुकी है वह पर्याप्त है, इस अवस्था तक मैं पहुँच चुका था ।

मेरे द्वारा उपस्थित वहस लिपिवद्ध हुआ करती थी । सम्बन्धित कार्यालयों में वे लेख मिल जावेंगे । मेरे कथन की सत्यासत्यता की जाच उनको देख कर की जा सकती है । अधिकारियों के पास उनके कोई समुचित उत्तर नहीं होते थे । तब समुचित उत्तर न दे सकने पर वे बल का प्रयोग मेरे साथ करते थे । अपने प्रति किये जानेवाले अन्याय को सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत करने का सदैव ही मेरा प्रयत्न रहता था । कारण कुछ भी क्यों न हो, मुझे उसमें सफलता नहीं मिल रही थी । इससे मन का उत्साह क्षीण होने लगा था । तब गरीब पर भी उसका परिणाम होना स्वाभाविक था । अन्तिम वर्ष में तो मैं मृत्यु के बहुत निकट पहुँच गया था । दो बार ऐसे प्रसंग आये कि मैं मृत्यु से बिलकुल सटकर खड़ा था । केवल मृत्यु ने मेरा अयवा मैंने मृत्यु का आलिङ्गन नहीं किया इतना ही शेष रह गया था । वह भी विधिलिखित का ही भाग होगा ।

औरंगाबाद जाने पर सात-आठ मास बाद मैं बीमार पड़ा । मुझे वन्दीगृह के रुग्णालय में भर्ती किया गया । चिकित्सा के लिये मुझे वहीं रखा गया ।

“स्वास्थ्य चिन्ताजनक है, मिलने के लिये आओ ।” इस प्रकार की मूचना नियमानुसार अधिकारियों ने घर पर भेजी थी । घर के लोगो ने जाने का निश्चय किया । घर से चलने से पूर्व स्वास्थ्य का समाचार मिले इसके लिये उन्होंने औरंगाबाद कारागार के अधीक्षक को टेलीफोन किया ।

वहाँ से उत्तर मिला कि “बच्चों को लेकर अयवा अन्य किसी को भी लेकर आना हो तो आ जाओ, तुरन्त भेंट की व्यवस्था कर दी जावेगी । अन्यथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है ।”

मेरे छूटने के बाद एक दिन सिन्धु ने बताया, टेलिफोन का रिस्तीवर नीचे रखते ही मैं तो घम में नीचे गिर-पड़ी गई और मेरे हाथ-पाँव की शक्ति क्षीण-सी हो गई । ‘स्वास्थ्य के सम्बन्ध में वैसी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं’ इस वाक्य का खोचलापन मुझे बोलनेवाले की ध्वनि से ही प्रतीत हो रहा था । मुझे चिन्ता थी तो केवल इसी बात की कि इतनी दूर शीघ्रातिशोध में किम प्रकार पहुँच सकूँगी । जिसके लिये मैंने इतनी यातनाएँ सही, किन्ती भी स्थिति में दुर्वृत्ता एवं दैन्य प्रकट नहीं किया वह मेरे प्रति मुझे मिलते हैं कि नहीं इसकी कल्पना ने ही मन बँटा जाता था । भगवान अधिक क्रूर हैं अयग शासन इसकी जड़ में तुलना करना तो मुझे सदैव शासन को अग्रस्थान देना पड़ेगा ।

मिथु बहती थी, “कभी-कभी मैं बच्चों को लेकर चित्रपट देखने के लिये जाती थी । पर चित्रपट के ‘नू क्षमता तर कवि नयनानी अश्रु झलले नसते धरसर ।’

इस कठिनाई से परिपूर्ण गीत से मैं एकदम हो चुकी थी। मैं वह गीत गुनगुनाती रहती थी। तुम जीवित होने पर भी मुझसे दूर थे। तुमसे मेरी भेंट होना नियति से भी शासन पर अधिक अवलंबित है ऐसा मुझे प्रतीत हुआ था।

“मैं भावुक हूँ, यह तुम जानते हो। हँसो मत, मैंने ईश्वर से मनीषा की थी कि “मेरा गोपाल मुझे मिले।”

“लगभग पाँच मिनट तक मैं वैसी ही बंठी रही। मस्तिष्क में न समाने-वाले इतने विचारों की भीड़ एकत्रित हो गई थी कि उससे मस्तिष्क का द्वार ही बंद हो गया था। मन शून्य हो गया था। उस शून्यता में से ही एक विचार बड़ी तीव्रता से मस्तिष्क तक पहुँचा। यह कि ‘हमें यहाँ से तुरत जाना है।’ वाद में प्रतीत हुआ कि स्वस्थ बैठे रहने से कार्य सिद्धि नहीं होगी। उस समय मेरे पास पैसे नहीं थे केवल दस-तीस ही रुपये हैं, यह बात ध्यान में आई। फिर तुरत एक के बाद एक विचार पक्षिबद्ध मस्तिष्क में से निकलने लगे।

“हमें यहाँ से तुरत जाना है इस विचार से ही मुझ में शक्ति आई। मैं उठ खड़ी हुई, दो घंटे डबरे उधर घूमकर मैंने चार सौ रुपये एकत्रित किये। कर्मचारियों को देने के लिये ढाई सौ रुपये रख दिये। डेढ़ सौ रुपये साथ लिये, एक वाहन किया नगर से होकर पाँच घण्टों में हम बंदीगृह के द्वार पर पहुँचे।

रुग्णालय में ही हमारी भेंट हुई। मैं जिन्दा हूँ, बोलता हूँ, मनुष्य पहचान सकता हूँ इतना जान लेने के बाद ही सिन्धु के मनका तनाव कम हुआ था। भेट का समय समाप्त हुआ। घर के लोग वापस गये। २०-२५ दिन बाद मेरा रोग कम होने लगा तब २-११-६२ को अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मैंने सिन्धु को लिखा—

स्वास्थ्य अब सुधर रहा है। किन्तु ऐसा लगता है कि अभी १५-२० दिन और रुग्णालय में रहना पड़ेगा। स्वास्थ्य अच्छा होने पर मुझे ही यहाँ रहना नहीं भायेगा। रोग तो ठीक हो गया है केवल शक्तिहीनता शेष है।

यह शक्तिहीनता स्थिर है। वह मन पर हुए आघातों के परिणामस्वरूप है। जुलाई १९५७ से अब तक मैं १७ बार विफल हो चुकी हूँ। वर्तमान आवेदन में भी मुझे यश मिलेगा ऐसा समझने का कोई कारण नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय के १९६१ के विधिस्वरूप निर्णय के बाद, मैं विगड़ गया हूँ, ऐसी कल्पना करके मुझे सुधारने के लिये मुझ पर जो उपाय किये गये हैं उनका भी मेरे मन पर परिणाम हुआ है। मन पर हुए और किये गये आघातों के परिणामों से उत्पन्न शक्तिहीनता मुझे यदि शककर मैं भी धोल दिया जाय तो भी कम नहीं होगी। और फटके मारने से भी नहीं जावेगी। अन्याय करने और उसे जारी रखने में तो सभी दक्ष हैं किन्तु न्याय करना अथवा कराना यह किसी का कर्तव्य नहीं है ऐसी



कर्तव्यसत्परता मेरे देव से प्राप्त हुई थी इसलिये मन के द्वारा शरीर पर जो परिणाम हुआ है वह स्थायी है। न्याय से वञ्चित हुआ हूँ, इसलिये मन में उत्साह नहीं है। शक्तिहीनता दूर करने के लिये शरीर पर किये गये उपचार ऋपरी होते हैं। इसलिये तुमको विगत पत्र में लिखे अनुसार दुर्बल शरीर पर कोई भी रोग जन्तु आक्रमण करें और भूमि भुरभुरी है ऐसा देखकर वही आसन जमा बैठें यह प्रकृति का नियम है। 'जीवो जीवस्य जीवनम्' हम दूसरे के जी पर जीते हैं तो तीसरे का जीवन हमारे जीवन पर जीवित है। ऐसा है इस प्रकृति का चक्र है।

वही शक्तिहीनता का तन्तु पकड़ कर मैंने उस पत्र में लिखा था, "और राष्ट्रो का भी क्या चलना है। हम शस्त्रास्त्रों से हीन हैं क्या यह जानकर ही चीन ने हमारी सीमाओं पर आक्रमण नहीं किया? हाल ही में क्यूबा में धर्मयुद्ध हुआ। एक भी गोली नहीं चली और न एक हत्या ही हुई। क्यूबास्थित उत्क्षेपण पटल (मिमाइल वेस) उठाते ही अयबा नहीं इस प्रकार की गर्वोक्ति अमेरिका ने की वह उसने शस्त्रबल के कारण ही तो की थी। विश्व शांति के उच्च तत्वों का मूल्य हम ने जान लिया इस कारण नहीं। क्योंकि अमेरिका के शब्द शस्त्र की धार पर से होते हुए पहुँचे थे। और वे यह भी समझते थे कि यदि हमने आज अमेरिका के इस कथन की उपेक्षा की तो अमेरिका का खात्मा करने के अपने पडयन में सफल होने से पूर्व कहीं वह हमारा ही सहर न कर डाले। इस भय के कारण ही रशिया ने अपने उत्क्षेपण पटल को संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में उठा लेने का निश्चय किया। भारत की भी शस्त्र शक्ति अपने समान ही है इसका ज्ञान यदि चीन को होता तो वह कभी आगे न बढ़ता। परंतु वह भली-भाँति जानता था कि भारत का शस्त्रबल शून्य है अतः उसने आक्रमण किया।

यू-टू का उदाहरण स्मरणीय है। क्या रूस की भूमि पर अमेरिका हवाई जहाज के द्वारा जासूसी नहीं करता था? क्या उसके लिये रूस विरोध-पत्र नहीं भेजता था? परंतु अपना सामर्थ्य तनिक पङ्गु है इसका ज्ञान रूस को था। भौतिक शास्त्र में रशिया ने तरक्की की, एक के बाद एक यान उसने अंतराल में भेजकर उसकी थाह पाई। किन्तु उसका उपलक्ष्य था अस्त्रों की कक्षा से बाहर से जाने वाले यानों का भेद करना, छेद करना सम्भव हो इस दृष्टि से अपने विज्ञान की दिशा को उसने मोड़ दिया था।

"उसमें रशिया को सफलता मिली। तेरह मील की ऊँचाई पर से जानेवाले अमेरिका के विमान को रूस नीचे ले आया। पावर्स को वस्तुस्थिति बोलने के लिये विवश किया। अपनी कारगुजारी पकड़ी गई है यह समझते ही अमेरिका ने अपना दोष भी स्वीकार कर लिया। जो बात सौ विरोध पत्रों से नहीं होने वाली थी वह एक आविष्कार से सहज साध्य हो गई। इसको कहते हैं धर्मनीति। एक

गाल पर थप्पड़ लगने पर दूसरा गाल आगे करना; यह होता है शांति का आघात अर्थ। अपनी शक्ति ही इतनी बढ़ाई जाय कि किसी को गाल पर एक भी थप्पड़ मारने का दुस्साहस न हो सके इसे कहते हैं पूर्ण शांति की सगति। ऐसी ही होनी चाहिये अंतर्राष्ट्रीय नीति। अस्तु, अपने दुर्बल शरीर के माध्यम से यह प्रवाह मुड़ गया है।”

चीन ने हिन्दुस्तान की सीमा पर आकर ललकारा था। जिसमें तनिक भी राष्ट्रीय भावना का लेश छेप था उसने इस आघात को अपने ऊपर आघात समझा। तब राष्ट्र की रक्षा के लिये कटिबद्ध होने की लोको में स्पष्टी होने लगी थी। उस समय महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री श्री यशवन्तराव चव्हाण को सिन्धू ने एक पत्र दिनांक ८११ ६२ को लिखा—

शासन ने मुझ पर अन्याय किया था तो भी इस समय देश की रक्षा महत्व की है यह सिन्धु जानती थी। व्यक्तिगत दुःख भूल कर एकता की आवश्यकता थी, ऐसे ही सिन्धु के सस्कार थे। उसका पत्र निम्न प्रकार था—

सादर प्रणाम !

चीन ने भारत के साथ युद्ध प्रारम्भ कर एक बहुत बड़ा धक्का दिया है। जिस दिन यह सुना तभी से मन अस्वस्थ है। क्या करना चाहिये, यह सोच नहीं पाती।

हाल ही में भारत के प्रधानमन्त्री नेहरूजी ने आकाशवाणी के माध्यम से राष्ट्र का आह्वान करते हुए सहयोग की अपील की है।

इस समय अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्येक भारतीय का कुछ कर्तव्य निश्चित है। मार्ग अनेक है। उनसे से द्रव्यदान, श्रमदान, रक्तदान, और प्राणदान ये मार्ग स्पष्ट दीखते हैं।

हमारे घर में हम पाँच व्यक्ति हैं। उनमें से मेरे पति श्री गोपाल गोडसे गाँधी वन अभियोग के वदी होकर सम्प्रति औरंगाबाद कारागार में आजीवन कारावास का दण्ड भुगत रहे हैं। उन्होंने भी सीमा पर जाने की अपनी इच्छा व्यक्त की है।

१९४०-१९४४ तक वे सेना में ही थे। उन्हें ऐसा अवसर देना अथवा न देना यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। युद्ध रुक जाने के बाद फिर वदीगृह में रखने से उन्हें कोई इतराज नहीं होगा। परन्तु जो भारत-भू का पुत्र है उसको माता की सेवा से परावृत्त करने का और सेवा से वंचित रखने का कोई भी कारण नहीं।

मेरा मानम पुत्र नाना है। आवश्यकता ही और अवसर दिया गया तो सीमा पर जाने से लेकर अन्य भी किसी प्रकार के श्रम करने के लिये वह तत्पर है। रक्तदान और द्रव्यदान तो हम करते ही हैं और करते रहेंगे।

मेरे अपने सम्बन्ध में--

सम्प्रति पूना छोड़कर मैं कहीं अन्यत्र जा सकूँगी ऐसा सम्भव नहीं है। कारखाना चलाने का उत्तरदायित्व होने के कारण ऊपर लिखे अनुसार मैं देश के लिये अपना पति और पुत्र दे सकती हूँ। मेरे भाग में जो उत्पादन का हिस्सा आवेगा वह भार में उठाने के लिये तत्पर हूँ। हम स्टील स्ट्रक्चर्स बनाते हैं। अबतक एन० डी० ए०, सी० एम० ई०, एच० ई० फ़ैक्ट्री, पैतसिलीन फ़ैक्ट्री आदि के सामान हमने निर्माण किये हैं। युद्ध के लिये लोहे का उत्पादन बिना किसी प्रकार का एक पैसे का भी लाभ प्राप्त किये करने के लिये मैं उद्यत हूँ। उत्पादन कार्य पर आपके जो कोई भी प्रतिनिधि हों उन्होंने यदि वैसा मुझे अवसर दिया तो मैं नियत सूचना के अनुसार नियतकालावधि में काम का हिस्सा उठा सकूँगी। इस प्रकार मैं अपनी मातृभूमि की सेवा करने में अपना कर्तव्य पालनकर प्रमत्तता अनुभव करूँगी।

मेरे पति को निश्चित अवधि से दो वर्ष अधिक तक वदीगृह में रखा गया है वह अपना अन्तर्गत विवाद है।

परस्परविरोधे तु वय पञ्च शतम् च ते।

अन्येभ्यश्च विरोधे तु वयं पञ्चाधिक शतम् ॥

यही आश्वासन मैं आपको दे सकती हूँ। किसी भी प्रकार से आप मुझे, मेरे पति श्री गोपाल गोडसे एवं पुत्र नाना को अवसर दें, यही विनती है।

आपकी

सौ० सिन्धु गोडसे

मेरा एक आवेदन सर्वोच्च न्यायालय के सामने विचाराधीन था। उसके लिये मुझे दिल्ली बन्दीगृह में रखा गया था। क्योंकि अपना आवेदन मुझे ही प्रस्तुत करना था। उस अवधि में दि० १३-१०-६४ को मुझे मुक्त किया गया। दिनांक २४-११-६४ को मुझे भारत सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत पुन बन्दी बनाया गया। १ वर्ष ६ दिन कारावास भुगतने के बाद दि० ३०-११-६५ को मुझे मुक्त किया गया। उस समय भी मेरा एक आवेदन बम्बई उच्च न्यायालय में विचाराधीन था।

लगभग १७ वर्षों के बाद मुझे ४० दिन की मुक्ति मिली थी। स्वतन्त्र सत्ता से मैं एकरस नहीं हो सकता था। उसके साथ पाव मिलाकर नहीं चल सकता था। स्वतन्त्र का निरीक्षण करने के लिये मुझे बाद के बन्दीवास में अवसर मिला। २९-१२-६४ को सिन्धु को लिखे अपने पत्र में मैंने लिखा—

“पारिवारिक दायित्व को केन्द्र बिन्दु बनाकर उसके आसपास अपने उद्योग

की योजना मुझे बनानी थी। १७ वर्ष बाद मैं बाहरी विश्व देख रहा था। नये-नये क्षेत्र और उनके उद्योगों से यदि मेरा किसी प्रकार परिचय होगा तो वह पढ़ने में ही हो सकता है। प्रत्यक्ष विश्व को जब मैंने देखा तो मैं उसे देख कर उसी प्रकार भौचक्का रह गया जैसे कि छोटे बच्चे को किसी बड़े खिलौने की दुकान पर ले जा कर खिलौने चुनने के लिये कहा जाय।

“इन वंगवान ससार में मैं पदार्पण कर रहा हूँ। १७ वर्षों के अम्यास की मुझे भण्डाई करनी है। इसमें मैं कहा खड़ा रह सकूँ, परिवार का दायित्व सम्भाल कर कैसे खड़ा रह सकूँगा इन विचारों से भी मैं असहाय सा बन गया था और वृत्ति पर भ्रष्टत्व आ गया था।”

मैं जब मजा भोग रहा था तब सिन्धु ने कितने धैर्य से दिन बिताये थे, इसके नम्रान्ध में मैं सुना करता था। उसके कर्तृत्व का फल मैंने ४० दिनों में देखा था। वह देज कर मुझे कैसा लगा इसका विवरण करने के लिये बाद का बन्दीवान बाम आया। उसी पत्र में मैंने सिंधु को लिखा था—

“१७ वर्ष पूर्व जब मैं तुमको छोड़कर आया था तब मुझे लगता है उस समय वेतन के जेप पाँच रुपये ही तुम्हारे पास होंगे। बम्बई के तीन चार चक्करो में उन पैसों की भी समाप्ति हो गई होगी। उसके बाद तुम्हारे उदरभरण के लिये कन्धाओं की व्यवस्था के लिये तुम्हारा क्या प्रबन्ध है, यह तुमसे पूछने की बारी तुमने मुझे आने ही नहीं दी थी। अनेक कठिन प्रसंगों को तुमने पार किया। शून्य में मैं विन्व निर्माण करने की भाँति, टुटपूजिये अनुभव के बल पर, अथक श्रम करके, दिन रात पसीना बहाकर तुमने एक उद्योग खड़ा किया। मुझे भुक्ति मिले और मेरा एक स्वतन्त्र व्यवसाय हो यह ध्येय मन में रख कर तुमने कष्ट सहे। वस्तुतः मेरा दायित्व तुमने निभाया। तुम्हारा किया हुआ लोकसंग्रह मैंने देखा। मुसलमान, पारसी महार या ब्राह्मण आदि सभी में अपने आस पास तुमने आदर का परिमर निर्माण किया है। इस सकट में पड़ने पर तुम्हारा और मेरा सहारा ही उद्भवस्त हुआ था। मैं छूट कर आया, करीब १७ वर्षों के बाद आया। और सचमुच जहाँ अधिकार से रह सकूँ ऐसा सहारा तुम्हारे कर्तव्य से मूर्तस्वरूप मैंने अपनी आँखों से देखा और अनुभव भी किया। जिसको मैं अपना कहूँ ऐसे उद्योग का औपचारिक उद्घाटन मेरे हाथों से कराया, उसका अधिकृत नामकरण किया। यन्त्र के अग अग में तुम्हारे कष्टों की साकार प्रतिमा मुझे झलकती मिली। रागणेश्वर की—‘तुझे सारे वैभव येथे भी नाचावा वनी।’ इस पक्ति का प्रत्यक्ष लक्षणों से नहीं अपितु प्रत्यक्ष में ही देखने को मिला। उसमें मुझे कहीं भी न्यूनता न देखकर तुम्हारे विलक्षण कर्तृत्व का अभिमान हुआ। परिस्थितिवश मेरे हिस्से का बोझ उठाने का अवसर मुझे नहीं प्राप्त हुआ और तुमने उसे भली

भांति उठाया ।

मनुष्य पराधीन हो कर भी जीवन व्यतीत करता है, परन्तु उसके भाव एवं भावनायें जागृत रहती हैं। वधन के कारण भावनाओं की अभिव्यक्ति को अवसर नहीं मिलता। उससे तो भावनायें और तीव्र होती हैं। वन्दीवास की कठिनाई वहाँ के श्रम में, अनुशासन में या वन्द होने में जितनी प्रतीत नहीं होती उससे बहुत अधिक परिमाण में भावनाओं के प्रवाह में होती है।

वन्दीवास किसी राजनैतिक विचारधारा की प्रेरणा का परिणाम होने पर भी वह प्रेरणा उस व्यक्ति का एक भाग होती है। अन्य भावनायें कुछ समय तक ठँकी रहने पर भी उनका अस्तित्व होता है। युवावस्था जिस प्रकार किसी प्रकार की विचारधारा का चस्का रखने की अवस्था होती है उसी प्रकार वह सुख के मनोराज्य करने की भी होती है। अपना घर अमुक प्रकार का हो, ऐसा चित्र कोई विवाहोत्सुक या नवविवाहित युवती जिस प्रकार रगती होगी, उसी प्रकार उस अवस्था के युवक भी ऐहिक सुख के स्वप्न मन में लाता होगा।

राजनैतिक पार्श्वभूमि में भी मनुष्य वध करने का ध्येय किसी का नहीं हो सकता। ऐसी घटनायें राष्ट्र के जीवन में और उसी प्रकार उस व्यक्ति के जीवन में भी अचानक रूप से निर्मित होती हैं। गांधी वध से मेरा सम्बन्ध भी मेरे जीवन में एक आपात या दुर्घटना थी।

तीन वर्षों के वैवाहिक जीवन के बाद मैं अचानक अटल रूप से परिवार से दूर फेंका गया था। तब तक दो कन्यायें हो चुकी थी। सतति का पालन और शिक्षा दीक्षा हम अमुक प्रकार से करेंगे ऐसा मनोराज्य मैं करता था। प्रतिदान की अपेक्षा से नहीं तो वात्सल्य की भावना से मनुष्य ऐसी इच्छायें करता ही है। उन इच्छाओं की पूर्ति से मिलनेवाला सुख वही उनका प्रतिपादन होता है। मेरे वन्दीवास के कारण जो भावनायें दब गई थी उनमें वात्सल्य की यह भावना भी थी।

मन की सान्त्वना के लिये मेरे पत्रों में मेरे मन की भावनाओं को मार्ग मिलता था। जब भी सम्भव होता सिधु कन्याओं को मुझसे मिलाने के लिये लाया करती। हमारे पिताजी हैं, परन्तु वे अपने पास नहीं हैं, हम उनसे हठ नहीं कर सकती, हठ की पूर्ति करा लेना हमारे लिये असम्भव है, हमें पिता का प्रत्यक्ष प्रेम प्राप्त नहीं, यह कसक उनके मन में रहती थी। परन्तु इसके साथ ही किसी निस्वार्थ हेतु के लिये वह वन्दी है इसका ज्ञान भी उन्हें उस छोटी अवस्था में था।

पढ़ना लिखना सीखते ही उनको पत्र लिखने की आदत लग गई। जिन विषयों को वे समझ सकें इस प्रकार के नये नये विषय मैं उनको लिखा करता था।

मुझे कविता रचने का भी एक शौक था। वर्षगांठ या त्यौहार के प्रसंग पर या कभी परीक्षा में सफलता प्राप्त की हो तब उस निमित्त मैं उन्हें कुछ पंक्तियाँ कवितावद्ध करके लिखता था। विद्युत्कला के एक परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर एक बार मैंने उसको लिखा था—

साध्य गाठता एक, आपले साध्य बाढवावे ।  
जाता तेथे नये थाबता पुन्हा पुढे जावे ।  
एका मागुनी एक फेकुनी ऊच ऊच याने ।  
गगनाला गवसणी घातली आज मानवा ने । (मई १९६१)

असिलता का एक पत्र आया था। उसकी वर्षगांठ के समय मैं घर पर नहीं हूँ इसका दुःख उसने अपने पत्र में व्यक्त किया था। वर्षगांठ के अवसर पर मैंने उसको निम्न चार पंक्तियाँ लिखी थी।—

विधि योगाने तुला राहिली अपुरी जी साउली ।  
ती नेमे कष्टे कराया पूर्ण तुझी माउली ।  
दिसो न लोका दैन्य, वा दिसो नये न्यूनता जनी ।  
अध्ययनी हो पुढे यास्तवे तू सुगुणाची खनी । (मार्च १९६०)

कन्याओं की शिक्षा जारी है यह मैं जानता तो था परन्तु देख नहीं सकता था। मैं जब छूट कर आया तब एक कन्या परिचारिका की शिक्षा ले रही थी तो दूसरी वास्तुविद्या के (आर्किटेक्चर के) द्वितीय वर्ष में पढ़ रही थी। उनकी मा ने उनकी यहा तक उन्नति की थी। उसके कर्तृत्व से मुझे स्वाभिमानपूर्ण आनन्द हुआ था।

मेरी अनुपस्थिति में परिवार में नया समाविष्ट हुआ नाना नियमित रूप से पत्र भेजता था। कभी-कभी मिलने आता था और न्यायालयीन कार्य में अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करता था। मुक्ति के लिये ही वे प्रयत्न हो रहे हैं यह जानते हुए भी उसके कष्ट का मूल्य मुझे बहुत लगता था।

दवी हुई भावनाओं के बीच मैं एक भावना पति-पत्नी के बीच के सम्बन्ध की थी। “फलों” नाम से कही जाने वाली छुट्टी १९४९ से वन्दिशो को यहाँ दी जाने लगी थी। प्रति दो वर्ष के बाद १५ दिन का ऐसा अवकाश मिलता था। मेरे अवकाश पर जाने पर शांति भंग की सम्भावना है इसलिए मुझे एक बार अवकाश देने से इन्कार किया गया। पुन आवेदन करने पर इन्कार करने का कोई कारण नहीं मिला। इसलिये गांधी वध अभियोग के वन्दी का बहाना बना कर अवकाश न देने का बहाना बनाया गया। वह बहाना ही ऐसा था कि उसका खण्डन करने की सामर्थ्य किसी में नहीं थी। इसलिये शासन ने मेरा आवेदन करने का अधिकार ही छीन लिया था। शासन ने इस प्रकार जानबूझ कर द्वेषभाव

रखने के कारण मुझे कभी भी अवकाश नहीं दिया ।

एक ओर मुक्ति के लिये प्रयत्न करते रहना और दूसरी ओर पत्रों द्वारा एक दूसरे को धीरज देना, आशा दिलाना, यही हम करते थे । पत्रों का उपयोग मैं अपनी दबी हुई भावनाओं को प्रकट करने के लिये करता था ।

एक बार दीपावली के अवसर पर मैंने सिंधु को लिखा था—

सदेशानी परस्पराच्या संजवू दीपावली ।

परिस्थितीशी जुळते घेऊ सहू ऊन सावली ।

विवि वधाने चिर प्रीति जी हृदयो सामावली

तेवत राहो तीच आपली दीपांची आवळी ॥ ( १९६३ )

परन्तु यह केवल मन को आश्वस्त करने की बात थी । किन्तु कभी यह अनुभव नहीं होता था कि अतृप्त भावनाओं को इससे तृप्ति प्राप्त हुई हो । सदैव की जिज्ञा के कारण मन पर एक बोझ बना रहता था । लेखन की धार आती थी । वैसी धार आई कि यह सुबरा नहीं उसको और तग करना चाहिए ऐसी सुविधाजनक कल्पना अधिकारी गण कर लेता था । अधिकारीगण व्यक्तिशः अच्छे हुआ करते थे । परन्तु सरकार ने गांधी के नाम से प्रतिशोषात्मक नीति अपनाई थी उसके अनुसार बर्ताव करना यह अपना कर्तव्य है, ऐसी उनकी धारणा होती थी । इस तरह का सदैव छल करना अमानुषी है, ऐसा कहने का साहस किसी भी अधिकारी में नहीं था । न जाने, वैसे स्पष्ट और सत्य बोलने से हम गांधी वध में सहभागी थे ऐसा अपने ऊपर आरोप आयेगा ऐसा भय उन्हें शायद लगता था ।

संयोग ने लादे गये थे वियोग के दिन संयोग से ही समाप्त होनेवाले थे । वे समाप्त हुए और इसलिये इतिहास के स्वरूप में घुबले से व्यक्तिचित्रों की यह एक झाँकी रेखांकित करने का अवसर सुलभ हो सका था ।

- \* \* \*

दस

## बन्दीकरण से लाल किला

“तुम कैद में हो” आरक्षक अधिकारी के इन शब्दों को सुनकर मेरे मन का दबाव नष्ट हुआ। यह विरोधाभास वास्तव में प्रतीत होता है। निश्चित ही कैद में होने से मन पर दबाव आना है। परन्तु वस्तुस्थिति यह थी कि कैद में होते समय भी मेरे मन पर इतना दबाव था कि कैद होने से मन पर आनेवाला दबाव मुझे उससे पूर्व के दबाव से मुक्त करनेवाला सिद्ध हुआ।

गांधी वध के ६ दिन बाद मुझे पकड़ा गया था। यद्यपि उस घटना से मेरा जो कुछ सम्बन्ध था, वह विधि रक्षकों के उस समय ध्यान न आया हो, परन्तु गांधीवध के पश्चात् जो छानबीन होगी उसमें वह उनको ज्ञात होगा और मुझे कभी भी बन्दी बना लिया जावेगा। यह मेरा सीधा, सरल तर्क था। किन्तु स्वयं पुलिस के पास जाकर इस वध से मेरा इस प्रकार का सम्बन्ध है यह कहने की अपनी भी कोई इच्छा नहीं होती थी। मैं सोचता था कि मान लिया जाय कि पुलिस को इस विषय में कुछ भी नहीं ज्ञान होगा तो व्यर्थ मैं क्यों स्वयं को अभी से सकट में डाला जाय। मन में यह विचार प्रबल था। कैद होने से पूर्व पुलिस का और मेरा दो बार सामना हो चुका था। तब वे यह टटोलना चाहते थे कि उस घटना से मेरा कोई सम्बन्ध है अथवा नहीं। उन्होंने कुछ समझा अथवा नहीं, यदि समझा तो क्या समझा है इसका अनुमान ही मैं लगाता रहता था। दोनों भेटों में मैंने अनुभव किया कि पुलिस को समझ में कुछ नहीं आया और मैं स्वतन्त्र हुआ था।

पुलिस की तजरो मे कहीं दूर चला जाऊँ अथवा भूमिगत हो जाऊँ, इस प्रकार की बात मेरे मन में कभी नहीं आई। मैं पुलिस के हाथ में पड़ूँ अथवा



पुलिस को चकमा दूँ, यह बात भी कभी मेरे मन में नहीं आई थी। एक ओर मैं अपना नित्य का कार्य करता था तो दूसरी ओर सदा यह शका बनी रहती थी कि अभी पुलिस आकर कबे पर हाथ रखकर कहेगी कि चलो हमारे साथ। इस प्रकार मन व्यग्र रहता था और मन पर का वह दबाव अजीब सा था।

३० जनवरी १९४८ का दिन अन्य दिनों की ही भाँति उदित हुआ था किन्तु उतनी ही स्वाभाविकता से उसका अस्त नहीं हुआ। अस्त होने से पूर्व उस दिन ने अपने पीछे एक प्रचण्ड हलचल छोड़ दी थी।

गाधी की हत्या किये जाने का समाचार आकाशवाणी ने सायंकाल साढ़े पाँच या छ वजे के लगभग प्रसारित किया था। समाचार में गम्भीरता थी बढते हुए अन्वकार के साथ ही उस समाचार का गम्भीरता भी गहन होती गई।

उन दिनों मेरा मकान खडकी में था। खडकी पूना से पाँच छ मील दूरी पर है। तीन चार दिन पूर्व ही मेरी पत्नी कन्याओं को लेकर अपने मायके गई थी। वहाँ उसकी चचेरी बहिन का विवाह था। मेरे माता पिता पूना में शुक्रवार पेठ में श्री साठे के मकान में रहते थे। बड़े भाई श्री दत्तात्रय पूनास्थित ऐरण्डवणा से 'उद्यम इजीनियरिंग' उद्योगशाला के नये भवन में रहने लगे थे। शाम को मैं पूना आता था और प्रातः काम पर जाता था।

उम दिन शाम को पूना के लिये प्रस्थान करते समय ही मैंने गाधी वध का वृत्त आकाशवाणी पर सुना था। ऊपरीतौर से मैंने उस वार्ता के सम्बन्ध में जिज्ञासा नहीं दिखाई, परन्तु मेरे मन में मात्र खलबली मची थी।

वास्तव में गाधीजी के प्रति प्रेम मेरे मन की खलबली का कारण हो यह बात नहीं। वचन किसे किया इस बात को अभी तक प्रकट नहीं किया गया था। नयूराम गाधी वध के लिये प्रवृत्त हुए थे इसकी मुझे कल्पना थी। मन स्वार्थी होता है अथवा अपने अनुकूल विचार करने की मन को आदत होती है। मैं मन में सोचता था कि गाधी वध के सम्बन्ध में नयूराम का नाम न आवे तो अच्छा है। मानो किसी अन्य के प्राण मेरी दृष्टि में नयूराम के प्राणों से अल्प मूल्य के थे। परन्तु स्वतः को अनुह्य प्रतीत होनेवाले विचार अधिक समय तक नहीं टिकते थे इससे मन को अस्वस्थता होती थी।

गाधी वध से मेरा किसी प्रकार भी सम्बन्धित होना मेरे जैसे साधारण घर-गृहस्थ के वश के बाहर की बात थी। परन्तु वातावरण के परिणाम जाने अथवा अनजाने, मन पर होते ही हैं। अपने सम्बन्ध में मैं यह कह सकता हूँ कि गाधी के प्रति मेरे मन में जो वृत्ता निर्माण हुई थी उसका कारण देश का वातावरण ही था।

स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा मैं अपना कोई राजनीतिक मत निश्चित करूँ ऐसी मेरी

बुद्धि उस समय तक विकसित नहीं हुई थी। वचपन से राष्ट्रीयत्व, स्वराज्य, लड़ाई, आन्दोलन, क्रान्ति, संगठन आदि सज्ञाओं के संस्कार मन पर थे। आजी-विका के लिये कुछ तो करना होगा ही और कहीं न कहीं कोई सेवावृत्ति अपनानी ही होगी तो फिर सेना में ही क्यों नहीं, इस विचार से मैं सेना में भर्ती हो गया। तब द्वितीय विश्वयुद्ध का आरम्भ हुआ था। युद्धकाल में तीन वर्ष विदेश में—ईराक, ईरान में जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। विदेश जाने से पूर्व मेरी सावरकर जी से भेंट हुई थी। उस समय प्रथम बार ही मैंने उन्हींके मुख से रासविहारी का नाम सुना था। वे जापान में कार्य कर रहे हैं ऐसा भी उनसे सुना था। सुदूरपूर्व में रासविहारी बोस और सुभाष बाबू की गतिविधियों के समाचार अंग्रेजों के अमेच १८९० में से भी कभी-कभी हम तक पहुँच जाया करते थे। मध्यपूर्व में भी वैसे ही किसी प्रकार की हलचल है अथवा नहीं इस पर हम सन्तुष्ट हो लचकता करता था। अंग्रेजों के साथ पहले जैसी एकनिष्ठा अब सैनिकों में नहीं रह गई थी। हम लोग भी यह चाहने लगे थे कि सुभाष बाबू के जैसे प्रयत्न पूर्व दिशा में हो रहे हैं वैसे ही कोई प्रयत्न इस ओर भी हो। परन्तु उस प्रकार का बोझ अपने कंधों पर लेनेवाला स्वतन्त्र प्रज्ञा का कोई नैतिक नेता उस दिशा में नहीं था।

अप्रैल १९४४ में मैं भारत वापस आया। दो मास बाद मेरी नियुक्ति खडकी में हो गई। सुदूरपूर्व का युद्ध अभी पूर्णतया वन्द नहीं हुआ था। मैंने अधिकारियों से प्रार्थना की था कि मुझे उस मोर्चे पर भेज दिया जाय। परन्तु जब तक उस प्रार्थना पर विचार हुआ तबतक द्वितीय विश्व युद्ध का अन्तिम अंक भी पूर्ण हो चुका था। अतः मुझे खडकी में ही रहना पड़ा।

मैं जिस विभाग में काम करता था उसमें पंजाब प्रान्त के लोग अधिक सत्या में थे। १९४६-४७ में नेताओं के पंग देश विभाजन की ओर बढ़ रहे थे। बंगाल, पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त इत्यादि स्थानों पर दंगे आरम्भ हो गये थे। अपने प्रान्त का क्या होगा, अपने घरदार का क्या होगा इसकी चिन्ता पंजाबवासियों को लगी रहती थी। अपने नेताओं पर विश्वास कर कई लोगों ने अपने घर-वालों को लिखा था, 'आप वहीं रहिये, यह तूफान थोड़े ही दिनों में शान्त हो जावेगा। आगे की सोचें समझे बिना क्या अपने नेता लोग इस प्रकार का कोई निर्णय करेंगे ?'

परन्तु क्या हुआ ? अपने आत्मीयों का महार अथवा ठग बल में उन्हें भगाने का समाचार उन लोगों को सुनने की भारी आई थी। तब उन घरों में से पुरुषों की गालियों का और महिलाओं के शापो का रख नेताओं की ओर होने लगा था। ये नेतागण ही इस खाई में सामान्य लोगों की भाँति रह कर क्यों नहीं दिखाते,

हमारे कुटुम्बों के साथ ऐसी एकात्मकता के ये प्रयोग क्यों हो रहे हैं ? इस प्रकार की बातें उनकी आह के विषय हुआ करते थे ।

कभी किसी के घर से दुःखद घटनाओं से परिपूर्ण पत्र आता या अथवा किसी से मिलने के लिये कोई नरसंहार से बचकर आया हुआ व्यक्ति आ पहुँचता था । उस पत्र द्वारा अथवा उस व्यक्ति द्वारा पंजाब में हो रही घटनाओं का वृत्त सम्मुख रहते ही सुननेवाले के रोगटे खड़े हो जाते थे और आक्रोश ने मन भर जाता था । ४०-५० परिवारों की उस वस्ती में ५-७ घरों में मैंने ऐसे प्रकरण उन दिनों देखे थे । किन्तु जिन पर ऐसी वीन रही थी उनको हम ढाढस भी वैबावे तो किस प्रकार ? यही कारण था कि हम सब कुछ देख तथा सुनकर भी हम उन लोगों को ढाढस नहीं बचा पाते थे । चादर को जोड़ (चिप्पी) लगाई जा सकती है आकाश को नहीं ।

यही कारण है कि स्वराज्य प्राप्ति का आनन्द वे परिवार अनुभव नहीं कर सके । किसी का पैर टूटा हुआ हो तो उससे यह कहना कि “तुम्हारा पैर लगडा है इस तथ्य को मूल ही जाओ, इससे तुमको दुःख नहीं होगा ।” ऐसा परामर्श देने से वह तथ्य मिट नहीं सकता । विभाजन के कारण जिनके घर बार लुप्त गये, जिनके परिजनो के प्राण गये, उनकी समझ में यह बात आ ही नहीं सकती थी कि धर्मों के भेद भाव मिटाकर, अहिंसा द्वारा हमने स्वराज्य प्राप्त किया है । पाकिस्तान से जो लोग बच कर भारत आये थे वे एक प्रकार से अपने परिजनो, सम्बन्धियों एवं सहोदरों की लाशों पर पैर रख कर ही आ पाये थे । अहिंसा, विविध धर्मों की एकता इन शब्दों के जो अर्थ उन्होंने पढ़ एवं समझ रखे थे आज को परिस्थिति में उनके जो अर्थ लगाये जा रहे थे उनमें बहुत बड़ा अन्तर था ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी आसपास के घरों में बड़ा आक्रोश का वातावरण कभी-कभी छा जाता था । अपने पड़ोस में होनेवाली इन घटनाओं का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था । सहस्रो निरपराध व्यक्तियों की हत्याएँ हो रही हैं और मैं मात्र उसका द्रष्टा अथवा श्रोता बनकर रह गया हूँ, यह विचार मेरे मन को निरन्तर कचोटता रहता था । मास की प्रथम तिथि को वेतन लेना, उदर भरण की व्यवस्था करना और सन्तानों की सहाय में वृद्धि को गिनते रहना, क्या बस इतनी ही अपने जीवन की इति कर्तव्यता है ? यह प्रश्न बार-बार मन में उठता था । मनुष्यत्व का लक्ष्य केवल मात्र अपनी गृहस्थी पहचान लेना नहीं उसके बाहर के समार को समझ उसके प्रति भी अपने दायित्व को समझना होता है । उसकी कुछ तो अनुमति अपने को होनी चाहिये । पड़ोसी का घंट चीरकर उसकी आँत बाहर निकाल दी गई है, अपनी आँत तो सुरक्षित है ? दूसरों के घरों में आक्रोश मचा है, अपना घर तो शान्त है न ? इस प्रकार

की अकर्मण्य विचार प्रणाली में अपनी राष्ट्रीय एकात्मकता, आपस का वन्धु-भाव यह भावनायें भर चुकी हैं ऐसा मुझे प्रतीत होता था। और तब मन ऊब जाता था। इसी के कारण मेरे मन में गांधी के प्रति कटुता बढ़ती गई। गांधी का अस्तित्व अब नहीं चाहिये, राष्ट्र की अब और अधिक हानि नहीं होने देंगे, अहिंसा के नाम पर राष्ट्र के शरीर में भीखता नहीं भरने देंगे, क्योंकि सामान्य जन कायरता को ही अहिंसा मान कर आत्मवंचना करता है, ऐसी मेरी चारणा बन गई थी। उस समय की परिस्थिति के निरीक्षण और अपने आस पास की प्रत्यक्ष घटनाओं के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि इस विनाश के लिये गांधी जी प्रमुखरूपेण उत्तरदायी हैं। अतः आगे चलकर गाँधी चष से जो मेरा सम्बन्ध जोड़ा गया वह वस्तुस्थिति से विसवादी नहीं कहा जा सकता।

परदुःख का इतना विचार करके भी नथूराम का इस घटना में सम्बन्ध न हो ऐसा विचार मन में आने का कारण था उसके परिणामस्वरूप नथूराम पर आने वाली आपत्तियों की कल्पना। परन्तु ऐसा लगता है कि मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा होता है। एक अन्य घटना से मुझे इसकी प्रतीति हुई।

जब तक नथूराम का नाम प्रकट नहीं हुआ था, तब तक लोग तर्क करते थे। कहीं वह अपने में से ही तो नहीं है ?' इस प्रकार विचार कर निर्वासित-जन चिन्तातुर हुए थे। बाद में नथूराम का नाम प्रकट हुआ। लोगों ने यह भी मुना कि न तो वह पंजाबी है, न बंगाली, न सिंधी, वह निर्वासित व्यक्ति भी नहीं है। यह सब जानकर उन लोगो ने सुख की साँस ली। किसी के द्वारा भी क्यों न हो उनके शाप को किसी ने सिद्ध कर दिया और इस पर भी अपने पर किसी प्रकार की आपत्ति आने वाली नहीं इससे वे लोग द्विगुणित आनन्द का अनुभव करते थे।

अमृतर, अवाला, कलकत्ता, कानपुर आदि नगरों में आनन्द व्यक्त किया गया। गांधी बध के ८-१० दिन बाद अपने उद्गार व्यक्त करते हुए ५० नेहरू ने उस पर दुःख व्यक्त किया था और उस आनन्द की अभिव्यक्ति पर टीका करते हुए उन्होंने उसे लज्जास्पद बताया था। पण्डित नेहरू को इसमें जो दुःख हुआ वह स्वाभाविक था और उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती थी। उनकी गांधी जी पर, (दिखावे के लिये ही सही) अपार भक्ति थी। वास्तव में हिन्दू मन ऐसा क्रूर होता भी नहीं। परन्तु यदि इतिहास की दृष्टि ने हमें जब कभी तर्क प्रस्तुत करना होगा तो हमें कहना पड़ेगा कि विभाजन के कारण घर-घर में हुए अत्याचार, नरसंहार और पलायन तथा उसके बाद भी गांधी जी द्वारा किया गया अनशनरूपी दुराग्रह इन सब के कारण उत्पीड़ितों के मन में

उनके प्रति बहुत कटुता भर गई थी ।

मैंने स्वयं देखा कि गांधी की मृत्यु पर सेना में जो शोक प्रदर्शित किया गया वह मात्र प्रदर्शन था, उसमें वास्तव में कहीं दुःख का लेश भी नहीं था, गांधी वध के बाद चार पाँच दिन तक, जब तक मैं पकड़ा नहीं गया, उस अवधि में नैनिक गिविर के लोगो से मेरा मिलना जुलना जारी था । अंग्रेजी शासन की ईसाई पद्धति के अनुसार दिन भर वे बाँह पर शोकचिह्न बाधते थे कि तु रात्रि के समय उन शोकचिह्नों को अपनी जेबों में ठूँस लेते थे और दिन भर जिन भावनाओं को अनिच्छा से दबाकर रखते थे उन्हें मुक्त रूप से व्यक्त करने लग जाते थे । वे कहते 'कश्मीर में लड़नेवाली अपनी सेनाओं का अब उत्साह भग नहीं होगा ।'

मैं पाठकों को यह स्मरण करा देना चाहता हूँ कि यह सारी बात कहते समय मेरा अभिप्राय गांधी जी का अनादर करना किंचित-मात्र भी नहीं है । आज हम शस्त्र का उत्तर शस्त्र से देते हैं । यदि किसी ने आक्रमण करने की ठानी तो समय पर हम उसके गढ़ में घुसकर रणभेरी बजाने का दावा करते हैं । शत्रु का विनाश करनेवाले का गीरव-गान हम गाया करते हैं । आक्रमण को उसीकी भूमि पर खदेड़ भारने वाले वीरवर लाल बहादुर शास्त्री का चित्र आज घर घर में टंगा दिखाई देगा । अपनी इन कृतियों से हम गांधी जी के प्रति अनादर-भाव व्यक्त करते हैं, यदि कोई ऐसा समझता है तो यह उसकी भूल होगी । उसी प्रकार उस समय होने वाली घटनाओं को भी उचितरूपेण परखनेवाले को यह कहना कि वह गांधी का अनादर करता है यह भी भूल ही थी । अमुक लड़ाई में मराठों की हार हुई ऐसा पढ़ते समय, अथवा उस परामर्श की ऐतिहासिक छान-बीन करते समय हम इतिहासकार को दोषी नहीं सिद्ध करते ।

उस दिन कार्यालय में चल कर एक घंटे में अपने माता पिताजी के घर पहुँच गया था । लोगो का आना-जाना जारी था । कभी मैं भी बाहर चला जाता था । रात्रि के दस साढ़े दस बजे तक घर में चर्चा यही चलती रही, बाद में सब सो गये ।

मैं बाहर के कमरे में लेटा था । मन की अस्वस्थता के कारण मैं उठा और बाहर निकला । कहीं पर मैंने कान लगा कर सुना तो विदित हुआ कि नयूगाम का नाम प्रकट किया जा रहा है । अब तो तर्क करने का अवसर नहीं रह गया था । वान स्पंट सम्मुख आ गई थी ।

मैंने अपने मन को नमसाया । अपने प्राणों पर अपना अधिक मोह होता है । किन्तु स्वच्छा में मत्ती ब्रत ग्रहण करनेवाली स्त्री कभी इस बात में नहीं डरती कि उसने शरीर को जीवित दागा जावेगा । निष्ठा पर उसकी जो एकाग्रता है वह उनको शारीरिक वेदना से परे ले जाती है । विचार करके दुस्साहस करने वाला मनुष्य परिणाम की सिद्धता पहचने ही कर लेता है । देव के पाने कैसे पड़ेंगे

यह नहीं कहा जा सकता । नथूराम के स्थान पर यदि मैं होता तो ?

मेरा विचार उस कार्गनिक प्रश्न पर ही रुक गया । कल्पना की सीढ़ी को चाहे कितनी ही उचाई पर चढ़ा लो उसका कहीं अन्त नहीं होता । मेरे मन की अस्वस्थता अब कुछ कम होने लगी थी । उसका कारण वस्तुस्थिति का ज्ञान ही था । जब तक मन अस्वस्थ था तभी तक तर्क के लिये भी अवसर था ।

जब तक मैं रात्रि में घर वापस आया मेरे माता पिता सो चुके थे । मैंने उन्हें नहीं जगाया । उनको अभी तक वस्तुस्थिति का कोई ज्ञान नहीं था, इस कारण उसी प्रकार वे शान्त निद्रा में लीन थे । आज रात उनकी अन्तिम शान्त निद्रा की रात्रि थी । कल से तो उनको दिन और रात समान अस्वस्थता में व्यतीत करने होंगे ।

उस रात मैं ठीक प्रकार सो नहीं पाया । रात को दो-तीन घंटे ही नींद आई होगी । प्रातः शीघ्र ही उठ बैठा । मैं समझता था कि पुलिस तलाशी के लिये आवेगी अथवा पकड़ने के लिये भी आ सकती है । मैं यह विचार कर ही रहा था कि किसी के दरवाजे तब आने की टोह लगी । तब भोर के साढ़े चार बजे होंगे ।

मैं उठा, दरवाजा खोला । देखा आरक्षक नहीं है, दो परिचित जन हैं । वे अन्दर आ गये । उन्होंने कहा, “रात के लगभग दस बजे आकाशवाणी पर नथूराम का नाम लिया गया ।” तब तक माता पिता भी जाग चुके थे । उन्होंने भी इस बात को सुन लिया था ।

इस घटना से नथूराम के भविष्य का विचार कर घर में शोक की लहर दौड़ गई थी । वे परिचित थोड़े ही समय तक वहाँ रहे और सान्त्वना के कुछ शब्द कहकर फिर चले गये । अब माता-पिता को समझने और सान्त्वना देने का बोझ मुझ पर आया । परन्तु मुझे वह अवसर नहीं मिल सका ।

दस पन्द्रह मिनट में ही पुलिस आ पहुँची । उनमें से कई जवानों ने घर को चारों ओर से घेर लिया । कई पुलिसवाले अन्दर आ गये और उन्होंने तलाशी लेनी आरम्भ कर दी ।

वे अपना कर्तव्य कर रहे थे । इस सब क्रिया में उन्होंने सारा घर उलट पुलट कर लिया किन्तु किसी प्रकार की अश्रद्धा अथवा औद्धत्य का व्यवहार उन लोगों ने नहीं किया । न जाने क्यों, ऐसा लग रहा था कि उन्हें डम घर में सहानुभूति-सी हो गई थी । मानो उन्हें ऐसा लग रहा था कि इस शोक मग्न घर की तलाशी का दुष्कर कृत्य उनके हिस्से आया है । शामनतन्त्र एक यन्त्र के समान होता है यह सत्य होने पर भी वह यन्त्र मानवी यन्त्र होता है । उस स्थानाधिष्ठित व्यक्ति की मनोवाहना के ऊपर आपस के सम्बन्ध निर्भर रहते हैं । अपने अनेक

वर्षों के बन्दीजीवन में मैंने ग़ासकीय व्यक्तियों के विभिन्न स्वभाव देखे हैं। कभी कभी मुझे ग़ासन के ऐसे लोग भी मिले, जिनमें मैं 'मनुष्य' पा सका। इस तलाशी के प्रसंग में मुझे ऐसे मनुष्य स्वभाव का प्रथम अनुभव हुआ।

तलाशी में दो-ढाई घंटे लगे। उनको किसी प्रकार की कोई आपत्तिजनक सामग्री अथवा साहित्य नहीं मिला। कुछ तो भी ले जाना ही चाहिये, इसलिए पहसुल, छुरी, बट्टा आदि चीजें कदाचित् आपत्तिजनक श्रेणी में मानी जाय ऐसा निर्णय करके उन्हें ले जाने का दिवावा भी उन्होंने नहीं किया। तलाशी पूर्ण हो जाने के बाद वे मुझे और मेरे छोटे भाई गोविन्द को अपने साथ थाने में ले गये।

हमें लगभग तीन घंटे वहाँ रक्खा। हम दोनों को अलग-अलग बुलाया गया। कुछ प्रश्नोत्तर हुए। वे प्रश्न बिल्कुल ऊपरी तौर के थे। बा! कहां काम करते हैं? क्या काम करते हैं? कितना वेतन है? विवाह हुआ कि नहीं? बच्चे हैं अथवा नहीं? कितने भाई बहिन हैं? इसके अतिरिक्त भी अन्य कोई रहने का स्थान है क्या? नयूराम घर कब आये थे? क्या जाते समय वे कुछ कह गये थे? वे कौन ने कपड़े लेकर गये? आदि, आदि। गोविन्द के पान छिपाने के लिये कुछ भी नहीं था। और यदि देखा जाय तो इन प्रश्नों के विषय में तो मेरे पास भी छिपाने के लिये कुछ नहीं था। प्रश्नों को सुनकर ऐसा लगता था कि पूना की पुलिस को कोई विशेष आदेश उस समय तक नहीं मिला था। वे साधारण रीति से ही अपना कर्तव्य निभा रहे हैं। तलाशी की कोई विशिष्ट दिशा उनकी नहीं थी। इनलिये प्रश्नोत्तर होने के बाद भी उन्होंने हमें वहाँ बहुत देर तक बैठाये रखा। और बाद में मुक्त कर दिया तब तक कई लोगों को वे ला चुके थे।

बाहर आने पर मुझे खडकी के घर जाने का विचार आया। पुलिसवालों को मैंने अपना रहने का वह स्थान बता दिया था। इसलिये वहाँ तलाशी होने की सम्भावना थी। मुझे ऐसा लगा कि ऐसे समय मेरा वहाँ उपस्थित होना आवश्यक है। गोविन्द को घर जाने के लिये कह कर मैं खडकी जाने के लिये निकला।

परन्तु मेरा हेतु इतना सरल नहीं था। घर में अनेक कागज-पत्र थे उनमें आपत्तिजनक तो कुछ भी नहीं था। परन्तु कौन से पत्र का कब कैसा सम्बन्ध जोड़ा जाता है इसका कोई भरोसा नहीं किया जा सकता था। अतः मेरा विचार था कि यदि अवसर मिला तो इस प्रकार के सन्देहास्पद पत्रों को नष्ट कर दूंगा, इसीलिये मैं उस ओर जाने के लिये निकला था।

उस ओर सब सज्जा था। आस पास के घरों में नित्य की भाँति सब कारो-बार हो रहा था किन्तु धीमे धीमे। नित्य की सी गड़बड़, चिल्लाहट अथवा शोर नहीं। मेरी ओर देखने की पड़ोसियों की दृष्टि कुछ विचित्र सी लगती थी। नयूराम मेरा भाई है उस समय तक उनकी यह बात विदित हो चुकी थी।

उनका मेरे पास आना जाना है यह भी उनको ज्ञात था ।

मैंने उन सब बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया और दरवाजा खोलकर सीधे भीतर चला गया । भीतर जाकर दरवाजा भीतर में बन्द कर दिया । पत्रों का तार-फाटन निताल्लर अन्दर के कमरे में गया । सभी पत्रों को गौर में देखने परखने का समय गूँजी था । सरगरी तौर पर जिन पत्रों को मैं सन्देहास्पद समझता था उनको तार में फाट कर बाहर निकाला और स्नानगृह में पानी गरम करने के बहाने उनको जला टालने के लिये स्नान गृह में जाकर दो उपलो पर तेल टाला, पत्रों को चप्पे के पास रख लिया । सारे पत्र एक साथ टालने से धुआँ हो जावेगा यह विचार कर थोड़े थोड़े कागज टालने का निश्चय किया ।

यह सब एकत्रित कर लेने पर देखा कि बूढ़े से भी दिया सलाई नहीं मिल रही है । भिगत तीन बार दिन से मेरा भोजन पूना में ही हो रहा था । चूल्हा जलाने का अवसर नहीं आया था । नित्य के स्थान पर दियासलाई नहीं थी । चूप्ते के टिप्पे में देखा तो एक दियासलाई की डिब्बी जबूरा मुख खोले पड़ी है । घर में तो दियासलाई थी नहीं और पड़ोस में जाकर या बाहर जाकर दियासलाई के आने की हिम्मत मुझ में नहीं थी ।

परन्तु मुझे एक विद्वान था । मेरी पत्नी आवश्यक वस्तुओं का सचय घर में रखती है । घर में दियासलाई होगी ही यह तो मैं जानता था किन्तु वह कहाँ मिलेगी वन इतना ही प्रश्न था । मैंने खोजना आरम्भ किया । सब खुले स्थान देख लेने के बाद डिब्बे खोलने आरम्भ कर दिये । मसाले की एक डिब्बी में दियासलाई की तीन डिब्बियाँ दिखाई दी । दो बन्द, एक खुली ।

इस सब कार्य में मुझे पाँच मिनट से अधिक नहीं लगा होगा । परन्तु पत्र नष्ट करने का कार्य शीघ्र करने का है इस विचार से ही उस पाँच मिनट के विलम्ब के कारण मेरे मन पर तनाव आ गया था ।

दियासलाई लेकर मैं वस्त्र के पास आया । सलाई जलाने ही वाला था कि द्वार पर दस्तक सुनाई दी । मैं न केवल सहम गया अपितु डर भी गया । मन-बुविधा में पड़ गया । दियासलाई जलावेँ अथवा नहीं, इसी सन्देह में खड़ा-सा रह गया । यदि उनको अवजले पत्र मिल गये तो वे समझेंगे कि मैंने जरूर कुछ छिपाने का यत्न किया है । इसमें उनके सन्देह को पुष्टि मिलेगी । पत्रों को यदि चूने ही छोड़ दिया तो भी वे समझेंगे कि मैं इनको नष्ट करने के प्रयत्न में था इससे उन पत्रों को अनावश्यक महत्व मिलेगा ।

मेरा विज्वास था कि पत्रों में कुछ भी नहीं था । मैं पत्र क्यों जला रहा था इसका स्पष्टीकरण देने की जब मेरी सिद्धता हुई तो मैं द्वार की ओर बढ़ा । बाहर के कमरे में लकड़ी की जाली लगी थी उसके छिद्र से बाहर देखा जा सकता



था। पुलिस जैसी वदीं नहीं दिखाई देती थी। मुझे कुछ धीरज बचा। तभी द्वार पर पुन दस्तक हुई और साथ ही मेरा नाम भी लिया गया। मैंने आवाज को पहचानने का यत्न किया, कुछ परिचित-सा स्वर प्रतीत होता था। मैंने द्वार खोला। देखा तो मेरा एक पजाबी मित्र रामनाथ द्वार पर खड़ा है। मैंने उसको भीतर बुलाकर द्वार पुन बन्द कर दिया।

रामनाथ ने किसी प्रकार की लम्बी चौड़ी भूमिका नहीं वाची। सीधी बात प्रारम्भ कर दी। बोला, “गोपाल जी ! तुम्हारा भाई है न वह ?”

“हाँ।”

आश्चर्य एव प्रशंसा के से कुछ उद्गार उसने व्यक्त किये। किन्तु तब तो मेरी मन स्थिति प्रशंसा सुनने की भी नहीं थी। मेरे मन पर तनाव था। मैं सोचता था कि रामनाथ जितनी जल्दी यहाँ से हो सके चला जाय तो अच्छा है। इसलिए मैंने उससे कहा, “रामनाथ ! मैं पूना जाने की शीघ्रता में हूँ।”

रामनाथ समझ गया। बोला, “मुझे भी शीघ्र ही जाना है। मैं एक काम के लिए आया हूँ।”

“ऐसे विचित्र समय में क्या काम आ गया आपको ?”

“...क्या इस घटना से आपका कुछ सम्बन्ध है ?” उसने मुझसे प्रश्न किया।

“नहीं। मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। क्यों ?”

“कुछ नहीं, कुछ दिन पूर्व तुम गाव गये थे। जो भी हो। मैं जो कह रहा हूँ उसे उसे शान्ति में सुनो। बीच में टोका मत करो। क्योंकि समय मेरे पास भी कम है।”

वह जो कुछ कह रहा है उसका मेरी दृष्टि से कोई महत्व नहीं है ऐसा निर्विकारी भाव दिगमते हुए मैंने कहा, “बोले।”

“मेरा कहना यह है कि यदि तुम्हारा इससे कोई सम्बन्ध है तो तुम्हें यहाँ मे शीघ्र ही निमग्न जाना चाहिये। यदि दिल्ली जाना हो तो मैं अपने एक परिचित के नाम पर दे दूँगा। आपके निवास एवं भोजन की वहाँ व्यवस्था हो जावेगी। किन्तु आपको दिल्ली में भी अधिक नहीं रहना चाहिये। आस पास असह्य निवासिन रहने हैं उनमें घुठमिल कर रहना। मैं से मराठी का उच्चारण मत करना। तुमको पजाबी आती है, वह भी कम से कम बोलने का यत्न करना। विर्मा जो मित्रों आदि के लिये नन्देशा मत भेजना और न ही किसी को पत्र लिखना। अपने उन तरह कम से कम छ मास तक रहना होगा। आपको निकलने में किसी प्रकार की वटिनाई न हो इसके लिये मैं डेढ़ सौ रुपये लाया हूँ, वह आप अपने पान रखिये। यह समय बड़े महत्व का है। आगामी चार-छ घंटों में

आपको यहाँ से कम से कम ५० मील दूर होना चाहिये। किसी भी मार्ग से जाओ। नित्य के रास्ते से मत जाना। आगे फिर भगवान की मर्जी है।”

मेरे मन में उठनेवाले विचारों को रामनाथ गति प्रदान कर रहा था। किन्तु मैं जानता था कि जो लोग भूमिगत हो जाते हैं उनके परिजनों को बहुत परेशान किया जाता है। इसलिये मैंने दूर जाने का निश्चय नहीं माना था। रामनाथ के कथन से भी मेरा निश्चय बदला नहीं। रामनाथ मेरी ओर एक दृष्टि से देख रहा था। अंतरंग की गहन तरंगें सम्भवतया मेरे मुख पर प्रकट हो रही थी।

“मेरा इस घटना से कोई सम्बन्ध नहीं है” सम्भवतया इतने स्पष्ट शब्दों में इसे अस्वीकार कर नहीं पाऊँगा। ऐसा मुझे लगता था। मैंने रामनाथ से कहा, “इस घटना से मेरा सम्बन्ध जोड़ा जावेगा अथवा नहीं, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। परन्तु किसी भी अवस्था में भूमिगत न होने का मैंने निश्चय किया है।”

“आपकी डच्छा” इतना कहकर रामनाथ चुप हो गया। वह जाने के लिये उठा। जाते हुए उसने कहा, “तुम यदि मुक्त भी रहो तो भी तीन-चार मास तक मुझसे मत मिलना और मैं भी तुमको नहीं मिलूँगा। कल रात भी मैं यहाँ आया था किन्तु मकान में ताला लगा था। प्रातः एक प्रयत्न और करने की दृष्टि से आया था, आपसे भेंट हो गई अच्छा ही हुआ। अब मैं जाता हूँ।”

रामनाथ निकल गया। मैंने द्वार बन्द विद्या और वम्बा जलाया। समय-समय पर द्वार की ओर झाँक लेता था। कान बाहर की ओर ही थे। एक-एक कर मैंने सभी पत्र जला डाले थे।

दोपहर तक कोई नहीं आया। तीन वजे के बाद मैं पूना जाने के लिए निकला।

पाँच छ दिन बाद मेरे घर की तलाशी हुई। उस समय पुलिस ने एक पत्र अपने अधिकार में किया। विलकुल ही साधारण पत्र समझ कर मैंने उस पत्र को तार में ही छोड़ दिया था। उस पत्र में पुलिस को कोई सन्देहास्पद बात यदि दिखाई दी तो केवल यही कि पत्र लेखक ने अन्त में “युवर्स ब्रदली” लिखा था। अटोनी नामक मेरे एक ईसाई मित्र का वह पत्र था। इस पत्र के आधार पर उस मित्र को भी तलाशी की कठिनाई भुगतनी पड़ी थी।

मैं पूना पहुँचा। गांधी वध के कारण लोगों के मनो में क्षोभ था। उस मन क्षोभ के कुछ अवशेष घर में दिखाई दिये। गांधी जी के नाम पर घर की वस्तुओं को उठाकर ले जाने के खुल्लमखुल्ला अवसर का लोगोंने लाभ उठाया था। उनकी कृतियों के अवशेष दिखाई दे रहे थे। जो मनक्षोभ हुआ, उनका क्या अर्थ था, उसके पीछे क्या हेतु था, ये बातें महाराष्ट्र के जानकार लोग भली भाँति जानते हैं। परन्तु उस समय गांधी जी के नाम पर सब कुछ

खप गया था ।

मेरी माता जी ने तनिक उग्रता दिखाई थी । लूट मचाने के लिये आये हुए झुण्ड को थोड़ा बहुत रोकने में उनको सफलता मिली थी । गोविंद तो मीड़ में अटक गया था । उसको मारा पीटा भी गया था ।

श्री स० गो० वरें उस समय वहा के जिलाधिकारी थे । उन्होंने हमारे माता पिता जी की सुरक्षा की दृष्टि से उनको थाने में बुलवा लिया था । दो दिन तक वे वहीं रहे । बड़े भाई दत्तात्रय को पकड़ लिया गया था । अन्य भी अनेक लोग पकड़े गये थे । उस समय यही सुनने में आया था कि दत्तात्रय तथा अन्य १०-१२ लोगों को भारतीय दण्डविधान की धारा ३०२ के अन्तर्गत पकड़ा है । कुछ दिन बाद उन पर से धारा ३०२ का आरोप हटा लिया गया था और प्रतिवन्धक स्थानबद्धता के आधार पर उनको बन्दी बनाये रखा गया था ।

दि० ३१-१-४८ को रात्रि से कर्फ्यू लगा दिया गया था । मेरी पत्नी जनिवार पेठ में अपने मायके में थी । उस दिन मैं उसके पास गया था । मेरा विचार था कि गोविन्द उस दिन 'उद्यम' में ही होगा । ( उद्यम इजिनियरिंग नेरे बंधु दत्तात्रय का उद्योगालय है । )

रविवार १-२-४८ को दिन भर कर्फ्यू रहा । सोमवार को कुछ समय के लिये हटाया गया । उस दिन प्रातः पत्नी से विदा होकर मैं घर से बाहर निकला । मुझे कभी भी पकड़ लिया जा सकता है, इनकी उसको भी कल्पना थी । मैं खडका को काम पर जाने के लिए निकला । अभी आधा घण्टा गेप था अतः खडकी में अपने घर ही आऊ यह विचार कर मैं उस ओर गया ।

घर के सामने पहुँचते ही दो तीन आरक्षक द्वार पर तैनात देखे । उन्होंने मुझे बन्दी बना लिया और खडकी की चौकी पर ले गये । वहा मुझसे पूछताछ की गई । मुझे पकड़ कर रखने का आदेश उस चौकी को नहीं मिला था इस कारण न तो मुझे पकड़ कर रखा गया और न ही मुझे वहा से जाने दिया गया । तीन चार दिन तक लगभग मुझे बन्दी जैसा ही रखा । काम पर जाता था । खडकी में ही कहीं पर भोजन कर लेता था । पुलिस मेरे साथ होती थी और रात को मुझे चौकी पर ही सोना पड़ता था ।

"क्या आप लोगो ने मुझे गिरफ्तार किया है ?" मैंने पुलिसवालों से पूछा तो उन्होंने इनकार कर दिया । तब मैंने कहा कि मुझे अपने मार्ग पर जने दीजिए । दो तीन दिन से लगातार मैं उनमे वही कहता था । अन्त में मैंने उनसे कहा कि मुझे समीप के गांव उकमाण जाना है मुझे जाने दिया जाय । उनकी ओर ने अनुमति मिलते ही मैंने वरिष्ठ अधिकारियों को अवकाश का आवेदन देकर उसे स्वीकृत करा लिया । दि० ५-२-४८ को दोपहर खडकी स्टेशन से कामसेत

जाने के लिये निकला। स्टेशन तक आरक्षक साथ आये थे।

बम्बई गुप्तचर विभाग ने गांधी वध काण्ड की तलाशी का काम अपने हाथ में लिया था। गुप्तचर विभाग का कार्यक्रम बड़े वेग से चक्रायित होने लगा। गुप्तचर विभाग का एक दल मेरी खोज के लिये पूना पहुँच गया। उन्हें विदित हुआ कि खड्की की चौकीवालों ने मुझे अनधिकृत रूप में कैद करके रखा है। वे खड्की चौकी पर पहुँचे। वहाँ जा कर उनको विदित हुआ कि अभी एक घण्टा पूर्व ही उन्होंने मुझे मुक्त किया है।

मैं कहाँ जा रहा हूँ कौन सी गाड़ी से जा रहा हूँ, कहाँ जा कर उतरनेवाला हूँ, इसकी जानकारी खड्की चौकीवालों को थी। बम्बई के गुप्तचर विभाग ने उसी दिना में अपना चक्र घुमाया।

मैं कामशेत उतरकर उकसाण गांव की ओर जा रहा था। वह मार्ग दस मील का था। आधा मार्ग तय करने के बाद मैंने देखा कि पीछे पुलिस की गाड़ी आ रही है। उन्होंने मुझे अपनी गाड़ी में बैठा लिया। उनका कहना था कि कुछ पूछताछ करनी है।

पूछताछ करना कोई अच्छा लक्षण नहीं, इस कल्पना से ही मेरे मन में फिर भय समा गया। पुलिसवाले बम्बई के गुप्तचर विभाग के थे इसकी उस समय मुझे जानकारी नहीं थी। मुझे वापस कामशेत लाया गया। एक घर जा कर मुझे बरामदे की एक बेंच पर बैठने के लिये कहा गया। चाय काफी के बारे में पूछा तो मैंने चाय के लिये कह दिया।

चाय पीने तक किसी ने कुछ नहीं पूछा। बड़ी शान्ति थी। तूफान से पूर्व की सी शान्ति। उस समय दोपहर के चार बजे होंगे। मेरे चाय नमाप्त करते ही एक पुलिस अधिकारी ने कहा, "आप अब बन्दी हैं"।

जो होनेवाला है, वह हो चुका है। यह विचार कर मेरी चिन्ता दूर हुई और मन पर से एक प्रकार के बोझ उतरने का भाव सहज ही मेरे मुख पर आ गया। अधिकारी ने आगे कहा, "यह कैद गांधी वध से सम्बन्धित है"। इस क्षण ने मेरा बन्दीजीवन आरम्भ हो गया।

और कौन कौन इस प्रकरण में बन्दी बनाये गये हैं, इसकी जिज्ञासा मेरे मन में उठ रही थी। परन्तु इस विषय में पूछने का अर्थ होगा स्वयं ही कुछ बात प्रकट करना। अतः मैं चुप ही रहा। मैं समझता था कि कुछ ही समय में मारी परिस्थिति विदित हो जावेगी।

पुलिस चौकियों पर हावानाल्तियों की दुर्दगा होती है ऐसा सुनने तथा पढ़ने में आया था। कभी कभी चित्रपट पर भी उस प्रकार का स्वरूप देखने में आ जाता था। विमान का नियम है कि आरोपी के साथ मारपीट न की जाय। किन्तु

प्रत्यक्ष में मार पीट से कदाचित ही किसी कैदी को मुक्ति मिली हो। ऐसा क्यों होता है, यह जानना बड़ा रुचिकर है।

आरक्षक और आरोपी के परस्पर हित सम्बन्ध विरोधी होते हैं। एक को अवैध घटना के तन्तु खोजने होते हैं। दूसरा अपनी गर्दन बचाने का यत्न करता है। कोई भी अवैध कार्य करने तक आरोपी भले ही यशस्वी पुरुष रहा होगा। किन्तु पुलिस के हाथ में पड़ जाने पर उसका वह कुछ तुच्छ हो जाता है। केवल कैद करने मात्र से ही पुलिस का कर्तव्य पूर्ण नहीं हो जाता। कैद किया हुआ व्यक्ति घटना से सम्बन्धित है अथवा नहीं, यह देखना उसका काम होता है। यदि वह व्यक्ति उस घटना से सम्बन्धित है तो उसको न्यायालय में सिद्ध करना भी पुलिस का कार्य होता है। न्यायालय का नाम आते ही प्रमाणों का प्रश्न उपस्थित हो जाता है और ऐसे प्रमाण उपलब्ध करने का निकटतम साधन होता है कैदी व्यक्ति।

वह व्यक्ति चुन रहनेवाले स्वभाव का हुआ तो उसको बोलनेवाला बनाना पड़ता है। उसने अमुक बात छिपाई है, यह बात ध्यान में आते ही वह गुप्त बात उससे किसी न किसी प्रकार निकलवा लेनी होती है। आज या कल कभी न कभी तो कैदी उस छिपाई हुई बात को बता ही देगा, तब उसको तग करने से क्या फायदा? कैदी का हृदय परिवर्तन हो जायेगा, ऐसा विश्वास यदि आरक्षक अधिकारी करने लगे तो सौ घटनाओं में से एक घटना को भी न्यायालय में सिद्ध करना उनके लिये सम्भव नहीं हो पावेगा। मार पीट करना अवैध एवं दण्डनीय है इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि पुलिस को भी मार-पीट का भय बना रहे जिससे कि मार-पीट एक निश्चित सीमा तक ही की जा सके।

कई घटनाओं में पुलिस को आसानी से प्रसंग-भूत उपलब्ध हो जाते हैं अथवा कैदी स्वयं ही उनको बता देता है। तब मार पीट करने की आवश्यकता नहीं होती। केवल धौंस जमाने के लिये दो-चार तमाचे लगा दिये, इस प्रकार नहीं किया जाता।

अनेक बार तो ऐसा भी होता है कि घटना से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्धित व्यक्ति कोई अन्य होता है मारा पीटा जानेवाला व्यक्ति सर्वथा निर्दोष होता है। सतारा के जलमन्दिर के चोरी के प्रकरण में ऐसा मैंने पढ़ा था। चोरी किसी अन्य ने ही की थी, किन्तु पकड़ा किसी अन्य को गया था और उनके साथ थाने में दुर्व्यवहार किया गया। वास्तविक चोर बहुत बाद में पकड़ा गया था।

गांधी के दण्ड निमित्त स्थान स्थान पर अनेक लोगों को पकड़ा गया था। उनमें से अनेकों को बिना कारण मारा पीटा गया था। कहीं कहीं पर तो पुलिस ने अथवा तथाकथित गांधीवादी कांग्रेसियों ने अपने व्यक्तिगत बैर का बदला भी इस अवसर पर लिया था।

गांधी वध के प्रसंग में जिनको प्रत्यक्षकर्ता माना गया उनके साथ बिना सोचे विचारे मार पीट नहीं की गई। पुलिस को घटना का सूत्र ढूढना आवश्यक था। किन्तु जहाँ से भी वे मिलें वही मार पीट का प्रश्न नहीं था। यदि सूत्र मिलने में कहीं कुछ कठिनाई हुई तो फिर पुलिसवाले ने अपने शस्त्र का प्रयोग किया था।

नथूराम को देहली पुलिस ने पकड़ा था। रात्रि को उनकी जाच गृह हुई। जाच की पद्धति के अनुसार कुछ प्रथमोपचार किये गये। लाला हृपिकेश दिल्ली पुलिस के एक वरिष्ठ अधिकारी थे। उन्होंने मध्यरात्रि के समय नथूराम की जाँच को अपने हाथ में लिया। लगभग पौन एक घण्टा उन्होंने नथूराम से प्रश्नोत्तर किये।

उन प्रश्नोत्तरों में प्रत्यक्ष घटना और उसके कारण आदि पर अधिक जोर दिया गया था। नथूराम ने इस प्रसंग में लाला हृपिकेश को बताया, “यदि आप सम्बन्धों का विवरण पूछने बैठे तो मैं समझता हूँ कि इस समय मेरी मन स्थिति ऐसी नहीं है कि मैं सब कुछ सुसंगत बता सकूँ। वह तो तभी सम्भव होगा जब एक दो दिन बाद मेरा मन सुस्थिर हो जावेगा। हा, यदि आप समझते हो कि मार-पीट के बिना वह सब मिलनेवाला नहीं है तो उसके लिये आप स्वतन्त्र हैं। मुझे उस विषय में कुछ भी नहीं कहना है।”

अधिकारी गण भी यह समझते थे कि इस मनुष्य को शारीरिक कष्ट देकर इससे कुछ उगलवाया नहीं जा सकता है। अपनी विशाल हृदयता का परिचय देते हुए लाला हृपिकेश ने अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश दिया था कि नथूराम को किसी प्रकार की शारीरिक यातना न दी जाय। न केवल इतना उन्होंने यह भी ध्यान दिया कि उनको आज्ञा का ठीक पालन होता है अथवा नहीं, कहीं उसका उल्लंघन तो नहीं किया जाता। नथूराम को किसी प्रकार का कष्ट पुलिस ने नहीं दिया। आगे चलकर बम्बई पुलिस एवं गुप्तचर विभाग ने उनको किसी प्रकार की यातना नहीं दी। उनके साथ पुलिस अधिकारियों का व्यवहार सौजन्यपूर्ण ही रहा। उनके मुख से कुछ निकलवा लेने के लिये भी पुलिस के पास कुछ बचा नहीं था।

दिगम्बर रामचन्द्र बडगे को पूना पुलिस ने दि० ३१-१-४८ को कैद किया था। बाद में बम्बई पुलिस ने उसको अपने अधिकार में ले लिया था। वटने से बातें कहलवा लेने में पुलिस को बहुत कठिनाई हुई थी। बात बताने में पूर्व बटने को भी बहुत कष्ट हुआ था। ‘मूक करोति वाचालम्’ पुलिसवानों के पास इतनी शक्ति थी। बडगे ने जब बोलना प्रारम्भ किया तो गोला बारूद के सग्रह बाहर निकलने लगे और आगे चलकर बडगे को क्षमा का साक्षी बनाया गया।

गाधी वध के दस दिन पूर्व मदनलाल पाहवा को बन्दी बनाया गया था। प्राथमिक जाच में उनसे जो जानकारी मिली उसमें अधिक कुछ वह बाद में नहीं दे सके। क्योंकि उनको बहुत ही कम जानकारी थी और उनके पास छिपाने के लिये भी कुछ नहीं था।

जब तक मुनको पकड़ा गया था तब तक तो पुलिस को बहुत कुछ सूत्र विदित हो गये थे। मेरा डन् वध से कुछ सम्बन्ध है इसकी पुष्टि ही मुझमें करवाने मात्र का कार्य पुलिस को मुझसे रहता था।

उनको यह बताया गया था कि मैं २० जनवरी को दिल्ली में था और उस समय मेरे पास एक रिवाल्वर भी था ऐसी उनकी जानकारी थी। मेरे पकड़े जाने के बाद ५-२-४८ को मेरे खडकीवाले घर की तलाशी हुई थी। रिवाल्वर नहीं मिली था वह किसी प्रकार बाहर आ जाय इसके लिये पुलिस ने मुझे तग किया। मैंने उसे फेंक दिया, और कहाँ फेंका इसका मुझे ज्ञान नहीं मैंने इस प्रकार का आग्रह किया था किन्तु मैं उस पर टिक नहीं सका।

गाधी वध के ८-१० दिन पूर्व मैंने एक थैला अपने एक मित्र को दिया था। गाधी का वध हुआ, उसमें नयूराम का नाम प्रकट हुआ ऐसी अवस्था में वह थैला अपने पास रखना उचित नहीं ऐसा विचार कर मेरे उस मित्र ने उस थैले को अपने एक अन्य मित्र को देकर कहा कि इसको नष्ट कर दिया जाय। उस तृतीय मित्र ने अपने मित्र के निर्देशानुसार उसे सुदूर कहीं सड़क के किनारे उस थैले को फेंक दिया था। मित्रों के ये सब कृत्य मेरी अनुपस्थिति में हुए थे और मेरी जानकारी के बिना हुए थे। जो मैं कह सकता था वह इतना ही कि मैंने एक थैला अपने पहले मित्र को दिया था।

ऐसा बताने पर पहले और दूसरे मित्र को सकट झेलना पड़ा था। अपनी विवशता पर मुझे बहुत दुःख हुआ और खेद भी। उन दोनों में भी दूसरे को कुछ कम कष्ट हुआ था। क्योंकि थैला मिल नहीं पाया था। छिपाई हुई वस्तु बल प्रयोग से ऊपर आ सकती है परन्तु जो वस्तुस्थिति ही है अर्थात् जिसमें छिपाने की कोई बात नहीं उसमें से और क्या सत्य बाहर आ सकता है? अन्त में १३-२-१९४८ को अर्थात् सवा दो मास उन दोनों मित्रों के मजिस्ट्रेट सम्मुख शपथपूर्वक वक्तव्य लिये गये और भविष्य में उनकी साक्षी भी हुई। उसका सारांश इतना ही था कि मैंने गाधी वध से पूर्व अपने पहले मित्र को एक थैला दिया था, उसमें एक रिवाल्वर और चार पांच गोलियाँ थी। उस मित्र ने गाधी वध के दो चार दिन बाद वह थैला एक अन्य मित्र को दिया उस दूसरे मित्र ने गोलियाँ तो कचरे के डिब्बे में डाल दी और रिवाल्वर रास्ते के किनारे फेंक दिया था।

मुझ पर एक और बात लादी गई थी जिससे मुझे बहुत कष्ट हुआ। अधिकारियों

कारियों का कहना था कि मैं सावरकर जी के यहाँ होकर आया था। और उसका प्रमाण उनके पास था। उनके पास प्रमाण होने की बात अविश्वसनीय है, इसका मुझे ज्ञान था परन्तु किसी ने मारपीट टालने के लिये मेरा सम्बन्ध सावरकर जी से जोड़ दिया होगा तो मैं कह नहीं सकता था। मुझ पर पुलिस के प्रयोग हुए। मैं कह देता कि प्रमाण प्रस्तुत किजिये मैं उससे आपकी शका का निवारण कर दूंगा। परन्तु विवाद के लिये अथवा प्रमाणों की सत्यासत्यता सिद्ध करनेवाला वह न्यायालय तो था नहीं उनके कहने से जो संकेत मिलता था वह यह था कि १९-१-४८ को दिल्ली से सावरकर सदन में टेलीफोन आया था वह मेरे लिये था।

मैं सावरकर जी के यहाँ नहीं गया था। मुझे सावरकर सदन ज्ञात नहीं था। मेरा वहाँ के किसी व्यक्ति से परिचय भी नहीं था। यह बात धीरे धीरे अधिकारियों को जचने लग गई थी। परन्तु इतने में ही किसी ने अनर्थ कर दिया। मेरे घर की तलाशी के समय मेरे घर की दीवार पर सावरकर जी का हाथ से खींचा हुआ एक टगा हुआ चित्र किसी पुलिसवाले ने देखा था और उस चित्र पर सावरकर जी के हस्ताक्षर थे। उस व्यक्ति ने इस बात का निर्देश किया।

कितना सबल प्रमाण था यह। मानो सावरकर जी का और मेरा गहन सम्बन्ध सिद्ध करने के लिये वह अकाट्य तर्क अथवा प्रमाण था। मैं बहुत ही विवश अवस्था में था परन्तु उस अवस्था में भी प्रस्तुत किये गये उस प्रमाण पर मुझे हसी आये बिना नहीं रह सकी।

मेरे मुह से निकल गया बस ?' और मैं हंस पड़ा था इससे अधिकारियों ने अनुमान लगाया कि मैं कुछ तो भी छिपा रहा हूँ। और फिर नये सिरे से मुझ पर प्रयोग चालू किये गये।

मैं गिढ़गिड़ाया, 'मेरी कुछ सुनते हो क्या ?'

'आपने कुछ जानने के लिये हमारे प्रयत्न हो रहे हैं, आपको कष्ट देने की हमारी तनिक भी इच्छा नहीं है।'

'मेरी हंसी के कारण आपको नया आवेश आया है। आप समझते हैं कि मैं अभी भी कुछ छिपा रहा हूँ। आपको 'बादरायण न्याय' मालूम है ?'

अधिकारियों ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की तो मैंने वडी आतुरता से कहा, "अस्माक वदरी चक्र" यह श्लोक पढ़ा। तो वे कहने लगे इसका तुरन्त अर्थ करो। मैंने उन्हें कहानी सुनाते हुए कहा कि किसी अतिथि को वेलगाडी का पहिया बैर की लकड़ी का बना था और चूँकि आतिथ्य के घर में बैर का पीषा विद्य-



मान था, इसलिये अतिथि और अतिथेय का निकट का सम्बन्ध सिद्ध हो गया। इसे वादरायण का तर्क कहते हैं।”

इससे कुछ विशेष तो नहीं हाँ मुझे अधिक कष्ट नहीं दिये गये। मुझे ऐसा लगा कि अधिकारियों को यह भास हो गया है कि उन दिनों सावरकर जी से मेरी किसी प्रकार की कोई भेंट नहीं हुई है। उन्हें अन्य कोई प्रमाण इसकी पुष्टि में मिला नहीं अतः मेरे शब्दों पर कदाचित् उन्होंने विश्वास कर लिया हो। अगले दिन प्रातः उस प्रश्न के लिये मुझे नीचे प्रयोगशाला में नहीं ले जाया गया। यह जान कर मुझे प्रसन्नता हुई कि चलो इस प्रश्न से मुक्ति मिली। उस समय तक मेरी स्थिति ऐसी हो गई कि शरीर का ऐसा कोई भी अंग खोजने से भी प्राप्त नहीं हो सकता था कि जो दुखता न हो।

इस प्रकार एक मास बीत गया होगा कि एक दिन उसी प्रश्न को लेकर अधिकारियों की स्मृति फिर बौखला उठी। मैं समझता हूँ कि सावरकरजी के विशद आरोप सिद्ध करने योग्य कोई प्रमाण हाथ में न आने के कारण और किसी न किसी प्रकार सावरकर जी को कैद में रखना ही चाहिये ऐसा ऊपर के अधिकारियों का आदेश समझकर अधिकारीगण प्रयत्नशील होगे।

वह प्रश्न फिर उपस्थित जान कर तो मेरे तो होश उड़ गये। अभी अभी मेरे अगो में थोड़ा-थोड़ा सुधार होने लगा था। अब पुनः नये सिर से उस प्रश्न को उठाने से बहुत ही कठिन अवस्था हो जावेगी, इसका मैं अनुमान लगाता था। मारपीट डालने के लिये “मैं सावरकर जी के पास गया था” इतना कहना ही पर्याप्त नहीं था। फिर तो यह भी कहना पड़ता कि वहाँ जाकर क्या बात की, किस वाहन द्वारा वहाँ पहुँचे थे, वह समय कौन-सा था इत्यादि सभी प्रासंगिक प्रश्न उस एक बात से उठ खड़े होते। किन्तु प्रश्नोत्तरो की वह माला गूथना मेरे लिये सम्भव नहीं था।

जाच के लिये मुझे प्रयोगशाला में ले जाया गया। किन्तु कहना चाहिये कि मेरा दैव ही बलवान था। ऐसा ही कहना पड़ेगा। जिस अधिकारी को उस जाच के लिये नियुक्त किया गया था उसे वरिष्ठ अधिकारियों ने तुरन्त बुला लिया था। उसने आदेश दे दिया “इनको जाच के लिये दोपहर को ले आना” और इतना कहकर बं चले गये। किन्तु वह दोपहर फिर कभी नहीं आई। सम्भवतया वरिष्ठ अधिकारियों ने यह आदेश दिया हो कि इस प्रश्न पर गोपाल को तग मत्त करो। किन्तु मेरे गिर पर तो जाच की वह तलवार सदा वैसी ही लटकती रही। इन सभी यात्राओं में मैं अन्त में मुझे सन्तोष हुआ तो इतना ही कि सावरकरजी को पकड़वाने अथवा यहाँ अटकाने का दोष कम से कम मेरे सिर पर तो नहीं था।

उनकी और मेरी भेंट हुई अथवा नहीं, यह बात आजकाल के उदर में-लुप्त हो गई है ।

इस सम्बन्ध में सर्वश्री अप्पा कासार, गजानन दामले आदि अन्य कई व्यक्ति जो सावरकर जी के समीप के थे, कष्टप्रद यातना से नहीं बच सके । किन्तु सावरकर जी के यहाँ आकर जाने का प्रमाण उनसे भी प्राप्त नहीं हुआ ।

शकर किस्तैया बडगे का नोकर था । बडगे कहाँ होगा यह ज्ञान उसको प्राप्त करना था । किसी ने उसको बताया कि आजकल बडगे बम्बई गुप्तचर विभाग के कार्यालय में रहता है । उसको बडगे से अपना वेतन लेना था ।

पता लगाता हुआ वह दि० ६-२-४८ को सीधा गुप्तचर विभाग के कार्यालय में आया । उसने गुप्तचर विभागवालों से कहा कि उसके मालिक से उसको वेतन के पैसे दिलवाये जायें । पुलिस तो शकर किस्तैया की खोज में थी ही । उन्होंने उसका नाम-धाम पूछा और फिर कहा कि उसे ही बडगे से मिला देते हैं ऐसा कह कर उसके खान पान और रहन सहन का प्रबन्ध भी वही कर दिया । उसको इस प्रकार क्यों पकड़ा गया है इस विषय में वह उनसे तबक भडक कर लेता था किन्तु जब उसको बडगे के ही कमरे में रखा गया तो उसको तनिक सान्त्वना मिली ।

शकर किस्तैया से जब पुलिसवालों ने पूछा तो उसको जो कुछ भी ज्ञात था भव नीचे सीधे बता दिया । जाच के लिए जब उसको दिल्ली लाया गया तो जो कुछ सामग्री छिपा कर रखी गई थी, वह भी उसने निकाल कर दी ।

सबसे बाद में पकड़े गये थे नाना आपटे और करकरे । १३-१४ फरवरी को उनको बम्बई में पकड़ा गया था । उनमें सम्बन्धित सब सूत्र केवल उनसे ही प्राप्त करने शेष थे । अन्य जाच तो लगभग समाप्त-सी हो गई थी इसलिये उन दोनों को अन्यो से सम्बन्धित किसी विषय के लिये तग करने के योग्य कुछ बाकी नहीं रह गया था ।

सावरकर जी को कैदी के रूप में धन्द किया गया था तो भी उनको आर्थर रोड बन्दीगृह में रखा गया था । पुलिस ने उनका भी वक्तव्य लिया था । वह वक्तव्य बहुत ही संक्षिप्त था । परन्तु उनसे इससे अधिक कुछ और भी कहलवा लेना सम्भव नहीं था ।

ग्वालियर के डाक्टर परचुरे को ग्वालियर में ही कैद करके रखा गया था । वहाँ के किले में उनकी बड़ी ही विचित्र दशा की गई थी । इस कारण उनको मजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित होकर स्वीकारोक्ति सूचक वक्तव्य देने के लिये बाध्य होना पड़ा । डा० परचुरे को जिस अवस्था में रखा गया था उस अवस्था का विचार करके पंजाब उच्च न्यायालय ने उनकी स्वीकारोक्ति को स्वीकार नहीं किया और उन्हें मुक्त कर दिया गया ।

श्वालियर के तीन अन्य आरोपी श्री सूर्यदेव शर्मा, श्री गंगाधर दण्डवत और श्री गंगाधर जाधव को पकड़ा ही नहीं गया था। जजवर परचुरे पजाव उच्च न्यायालय से मुक्त होने के बाद वे तीनों अभियुक्त स्थानीय न्यायाधीश से स्वाधीन हो गये थे उनपर से अभियोग हटा लिया गया था।

गुप्तचर विभाग के कार्यालय में रहे हुए हम लोग अर्थात् नयूराम, आपटे, करकरे, वटगे, शकर, मदनलाल और मैं, हमलोगों के साथ अन्यथा अच्छा व्यवहार किया गया। हमें कोठरी में न रखते हुए कार्यालय के कमरों में रखा गया था। दिनभर वहाँ कार्यालय का काम चलता था।

बाहर के किसी व्यक्ति से हमें मिलने नहीं दिया जाता था। इसका अपवाद इतना ही था कि अधिकारी ही कभी-कभी किन्हीं प्रतिष्ठित व्यक्ति को लेकर आ जाते थे। उस समय अधिकारियों की इच्छानुसार हम कुछ शन्द बोल भी सकने थे। इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों में श्री स० का० पाटिल और श्री अच्युत पटवर्धन मुख्य हैं।

हमारे लिये माधवाश्रम से भोजन भगवाया जाता था। भोजन अच्छा होता था। चाय और चून्नीपान की भी सुविधा थी। घर के लोग जब मिलने के लिये आया करते थे तो उस समय वे कुछ खाद्यपदार्थ भी लाया करते थे।

नयूराम के लिये एक बिजली की केतली लाकर रखी गई थी। उनके कमरे में काँफी की सामग्री एकत्रित कर दी गई थी। वे समय-समय पर काँफी बनाते और बीच-बीच में हम लोगों के पास भी भिजवाया करते थे।

पुलिस अधिकारियों में से अनेक जनों में 'पेय' का अर्थात् मद्यपान का प्रमाण अधिक मात्रा में दिखाई देता था। अनेक अधिकारी तो ऐसे थे कि जिन्होंने पानी का हाँ त्याग कर दिया था। उनकी जेब में हमेशा चादी की चपटी बोतल हुआ करती थी। गांधी वध की खोज में अनगिनत पैसा बहाया जा रहा था। व्यय के लिये कोई बन्धन नहीं और न शायद हिसाब देने की आवश्यकता थी।

हम आरोपियों को परस्पर मिलने और बातचीत करने की मनाही थी। हमको कभी समीप लाया ही नहीं जाता था। इसलिये किसने किस प्रकार के बयान दिये हैं, इसकी जाच करने का अवसर ही नहीं मिलता था। कुछ प्रसंगों में हमें आमने-सामने लाया जाता था। परन्तु यह तभी होता था कि जब अधिकारियों को यह कहलवाना होता था कि "अमुक" यह कह रहा है, तुम यह कहते हो। तुम दोनों के वक्तव्यों में मेल नहीं है। तब सच क्या है इसकी छानबीन करने के लिए दोनों को एकत्रित लाया जाता था।

ज्यों-ज्यों तलाशी का काम पूरा होता गया त्यों-त्यों हमारे बन्धन ढीले होते गये। कड़ाई कम होती गई। फिर भी पुलिसवालों के बिल्कुल समीप होने के

कारण इस सम्बन्ध में हम किसी प्रकार की बातें नहीं कर सकते थे। मुझे नथूराम से मिलने दिया जाता था, हम बोला करते थे। कभी घर से मिलने के लिये कोई आते थे तो हम दोनों साथ आते थे।

तफतीश जब जारी थी तो उस समय हमारे चारों ओर जो सूत्र गूँथा गया था उसकी विचित्र कहानियाँ हमें सुनने को मिलती रहती थी। नथूराम कभी किसी गाँव में किसी सज्जन के घर पर ठहरे थे इस प्रकार का किसी का पत्र पुलिस वालों को मिलता था। उस पत्र का आशय पूर्णतया झूठ होने का भास अधिकारियों को होता था। क्योंकि अभियुक्तों की तिथिश दिनचर्या अधिकारियों के पास लिखित रूपेण विद्यमान थी और उसकी उन्होंने पूर्ण जाँच कर ली थी। परन्तु नये से प्राप्त इस समाचार का निपटारा करना भी एक काम है यह विचार कर फिर नये सिरों से छानबीन होती थी और जब वह असत्य सिद्ध हो जाता तो उसके विषय में अपना अभिमत बरिष्ठ अधिकारियों को भेज दिया जाता था।

नथूराम के एक ही दिन, एक ही समय पर, अनेक ग्रामों में होने तथा अनेक व्यक्तियों से मिलने का समाचार गुप्तचर विभाग के पास आता था। उस समाचार के सम्बन्ध में बीच बीच में हम लोगों से पूछा जाता था। एक दिन में नथूराम के अनेक स्थानों पर विद्यमान, वार्तालाप एवं भाषण की सूचना पुलिस अधिकारियों के पास होती थी। यहाँ तक कि हमें एक दिन पूछा गया था कि एक दिन नथूराम नासिक था, उसी दिन वह हजिराबाद थे, मिरज थे और नागपुर भी थे। उसी दिन उसका भोपाल में व्याख्यान हुआ था। उसी दिन इटारसी के मित्रजनों ने उसको फलहार दिया। उसी दिन इन्दौर के मित्रोंने उनको विदा दी। उसी दिन किसी गाड़ी में यात्रा कर रहे होते थे। उनके पास लोहे के दो सन्दूक थे जिन पर एन० बी० गोडसे नाम अंकित था, झाँसी के निकट किसी ने उनको इन प्रकार देखा था तब उनके साथ साथ उस यात्रा में एक-दो महिलायें भी थी।

इस प्रकार का असम्भाव्य समाचार छानबीन के लिये आने पर हमें लोगों की मनोवृत्ति पर आश्चर्य होता था। परन्तु इस सब में छानबीन करनेवाले अधिकारियों का मनोरंजन होता था। एक दिन एक अधिकारी हँसी में नथूराम ने बोले, “नथूराम! जिन लोगों ने तुम्हें कभी देखा भी नहीं होगा उन्हें भी तुम सर्वत्र दिखाई देते हो। नथूराम एक समय पर एक ही स्थान पर हो नक़्क़ात है जनता की बुद्धि में यह बात बैठाने का कार्य हमारे ऊपर आ पड़ा है।”

उस विशिष्ट दिन के सम्बन्ध में अधिकारियों के पाम प्रमाण होता था और उसमें उनको किसी प्रकार का अब सन्देह नहीं रह गया था। उस निश्चित दिन

नथूराम हवाई जहाज से बम्बई से दिल्ली गये ऐसा उनके पास सप्रमाण जल्लेख होता था। नथूराम के कथन से जो वृत्त मिलता था वह भी अकित होता था।

कभी कभी दूर-दूर के अधिकारी भी अपने पास कुछ जानकारी हैं और उसे तुरन्त बम्बई गुप्तचर विभाग के पास पहुँचाना चाहिये ऐसा कहकर बम्बई की यात्रा का प्रबन्ध करते थे। अनेक बार उनकी सैर पुलिस की दृष्टि में निरर्थक सिद्ध होती थी।

सामान्यतया लगभग १४ दिन बाद तफ्तीश के और अधिक अवसर प्राप्त करने की दृष्टि से हमें बम्बई के चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट के न्यायालय में उपस्थित किया जाता था। सभी अवसरों पर न्यायाधीश श्री आस्कर ब्राउन इस प्रकार का अवसर पुलिस को देते थे।

साक्षीगण आरोपियों को ठीक प्रकार से पहचान सकें इसके लिये भी हमें बीच-बीच में न्यायालय में ले जाया जाता था। हम पूर्ण रूप से अधिकारियों के अधिकार में थे। हमें कोठरी या बन्दीगृह में नहीं रखा गया था। हमारे अनजाने साक्षीगण कभी हमें इस प्रकार देख कर गये होंगे और न्यायालय में जाकर उन्होंने पहचानने का नाटक किया होगा तो इसका भी हमें ज्ञान नहीं हो सकता था। अन्यथा पौने दो, दो या ढाई मास बाद कोई रेलवे कर्मचारी, कोई बूट पॉलिशवाला अथवा कोई तागेवाला ठीक व्यक्ति पर किस प्रकार उँगलो रख सकता था। गलती से भी निश्चित उत्तर मिलने की व भी कभी सम्भावना होती तो है। किन्तु यह अपवाद अपवाद ही हो सकता है, सदासर्वदा का नियम नहीं बन सकता।

जाँच-पड़ताल का काम जब पूर्ण हो पाया मई मास आ गया था। न्यायालय कहा बैठाया जाय, किस न्यायाधीश की नियुक्ति की जाय, अभियोग कौन प्रस्तुत करे इत्यादि बातों पर सरकार के उच्चाधिकारियों में विचार विमर्श चल रहा था।

बम्बई प्रान्त ने १९४७ में एक एक्ट लागू किया था। उसकी विशेषता यह थी कि विशेष न्यायालय प्रस्थापित करना, एक न्यायाधीश की नियुक्ति करना, नियमित प्रया छोड़ कर उसी न्यायाधीश से आरोप-पत्र तथा आरोपियों के वक्तव्य लेना, हत्या के प्रयत्न के लिये भी आरोपी को मृत्युदण्ड अथवा आजीवन कारावास के दण्ड का पात्र सिद्ध करना, अभियोग का कार्य अवरित और शीघ्रता से जारी रखना, इस प्रकार का उपबन्ध उस एक्ट में था। 'उसे बम्बई पब्लिक सेक्युरिटी एक्ट ऑफ १९४७' नाम दिया गया था और मई १९४८ में उसकी सीमा इस अभियोग के लिये दिल्ली तक बढ़ा दी गई थी। ५-६ वर्ष बाद सर्वोच्च न्यायालय ने उस एक्ट के अनुसार नियुक्त किये जानेवाले न्यायपीठों को असंवैधानिक

घोषित किया था । परन्तु उसका परिणाम पहले घोषित करने से उसने भी इन्कार कर दिया था और पहले से परिणाम घोषित कर देना सम्भव भी नहीं था ।

दि० ४-५-४८ को श्री आत्माचरण आई० सी० एस० को गांधी वध काण्ड के लिये विशेष न्यायाधीश नियुक्त किया गया ।

दि० १५-५-४८ को लाल किले के एक भाग को हम लोगो के निवास के लिये 'बन्दीगृह' बनाया गया ।

लाल किले में ही न्यायालय का कार्य संचालन की योजना थी । लालकिले में इस प्रकार का न्यायालय स्थापित करने की यह तीसरी बारी थी । पहली बार १८५७ में क्रान्ति के अवसर पर बहादुर शाह पर यहाँ अभियोग चलाया गया था । उसके बाद १९४६ में आजाद हिन्द सेना के अधिकारियों पर इस लालकिले में ही अभियोग चलाया गया था । और तीसरी बार गांधी वध काण्ड का अभियोग भी इसी लालकिले में चलाया जा रहा था ।

हम लोगो ने सुना कि शीघ्र ही हम लोगो को दिल्ली ले जाया जायगा । किन्तु स्पष्ट रूप से किसी ने हमको बताया नहीं था । इतने दिनों से एक ही स्थान पर बंधे से हम लोगो को आने जाने में कुछ स्वतन्त्रता मिलेगी, बाहर का वातावरण देखने को मिलेगा, इसकी सम्भावना से कुछ हम लोगो को आनन्द हो होता था ।

दि० २५-५-४८ को बम्बई गुप्तचर विभाग में रखे हम आरोपियों को दो बार में वायुयान द्वारा दिल्ली लाया गया । सावरकर जी का स्वास्थ्य उन दिनों अच्छा न होने के कारण उन्हें दूसरे दिन अर्थात् २६-५-४८ को आर्थर रोड बन्दी गृह से दिल्ली लाया गया ।

बेढ दिन तक हमको अलग अलग पुलिस की कोठरियों में रखा गया । दि० २७-५-४८ को प्रातः काल हमें लाल किले के बन्दीगृह के द्वार पर लाया गया । इसी स्थान पर सभी ने सावरकर जी, डा० परचुरे आदि को एक स्थान पर एक साथ देखा था ।

बन्दीगृह में हमें चाय पिलाई गई और कहा गया कि चाय पीकर तुरन्त ही न्यायालय के लिए प्रस्थान करना होगा । तदनुसार ही हमने न्यायालय को जाने की तैयारी की । यह न्यायालय आज प्रथम बार ही खुलनेवाला था । बन्दी गृह से न्यायालय किसी विशेष अन्तर पर नहीं था । हमारे जाने के लिये फिर भी मोटर की व्यवस्था की गई थी । प्रातः लगभग दस बजे हम लोग न्यायालय में पहुँचे थे ।

★ ★ ★

## ग्यारह

### प्रकाश से अंधकार की ओर

एकान्तता के घुटन भरे वातावरण से हमने न्यायालय के मुक्त वातावरण में प्रवेश किया। यह बात दि० २७-५-१९४८ की है। समय प्रातः काल नौ बजे का था। एक डेढ़ घंटे पूर्व ही हम सब बन्दियों को लालकिले के विशेष बन्दीगृह में एकत्रित किया गया। प्रथम भेंट में हम एक दूसरे से केवल ऊपर-ऊपर की ही बात कर सके थे। तो भी हमारी बातचीत में अब किसी प्रकार का बंधन नहीं था। इन प्रकार हमने प्रथम बार यहाँ पर मुक्तता का सुख अनुभव किया था।

न्यायालय का वातावरण इससे भी अधिक मुक्त था। उस दिन प्रथम बार ही हमको प्रकट रूप में लोगों के सामने लाया जा रहा था। जाँच के दिनों में हमें कभी दिल्ली, कभी पूना, कभी खालियर लाया, ले जाया तो गया था किन्तु वह सब बन्द अवस्था में ही हुआ था। यदि हवाई जहाज से भी ले जाया गया हो तो भी आसपास पुलिस का पहरा रहता था। हमें कभी मुक्त नहीं रखा गया था इसलिये सदा ही मन पर एक प्रकार का बोझ और ग्रन्थियों में तनाव बना रहता था। लोगों को हमें देखने की जितनी उत्सुकता रही होगी उतनी ही सत्सुकता हमें मुक्त समाज देखने की थी।

न्यायालय लगभग सौ फीट लम्बा और बाईस फीट चौड़ा इस प्रकार का एक लम्बा प्रकोष्ठ था। वह पहली ही मजिल पर था। उसके एक ओर न्यायपीठ और उनके ईर्द-गिर्द उनके कर्मचारी लिपिक तथा स्टेनोग्राफर आदि के बैठने की व्यवस्था थी। उस भाग को प्रकोष्ठ के शेष धरातल में ऊँचा रखा गया था।

न्यायमूर्ति की दाहिनी ओर साक्षीगणों के लिये स्थान बनाया गया था। और उनकी बायीं ओर अभियुक्त का स्थान बना था।

न्यायासन के सम्मुख न्यायाधीश की दाहिनी ओर शासकीय वकील और



अभियुक्त : निर्देशित (१) नथुराम

उनके सहायकों के बैठने का स्थान था। आरोपी अपने अपने वकीलों ने बोल सके इस दृष्टि से न्यायाधीश की बाईं ओर वकीलों के बैठने का प्रवन्ध था।



दोनों वाजुओं के वकीलों की कुर्सियों के पीछे दर्शकों के लिये कुर्सियाँ और बैंच बिछे थे। उनमें सबसे आगे पत्र-प्रतिनिधि बैठ कर रहे थे।

प्रमुख न्यायालय के समीप दोनों ओर के कमरों को अन्य कार्य के लिये उपयोग में लाया जाता था। न्यायपीठ के समीप के कमरे को न्यायाधीश का वेष्टम (चैम्बर) बनाया गया था। पास के कमरे में साक्षीगण लाकर बैठायें जाते थे। उसके पास के कमरे में शासकीय वकीलों के बैठने का कमरा था।

आरोपी के वकीलों के लिये अलग कमरा था। आरोपी के योही बैठने के लिये वरामदे के एक कमरे में प्रवन्ध किया गया था।

हमको दि० २५-५-४८ को दिल्ली में लाकर अलग अलग पुलिस कोठरियों में डाल दिया गया था। पुलिस अधिकारी न्यायालय के प्रवन्ध में इतने व्यस्त थे कि हमारे लिये भोजन के अतिरिक्त वे अन्य किसी प्रकार की सुविधा आदि नहीं जुटा सके। हमको जिन कोठरियों में रखा गया था वे बहुत ही गन्दी और दम घोटनेवाली थी। स्नान नहीं, मुह पोछना नहीं, हमें अपनी अवस्था स्वयं ही बड़ी मलिन प्रतीत होती थी। एक ही दिन का प्रश्न होने के कारण उसमें धिकायत के लिये भी कोई गुंजाइश नहीं थी।

शरीर की बाह्यावस्था कैसी भी क्यों न हो, इससे हमारे मनो को एक नया रंग मिला था। मैं सोचता हूँ कि पुलिस के उत्पीड़न से अब मुक्ति मिल गई है अन्तर्मन की यह बात ही बाह्य मन को प्रफुल्लित कर रही थी। इसलिये हमारे मुखों पर भी उस मुक्ति की तरंग दृष्टिगोचर होती होगी। गांधी वध काण्ड रूपी नाटक का 'तफतीश अंक' पूर्ण होकर अब 'न्यायालय अंक' प्रारम्भ हुआ था। कल की चिन्ता करने की मन स्थिति नहीं थी। कल का कल देखा जावेगा। आज तो यह समारोह देखने को मिल रहा है यह कल्पना मन को पुलकित कर रही थी।

न्यायालय में अनेक दर्शक बैठे हुए थे। उस ओर दृष्टि दीवाई तो कई परिचित लोग दिखाई दिये। कुछ लोगों ने मन्दस्मित आविर्भाव से और कई लोगों ने नमस्कार से परिचय दिखाया। बम्बई, पूना के लोग भी उनके मध्य में दिखाई दिये।

गांधी वध की जितनी गहनता थी उतनी ही भयंकरता गांधी वध के अभियोग को प्राप्त हुई थी। उसका एक कारण यह था कि जिस क्रान्तिकारी ने अपने जीवन में स्वतंत्रता के लिये भारत और उससे बाह्य भी संगठन खड़े किये थे, उसके लिये जिसने अतुलनीय कष्ट सहें, जिसने हिन्दू राष्ट्र का तत्त्वज्ञान प्रसृत करके हिन्दुओं में स्वाभिमान की जागृति की, उस अन्तर्राष्ट्रीय कीर्ति के कर्मवीर को,

अर्थात् स्वातन्त्र्यवीर सावरकर जी को, सत्तावारियो ने इस अभियोग में एक अभियुक्त के रूप में प्रस्तुत किया था। अन्य घटक उस मात्रा में गौण थे। क्योंकि अन्य आरोपियो की महानता अर्थात् उनकी शिक्षा, उनका चारित्र्य उनकी योग्यता, उनकी क्षमता आदि बातें अभी तक लोगो के सम्मुख आई नहीं थी।

हमारा अभियोग यदि बन्द न्यायालय में ( इन कैमेरा ) चलाया जाता तो कदाचित् यह हमको स्वीकार्य न होता। क्योंकि गांधी वध जैसा कृत्य इन व्यक्तियो ने देश की कौन सी परिस्थिति में किया और तब उनको ऐसी कौन सी मनस्थिति थी इसको बन्द न्यायालय में अभियोग चलाने से कोई समझ नहीं सकता था और न ही किसी की गलत धारणा का इस प्रकार निराकरण ही हो सकता था। तदपि उस समय तो शासन की इच्छा ही सर्वोपरि थी अभियुक्तो की नहीं। अभियोग अप्रकट रूप से चलाया जाता तो हमारे पास उसके प्रतिवाद के लिये कोई चारा नहीं था। इसलिये जब हमने यह सुना कि अभियोग प्रकटरूप से चलाया जावेगा तो हमें प्रसन्नता हुई। हमारे विरुद्ध लगाये आरोपो के समर्थन में प्रमाण एकत्रित कर प्रस्तुत करना और उसके द्वारा हमारा अपराध सिद्ध करा कर हमें दण्ड दिलाने का सारा कार्य शासन की ओर से ही होनेवाला था। इस बात का ज्ञान होने पर भी हम खुले न्यायालय में अभियोग चलाया जानेवाला हैं यह जानकर शासन के प्रति हमने मन ही मन आभार ही प्रकट किया।

हम सभी अभियुक्तो को क्रमांक के अनुसार तीन पक्तियो में अभियुक्तो के पिण्डों में बैठाया गया था। प्रथम पक्ति में नथूराम, नाना आपटे और करकरे, दूसरी पक्ति में मदनलाल, दिगंबर, बडगे और शंकर किस्तैया तथा तीसरी पक्ति में बोर सावरकर, डा० परचुरे और मैं था। आगे चल कर इस क्रम में परिवर्तन हुआ था। सावरकर जी को प्रथम पक्ति में बैठाने का प्रवन्ध किया गया।

न्यायालय में जो कुछ बोला जा रहा है, वह सबको भली भाँति सुनाई दे, इसके लिए स्थान-स्थान पर ध्वनिविस्तारक यन्त्र लगाये गये थे। अभियुक्तो की प्रत्येक पक्ति में भी एक एक यन्त्र लगा हुआ था। दोनो ओर के वकीलो के लिए, गवाहो के लिए और न्यायाधीश की मेज पर भी यन्त्र लगे हुए थे।

वचाव पक्ष के वकील कम ही थे। सर्वश्री अण्णाराव भोपटकर, जमनादास मेहता, लाला गणपतराय, कुजविहारी भोपटकर तथा इनामदार अपने अपने स्थान पर बैठे थे।

शासन की ओर से प्रमुख वकील श्री दफ्तरी थे। उनकी सहायता के लिए श्री पेरीगारा, श्री शाह और श्री ज्वाला प्रसाद थे। वे भी अपने अपने स्थान पर बैठे थे।

प्रेस फोटोग्राफरो को उस दिन फोटो खींचने की अनुमति प्राप्त थी। हमारे

- ऊपर स्थिरचित्र और चलचित्र खींचनेवाले सभी प्रकार के यन्त्र ताने गये थे । न्यायमूर्ति के आने की देर थी ।

दस बजने में जब आधा मिनट रह गया तो न्यायालय के रजिस्ट्रार ने न्यायाधीश के आने की सूचना सुनाई । वातावरण शान्त हो गया और सभी स्थिर एवं सावधान होकर बैठ गये ।

ठीक दस बजे न्यायाधीश श्री आत्माचरण न्यायालय में प्रविष्ट हुए । उनके अभिवादन के लिये सभी खड़े हो गये । न्यायाधीश न्यायपीठ के समीप आये, उन्होंने सबका अभिवादन स्वीकार किया और प्रत्याभिवादन कर सभी को बैठने का संकेत करते हुए स्वयं भी पीठासीन हुए ।

चित्रकारों ने अपने यन्त्र साधे । आँखों को चकाचाँध करनेवाले स्फुर प्रकाश-फ्लैशलाइट-एक के बाद एक जगमगाते और बुझते रहे । चलचित्रकारों के प्रकाश में तो न्यायालय सूर्य के प्रकाश से भी अधिक जगमगा सा गया था । चित्रीकरण अथवा फिल्मीकरण का यह कार्य चार-पाँच मिनट तक जारी रहा ।

प्रेस न्यूज एजेन्सी अथवा फिल्मस डिविजन ने देश के छविगृहों में प्रदर्शन के लिए उस दिन फिल्माये गये चित्रों की प्रतियाँ तैयार कराकर वितरित की । न्यूजरील के रूप में उनको दिखाया जाने लगा था । उस न्यूजरील के दिखाये जाने पर अनेक छविगृहों में अभियुक्तों के जयघोष होने लगे तो सरकार ने उसमें हस्तक्षेप कर उनको दिखाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया ।

इस बात पर यदि निष्पक्ष अभिमत व्यक्त करना हो तो मैं कहेगा कि शासन ने उस पर प्रतिबन्ध लगा कर कोई अनुचित कार्य नहीं किया । किन्ती एक प्रकरण की छानबीन का विषय जब न्यायालय को सौंप दिया जाय तो उसके बाद न्यायालय किसी भी एक पक्ष के प्रति पूर्वाग्रहलिप्त न हो इसकी सावधानी बरतना शासन के लिए नितान्त आवश्यक है । किसी एक व्यक्ति पर यदि कुछ आरोप आया हो तो उसकी न्यायालयीन कार्य विधि जारी रहते हुए उसके निषेध के लिए किसी सभा का आयोजन करना न्यायदान की दृष्टि से हानिकारक होता है । दण्ड संहिता के आधार पर वह आक्षेपार्ह भी होता है । उसी प्रकार उसके पक्ष में आयोजित की गई किसी सभा के विषय में भी यही समझना चाहिये । उन दिनों हमारा न्यायालय अभियुक्तों की छानबीन कर रहा था । न्याय का कार्य जारी रहते हुए शासन ने उस वृत्तचित्र पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो मेरी दृष्टि में कोई अनुचित कार्य नहीं किया ।

इसके विपरीत सरदार पटेल ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया । जिन दिनों हम पर न्यायालय में अभियोग चल रहा था उन्ही दिनों सरदार पटेल ग्वालियर

गये और उन्होंने वहाँ एक सभा में भाषण करते हुए कहा, “जिस शस्त्र से गांधीजी का वध हुआ है, वह शस्त्र ग्वालियर से गया था। यह बात ग्वालियर को कुर्यात करनेवाली है।

सरदार पटेल के इस कथन पर वचाव पक्ष के वकीलो ने आपत्ति प्रकट की थी।

गांधी जी का वध जिस शस्त्र से हुआ था वह क्या ग्वालियर से गया था ? और क्या जो शस्त्र ग्वालियर से ( यदि गया था तो ) गया उसी से गांधी जी का वध हुआ है ? इन प्रश्नों पर अभी न्यायालय में छानबीन हो रही थी। न्यायालय ने इस विषय पर तब तक अपना मत निर्धारित नहीं किया था इस दृष्टि से सरदार पटेल के उस भाषण से न्यायालय के अधिकारों पर अधिक्षेप होता था। यह सारी बात वचाव पक्ष के वकीलो ने न्यायालय के सम्मुख स्पष्ट की थी। परिणाम स्वरूप इस प्रकार का कोई भी विवादास्पद वक्तव्य या भाषण किसी भी मन्त्री ने फिर कभी नहीं दिया।

चित्रोत्तरण की प्रक्रिया समाप्त हुई। सभी अपने अपने स्थान पर बैठे। शांत गहरे वातावरण में श्री दफ्तरी खड़े हुए। उन्होंने न्यायमूर्ति का अभिवादन किया। अभियुक्तों के विरुद्ध लिखे गये आरोप पत्र-चार्ज-शीट को उन्होंने पढ़कर सुनाया और तदनन्तर उसे न्यायमूर्ति को सौंप दिया।

इसके बाद वचाव पक्ष की धारी थी। परन्तु अभियुक्तों के वकीलो का प्रवचन नहीं हो पाया था। श्री सावरकर और डा० परचुरे इनके ही वकील आ पाये थे। जो अभियुक्त ‘न्याय सहायता समिति’ की ओर से वकील चाहेंगे उनके लिये वकीलो की व्यवस्था करने की दृष्टि से श्री भोपटकार ने न्यायालय से समय मांगा।

न्यायबीश ने अभियुक्तों से वकीलो के विषय में पूछा। दिगम्बर बड़गे ने कहा, “मुझे वकील नहीं चाहिये।” यह बात पहले ही ज्ञात हो गई थी कि वह सरकारी गवाह होनेवाला है। शकर किस्तीया ने न्यायपरामर्शक-अमीकस क्यूरी की माँग की। अभियुक्त अपना वक्तव्य समाप्त कर सके, अपने पर लगाये गये अभियोग का वह विरोध कर सके अथवा अभियोग को निरावारसिद्ध कर सके, इसका अन्तर्गत देने के लिये न्यायालय वकील की व्यवस्था करना चाहता है। इस प्रकार के वकील की नियुक्ति करने के बाद भी वह देखता है कि वकील अभियुक्त का हित कर रहा है कि नहीं।

श्री भोपटकर ने भेंट की सुविधा के सम्बन्ध में न्यायालय से पूछा। न्यायालय ने आदेश दिया कि वन्दीगृह के अधिकारियों अथवा जिलाधिकारियों से मिलकर इसकी व्यवस्था हो जानी चाहिये।

न्यायालय ने यह भी आदेश दिया कि दि० २-६-४८ तक गवाहों के कथनों का सारांश वचाव पक्षके वकीलों को मिल जाना चाहिये। उस दिन निश्चय किया गया कि दि० ३-६-४८ को न्यायालय फिर बैठेगा और दि० १४-६-४८ को अभियोग प्रारम्भ हो जावेगा। यह सब निश्चित करने के बाद उस दिन का न्यायालय का कार्य पूर्ण घोषित किया गया।

हमको बन्दीगृह में लाया गया। हमारे लाने, ले जाने की व्यवस्था बम्बई पुलिस किया करती थी। देहली का बन्दीगृह पंजाब बन्दो विभाग के अन्तर्गत था और इस विशेष बन्दीगृह का प्रबन्ध भी उसी विभाग के कर्मचारियों के अधीन था। बन्दीगृह के रक्षक पुलिसवालों को केवल बम्बई से लाया गया था। एक रसियन (रूसी) नागरिक श्री मास्कोविच उस टुकड़ी के अधीक्षक और श्री भगत राम बन्दीपाल नियुक्त किये गये थे।

बम्बई पुलिस और दिल्ली पुलिस में आपस में कुछ मनमुटाव था। उसका स्वल्प अनेक बार हम लोगों के देखने में भी आता था।

बन्दीगृह के कमरों के सामने ही रसोई घर था। एक रसोइया था और उसको एक सहायक दिया गया था। रसोई के एक भाग में प्रहरियों का निवासस्थान था।

भोजन के लिये हमें एक थाली, एक बरतन और एक कटोरी दी गई थी। सोने के लिये धागे की बुनी चारपाई थी। प्रत्येक को एक मेज और एक तिपाई दी गई थी।

गरमी प्रतीत होने लगी थी। कमरे की दूसरी ओर खिड़की नहीं थी। पिछली दीवार उस किले की अन्तिम दीवार थी इसलिए वह बहुत चौड़ी थी। प्रत्येक कमरे के द्वार के निकट एक एक बिजली का पत्ता लगाया गया था।

न्यायालय से वापस आने पर हमने कमरे में अपना-अपना सामान लगाया और फिर बाद में आराम से बातचीत करने के लिये बैठ गये। प्रारम्भ में तो किसके विरुद्ध क्या क्या प्रमाण एकत्रित किये गये हैं इस विषय के अतिरिक्त हमें अन्य किसी विषय पर बातें करने का अवकाश ही नहीं मिला था।

मत्ताह भर की छुट्टी थी। न्यायालय न होने पर हमको दोपहर के बारह से तीन बजे तक कमरों में बन्द करके रखा जाता था। रात को बन्द करने का समय शाम को ६ बजे हुआ करता था और प्रातः ६ बजे खोला जाता था।

कमरे में बन्द हो जाने पर हमको बराबर के कमरे वाली से बात करने के लिये जोर-जोर से बोलना पड़ता था। दिन को ताश या शतरंज खेल कर समय बिताया करते थे। अभियोग का काँटा हर किसी के मन में कहीं न

कही खटकता तो अवश्य ही होगा परन्तु सभी एक ही नाव के यात्री होने के कारण उस प्रकार का तनाव ऊपर से व्यक्त नहीं हो पाता था ।

समवयस्क लोग परस्पर मिलजुल कर और अवस्थानुसार धीमागमस्ती एवं ऊबमवाजी करते हुए समय व्यतीत करने के अम्यस्त हो गये थे ।

हम अभियुक्तों का अभी दण्ड के साथ किसी प्रकार का प्रणयन नहीं हुआ था । मैं तो मुक्त हो ही जाऊँगा इस प्रकार मन के मोदक खाते हुए दुःख की छाया भी हमारे पास फटकने नहीं पाती थी । वन्दीगृह के वातावरण से हम धीरे धीरे अम्यस्त हो रहे थे । और खेलने कूदने का आनन्द अनुभव कर रहे थे ।

किसी अधिकारी के मन में किसी नियम का विलकुल ठीक अर्थ कब और कैसे उत्पन्न हो जावेगा इसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता था । सावरकर जी को वम्बई आर्थर रोड वन्दीगृह से दिल्ली लाया गया था । वम्बई में उनको स्नान के लिये एक लगोटी दी गई थी । जब वे दिल्ली आये तो तब तक वह उनके पास थी ।

जाँच-पड़ताल की विधि जारी थी कि सहसा वन्दीपाल की दृष्टि तार पर सूखने डाली गई लगोटी पर गई । उनको उसके साथ लगा नाडा खटकवे लगा । उनके मन में नियम के शब्द खड़े हो गये कि अपनी जान को हानि करनेवाली किसी प्रकार की भी वस्तु वन्दी के पास नहीं होनी चाहिये ।”

बड़ी नम्रता से उन्होंने सावरकर जी से उस लगोटी की माग की ।  
-सावरकर जी बोले, “भुझे तो वह स्नान की सुविधा के लिये दी गई है ।”

“हमारे नियमों अर्थात् पजाब कारागार नियमों के अन्तर्गत इस प्रकार की लगोटी देना वर्जित है ।”

सावरकर जी ने कहा, “यदि आप उसके बदले कोई दूसरी व्यवस्था कर सकें तो उस लगोटी को ले जाइये ।”

“आप इसे अन्यथा न समझें । मैं लगोटी का नाडा निकाल लेता हूँ और लगोटी वापस भेज देता हूँ ।”

अनजाने में यह वार्त्तालाप विनोद का स्वरूप ग्रहण कर रहा था । सावरकर जी ने हसी में कहा, “लगोटी को कमर में चिपकाये रखने के लिये क्या आप मुझे चोई या गोद देंगे ?”

वन्दीपाल को कुछ सूझ नहीं रहा था । विवश किन्तु कुछ खेद सा व्यक्त करते हुए वे बोले, “हमारे नियमों में लगोटी का कोई उल्लेख नहीं है ।” परन्तु तुरन्त ही उसे सुधारते हुए बोले, “इसके विकल्प में नियमों में क्या सुविधा आपको प्राप्त

हो सकती है, यह मैं नियमों का अध्ययन कर अथवा वरिष्ठ अधिकारियों से इसको जानकारी प्राप्त कर आपको सूचित करूँगा।”

बन्दीपाल चले गये। प्रहरी लंगोटी लेकर चला गया और उसका नाडा तोड़ कर उसने वैसे ही उसको सुखाने डाल दिया।

शाम को किसी कार्य से बन्दीपाल हमारे पास आये थे। सुबह का विषय उस समय तक उनके मन से निकल गया था। वे सावरकर जी के कमरे के पास खड़े हुए बोल रहे थे। थोड़ी बहुत बातचीत के बाद सावरकर जी ने उनको कमरे में आने के लिये कहा।

सावरकर जी ने चारपाई पर से चढ़ उठा कर उनको दिखाते हुए कहा, “देखिये।”

“क्यों, क्या खटमल है ? चारपाई तो नयी है।” बन्दीपाल ने कहा।

“नहीं खटमल तो अभी नहीं हुए। किन्तु वह रस्सी ?”

चारपाई के पायतानों में पचीस-तीस फिट की रस्सी होती ही है। सावरकर जी फिर बोले, “किसी एक शरीर में यदि दस जाने भी होगी तो उन सभी को नष्ट करने के लिये यह रस्सी पर्याप्त है।”

बन्दीपाल उलझन में पड़ गये। उन्हें प्रतीत हुआ कि नियमों में कहीं निश्चित गलती है। लंगोटी का डंड फीट नाडा उनके मन में खटकने लगा। परन्तु उनको नियमों का ज्ञान अच्छा था। वह बोले, “चारपाई नियम के अनुसार बनवाई है और यह रस्सी भी उन्हीं नियमों के अन्तर्गत है।”

इस मजाक में हम सभी को भाग लेने की इच्छा होने लगी। हममें से कोई एक बोला, “अर्थात् नियम के बाहर के साधन से हानि कर लेने पर प्रतिबन्ध है, यही कहना हुआ न आपका ?”

वे बोले, “नियम के अनुसार तो ऐसा ही दीखता है।” फिर सावरकर जी ने कहने लगे, “मैं आपकी लंगोटी पर नाडा लगवा कर भेज देता हूँ।”

सावरकर जी बोले, “आप यदि नियमों का ठीक प्रकार से भी पालन करें तो उसमें कुछ बिगड़ता नहीं। परन्तु “अन्वी पीसे, कुत्ता खाये” “इस प्रकार के नियमों की कार्यवाही नहीं होनी चाहिये, मेरा इतना ही निवेदन है। नियम तो हमारी परस्पर सुविधा के लिये हैं। नियमों का उपयोग करते समय इस हेतु को ध्यान में रखना चाहिये।”

“मेरी मनसा आपको अथवा आपके किसी साथी को असुविधा प्रदान करने की नहीं है। किन्तु कुछ नियम विचित्र होते हैं, यह सच है।”

हसी मजाक के उस वार्तालाप का उपसंहार करते हुए सावरकर जी ने कहा, “फिर कभी कभी नियम और सिर का मेल किया जाय।”

बन्दीपाल भी लगता है विनोदप्रिय थे बड़ी गम्भीरता से उन्होंने इसके उत्तर में कहा, “परन्तु वेसा नियम तो है ही नहीं ?”

इससे जो हसी का फव्वारा छूटा उसमें वे भी सम्मिलित हो गये। उपरिलिखित घटना को यदि छोड़ भी दिया जाय तो भी यह देखा गया है कि कुछ नियम दोषपूर्ण बनाये गये हैं। कभी कभी इन नियमों के एक से अधिक अर्थ भी निकाले जा सकते हैं। उस समय कौन सा अर्थ उपयुक्त है यह उस अधिकारी की बुद्धि पर निर्भर रहता है। कभी दुराग्रह से विशिष्ट अर्थ भी लगाया जाता है। इससे जो सुविधा शीघ्र ही प्राप्त होनी चाहिये उसके लिये लम्बा पत्र-व्यवहार करना पड़ता है। और उसमें छ मास तक लग जाते हैं। मुझे नवम्बर १९६४ में स्थानबद्ध किया गया था, उस समय भी ऐसी एक घटना हुई थी।

कितने दिन का बन्दीवास है यह निश्चित नहीं था। मेरी स्थानबद्धता भारत सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत हुई थी। मैं घर के कपड़े पहनता था। कपड़े फटने लगे थे। नियम द्वारा शासन को ही वस्त्र देने चाहिये थे। परन्तु उस नियम में कुछ शर्तें रहती हैं। वह शर्तें (प्रोविजनी) दोषपूर्ण हैं यह बात मेरे ध्यान में आई।

मैंने अपने लिये वस्त्रों की प्रार्थना की। कुछ मास बाद उत्तर आया “शासन की ओर से वस्त्र नहीं दिये जावेंगे। घर के लोग या मित्रगण वस्त्र देंगे।”

घर की स्थिति मुझे ज्ञात थी। सत्यनारायण काण्ड के वदियों से भेंट करना और न्यायालय में उनके आवेदन प्रस्तुत करने में मेरी पत्नी को कितनी कठिनाई हो रही थी इसका मुझे ज्ञान था। मेरे लिये कपड़े सी कर लाने का अतिरिक्त-भार मैं उसके ऊपर डालना नहीं चाहता था।

यदि मैं माग करता तो कोई भी हितेच्छु मुझे कपड़े दे सकता था। परन्तु दूध का जला तो छाछ भी फूक-फूक कर पीता हूँ। १७ वर्षों के बाद मैं मुक्त होकर आया था। मेरा समाज में स्थान बनाने के लिये मित्रों ने सहायता का हाथ आगे बढ़ाया था। उस सहायतास्वी यज्ञ में उनके हाथ भी जले थे।

अन्न और वस्त्र ये मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। यदि सरकार ने किसी को अपने आधीन किया है तो उसकी ये मूलभूत आवश्यकताएँ तो पूर्ण होनी ही चाहिए ऐसा मेरा मत था। और मैं यह भी देख रहा था कि अन्य बन्दिओं को कपड़े दिये गये थे और अभी भी दिये जा रहे थे। किन्तु सरकार ने मुझे जो उत्तर दिया था वह दुराग्रहपूर्ण था यह मेरी धारणा थी।



मैंने बम्बई के उच्च न्यायालय में आवेदन किया। मैंने न्यायालय से आग्रह किया कि बन्दी की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति शासन को ही करनी चाहिये। नियमों में जा विसंगति है उसको ठीक किया जाय।

यदि पत्नी द्वारा कपड़े दिये जाने की शासन अपेक्षा करता है तो फिर भोजन की भी उससे ही अपेक्षा करे और उसके लिये शासन को चाहिये कि वह मुझे मेरी पत्नी के आधीन कर दे। अर्थात् मुझ पर उसकी बन्दीपाल के रूप में नियुक्ति कर दे।

मेरा तर्क प्रथम दर्शन में तो उनके मस्तिष्क में आया। सुनवाई के लिए उन्होंने तिथि निश्चित कर दी। किन्तु इस सुनवाई होने से पूर्व ही दि० ३०-११-६५ को मुझे मुक्त कर दिया गया। नियत तिथि पर आवेदन न्यायालय के सम्मुख आया। न्यायालय ने आवेदन के व्ययस्वरूप शासन से मुझे १०२ रुपये दिलावाये। इन मूलभूत आवश्यकताओं के लिये बन्दी को हम तक पहुँचने का प्रसंग ही क्यों आता है? इस प्रकार का प्रश्न न्यायालय ने शासन से किया था। अन्तु—

न्यायालय द्वारा दि० २७-५-४८ को दिये गये आदेश के अनुसार हमें दि० ३-६-४८ को न्यायालय में ले जाया गया। तलाशी जारी रखने के दिनों में हमें ऊपर की श्रेणी के बन्दी के समान समझा जाता था। जब हमको बन्दीगृह में रखा गया तब उस प्रकार की आज्ञा नहीं दी गई थी। इसलिये हमें उच्च श्रेणी प्रदान की जाय इसके लिये हमने न्यायालय में प्रार्थना की थी।

अभियोजकों को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। उन्होंने अपना मत दिया कि सभी को “ब” श्रेणी दी जाय। न्यायालय के आदेश से हमें “ब” श्रेणी दी गई।

सरकारी पक्ष ने साक्षीदारों के वक्तव्यों की एक प्रति श्री भोपटकर जी को दी। उस दिन सर्वश्री आपटे, करकरे और मेरे लिये श्री जी० के० हुआ की अस्थायी वकील के तौर पर नियुक्ति की गई। परन्तु सभी का प्रबन्ध अभी तक नहीं हुआ था। इसलिये श्री भोपटकर ने और समय की माग की। न्यायाधीश ने आदेश दिया कि इसके बाद न्यायालय पुन १४-६-४८ को बैठेगा और उसके बाद २२-६-४८ ने अभियोग के काम का अविरत आरम्भ होगा।

दि० १४-६-४८ को विशेष कार्य नहीं हुआ। नयूराम के लिये श्री बी० बी० ओक और मेरे लिये श्री एम० बी० मणियार इन दो वकीलों की नियुक्ति श्री भोपटकर जी ने की थी। इस दिन ये दोनों वकील न्यायालय में उपस्थित थे।

दि० २२-६-४८ को न्यायालय पुन बैठा। इसी बीच १४-६-४८ को भारत सरकार ने एक राजपत्र प्रकाशित किया तदनुसार क्षमा के साक्षी को क्षमा करने

का अधिकार विशेष न्यायाधीश को प्रदान किया गया था। वडगे सब कुछ कहने के लिये तत्पर हैं, उसको इस शर्त पर क्षमा किया जाय इस प्रकार का आवेदन सरकार ने १७-६-४८ को न्यायाधीश के सम्मुख प्रस्तुत किया। वडगे ने २७ जून को अपना वक्तव्य न्यायाधीश के सम्मुख प्रस्तुत किया। यदि वह सब कुछ सच-सच कहेगा तो उसको क्षमा कर दिया जावेगा ऐसा आश्वासन न्यायाधीश ने उसको दिया था।

श्री एच० आर० मेहता, शकर किस्तैया के लिए वकील नियुक्त किये गये। श्री नवलकर और कुमारी कमलम्मा को क्रमशः मराठी और तेलुगु भाषा के दुभाषिये के रूप में दि० १९-६-४८ को नियुक्त किया गया।

बीच में आने वाली लम्बी-लम्बी छुट्टियों से हम परेशान हो जाते थे। अभियोग प्रारम्भ होने के बाद कभी वकील कोई वाद उपस्थित करते और यदि उसका निर्णय उनके विरुद्ध होता तो वे उसका निराकरण उच्च न्यायालय से करा लेने के लिये एकाध मास का अवसर मागने थे। इस अभियोग का निर्णय शीघ्र ही हो जाय; इस प्रकार की हमारी आकांक्षा का वकीलों के लिए कोई महत्व प्रतीत नहीं होता था। हम जब वकीलों से इस विषय में पूछते तो वे कहते कि अनेक मूलभूत प्रश्नों का तुरन्त उच्च न्यायालय से निपटा लेने से अभियोग पर अच्छा परिणाम होने की सम्भावना होती है। दूसरे यदि अभियोग अधिक दिन चला तो कालावधि बीत जाने से उस घटना की कठोरता क्षीण होती जाती है। किन्तु हमको यह सब नहीं सुहाता था। हम सभी अवसर मागने का विरोध किया करते थे।

समय व्यतीत करने के लिये हमारे पास अनेक पुस्तकें तथा खेलने की अनेक सामग्री एकत्रित होने लगी थी। मैंने हाल ही में नाना आपटे से शतरंज खेलना सीख लिया था। मदनलाल भी खेलता था। उस खेल में मन ऐसा एकाग्र होता था कि श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर के विनोदी वर्णनों की याद आये।

एक बार मैं और नाना शतरंज खेल रहे थे। चाय का समय हो रहा था। खेलते हुए अपने अपने बरतनों में से चाय के घूट ले रहे थे। नयूराम बीच में ही आकर खेल देखने लगे। कभी कभी वे चाल चलने के लिये दोनों को बताते भी रहते थे। उन्होंने भी अपनी काँफी हमारी मेज पर ही रख ली थी। उसी प्रकार वे भी बीच में घूट लेते रहते थे।

“तुम्हारी चाय समाप्त हो जाय तो मुझे बताना।” नयूराम ने मुझसे कहा। मैंने चौंक कर उनकी ओर देखा। नयूराम मेज पर रखे बरतन की ओर देख रहे थे। मैंने उस ओर देखा। नयूराम की काँफी मैं ही समाप्त कर रहा था। मेरा

चाय का वरतन वैसे ही पड़ा था। खेल में इतना रम गया था कि मुझे चाय काँफी के स्वाद का भी अन्तर ध्यान में नहीं आया।

कोई गलत चाल चल देने पर वाद में इतना पश्चात्ताप-ना होता था कि मानो अपना राज्य ही नष्ट हो रहा है। मैं मदनलाल से कुछ अच्छा खेलने लग गया था। एक बार हम खेल रहे थे कि उसका 'प्रवानमन्त्री' मेरे घेरे में आया। मैंने सीधे अपनी गोटी उसके खाने में रखी और उसको उठाने लगा। मदनलाल ने मेरे हाथ से अपना मन्त्री छीन लिया और बोला, "नहीं नहीं। वह नहीं लिया जा सकेगा।" तब तक मैंने उसे हाथ से छोड़ा नहीं था।

"मैंने उसको नियम बताते हुए कहा, "जिस गोटी को हाथ लगाया जाता है फिर उसी को उठाया जाता है।" फइपर की स्थिति दिखाते हुए मैंने उसको कहा, "मन्त्री को कहीं पर भी रख दो, वह मेरे घेरे में ही आता है। मुझे उसको मारने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं है।"

वह कहने लगा, "मैं नहीं दूंगा। कैसे मारते हो मैं देखता हूँ। इतना कह वह भाग कर स्नान घर की ओर चला गया। सावरकर जी स्नान करके बाहर आ रहे थे। उन्होंने पूछा, "क्यों क्या बात है?"

मदनलाल तनिक लज्जित सा हुआ। वह बोला, "कुछ नहीं, वह मेरे मन्त्री को मारता है।"

"कौन?"

"गोपाल।"

"पर तुम्हारे यहाँ भाग कर चले आने से तो उसको मारने का खुला अवसर मिल जावेगा।"

मदनलाल ने अपना हाथ खोल कर दिखाते हुए कहा, "यह देखिये, अब कैसे मरेगा। मैं तो उसको लेकर यहाँ आ गया हूँ।"

सावरकर जी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। हम तो पहले से ही हँस रहे थे। मदनलाल के सिर पर शतरंज का भूत सवार था। उसे उत्तरने में कुछ मिनट लगे।

'मुझसे लडकपन हो गया,' ज्यों ही उसको इसका ज्ञान हुआ तो वह तुरन्त भाग कर अपने कमरे में आ गया और उसने सबके सम्मुख प्रतिज्ञा की कि वह भविष्य में मेरे साथ शतरंज नहीं खेलेगा। और उस प्रतिज्ञा का उसने दूसरे दिन शाम तक पालन भी किया।

तास के खेलों में प्रायः नाना, और विष्णुपंत करकरे भागीदार हुआ करते थे। सदैव ही भागादार बनने से अपने कुछ बिन्दु अथवा तंत्र निश्चित कर लिये जाते

हैं। मैं और नाना एक बार भागीदार बन गये। करकरे और मदन हमारे विपक्षी थे। खेलते खेलते मुझे मेज के नीचे किसी का पैर लग गया। मैंने पैर घटोरा और पलखी मार कर बैठ गया। थोड़ी देर बाद करकरे एकाएक बोले, 'नाना! आपने मेरा पैर दबाया?'

खेल के साधन होते हुए भी कई बार खेल बहुत सुस्त लगने लगता था। जिसका प्रमुख कारण था मर्यादित क्षेत्र में हमारा रहना। यद्यपि यह स्थान चम्बई में जो कोठरी थी उससे खुला था। किन्तु न्यायालय जाने में तो उस कोठरी से भी मुक्ति मिल जाती थी, इसका हमें दुःख रहता था कि तिथि विलम्ब से क्यों दी जाती है। इसके कारण न तो पैरों में हलचल ही होती है और न मन को आनन्द ही होता है। केवल वन्दीगृह की सीमित जगह में घूमना कष्टकर प्रतीत होता था।

उस यातना का विश्लेषण मैं आज कर सकता हूँ। स्वतन्त्रता मनुष्य का सहज स्वभाव है। परतन्त्रता प्राप्त होने पर स्वतन्त्रता का मूल्य समझ में आने लगता है। स्वतन्त्र मनुष्य बार बार घंटों तक स्वयं को स्वेच्छा से एक कमरे में बन्द कर लेगा। किन्तु यदि उस पर उसी प्रकार प्रतिबन्ध लादा गया तो उसको पराधीनता की यातना होने लगती है। किसी को वन्दीगृह में डाल कर वहाँ उसके सुख के लिए कितने भी साधन उपलब्ध कराये जाने पर भी उस वन्दी-वास में उसके मन की जो स्थिति होती है उसकी भरपाई नहीं हो सकती।

दि० २२-६-४८ को न्यायालय बैठा। उस दिन मदनलाल के वकील श्री बनर्जी को छोड़ कर शेष सब उपस्थित थे। बचाव पक्ष के लिए वकीलों की नियुक्ति इस प्रकार हुई थी। नथूराम के लिये श्री ओक, नाना आपटे के लिये श्री मंगळे, करकरे के लिये श्री डागे, मदनलाल के लिये श्री बनर्जी, शंकर किर्स्तिया के लिये श्री मेहता, मेरे लिये श्री मणियार, सावरकर जी के लिए श्री भोपटकर और डा० परचुरे के लिये श्री इनामदार। कुछ दिनों बाद श्री मणियार बीमार पड़ गये तो मेरा पक्ष भी श्री इनामदार देखने लगे। श्री भोपटकर सावरकरजी के लिए होने पर भी सर्वमान्य बचाव पक्ष की दिशा का मार्गदर्शन वही करते थे। श्री गणपतराय और श्री जमनादास मेहता आदि वकील सावरकरजी के बचाव के अतिरिक्त सभी अभियुक्तों की सहायता करते थे।

इस अभियोग के अभियुक्त के साथ न्याय हो और उसके लिये हमारा भी सहयोग उनके साथ है इसके प्रकटीकरण के लिये अनेक प्रान्तों के वकील समय समय पर न्यायालय में आकर अपना कालतनामा प्रस्तुत करते रहते थे। यहाँ आकर वे बचाव पक्ष के वकीलों से विचार विमर्श करते और वहाँ रहना आवश्यक नहीं है यह जानकर बाद में वापस चले जाया करते थे। बगाल के श्री

मित्र और मद्रास के श्री गणपति भी इसी प्रकार अपनी उपस्थित लगाने के लिए आये थे। श्री पी० आर० दास ने तो सावरकर जी के पक्ष में न्यायालय में तर्क भी किया था। संयोग की बात यह थी कि इन्ही दास महोदय के भाई ने श्री अरविन्द घोष का अभियोग किया था और उनको निर्दोष मुक्त करवाया था।

दि० २२-६-४८ को न्यायालय ने हम पर आरोप प्रस्तुत किये। करकरे और गकर किस्तैया को उनके दुभाषियो ने आरोप समझाये। न्यायमूर्ति ने प्रत्येक व्यक्ति से आरोप के विषय में पूछा तो सबने एक स्वर से उन आरोपों को अस्वीकार कर दिया।

आरोप का उत्तर देने के लिए मदनलाल ने अपना लिखित वक्तव्य प्रस्तुत किया। उनका कहना था कि गांधी जी पर आघात करते हुए कोई पड्यंत्र रचा ही नहीं गया था। गांधी जी की मुस्लिम परस्ती की नीति से हिन्दुस्तान भर जो असन्तोष फैला था उसके प्रतीकात्मक निदर्शन के रूप में दि० २०-१-४८ को स्फोटक (बम) विस्फोट किया गया था।

आरोप का इन्कार करते हुए डा० परचुरे ने कहा, “मैं ग्वालियर का निवासी हूँ। दि० २०-१-४८ को जब गांधी जी का वध हुआ था तबतक ग्वालियर भारत में विलीन नहीं हुआ था। मुझे बन्दी बनाने के लिए भारत सरकार ने एक्स्ट्राडिक्शन वॉरेंट (अर्थात् प्रत्यर्पण-अविषय) लिया ही नहीं था। अतः मेरी इस न्यायालय में उपस्थिति मूलतः अवैध है, यह मेरा साग्रह निवेदन है।”

अभियुक्तों ने जब अभियोग को अस्वीकार किया तो फिर श्री दफ्तरी ने अभियोग की भूमिका पर प्रकाश डालना आरम्भ किया। दिन का काम पूर्ण होने पर उन्होंने न्यायाधीश से घटनास्थल का निरीक्षण करने की प्रार्थना की।

सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये कई बार घटनास्थल का निरीक्षण करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार का साग्रह कभी अभियोजकों की ओर से किया जाता है तो कभी वचाव पक्ष की ओर से। कभी कभी न्यायालय स्वयं भी इस कार्य को अपनी सुविधा के लिये आवश्यक समझता है।

दि० २०-१-४८ को प्रार्थना समा में जब विस्फोट हुआ था वह स्थल और गांधी जी जहाँ पर बैठा करते थे उस स्थल का अन्तर न्यायाधीश के ध्यान में लाया जाय और २० जनवरी की घटना से ३० जनवरी की घटना का कोई सम्बन्ध नहीं है ऐसा तर्क सम्भव हो सके इसके लिये वचाव पक्ष भी न्यायाधीश को घटनास्थल दिखाने में रुचि प्रकट करता था।

अभियुक्त यदि चाहें तो वे भी घटनास्थल पर चल कर देखें, इस दृष्टि से

न्यायाधीश ने अभियुक्तों से इस विषय में पूछा। नथुराम ने उत्तर दिया  
 “( आई एम नॉट पर्टीक्युलर ) मेरी कोई विशेष रुचि नहीं है।”

नाना आपटे से जब पूछा गया तो उन्होंने पर्टीक्युलर शब्द के ही आधार पर उत्तर दिया, “( आई एम वेरी पर्टीक्युलर ) मैं देखना ही चाहूंगा।”

करकरे, मदनलाल और मैंने भी घटनास्थल देखने की इच्छा व्यक्त की। शंकर किस्तैया, परचुरे और सावरकर जी ने अनिच्छा व्यक्त की।

दि० २४-६-४८ को प्रातः १० बजे घटनास्थल देखना निश्चित हुआ। न्याय-मूर्ति ने हमारे वहाँ ले जाने के प्रबन्ध के लिये आदेश प्रसारित किया।

हमारे पहुँचने से पूर्व न्यायाधीश, सरकारी पक्ष के वकील और विपक्षी वकील सभी वहाँ पहुँचे हुए थे। हम चारों अभियुक्तों को पुलिस की गाड़ी में बहा ले जाया गया था। घटनास्थल का सभी दृष्टियों से निरीक्षण आरम्भ हुआ।

हमारे विरुद्ध लगाये गये आरोपों को सिद्ध करने के लिये अभियोजक जो तर्क प्रस्तुत करेंगे उसका क्या क्या खण्डन और किस प्रकार हमें करना है इस दृष्टि से हम घटनास्थल का निरीक्षण कर रहे थे। हमारे लिये तो यह बहुत मामूली सी बात थी क्योंकि इस प्रकार तर्क विचार करने का कार्य तो हमारे वकीलों का था। जिस प्रकार कोई तटस्थ व्यक्ति उस स्थल का निरीक्षण करता क्या उसी प्रकार हम उसका निरीक्षण कर रहे थे? मैं समझता हूँ कि नहीं। वह स्थल जिस घटना के कारण प्रसिद्ध हुआ था उसकी पार्श्वभूमि में हम लोग थे। यही कारण था कि उस स्थल का निरीक्षण करने समय उक्त विचार हमारे मन में आता रहता था।

यह वह स्थल था जहाँ भारत के इतिहास का एक अध्याय समाप्त हुआ था। भारत की वर्तमान कायरता की राजनीति पर जिस व्यक्ति ने अनेक वर्षों तक अपना प्रभाव स्थापित किया था उस व्यक्ति का जीवन यहाँ समाप्त किया गया था।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की घातक नीति के कारण रक्त से लयपय हुए समाज की करुणा कहानी गांधी जी को सुनाने के लिये जहाँ लाया गया था यह वह स्थल था। देश विभाजन से आहत हुए व्यक्तियों के प्राणों को जहाँ मलहम लगाने की अपेक्षा कुरेदा जाता था, यह वह स्थल था। इसके विपरीत यही वह स्थल भी था जहाँ चाटुकार जन आपकी अहिंसा की विजय हुई है रक्तहीन क्रान्ति द्वारा आपने देश को स्वतन्त्र करवाया ऐसी स्तुति के द्वारा गांधी जी की प्रशंसा करने के लिये एकत्रित होते थे। पाकिस्तान से हिन्दुस्तान में आये हुए निर्वासितों को पुनः निर्वासित बनाकर हिन्दुस्तान से पाकिस्तान चले गये हुये मुसलमानों को पुनः यहाँ लाकर उनके घरवार उन्हें वापस देना चाहिये ऐसा मौलाना आजाद ने गांधी

जी से कहलाया, यह वह स्थल था। भारत की खून पसीने की कमाई को जबर-दस्ती पाकिस्तान को दिलाने के लिये गांधी जी ने अपना दुराग्रहपूर्ण अनशन किया था, यह वही स्थल था।

हम वह स्थल देख रहे थे और निकट अतीत का इतिहास हमारी दृष्टि में स्पष्ट होता जा रहा था। वह निकट अतीत हमें विशुद्ध नहीं प्रतीत होता था। वह निःशोणित अतीत नहीं था, वहाँ का वायुमंडल ही जैसे हमें रक्त से भरा हुआ प्रतीत होता था। स्वराज्य की प्राप्ति के लिये बहाये गये रक्त के कण हमें उसमें विद्यमान प्रतीत होते थे। देश विभाजन के कारण हुए रक्तपात की भूमिका उसमें विद्यमान थी। परिणामस्वरूप गांधी जी का रक्त भी उसी वातावरण में कणरूप में हलचल करता-सा हमें दिखाई दे रहा था। और शायद उसकी समाप्ति के लिये उन कणों को और भी रक्तिम करने के लिये हममें से किसी का रक्त जा कर उनमें मिलनेवाला था।

यह सब रक्त हमने स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये गिराया है ऐसा विचार हमारे मन में आया था। केवल ध्वजान्तर से सत्तान्तर की प्रक्रिया पूर्ण नहीं हुई थी। स्वराज्य के भीतर विभाजन था, विभाजन के भीतर रक्तपात था, रक्तपात के भीतर गांधी जी के प्राण थे और उनके प्राणों के भीतर हम अभियुक्तों में से न जाने कितने व्यक्तियों के प्राणों की आहुति सम्भावित थी। जब हम यह कह सकते हैं कि 'बिना रक्तपात के स्वराज्य प्राप्ति हुई' तो हम उन सभी हुतात्मा वीरों से लेकर जिन्होंने अपने जीवन इसके लिये होम दिये, उन क्रान्तिवीरों के, जिन्होंने इसके लिए असीम यातनायें भुगती, गांधी जी के रक्त तक का अपमान करते हैं। यह बात भले ही हमारे ध्यान में न आती हो क्योंकि हम आत्मवचना करते हैं, हम स्वार्थी हैं। किन्तु इतिहास की वास्तविकता यही है।

आज अनेक लोग उस घटनास्थल को देखने के लिये जाते हैं। उसे ऐतिहासिक स्थल का स्वरूप देने का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर मैं सोचता हूँ कि गांधी जी के उन अन्तिम दिनों में जब उनको अत्यन्तिक निर्णय लेने पड़ते थे उसके लिये प्रवृत्त करनेवालों के नाम और उसके लिये प्रमाण भी वहाँ संग्रहीत किये जायें। उससे गांधी जी सदृश एक प्रभावी व्यक्ति के वध के लिये किस प्रकार पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ इसका ज्ञान भी प्रेक्षकों को होगा और उस स्थल से सम्बन्ध रखनेवाला इतिहास भी एक ही दृष्टि से देखने का अमर प्राप्त होगा।

जिस समय हम उस स्थल का निरीक्षण कर रहे थे तो बीच बीच में हम अपने बगोनों ने कुछ प्रश्न करते रहते थे और कुछ जिताना की पूर्ति करते

रहते थे। यह बातचीत सभी के सामने होती थी। न्यायाधीश ने हमसे कहा था कि हम जो प्रश्न चाहें पूछें किन्तु इस बात का ध्यान रखें कि अभियोजको को आरोप सिद्ध करना है। इसलिये किसी प्रकार का स्वीकारदर्शक विधान न करें। निरीक्षण समाप्त हुआ। हम अपने वन्दीगृहों को वापस आये। दोपहर को दो वजे न्यायालय लगनेवाला था। तदनुसार निश्चित समय पर सभी अभियुक्त न्यायालय में पहुँचाये गये और वहाँ की कार्यवाही प्रारम्भ हुई।

किस दिन कितना कार्य न्यायालय में हुआ कौन क्या क्या बोला आदि सभी कुछ न्यायालय की दैनिकी में अक्षरशः अंकित किया जाता है। कौन सा साक्षी क्या बोला कितना समय बोला, वह सच बोला या झूठ, प्रति परीक्षण (जिरह) किसने किया आदि बातोंको जो महत्व रहता है वह केवल तात्कालिक स्वरूप का रहता है। अभियोग के कर्म का सारही केवल प्रस्तुत विषय के लिए पर्याप्त होगा।

अंकन का यह कार्य दि० २४-६-४८ से ६-११-४८ तक जारी रहा। अभियोजको ने १४९ साक्षी प्रस्तुत किये थे। उनमें से मन्त्रियों से लेकर मजदूरों तक और नेताओं से लेकर अभिनेताओं एवं अभिनेत्रियों तथा भाष्यकारों से लेकर चर्मकारों तक सभी स्तर के व्यक्ति थे। उनके वक्तव्यों के ७२० पृष्ठ हुए। शासकीय वकीलों ने प्रमाण के रूप से ४०४ कागजपत्र और ८० वस्तुयें प्रस्तुत की थी।

बचाव पक्ष ने ११९ कागजपत्र प्रस्तुत किये थे। दि० ८-११-४८ से दि० २२-११-४८ तक आरोपियों के वक्तव्य हुए। जो २५० पृष्ठों में समाये दि० १-१२-४८ से ३०-१२-४८ तक बहस जारी रही। श्री पी० आर० दास ने सावरकर जी की ओर से बहस की थी। नथूराम ने अपना अभिवक्तव्य स्वयं प्रस्तुत किया था।

अभियोग के मध्य तक अर्थात् सितम्बर के प्रारम्भतक का व्यय देखा तो विदित हुआ कि तबतक शासन के चार लाख रुपये व्यय हो चुके थे। श्री दफ्तरी को प्रतिदिन के १५०० रुपये दिये जाते थे। इसी प्रकार श्री पेरीगारा और श्री शाह प्रत्येक को ६०० रुपये, श्री ज्वाला प्रसाद को २५० रुपये प्रतिदिन दिये जाते थे। इसके अतिरिक्त बम्बई में किये काम के बदले प्रति घंटे के हिमाव से रुपये दिये गये थे। न्यायालय और वन्दीगृह के निर्माण के लिये ४७०० रुपये लगे थे। साक्षियों के भोजनादि पर ६००० रुपये तथा न्यायालय के कर्मचारी आदि अन्य लोगों के लिये दि० १७-५-४८ से ८-९-४८ के सवा तीन मास में १९००० रुपये व्यय हुए थे। ये कुछ मोटे मोटे आकड़े हैं। इससे इस अभियोग के स्वरूप की स्थूल कल्पना की जा सकती है।

३० दिसम्बर १९४८ को बहस समाप्त हुई थी। वह दिन हमारे लिये विशेष



स्मरणीय सा था। महाविद्यालय की पढाई समाप्त होते समय विद्यार्थी और प्राध्यापक परस्पर विदाई लेते हैं। वे जानते हैं कि अब भविष्य में इस प्रकार नित्य मिलना नहीं हो पावेगा। इसके साथ ही अतीत के सम्बन्ध एवं सम्पर्क के कारण उत्पन्न प्रेम एवं लगन का भी स्मरण हो आता है। उस अवधि में कोई कटुता भी उत्पन्न हुई होगी तो उस समय वह विलुप्त हो जाती है। भावुकतापूर्ण वातावरण में एक दूसरे से बात करके एक दूसरे से विदा होने का वह सम्मारोह होता है।

हम सभी अभियुक्त, दोनों पक्षों के वकील, न्यायमूर्ति, दुभाषिये, पुलिस जन, तथा अन्यान्य कर्मचारी सात मास तक परस्पर मिलते रहे। प्रत्येक की भूमिका पृथक् थी फिर भी मनुष्य मनुष्य के पास आ जाने पर सहज ही निर्माण होनेवाली भावनायें प्रत्येक के मन में निश्चित ही वास करती थी। जब न्यायालय का कार्य जारी था तो परस्पर पक्षविपक्ष में वाद-विवाद हुआ करता था, किन्तु इस समय वह सब विलुप्त हो गया था। अब हम यदि मिलेंगे तो निर्णय के दिन, अब यह समुदाय फिर इस रूप में एकत्रित नहीं होगा, ये ही सब लोग इस प्रकार पुनः मिलेंगे ऐसी सम्भावना नहीं है इस विचार से उस दिन के अन्त में न्यायालय को एक प्रकार से विदाई लेने-देने का स्वरूप प्राप्त हुआ था।

अभियोग के जारी रहते हुए न्यायमूर्ति की शान्ति ध्यान में रखने योग्य थी। किसी भी धारा पर वकीलों में परस्पर विवाद छिड़ जाता था, वह विवाद कभी तूल भी पकड़ लेता था। उसमें कटुता न बढे इसके लिये न्यायाधीश पक्ष-विपक्ष के दोनों वकीलों को अपने बेस्म में बुलाकर उनका समाधान करते थे। वकील भी विवाद तक ही उत्तेजित रहते थे। वाद में वे भी शान्त हो जाया करते थे।

एक बार दो वकीलों का विवाद तीव्र हुआ था। न्यायमूर्ति को कहना पड़ा था कि उन लोगों को ज्ञान होना चाहिये कि यह न्यायालय है। यदि उनको लड़ना हो तो न्यायालय से बाहर जा कर लड़ें। तब एक वकील ने कहा था—, “बाहर जा कर हमें एक साथ चाय पीनी होती है। उस मिठास में हम कड़वाहट मिलाना नहीं चाहते।”

न्यायालय हस्ती से गूँज गया। सभी के मन का बोझ हलका हुआ। चढ़ा हुआ पारा उतर गया।

नामान्यतया अभियोजकों ने अपने भाषणक्रम में एक विशिष्ट ऊँचे स्तर का अवलंब किया था। किन्तु शाब्दिक सघर्ष अनेक बार हुआ करते थे। वकीलों के ही इन शाब्दिक सघर्षों में एक बार सरकारी वकील श्री दफ्तरी को मुख से इस दुर्घटना के उपरान्त “अनैतिक अपराध” शब्द निकला था। नयूराम ने जहाँ तक मुझे स्मरण है, अपने वक्तव्य में उसका खडन किया था। अपने वक्तव्य में उसका इस प्रकार खण्डन किया था—

“कम से कम इस प्रकरण में नीति अथवा अनीति की जांच करने का अधिकार अभियोजको को नहीं है और न ही उस प्रश्न का निर्णय करने का अधिकार इस न्यायालय को है। यह उसके क्षेत्र से बाहर है। नीति की व्याख्या, समाज-समाज में, देश-देश में सदा सर्वदा से पृथक्-पृथक् होती रही है। किसी समाज में महिलाओं का परदे में न रहना अनैतिक कहलाता है, किसी देश में मद्यपान तक अनैतिक नहीं समझा जाता। किसी युग में ब्राह्मणेतरों को वेद विद्या विहित नहीं थी। किन्तु समयानुसार सब स्थानों पर यह सब बदलता गया। इस आधार पर नीति-अनीति का कोई त्रिकालाबाधित स्थिर नियम निर्धारित नहीं किया जा सका है।

यदि “हत्या” को अभियोजक अनैतिक घटना मानते हैं तो मैं कहूँगा कि आज शासन जितना अनैतिक व्यवहार करता है कदाचित् ही कोई अन्य इस प्रकार करता हो। क्योंकि उनको अनेक बार गोली चलानी पड़ती है इसमें अगणित हत्याएँ होती हैं। “हत्या” अनैतिक है यदि इसको तत्त्व अथवा सिद्धान्त मान लिया जाय तो फिर हमें अपने सभी देवी-देवताओं को अनैतिक मानना पड़ेगा। जिन देवी देवताओं को हम आज तक गर्व से मुरारि, त्रिपुरारि अथवा महिषासुरमर्दिनी आदि विशेषणों से विभूषित करते हैं, अब से भविष्य में उनको अनैतिक मान हत्यारे विशेषणों से सम्बोधित करना पड़ेगा। तब तो हम यही कहेंगे कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिये नहीं अपितु हत्या के लिये प्रवृत्त किया था। उसका निष्कर्ष हमको यह निकालना होगा कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अनीति सिखाई। निति-अनितिका निष्कर्ष निकालते समय हमें घटना के मूल में निहित भूमिका को ध्यान रखना होगा। मैं इसी को सिद्धान्त की बात मानता हूँ।

मेरा यह भी कहना है कि अभियोजको का नीति अथवा अनीति का प्रश्न सामने लाना न तो नियमानुकूल है और न ही उनको इस प्रकार का कोई अधिकार प्राप्त है। अमुक वकील अमुक पक्ष की ओर से कार्य कर रहा है अतः वह सत्य का पक्षपाती है, ऐसा मान कर चलना उपयुक्त नहीं। शासकीय पक्ष के वकीलों को जो शुल्क मिलता है, यदि उससे अधिक शुल्क बचाव पक्ष की ओर से दिया जाता तो वही वकील बचाव पक्ष की ओर से बहस कर सकते थे। ऐसी स्थिति में उन्होंने नीति का पक्ष छोड़ दिया है ऐसा नहीं कहा जा सकता। अतः वकीलों की नीति अनीति की जांच करने का इस न्यायालय को अधिकार नहीं है।

“सम्बन्धित घटना कानून के अन्तर्गत निषिद्ध अथवा दण्डनीय है या नहीं इतना ही न्यायालय के सम्मुख वकील प्रस्तुत कर सकते हैं। नीति-अनीति की छान-बीन के लिये हमारे देश में धर्म या व्यासपीठों की कमी नहीं है। यह उनका काम है वे करते रहेंगे। विधान की सीमा लिखितरूपेण निहित है। उसी लिखित

विधान के अंतर्गत इस न्यायालय की सीमा निर्धारित है। इसलिये यह न्यायालय केवल घटना की वैधता अथवा अवैधता पर ही विचार एवं निर्णय कर सकता है। यह धर्मपीठ नहीं है। इसलिये घटना, धर्म अथवा अवर्म या नैतिक या अनैतिक है इसका निर्णय न्यायालय नहीं कर सकता।”

श्री दफ्तरी ने नथूराम के इस आलोचनात्मक वक्तव्य पर आपत्ति प्रकट की थी। तब नथूराम ने न्यायमूर्ति को कहा था, “श्री दफ्तरी के ‘अनैतिक’ शब्द के प्रयोग पर मुझे यह टीकाटिप्पणी करनी पड़ी थी। यदि वे उस अनुपयुक्त शब्द का प्रयोग न करते तो इस प्रकार का विवाद ही नहीं उठता। ‘अवैध’ शब्द का यदि उन्होंने प्रयोग किया होता तो मैं उस विषय में मौन रहता।” इसके बाद नथूराम तुरन्त ही अभिवक्तव्य के अन्य विषयों की ओर मुड़ गये थे।

समय समय पर इस प्रकार से उत्पन्न कटुता अन्तिम दिवस समाप्त हो गई थी। अभियोजक, पुलिस अधिकारी आदि सभी ने उस दिन उदारता का परिचय देते हुए परस्पर विदाई ली थी। सबको विदित था कि एक दिन पुनः हम सब इस प्रकार एकत्रित होंगे, किन्तु उस दिन का वातावरण ही भिन्न होगा। वह दिन होगा निर्णय का दिन।

ऐसा अनुमान किया जा रहा था कि लगभग एकमास बाद निर्णय की तिथि विदित हो जावेगी। उस दिन तिथि निश्चित नहीं की गई थी। हम नित्य की ही भाति, खेल-कूद, पढ़ने आदि में अपना समय बिता रहे थे। जिन वकीलों ने इस अभियोग में हमारी सहायता की थी उन सभी को हमने बन्दीगृह के अधीक्षकों की अनुमति से धन्यवाद के पत्र लिख दिये थे। कभी कभी हम न्यायालय में हुई विचित्र घटनाओं पर चर्चा किया करते थे। कुछ दिन बाद हमको सूचना मिली कि दि० १०-२-४९ को निर्णय सुनाया जावेगा।

ज्यों-ज्यों निर्णय का दिन समीप आता जाता था त्यों-त्यों हमारे मनो में तनाव सा बढ़ता जाता था। परन्तु वह सह्य था। उसके दो कारण थे। एक तो हम अनेक व्यक्ति एक ही नाव के नाविक थे और दूसरे यह कि हमने अपने बचाव के लिये भले ही बहुत कुछ कहा होगा फिर भी हमारा अन्तर्दामी यह तो जानता था कि उस अवैध घटना की परिधि में हम कहा खड़े हैं। इसलिये सजा हुई तो कोई अनपेक्षित बात होगी अथवा अन्याय होगा ऐसा हमारे किसी के मन में नहीं था। यह बात दूसरी है कि यदि सजा हुई तो हम उसका प्रतिवाद उच्च न्यायालय में करेंगे, ऐसा हमने भले ही मन में सोचा हो।

हमें आत्मवचना का कोई कारण नहीं था। हमारे मनो की अवतक यह स्थिति हो गई थी कि जिसे प्रतिकूल कहा जाता है वही हमारा देव है। इस कारण मन पर तनाव आते हुए भी उससे वेदना नहीं होती थी।

दि० १०-२-४९ का सूर्य उदित हुआ। सभी अभियुक्त एक प्रकार की त्वरा एवं उत्सुकता से दैनिक कर्म में प्रवृत्त एवं उससे निवृत्त हुए। और फिर न्यायालय जाने की बाट जोहने लगे। उस दिन पुलिस का विशेष सुरक्षा-प्रबन्ध था।

न्यायालय भर गया था। वकीलगण भी बैठे थे। नित्य न्यायालय में उपस्थित रहने से कई लोगो को हम पहचानते थे। आज भी उनमें से अनेक जन यहाँ उपस्थित थे। स्मितो का आदान-प्रदान हुआ। वकीलो का अभिवादन एवं परस्पर कुशलक्षेम पूछना भी हुआ।

न्यायमूर्ति के आने की घोषणा से न्यायालय में पुनः सन्नाटा छा गया। उस शान्ति में गभीरता थी। विधि किसके जीवन से कैसा खेल खेलता है यह सुनने के लिए मानो सभी ने साँस रोक ली थी।

ज्यो-ज्यो एक एक करके प्रत्येक अभियुक्त के विषय में न्यायमूर्ति निर्णय सुनाते गये त्यो त्यो अभियुक्तो के मन का तनाव शान्त होता गया। उनके मानस की निश्चिन्ता प्राप्त होती गयी। निर्णय का सारांश इस प्रकार था :-

**नथूराम**—मृत्युदण्ड, अन्य दण्ड कुल १९ वर्ष।

**नाना आपटे**—मृत्युदण्ड, अन्य दण्ड कुल १७ वर्ष।

**करकरे**—आजन्म कारावास, अन्य दण्ड कुल १७ वर्ष।

**सदनलाल**—आजन्म कारावास, अन्य दण्ड कुल १५ वर्ष।

**शंकर किस्तैया**—आजन्म कारावास, अन्य दण्ड १२ वर्ष।

**गोपाल गोडसे**—आजन्म कारावास, अन्य दण्ड कुल १५ वर्ष।

**सावश्कर**—निर्दोष, अतएव बन्धनमुक्त।

**डा० परभुरे**—आजन्म कारावास।

**बड़गे**—क्षमा का साक्षी, शर्तों की पूर्ति की, अत बन्धनमुक्त।

दण्डितो को दिया गया दण्ड, सभी सजाएँ साथ साथ ही भुगतने का विधान था।

जो आरोप लगाये गये थे उनमें से कुछ आरोप सिद्ध नहीं हो पाये थे। नथूराम और नाना आपटे को न्यायमूर्ति ने कहा था कि अन्य आरोपो से आप लोगो को मुक्त किया जाता है। इसी प्रकार अन्य अभियुक्तो को भी जो आरोप उन पर सिद्ध नहीं हो सके थे उनमें मुक्त घोषित किया था।

शंकर किस्तैया का दण्ड ७ वर्ष कर दिया जाय, ऐसा अभिमत न्यायाधीश ने अपने निर्णयपत्र में व्यक्त किया था।

निर्णय पत्र ११० पृष्ठों में टाइप हुआ था। उसके ११० मुद्रित पृष्ठ हुए थे।

हमने अपना दण्ड सहज से स्वीकार तो कर लिया था, किन्तु उससे हमारा समाधान नहीं हुआ था। उस सहजता का प्रदर्शन करने की हमारी बहुत इच्छा थी। प्रकटरूप से अभियोग चलाने में ही वह हमारे लिये सम्भवनीय था।

जिस समय निर्णय सुनाया जा रहा था, हम सब शांति से उसको सुन रहे थे। जब निर्णय सुनाया जा चुका तो स्तब्धता छा गई। तब हम अभियुक्तों ने एक स्वर से निनाद किया—“स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय, हिन्दूराष्ट्र की जय, अखण्ड भारत अमर रहे, वन्दे मातरम्।”

इस प्रकार इस नाटक का पटाक्षेप हुआ। आज तक जिस रंगमंच के प्रकाश में हम अभिनय करते रहे थे उससे अन्धकार में विलीन हुए। वह अन्धकार कितने समय तक रहेगा, यह तो केवल विधि ही जानता था।

★ ★ ★

## वारह

### अँधेरे पथ की यात्रा

दि० १०-२-४९ को गांधी वध अभियोग सम्बन्धी न्यायालय का निर्णय सुन कर हम में से यदि कोई व्याकुल हुआ होगा तो वह दिगम्बर वडगे हो सकता है। यद्यपि वह हम में नहीं था, किन्तु हमारे सम्मुख ही था। निर्णय सुनकर वह रोया था।

वडगे की भावनाओं का विश्लेषण किया जा सकता है। यदि वह क्षमा का साक्षी नहीं होता तो अभियुक्तों की पंक्ति में खड़ा होता। उसको भी उसी प्रकार कोई दण्ड मिल जाता। उस पर सरकार ने जो शर्तें लगाई थी उसका उमने भली प्रकार पालन किया था अतः उसको क्षमा प्राप्त हो गई थी। उसको एक दिन का भी कारावास भुगतना नहीं था। सम्भावित संकट में मैं विलकुल बच गया यह जान कर कोई भी सुख की साँस लेगा, आनन्दित होगा, उल्लास के अधु भी प्रवाहित कर सकता है।

परन्तु वडगे के अधु उस प्रकार उल्लास के अधु नहीं थे। जिस पटयन्त्र को सिद्ध करना अभियोजकों के लिए अत्यन्त कठिन कार्य था उन पटयन्त्र को सिद्ध करने में वडगे की साक्षी ने महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की थी। अपने मन से वह जिनका सहयोगी बना था उन्हीं सहयोगियों को अँधेरे में ढूँढने में उमने सरकार की सहायता की थी। और उसके प्रतिदान स्वरूप उमको मुक्ति प्राप्त हुई थी। वडगे जानता था कि उमकी वह मुक्ति कल्पित मुक्ति है। उस मुक्ति से मिलनेवाला आनन्द विषुद्ध नहीं था। उस मुक्ति से उसके मन को मुर नहीं मिलता था।

बहने के सम्बन्ध में निर्णय सुनकर अथवा उससे पूर्व भी जब वह क्षमा का साक्षी बना था, हमारी भावनायें कलुषित रही होंगी, ऐसा सोचा जा सकता है। किन्तु वस्तुस्थिति वैसी नहीं थी।

दण्ड मुक्ताने के बाद हम लोगों को कहाँ रखा जायेगा, यह सम्भवतया पहले ही निश्चय हो गया था। निर्णय सुनाने के एक घण्टे बाद हमको वहीं लाल किले के कारावास में ले जाया गया और मध्यान्ह के अन्नाहार के रूप में मिलने वाले चने दिये गये। हम सोचने थे कि दण्ड के कार्यबहन का प्रारम्भ तो दुरा नहीं है बाद का देखा जावेगा।

ग्राम तक दण्डितों के कपड़े, वरतन और विस्तरे आदि वस्तुयें आ गईं। श्रेणी का निदेश न होने के कारण हमको 'सी' श्रेणी में रखा गया था। अर्थात् हमारे कमरे में से मेज, चारपाई आदि निकाली गई और भोजन भी उसी श्रेणी का दिया गया।

उन दिनों की बात है जब हम न्यायाधीन अर्थात् अण्डर ट्रायल थे। कहीं से एक बिल्ली का बच्चा आ कर चारदीवारी के कटिदार तारों में सटल कूद करने लगा। मनोरंजन के लिए हमने उसको अपने समीप बुला लिया। तनिक आश्वासन पाने पर वह बाड़े के अन्दर आ गया। हमने उसको दूध पिलाया। उसको वह स्थान भा गया। तब से वह हमारे साथ ही रहने लगा। किन्तु अभियुक्त बन कर नहीं। जब उसका जी करता वह अंगों को सिकोड़, छलांग लगाकर कटिदार तारों को पार कर बाहर निकल जाया करता था। मानो वह हमें स्मरण कराता हो कि बन्दीगृह का निवासी होने पर भी मैं स्वतन्त्र हूँ।

लाल किले के कारागार में नथूराम और मैं एक ही कोठरी में रहते थे उस बिल्ली का निवास भी वही था।

निर्णय की रात को भी नित्य की ही भाँति बिल्ली हमारे कमरे में आई, परन्तु उसको कुछ परिवर्तन सा दृष्टिगोचर हुआ। ऐसा उसके हाव भाव से प्रतीत होता था। कमरे में उस समय मैं अकेला ही था। नित्य की भाँति वहाँ चारपाई नहीं थी। मानो उसको लगा होगा कि उसकी अब वहाँ आवश्यकता नहीं है। उसकी 'ब' वर्ग की श्रेणी सम्भवतया छीनी गयी है।

मैंने उसको अपने समीप बुलाया, उसकी पीठ पर हाथ फेरा। उसको अपने विस्तार के भीतर कर ढक दिया और वह आराम से सो गई।

थोड़ी देर बाद मैं अपने सहज साव से मुड़ा तो बिल्ली एकाएक चौकी और विस्तार से बाहर निकल कर भाग गई, मानो उसके सिर कोई भूत सवार हुआ हो। मुझे भी पाँवों में बेड़ियाँ होने के कारण, जिनका कि अभी अभ्यास हुआ नहीं था,

नम्रराम त्रिनायक गोऽमे



नारायण ऊर्फ नाना बापटे





स्वातन्त्र्य वीर

वै० विनायक दामोदर सावरकर

आवाज से असुविधा होती थी और उसी आवाज से चौंक कर विल्ली भी वहाँ से भागी थी। सोने से पूर्व हमारे कमरे खोले गये थे और हमारे पावों में बेडियाँ आदि ठीक करके फिर कमरे बन्द किये गये थे।

रात को ग्यारह बजे इधर उधर धूमकर विल्ली को नथूराम का कमरा भी मिल गया। वहाँ उसको कुछ सुरक्षा की सी भावना हुई। वह स्थान उसको सुरक्षित प्रतीत हुआ। उस कमरे में घुस कर म्याऊँ-म्याऊँ करती वह नथूराम के विस्तरे में घुस कर सो गई।

निर्णय सुनाने का दिन एक तो उस दिन के नये पन के कारण अथवा एक के बाद एक इस प्रकार स्थितियों में निरन्तर एव शीघ्र होनेवाले अन्तर के कारण ऐसा लगा कि दिन शीघ्र ही बीत गया है। दूसरे दिन प्रातः हम उठे तो एक नये ही सप्ताह में जाने की सूचना सी हमें प्राप्त हो रही थी। सारा क्षेत्र उदासी से भरा-सा लगता था। हमारे चेहरे की क्या स्थिति है यह देखने के लिए हमारे पास साधन नहीं था, क्योंकि हमारे आइने पहले ही दिन ले लिये गये थे। परन्तु मन की दशा बुरी है इसकी प्रतीति मन ही मन होती थी। रात्रि को नींद भी मली प्रकार इसलिये नहीं आई थी कि पाँवों में बेडिया पड़ गई थी। उससे नींद में रुकावट आती थी। तनिक करबट बदलो तो बेड़ी खनखनाती थी मानो कह रही हो, “मैं हूँ सभालो मुझे”। पैर वह सदेश मस्तिष्क को देते थे। इस प्रकार वह समस्त शरीर को झकृत कर नींद विगाड़ देती थी। जैसे किसी निद्रालु प्रसूता को उसका बच्चा रोने पर उसकी सास या माँ जगा कर उस बच्चे को सम्भालने के लिये कहती है ठीक वैसे ही इन बेड़ी रुपी बच्चे को सम्भालने के लिये मस्तिष्क रुपी सास बन्दी रुपी प्रसूता को जागृत कर देती थी।

तदपि शान्ति से सोये थे नथूराम और नाना आपटे। उनको बेड़ी नहीं डाली गई थी, हमें उनके प्रति इससे छद्म ईर्ष्या सी होती थी। हमें नुकाराम का अभग विपरीतार्थक के प्रतीत हो रहा था। बचपन हमें प्राप्त हुआ था किन्तु अंकुश की भार भी हम पर ही थी। उलटे बड़प्पन उनके हिस्से आया था और सुख की नींद के क्षण भी वही चख रहे थे। वास्तव में वे मांग्यवाल थे।

हमारा अवस्था कैसी भी क्यों न हो किन्तु हमें एक सुख था। अपनी दयनीय अवस्था को कोई न देखे, विशेष कर निकटस्थ परिजन तो न ही देंगे, ऐसा हम चाहते थे। मनुष्य कभी कभी रास्ते पर जब गिरता है तो उसको चोट पट्टे-चूती है किन्तु उसकी चोट तब और बढ जाती है जब वह अनुभव करता है कि उसके गिरने को अन्य लोगो ने देखा है और फिर वह चोट की पीड़ा भूल लज्जा बचाने के लिये शट से उठ कर अपने मार्ग पर चलने लगता है।

उन चार दिनों में रिश्तेदारों में से कोई भी मिलने के लिये न आये, ऐसा मन में विचार आता था। क्योंकि हमें सन्देह होता था कि कहीं मन की वेदना चेहरे पर अंकित हो गई तो ? जब मन स्थिर हो गया है ऐसा स्वयं को विश्वास हो जाय तो फिर घरवाले मिलने के लिये आवें तो अच्छा है। किन्तु बाद में हमने अनुभव किया कि हमारा भय अकारण था।

पुनरावेदन—अर्थात् अपील—के लिये हमारे वकीलों की दौड़ जारी थी। दो तीन दिन के अन्दर ही उन्होंने हमसे भेंट की। हमारे मन के दुःख का प्रकटीकरण किसी के भी सम्मुख नहीं हुआ। हमको धीरज देने की आवश्यकता नहीं है ऐसा देखकर वकीलगण को सान्त्वना मिली। अल्प समय में ही उन्होंने पुनरावेदन के प्रारूप तैयार किये और फिर १४-२-४९ को हमारे आवेदन पंजाब उच्च न्यायालय में प्रस्तुत कर दिये गये।

वन्दागृह के हमारे अधिकारी भी वही थे। हम भी वही थे, स्थान भी वही था। रूपान्तर हुआ था तो केवल नियमों में। कल जो अभियुक्त थे, वे आज दण्डित बन गये थे। कल तक जिन पर सन्देह था अब उसकी पुष्टि हो गई थी। अब हम सब दोषी थे, अपराधी थे। और तदनुसार कारावास भोग रहे थे।

दो चार दिनों में हमारा दैनिक कार्यक्रम भी स्थिर हो गया। हमें लिफाफे बनाने का काम दिया गया। उस विशेष वन्दीगृह में और कुछ काम देना सम्भव भी नहीं था।

प्रातः उठने के बाद प्रातर्विधि होने के अनन्तर दस बजे तक काम लिया जाता था। उसके बाद एक घंटा भोजन और विराम के लिये होता था। फिर ग्यारह बजे चार बजे तक काम। उसके बाद वरामदे में टहलना होता था। पांच बजे भोजन आता था। भोजन के बाद कमरा बन्द होता था। हर दिन कमरा बदल दिया जाता था।

रात्रि के समय मल-मूत्र आदि त्याग के लिये एक मिट्टी का कुण्डा रखा रहता था। उस समय हम अकेले ही थे। कमरे में यदि दो हो तो मूत्रत्याग में भी सकोच होता था। अन्य उपाय न होने पर धीरे धीरे कर बाद में उसका भी अभ्यास हो गया। निर्लज्ज बनने की शिक्षा कारावास में मिलती है।

हमने अपने लिये उच्च श्रेणी मिलने के लिये आवेदनपत्र दिये। कुछ दिन तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त मदनलाल ने अनशन आरम्भ कर दिया। पांच-छ दिन बाद उसने अनशन समाप्त कर दिया। श्रेणी मिलने सम्बन्धी कुछ पत्र समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुए थे। लाभग एक माम के बाद शकर किर्तैया को छोड़ कर शेष सभी को 'ब' श्रेणी मिल गई थी। यदि संक्षेप में कहा जाय तो यहाँ कहना होगा कि सरदार वल्लभभाई पटेल ने गांधी वक्ता की पृष्ठभूमि को

ध्यान में रख कर हमारी श्रेणी में परिवर्तन करवाया था। पक्षपातरहित हो कर उनकी उदारता की प्रशंसा में करना चाहता हूँ।

दण्ड सुनाये जाने के बाद भी दो मास तक हमको उसी लालकिले के बन्दी गृह में ही रखा गया था। अपना आवेदन स्वयं प्रस्तुत करने की अनुमति नयूराम को मिल गई थी।

अप्रैल के मध्य में हमको मोटर मार्ग से दिल्ली से अम्बाला कारागार में ले जाया गया था। नियम के अनुसार यात्रा के समय नयूराम और नाना आपटे के पैरों में भी बेड़ी डाली गई थी। अम्बाला पहुँचने पर वह निकाल दी गई। मोटर से हम नीचे उतरे, खुला आगन देखा। यद्यपि उस आगन में हम मुक्त सचरग नहीं कर सकते थे तदपि उतना विशाल आगन देखने का अवसर तो आखो को सुलभ हुआ था। उस दर्शन मात्र से मन को तृप्ति सी हुई। नयूराम और आपटे को फाँसी की कोठरी में ले जाया गया। हम शेष बन्दिओं को हमारे लिये निर्धारित कोठरियों में ठूँसा गया।

हमारे अहाते के भीतर जो आगन था उसमें घूमने फिरने की हमको अनुमति थी। सामने लकड़ी का द्वार था। उस द्वार के मध्य में दो इंच व्यास का छिद्र था। जिससे बाहर का दृश्य थोड़ा सा देखा जा सकता था।

सुबह के समय सामने के आगन में कार्यालय का कार्य सम्पन्न होता था। नये आये बन्दिओं के अधिपत्र अर्थात् वारंट की जाच करना, उनकी अपनी वस्तुओं की सूची बनाना, उनका भार तौलना, उनकी उचाई आदि नापना, शरीर पर अंकित चिन्हों को रजिस्टर में अंकित करना, उनका काम आदि लिखना, इस प्रकार का कार्य उस कार्यालय में हुआ करता था। बन्दी को तुरन्त वस्त्रालय में भेजा जाता था। उसको दण्डितों के वस्त्र प्रदान किये जाते थे।

चार-छ दिन अम्बाला बन्दीगृह में भी हमारा कार्यक्रम स्थिर करने में लग गये। हमें कुर्सियाँ धुनने और वास की तौलियों के परदे बनाने का कार्य दिया गया। वह काम हम शीघ्र ही सीख गये और हाथों में गति भी आ गई। उनके प्रतिदानस्वरूप अक्षीक्षकों ने हमें विशेष छूट दी। विशेष अर्थात् जो सामान्यतया दी जाती थी उससे चार दिन अधिक। दिन का अधिकारा समय काम में व्यतात होता था। शेष समय विताने में विशेष कष्ट नहीं होता था। उन समय के लिये भी कुछ साधन हमको दिये गये थे।

बाहरी सप्तर में, किसको क्या शोभा देता है, इनके कुछ संकेत निर्धारित होते हैं। प्रथम श्रेणी में जो यात्रा करता है उसके वस्त्र धोबी के घुले एच द्यवस्थित होने ही चाहिये यह मनुष्य की धारणा होती है। ऊलजलूल सा प्रतीत होनेवाला

कोई व्यक्ति यदि प्रथम श्रेणी में देखा जाय तो उसके विषय में सन्देह होना स्वाभाविक माना जाता है। वह हमें विरोधाभास सा प्रतीत होता है। हम यह भी सोच लेते हैं ज़राचित कि वह मनुष्य गलती से वहाँ बैठ गया होगा।

यदि किसी घर में हमें बैडमिंटन की रैकेट टंगी दिख जाय तो उससे अनुत्पन्न हम उसके विषय में तर्क अथवा कल्पना करते हैं। उसके हत्ये पर पढ़नेवाली मुट्ठी कितनी कोमल होगी, वह किसी युवती की मुट्ठी होगी, तो वह युवती सुन्दर होगी, प्रसाधनो में लिपटी होगी, आधुनिक वेशभूषा और केश सज्जा से सज्जित होगी, इन प्रकार का तर्क मन में उठने लगता है। अविकाश तर्क सत्य भी सिद्ध होते हैं। किन्तु जब कभी वस्तुस्थिति इससे विपरीत दिखाई देती है तो अपने तर्क लडखटाने लगते हैं।

प्रायः जिसे लडकियों का खेल माना जाता है, वही बैडमिंटन का खेल अर्थात् उसकी सामग्री हमें दी गई थी। शरीर पर जेल के खट्टर के कपड़े, पैरों में लोह की वेडिया और हाथ में बैडमिंटन के रैकेट जैसा नक्शा यदि किसी ने देखा तो वह विभिन्न वेश की स्पर्शा में सर्व प्रथम आनेवाले व्यक्तियों में उन खिलाड़ियों को गिनती करेगा, हम तो अनेक दीवारों के भीतर बन्द थे, वहाँ बाहर का कोई व्यक्ति दर्शक बन कर कैसे आ सकता था, पारितोषिक लेने का अवसर प्रतिदिन खोया जाता था। हम खेलते थे।

मन में तर्क कुछ भी उठता हो, फिर भी सन्ध्या के समय उस खेल को भी बड़े मनोयोग से खेलते थे। बेड़ी की ताल पर खेलने की धीरे धीरे हम लोगो को आदत पड़ गई थी। कभी असमय पर वर्षा होने से आँगन में कीचड़ हो जाया करता था। उस फिसलन में झुकाव संभाल कर खेलने में अपना एक विरोध ही आनन्द था। अपने को सम्भालने के प्रयत्न में ही यदि कोई गिर गया तो जो कोई दो चार पुलिसवाले वहाँ खड़े रहते थे उनको मनोरंजन का अच्छा साधन मिला जाता था। कहते थे, फिर से !

अभिलेखों के ग्रंथ मुद्रित हो रहे थे, पुनरावेदन सुनने की शीघ्र ही शिमला में व्यवस्था होनेवाली थी। ग्रन्थ की एक एक प्रति हमको दी गई थी। नयूराम स्वयं ही अपना आवेदन प्रस्तुत करनेवाले थे इसलिए उनको एक अतिरिक्त प्रति भी दी गई थी। प्रायः ऐसे पुनरावेदनो के लिए न्यायपीठ पर दो न्यायमूर्ति बैठा करते थे। इस अभियोग के अभिलेखों की व्याप्ति और अभियोग का महत्व ध्यान में रखकर इस प्रकरण में न्यायासन पर तीन न्यायाधीशों की योजना हुई थी।

दि० १४-४-४९ को अभिलेख ग्रन्थ हमारे हाथों में आये थे। १५ दिनों बाद न्यायालय में उपस्थिति का दिन था। नयूराम ने अभ्यास करना और टिप्पणी

करना आरम्भ कर दिया था। दि० २ मई को शिमला उच्च न्यायालय में नुनवाई प्रारम्भ हुई।

समाचार पत्रों में प्रकाशित होनेवाली वार्ताओं से हमको शिमला में चलने वाले काम काज का अनुमान था। ९ या १० जून को अभिवक्तव्य पूर्ण हुए थे। कुछ दिनों बाद विदित हुआ था कि निर्णय दि० २१-६-४९ को सुनाया जावेगा।

उस दिन शिमला में सुनाया जानेवाला निर्णय उसी दिन हमको अम्शाला में विदित हो इस प्रकार की व्यवस्था कर दी गई थी। शाम तक हम निर्णय के वृत्त की राह देख रहे थे। शाम को हमको विदित हुआ कि निर्णय एक दिन बाद अर्थात् २२-६-४९ को प्रकट किया जावेगा। हमें कुछ विचित्र सा लगा। इतने दिन तो हमने प्रतीक्षा ही की थी एक दिन और प्रतीक्षा करने में क्या बिगाड़ सकता था। क्या हम यह सोचते थे कि उच्च न्यायालय से हमें मुक्ति मिल जावेगी? जो हो, मन को कुछ बुरा सा ही लगा।

इस अवस्था में हमें मनुष्य स्वभाव की एक विशेषता को विचार करना पड़ेगा। जो कुछ प्रतिकूल है वही हमारे भाग्य में लिखा है ऐसी मन की धारणा होने पर और उस प्रतिकूलता के लिये मन की सिद्धता होते हुए भी मन लालची होता है, इस तथ्य को भूलाया नहीं जा सकता। कदाचित् विधाता अनुकूल ही हों जाय इस प्रकार की आशा मन में स्थान बना लेती है कदाचित् उसी में जीवन की प्रेरणा होती है। अथवा प्रतिकूलता में से भी कुछ अनुकूलता का अवसर प्राप्त होगा, आज न सही कल ही सही कुछ तो परिस्थिति बदलेगी इस आशा पर वह राह देखता हुआ दिन काटता है।

उस एक दिन के विलम्ब से मन बहुत ही व्यग्र हुआ था। काल अपनी गति से चलता है। घड़ी की सुइयों को तो आगे पीछे सरकाया जा सकता है किन्तु काल के चक्र में हम किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकते। गनं गनं दिन भी बीतता गया। दूसरा दिन उदित हुआ। शाम तक आशका चरम सीमा तक पहुँचनेवाली थी और फिर अपना अपना भवितव्य समझ कर तब हमारे मन उस नई परिस्थिति में स्थिर होनेवाले थे।

निर्णय की घोषणा हुई। नथूराम, नाना आपटे, करकरे, मदनमोहन और मोरे आवेदनों को अस्वीकार कर लिया गया। शेष बचे डा० परचुरे और धवर किस्तैया।

डा० परचुरे ने तो न्यायाधीश के सम्मुख स्वीकारोक्ति दी थी। लालकिले के विशेष न्यायाधीश ने डा० परचुरे को दोषी ठहराया था। उन्होंने भी आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया था। उच्च न्यायालय के तीनों न्यायाधीशों को वह स्वीकारोक्ति अग्राह्य प्रतीत हुई। विशेष न्यायाधीश का

निर्णय उनको अयुक्त प्रतीत हुआ। और उन्होंने अपने निर्णय में डा० परचुरे को मुक्त कर दिया।

कहाँ तो आजन्म कारावास का दण्ड और कहाँ निर्दोष निर्मुक्ति। इन दोनों के अन्तर की गणना किसी प्रकार भी नहीं की जा सकती। कष्टमय बन्दीसा एकाकी जीवन बिताते हुए कभी शरीर थक जाने से कभी मन को आघात पहुंचने से मृत्यु का ग्रास बन जाना, यह आजन्म कारावास की परिणति तो हो सकती है। इसके विपरीत स्वतन्त्र जीवन बिताने का अधिकार प्राप्त होना यह निर्दोष मुक्ति का परिणाम होता है। सजा के रूप में ४-४½ मास का कारावास ही डा० परचुरे को भुगतना पड़ा था।

और शकर किरतैया। किसी एक झुंड में अटका हुआ परनु बाद में उस झुण्ड के साथ पैर रखनेवाला यह पद्मशाली जातिका लड़का। 'कद में मझोला, रंग से काला शरीर से भगवत और खुरदरा। शोलापुर से दक्षिण के तेलुगु भाषी प्रदेश में कहीं उसका घर होगा। उसे अपने मा बाप की याद तो आती थी, किन्तु उसका आज का स्थान ही ऐसा था कि वहां पर वह उनकी याद के अतिरिक्त और कुछ कर भी नहीं सकता था। जब तक उसको दण्ड घोषित नहीं किया गया था तबतक उसको दूर ही रखा गया था, हमसे भी नहीं मिलने दिया जाता था। इससे उसकी पूछताछ करना हमारे लिये भी सम्भव नहीं था। बड्गे के पास नौकरी क्या की उस भयंकर पडयन्त्र में उसको फसा लिया गया। बिना पतवार की नौका की भांति नियति की तरंगों के साथ वह लहराता था। मुझे कहा जाना है, मेरी दिशा कौन सी है, किस वाहन से यात्रा की जावेगी, नौका का कर्णधार कौन होगा इस में से किसी भी बात का उसको ज्ञान नहीं था। उसको जब सजा सुनाई गई तो उसका भी अनुवाद उसको उसके दुर्भाग्यवश अर्थात् श्रीमती कमलम्मा ने उसकी तेलुगु भाषा में बताया था। परन्तु अनुवाद का अभिप्राय अर्थ तो नहीं होता। सीधी साधारण सजा से भी ब्रह्माण्ड स्मरण हो आता है शायद ब्रह्माण्ड के परे पहुँचाने वाली इस सजा का अर्थ समझना सरल बात नहीं थी। मैं कभी मुक्त नहीं होऊंगा, सदा बंदीगृह में ही रहूँगा इतना तो अर्थ उसकी समझ में चुरन्त आ गया क्योंकि पुलिसवाले हमारे साथ ही उसको बन्दीगृह की ओर ले जा रहे थे।

मुझे दण्ड क्यों दिया गया है ? मैंने क्या किया है ? वह सदैव अपने मन से और दूसरों से इस प्रकार के प्रश्न पूछा करता था। उसने स्वयं बड्गे से प्रतिप्रश्न किये थे। न्यायालय की ओर से उसको इस प्रकार की अनुमति प्राप्त हुई थी। शरकर ने प्रत्येक प्रश्न बहुत ही सुसंगति से पूछा था। बड्गे स्वयं को बोखा दे रहा है, इस प्रकार मुझको फसा कर वह स्वयं खिसक जानेवाला है, ऐसी उसकी

धारणा बन गई थी। अपना विपाद यद्यपि वह प्रकट नहीं कर सकता था तथापि दुःख तो उसको बहुत हुआ ही था।

भुंसे सजा हो गई है और बड़े मुक्त हो गया है, यह भी शकर ने देखा। इतने दिन दूर रहनेवाले शकर को अब हमसे सहारा प्राप्त हो रहा था। दण्ड सुनाये जाने के बाद पुनरावेदन का भी कोई मार्ग होता है यह बात उसको हमारे सम्पर्क में आने पर विदित हुई थी। हमने उसको यह भी बताया था कि यदि उच्च न्यायालय की समझ में यह बात आ जाय कि वह उस काण्ड में निर्दोष है तो उसको मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है। इससे उसको कुछ ढाढस बचा। थोड़े ही दिनों में उसने अपना भूविषय भी अपने साथी दण्डितों के प्रवाह के साथ मिला दिया।

जब शकर को यह विदित हुआ कि उच्च न्यायालय ने उसको मुक्त कर दिया है तो इससे वह प्रफुल्लित हो गया। बाहर आ कर उसको क्या करना है, इसको समझाने के लिये वह अपने हाव भाव प्रकट करता था और कभी कभी बोल कर भी दिखाता था।

डा० परचुरे को मुक्त तो कर दिया था। किन्तु फिर भी उनको एक दुःख था। उन्हें डम घटना का अन्वयार्थ ज्ञात था। उन्होंने भी अपना जीवन हिन्दू सघटन के कार्य में व्यतीत किया था। विमाजन के दिनों में शेष भारत में भी अनेक स्थानों पर हिन्दुओं पर आक्रमण हुए थे। ग्वालियर में भी इस प्रकार का आक्रमण होने का सम्भावना थी किन्तु उसको रोक दिया गया था। इसका प्रमुख श्रेय डा० परचुरे को था। नथूराम की फासी की सजा किसी प्रकार उससे कब होगी इसकी सम्भावना नहीं थी। क्योंकि उन्होंने उस दण्ड के विरुद्ध किसी प्रकार का पुनरावेदन किया हुआ नहीं था। नाना आपटे की हार्दिक इच्छा थी कि उनका मृत्यु दण्ड आजीवन कारावास आदि में परिवर्तित हो जाय, किन्तु वैसा नहीं हो सका। यही वेदना डा० परचुरे के मन में रह गई थी।

‘शासन विशेष दयादान के अपने अधिकार को गोपाल गोडमे के सम्बन्ध में उपयोग करे’ ऐस अमिमत अपने निर्णय में उच्च न्यायालय ने व्यक्त किया था। किन्तु मेरा अनुमान है कि इस अमिमत पे शासन का क्रोध ही बढ़ा होगा। न्यायाधीश पर किसी प्रकार का आरोप नहीं लगाया जा सकता था किन्तु उनके अमिमत की उपेक्षा तो की जा सकती थी? शायद इसी कारण शासन ने अपने दयादान के विशेष अधिकार का भी भुझ पर जो उपयोग किया वह पक्ष में नहीं अपितु विरोध में। सरकार ने न्यायाधीश के अमिमत का प्रतिशोध मेरे साथ दुर्व्यवहार करके किया। ज्यो ज्यो दिन बीतते जावें त्यो त्यो घटना की तीव्रता कम होती जानी चाहिये। किन्तु मेरे साथ जो व्यवहार किया गया उसके आचार



पर यही कह सकता हूँ कि ज्यो ज्यो मेरी मुक्ति के दिन समीप आते गये त्यो त्यो मेरे साथ क्रूरता बढ़ती गई। यदि न्यायाधीश मेरे सम्बन्ध में सहानुभूतिपर अभिमत व्यक्त न करते तो कदाचित् शासन मेरे साथ इतना दुर्व्यवहार न करता।

न्यायालयीन पद्धति के अनुसार उच्च न्यायालय का निर्णय प्रथम उम न्याया-लय के समीप गया जिसने हमको सजा दी थी और उसके बाद अम्बाला बन्दीगृह में गया। इस प्रक्रिया में ३-४ दिन लग गये। डा० परचुरे और गंकर किस्तीया को मुक्त होने में इसी कारण ३-४ दिन लग गये। वे दोनों इस अभिमोग में से निर्दोष मुक्त हो गये। अब हम पाच ही शेष रहे। नथूराम और आपटे तो फासी की कोठरी में रहते थे और मदनलाल, करकरे और मैं आजन्म कारावास के बन्दी अलग कोठरी में रहते थे।

इंगलैंड की प्रिवी काउंसिल उस समय अवशिष्ट अर्थात् खण्डित भारत का सर्वोच्च न्यायालय था। उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध वही पुनरावेदन किया जा सकता था। कम से कम अपने सम्बन्ध में पुनरावेदन न करने का नथूराम का विचार था। उनकी धारणा थी कि यदि उन्होंने पुनरावेदन नहीं किया तो सरकार को मुझे फासी देने का अधिकार बना रहेगा। किन्तु उनकी यह धारणा गलत थी। क्योंकि यदि अन्य अभियुक्त सर्वोच्च न्यायालय में पुनरावेदन करें तो उसके निर्णय होने तक प्रत्येक मृत्यु दण्डित का दण्ड अस्थायी रूप से स्थगित कर दिया जाता है। फासी को रोक दिया जाता है और अन्य सामान्य सजा चलती रहती है।

दिल्ली के लाला गणपत राय एडवोकेट यद्यपि हमारे अभियोग में सावरकर जी का काम देखते थे, तथापि वे सभी कामों में अग्रसर रहते थे। हमारे रिस्तेदारों की भेंट आयोजित कराने से लेकर हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति तक का वे ध्यान स्वयं करते थे। आजकल वे सर्वोच्च न्यायालय के एडवोकेट हैं।

शिमला उच्च न्यायालय का निर्णय ही जाने पर लाला गणपतराय ने दि० २९-७-४९ को अम्बाला जेल में हम से भेंट की। उन्होंने नथूराम को यह जवाब दिया कि सभी का पुनरावेदन करना उचित होगा। यह बात नथूराम ने भी स्वीकार कर ली। पहले की ही भांति दण्ड विधान की धारा ३०२ के अन्तर्गत सिद्ध हत्या का आरोप और उसके प्रतिकार में प्राप्त दण्ड के विषय में किसी प्रकार का आवेदन न करते हुए अन्य आरोप और उनके प्रतिकार में दी गई सजा के विरुद्ध पुनरावेदन किया। अन्य सभी अभियुक्तों ने भी पुनरावेदन किया। लंदन की दो विधि सस्थाओं ने इस सम्बन्ध में हमारी बड़ी सहायता की। ये सस्थाएँ थी—डब्ल्यू० डब्ल्यू० वाक्स एण्ड क० तथा बैटरी। कैसरी के लंदनस्थित

सम्पाददाता श्री द०वि० ताम्हणकर ने अगस्त के प्रारम्भ में लाला गणपतराय को इस विषय में सूचना दी थी। लन्दनस्थित हमारे वकीलो ने दि० १५-९-४९ तक आवेदन प्रस्तुत किये थे। दि० १२-१०-४९ का दिन पूर्व श्रवण के लिये नियत किया गया था। विधि सस्था की ओर से श्री मैगा कार्य देख रहे थे। श्री दफ्तरी भारत सरकार की ओर से काम देखते थे।

दि० १२-१०-४९ को पूर्व श्रवण में ही प्रिवीकाउसिल ने पुनरावेदन वापस कर दिये थे। हमारी सजा पूर्ववत् रही। नथूराम तथा आपटे को मृत्युदण्ड घोषित करने के बाद भारत के अनेक समाचार पत्रों ने इस सम्बन्ध में जनमत संग्रह करने का उपक्रम किया था। इस प्रकार के समाचारों को हमने दिल्ली के कुछ समाचारपत्रों में पढ़ा था। तब हमने देखा था कि अधिकांश मत फाँसी के विरोध में थे। उसके अनेक कारण भी प्रस्तुत किये गये थे। सहसा पाठकों के इस प्रकार के पत्रों का प्रकाशन उन समाचार पत्रों ने बन्द कर दिया था। यदि सरकार ने फाँसी देने का निर्णय कर लिया हो तो लोकमत के आधार पर स्थिर शासन लोकमत के विरुद्ध व्यवहार करता है, कही यह बात बल न पकड़ जाय इस दृष्टि से सरकार ने सम्भवतया इस प्रकार के पत्र प्रकाशन प्रक्रिया को बन्द करवा दिया होगा।

इस सम्बन्ध में 'हरिजन' के उस समय के सम्पादक स्वर्गीय श्री किशोरीलाल मशरूवाला ने भी कई लेख लिखे थे। उनका भी यही कहना था कि नथूराम को तो मृत्युदण्ड दिया जाय किन्तु नाना आपटे की सजा को दूसरी सजा में परिवर्तित किया जाय। मुझे लगता है कि अपने निष्कर्ष में दो तर्क उन्होंने प्रस्तुत किये थे वे पूर्ण नहीं थे। 'हरिजन' का प्रकाशन गांधीवाद के प्रचार के लिये किया जाता था। गांधीवाद की भूमिका में यह कहना कि फाँसी का निर्णय न बदल दिया जाय एक प्रकार से असंगत है। गांधी जी के जीवन काल में ही इस प्रकार का एक उदाहरण हो चुका था। अब्दुल रशीद ने स्वामी अद्धानन्द जी की हत्या की थी। अब्दुल रशीद को फाँसी न दी जाय इस प्रकार का मत गांधी जी ने अभिव्यक्त किया था। 'आई प्लीड फॉर श्री अब्दुल रशीद' ऐसे शब्द गांधी जी ने ढाका कांग्रेस में कहे थे। उनके द्वारा उसके लिये प्रस्तुत कारणों के तत्व के रूप में स्वीकार किया जाय तो उन्हें गांधीवाद के क्षेत्र के भीतर ही माना जावेगा। स्वर्गीय किशोरीलाल मशरूवाला उस तत्व के अनुसार नथूरामको फाँसी न दी जाय, इस प्रकार का निष्कर्ष निकाल सकते थे।

गांधीवाद के अर्थ क्या हैं? जिनको गांधी जी ही समझ सकें वही। इस प्रकार की आलोचना गांधी जी के जीवन काल में भी होती थी। गांधी जी के बाद उनके शिष्य समुदाय ने फाँसी प्रकरण की जो सगति लगाई वह किसी भी तत्व के

अनुसार नहीं थी यही कहना होगा। और यदि वह गांधीवाद प्रणीत थी, ऐसा कहना हो तो जो गांधीवाद गांधी जी के सम्मुख ही जिनना विसंगत था उतना ही वह उनके वाद भी विसंगत रहा इन तथ्य का भी स्मरण रखना होगा।

गांधीवाद के क्षेत्र में हृदय परिवर्तन यदि कोई परिपाटी थी तो उसका प्रयोग तभी सिद्ध हो सकता था कि जब फानी का दण्ड अमान्य करवा दिया जाता। नयूराम को सजा में किसी प्रकार की छूट अथवा सन्तुष्टि की भी आवश्यकता नहीं थी। वह तो स्वयं ही फानी पर चढ़ने के लिये तत्पर थे। अतः वास्तोलाप द्वारा उनके मन को परिवर्तन करना और उनके पूर्वग्रह को बदलने के लिये उनकी विवश करने की कम से कम चेष्टा करना तो सहज साध्य था। गांधी जयन्ती के अवसर पर 'गांधी जी के तत्वों के अनुसार व्यवहार करो। इन प्रकार का उपदेश देने का अधिकार उन लोगों को प्राप्त हो सकता था। किन्तु वह भी नहीं रहा। अवसर होने पर भी उन्होंने उन अधिकार को खो दिया। केवल सूत्रा उपदेश उनके लिये शेष रह गया। और उपदेशक यह भूलते हैं कि उन उपदेश के पट में भी एक व्यंग्य भरा रहता है। वह अर्थात् "तुम्हारा व्यवहार तो नीति युक्त होना चाहिये। हम भले ही किसी प्रकार का भी व्यवहार करें। और हमारे व्यवहार के विषय में किसी को कुछ पूछने का अधिकार नहीं है।" ऐसा दर्पपूर्ण मन का प्रभाव उन उपदेश पर अकित रहता है।

इस तुलना की दृष्टि में गांधी जी के पुत्र श्री रामदास गांधी के प्रयत्न सच्चे और आस्थायुक्त प्रतीत होते हैं। नयूराम और आपटे को फाँसी न दी जाय ऐसा वे मन से चाहते थे। उनका लगातार पत्रव्यवहार जारी था। गांधी जी के तत्वों के ठेकेदारों को नयूराम से विचार विमर्श हो ऐसी उनकी इच्छा थी। किन्तु शासन ने उनके उद्देश्य की पूर्ति नहीं होने दी। कदाचित् शासन को लगा होगा कि "गांधीवाद" नामक कोई सिद्धांत उच्चारण के लिये भले ही हो किन्तु व्यवहार के लिये नहीं। अथवा फानी देने से ही हम गांधी जीके सच्चे अनुयायी सिद्ध होंगे ऐसी उनकी धारणा रही होगी। किन्तु दोनों ही भूमिकाओं में विसंवाचित्व था, यह आज भी स्पष्ट है।

नयूराम या नाना आपटे मश्रूवाला के अनिमित्त पर अथवा रामदास गांधी के प्रयत्नों पर निर्भर नहीं करते थे। दूसरों के भरोसे उन्होंने अपनी जान को खतरे में नहीं डाला था। कोई तो भी हमको बचा ही लेगा ऐसी धारणा मन की दुर्बलता को व्यक्त करती है। और ऐसी धारणा के आधार पर जो प्राण हथेली पर रखते हैं, जब कोई उनकी सहायता के लिये नहीं आता है तो फिर उनकी स्थिति दयनीय हो जाती है। उनकी एक निष्ठा थी, उस निष्ठा के लिये अपने प्राण भी उनको तुच्छ प्रतीत होने लगे थे। उस निष्ठा के लिये इस सीमा तक वे उत्सर्ज-

एकरूप हो गये थे। वह निष्ठा गलत थी अथवा सही या कैसी भी थी उसके विषय में विचार विमर्श के लिये यह उपयुक्त अवसर नहीं है और मेरा उस पर किसी प्रकार का कथन उपयुक्त भी नहीं होगा। क्योंकि मैं स्वयं गांधी वध काण्ड का एक अभियुक्त था। अतः मेरा उस पर किसी प्रकार का कथन पक्षपात रहित नहीं समझा जावेगा। यद्यपि नयूराम अथवा आपटे की उस समय की घटनाओं पर उनकी भूमिका को जिस प्रकार भी हम देखते हैं वह केवल इतिहास के रूप में ही देखते हैं।

दया की याचना करना अर्थात् अपनी दैनंदिन मृत्यु की याचना करना, इस प्रकार के उस समय नयूराम के उद्गार हुआ करते थे। दि० ११-११-४९ को नयूराम को माता पिता की ओर से एक आशीर्वादात्मक तार प्राप्त हुआ था। उनकी इच्छा थी कि माता पिता जी को एक सान्त्वनात्मक पत्र भेजा जाय। पत्र यदि हिन्दी या अंग्रेजी में लिखा गया हो तो उसको तुरन्त जाच हो जाती और उसे गन्तव्य स्थल पर भेज दिया जाता था। किन्तु मराठी में लिखा गया पत्र पहले जाच के लिए बम्बई हासन के पास भेजा जाता था वहाँ से वापस आने पर फिर उसको गन्तव्य स्थान पर भेजा जाता था। इस प्रकार इस प्रक्रिया में दो-तीन सप्ताह लग जाया करते थे। इस बात को ध्यान में रखते हुए पत्र शीघ्र निकल जाय इस विचार से उन्होंने हिन्दी में लिखने का निश्चय किया।

नयूराम के पत्र लिखने का उद्देश्य था पुत्र शोक के अवसर पर माता पिता को कुछ आश्वासन देना। नयूराम का हृदय परिवर्तन करने की दिशा में कोई कार्य नहीं किया गया था। करने की आवश्यकता भी नहीं थी। अपना कृत्य अवैध है और उसका दण्ड मृत्यु है यह जितना सत्य है उतना ही सत्य यह भी है कि वह कृत्य विचारपूर्वक किया गया है और उसकी सजा भुगतने का सामर्थ्य भी उनमें है, यह बात अपने माता पिता के मन में घँसाने के लिए ही उन्होंने पत्र लिखा। अधिकारी वर्ग ने पत्र की जाच की और उसे तुरन्त ही अपने गन्तव्य की ओर भेज दिया। पत्र इस प्रकार था।

अम्बाला

दि० १२-११-४९

परम बन्दीय माता जी और पिता जी,

अत्यन्त विनम्रतापूर्वक अन्तिम प्रणाम।

आपका आशीर्वादात्मक तार प्राप्त हुआ। आपने अपने स्वास्थ्य और दृढ़ अवस्था को दृष्टि में रखते हुए, यहाँ तक न आने की मेरी विनम्रता को स्वीकार कर लिया, इससे मुझे बड़ा संतोष हुआ। आपके छायाचित्र मेरे पान हैं, उनका पूजन करके ही मैं ब्रह्म में विलीन हो जाऊँगा।

व्यवहारिक और लौकिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो आपको इन घटना से बहुत दुःख होगा। इसमें सन्देह नहीं। किन्तु यह पत्र मैं किसी प्रकार के दुःखावेग अथवा दुःख की चर्चा के लिये नहीं लिख रहा हूँ। आप गीता के नियमित पाठक हैं, पुराणों का अध्ययन भी आपने किया हुआ है। जिन श्री कृष्ण ने गीता ज्ञान की गंगा प्रवाहित की उन्हीं श्रीकृष्ण भगवान ने राजसूय यज्ञभूमि अर्थात् युद्धभूमि पर शिशुपाल जैसे राजा का अपने सुदर्शन चक्र से वध भी किया है। किन्तु क्या कोई कह सकता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध कर कोई पापकृत्य किया? न केवल शिशुपाल का ही अपितु अनेक अहंकारी अनुरों का वध भी उन्होंने विश्वकल्याण की भावना से किया और फिर गीता उपदेश द्वारा उन्हीं श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने दन्तु दान्तवों की हत्या के लिये प्रवृत्त किया था।

पाप और पुण्य मनुष्य की कृति में नहीं उसकी मनोभावना में परन्वा जाता है। दुष्टों को दान देना पुण्य नहीं समझा जाता, उसे अघर्म माना गया है। केवल एक सीतामाता के कारण रामायण की कथा बन गई और एक द्रौपदी के कारण महाभारत का इतिहास बन गया। सहस्रावधि महिलाओं का शील हरण हो रहा था और शीलहर्ता राजसूय की हर प्रकार से सहायता के मत्त हो रहे थे। इस स्थिति में अपने प्राणों के भय से अथवा जननिन्दा की दंका से डर कर कुछ भी न कर मूकद्वेषा वने रहना मुझसे सहन नहीं हुआ। मैं समझता हूँ कि उन सहस्रावधि महिलाओं के आशीर्वाद आज मुझे प्राप्त हैं।

मैं अपनी मातृभूमि के चरणों पर अपना बलिदानों मस्तक प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरे इस कृत्य द्वारा मेरा अपना कुटुम्ब और उसके साथ कुछ अन्य कुटुम्बों की दुर्दशा अवश्य हो गई है। किन्तु मेरी दृष्टि के सम्मुख छिन्न-विछिन्न मन्दिर, मुण्डित मस्तकों की शृङ्खला, बालकों की निर्मम हत्या, रमणीयों की विडम्बना हर समय विद्यमान रहते हैं। आततायी और अनाचारी दुष्टों को मिलनेवाला साहाय्य नष्ट करना मैंने अपना कर्तव्य समझा था।

मेरा मन शुद्ध है और मेरी भावना भी उसी प्रकार अत्यन्त शुद्ध थी। कहने वाले भले ही कुछ कहते रहें किन्तु मैं समझता हूँ कि एक क्षण के लिये भी मेरा मन विवृण्व नहीं हुआ है। यदि ससार में कोई स्वर्ग नाम का स्थान है तो मेरा स्थान वहाँ सुरक्षित है, ऐसी मेरी धारणा है। उसके लिये मुझे किसी प्रकार की विशेष प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं होगी। यदि कहीं मोक्ष है तो उसकी कामना मुझे है।

दया के नाम पर अपने जीवन की याचना करना मुझे तनिक भी रुचिकर नहीं। और भारत सरकार को धन्यवाद देता हूँ कि उसने स्वतः ही भूखपर किन्ती प्रकार की दया का दर्शन कर मेरे मृत्यु दण्ड को नहीं घटाया। दया की भिन्ना के

आधार पर जीवित रहने को मैं वास्तविक मृत्यु मानता हूँ। मृत्यु दण्ड देनेवालों से मुझे मारने की शक्ति नहीं है। मेरा बलिदान मेरी मातृभूमि अत्यन्त प्रेम से स्वीकार करेगी। मृत्यु मेरे सामने नहीं आई अपितु मैं स्वयं ही मृत्यु के सम्मुख जा कर खड़ा हो गया हूँ। मैं मृत्यु की ओर प्रसन्नवदन दृष्टिपात कर रहा हूँ और वह भी एक मित्र की भाँति मेरा आलिंगन करने के लिये आतुर है।

आपुले मरण पाहिले म्या डोळा

तो जाहला सोहळा अनुपम।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुव जन्म मृतस्य च।

तस्मादपरिहायेऽर्थे न त्व शोचितमर्हसि ॥

गोता के तो श्लोक-श्लोको में जीवन और मृत्यु की समस्या का विवेचन भरा हुआ है। ज्ञानी मनुष्य को शोक विह्वल करने की शक्ति मृत्यु में नहीं है। मेरे शरीर का तो नाश हो जावेगा परन्तु मैं विद्यमान रहूँगा। आसिन्धुसिन्धु पर्यन्त भारतवर्ष को पूर्णतया स्वतन्त्र करने का मेरा ध्येय-स्वप्न मेरे शरीर की मृत्यु से मिटना सम्भव नहीं।

सरकार ने आपको मुझे मिलने की अन्तिम स्वीकृति नहीं दी। सरकार ने किसी भी प्रकार के सद्भावना की अपेक्षा न रखते हुए भी यह कहना पड़ेगा कि अपनी सरकार किस प्रकार मानवता के तत्व को अपना रही है।

(माना पिताजी वृद्ध हैं, वे लोग पूना में रहते हैं। उनका इतनी लम्बी यात्रा कर मुझसे मिलने के लिये आना सम्भव नहीं है। अतः उनसे मिलने के लिये एक बार मुझे वहाँ ले जाया जाय जिससे कि वे मुझसे मिल सकें और फिर वहीं यरवदा जेल में मुझे फासी दे दी जाय, इस प्रकार की विनती नथूराम ने सरकार से की थी। उसको सरकार ने स्वीकार नहीं किया। इसी का संकेत उन्होंने अपने पत्र में ऊपर किया है।)

मैं समझता हूँ कि आपको इससे अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। मेरे मित्रगण और चि० दत्ता, गोविन्द, गोपाल आदि आपको कभी भी मेरा अभाव खटकने नहीं देंगे।

इस देश में लाखों मनुष्य ऐसे होंगे जिनके नेत्रों से इस बलिदान से अभ्युपवाहित होंगे। वे लोग आपके दुःख में सहभागी हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि आप भी मृत्यु को ईश्वर की निष्ठा के बल पर सम्हाले रहेंगे।”

अखंड भारत अमर रहे। वन्दे मातरम्।

आपके चरणों का सहस्र प्रमाण।

आपका नथूराम

नाना आपटे के जीवन में यदि यह घटना न हुई होती तो वे आज एक बहुत कुशल प्रशासक के रूप में होते। अर्थात् किसी भी प्रकार का कोई व्यापारिक संस्थान उनके सदृश कुशल प्रशासक के लिये अपर्याप्त कार्यक्षेत्र था। उनकी आकांक्षा देश के प्रशासन में सहायता करने की थी। शासन के पास उनका एक प्रबन्ध है। किसी भी दृष्टि से उसे "आपत्तिजनक" नहीं माना जा सकता। उसका महत्व द्विगुणित है। फासी की छत्रछाया में रहते हुए उन्होंने उसे लिखा था और उसमें उन्होंने कई मूलभूत तत्वों को समाविष्ट किया है। शासन उस ग्रन्थ को कभी मुक्त करेगा। मैं उसके लिये प्रयत्नशील हूँ। किन्तु मेरे प्रयत्न एकाकी हैं। कभी कोई गुणों का पारखी सरकारी अधिकारी उस ग्रन्थ को परखेगा तो निश्चित ही उसको जनोपयोग के लिये मुक्त करेगा और कदाचित् उसका सम्मान भी होगा, इसमें मुझे सन्देह के लिये स्थान नहीं प्रतीत होता। केवल किसी प्रकार किसी सुयोग्य व्यक्त का ध्यान मात्र उस ग्रन्थ की ओर चला जाय, इतना ही करने की बात है।

नाना आपटे ने भी अपने अन्तिम दिनों में कई पत्र लिखे हैं। श्री करकरे को लिखा उसका पत्र तो बहुत ही मर्मस्पर्शी है। सभी पत्रों में नाना की दृढ़ता का परिचय प्राप्त होता है। किसी दिन यदि वे पत्र मेरे हाथ में आवें तो पाठकों को भी उनको पढ़ने का सुअवसर सुलभ होगा।

दोनों ने कई पुस्तकों पर कुछ न कुछ सन्देश अथवा पत्र भी लिख कर रखे हैं। उन पुस्तकों की जाच करके उनको उनके सम्बन्धियों को दिया गया है। गुरुगोविन्द सिंह के चरित्र ग्रन्थ पर नयूराम ने मुझे एक छोटा-सा पत्र लिखा है। इस समय वह पत्र मेरे पास है। उसमें उन्होंने लिखा है—

चि० गोपाल को —

कुक्षेत्र और पानीपत की पावन भूमि से चल कर आनेवाली हवा में अन्तिम श्वास ले रहा हूँ। पंजाब गुरुगोविन्दसिंह की कर्मभूमि है। भगतसिंह, राजगुरु, और सुखदेव का यहाँ बलिदान हुआ। लाला हरदयाल तथा भाई परमानन्द इन त्यागमूर्तियों को इसी भूमि ने जन्म दिया था।

उसी पंजाब की पवित्र भूमि पर मैं शरीर त्याग रहा हूँ। इस बात का मुझे सन्तोष है। जब खण्डित भारत पुनः अखण्ड भारत बनेगा तब उस समय खण्डित पंजाब भी पहले की भाँति पूर्ण पंजाब हो जावेगा। यह सुकार्य शीघ्र ही सम्पन्न हो, यही अन्तिम इच्छा है।

१४-११-४९

तुम्हारा

नयूराम वि० गोडसे

गुरुगोविन्दसिंह के चरित्रग्रन्थ में एक समर्पण-पत्रिका का पन्ना है। उस पन्ने के सादे भाग पर लिखा है नयूराम का उपरिअंकित पत्र। उस पन्ने पर

अकित समर्पण पत्रिका के शब्दों का अनुवाद इस प्रकार है—जिन पुण्यवान सतियो ने और अश्राप वालको ने धर्मकी निष्ठा के कारण प्राणार्पण किये और जिन सहस्रावधि वी वरोने गुरु गोविन्दसिंह का जयघोष कर मानवता की रक्षा के लिये पंजाब की भूमि पर शरीर त्यागे उन पवित्र आत्माओं को ।

दूसरे दिन अर्थात् दि० १५-११-४९ को प्रातः काल ८ बजे यथाविधि नथूराम और नाना आपटे को फासी दी गई। दाह सस्कार कारागार के भीतर ही किया गया। क्रिया कर्म कारागार के एक ग्राहण अधिकारी ने किया। जिनको फासी दी गई उनकी कोई भावना हो अथवा न हो किन्तु उनसे सम्बन्धित व्यक्ति, जिनमें कारागार के अधिकारी भी आ जाते हैं, की कुछ भावनार्यें थी। इस सम्बन्ध में शामन ने जितनी गुंजाइश रखी थी उसकी परिधि में ही उन भावनाओं का प्रदर्शन हो ऐसा उनका मत था। इसलिये कई लोगों ने स्वयं आगे बढ़कर क्रिया-कर्म करना स्वीकार किया। प्रेतों का दहन कारागार के एक खुले मैदान में हुआ। दहन करने पर उस भूमि को खोदा गया और उसमें घास के बीज बोये गये। उस स्थान पर दो वृक्ष लगाये गये। यह सब वृत्तान्त तत्कालीन वहाँ के वन्दियों ने मुझे दिल्ली बन्दीगृह में मिलने पर बताया थे। मैंने अपनी आँखों से स्वयं यह सब नहीं देखा।

दोपहर के एक बजे बन्दीगृह खुला। सुबह का भोजन किसी ने भी नहीं किया था। भोजन पकाया गया था और वाँटा भी गया था। रजिस्टर में यह नहीं अकित किया गया कि भोजन की हडताल की गई अपितु यही अकित किया गया कि भोजन वाटा गया। बन्दीगृह भी एक प्रकार से परिवार का स्वरूप ही बन जाता है। बन्दीजन सुख दुःख के साथी बन जाते हैं। ऐसे प्रसंगों में बन्दीगृह के सभी बन्दियों पर दुःख की छाया व्याप जाती है। कारावास के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को फासी देने का कार्य यदाकदा करते रहना पड़ता है। इस कारण उनका मन पक्का हो चुका होता है, इस प्रकार की यदि किसी की धारणा हो तो मैं समझता हूँ कि यह विसंगति ही है। वस्तुस्थिति इसके विपरीत होती है। फासी के दिन किसी किसी बन्दीपाल के घर पर भी चूल्हा न जलने के उदाहरण मुझे ज्ञात हैं।

अधिकारी वर्ग के साथ नथूराम और आपटे के बहुत अच्छे सम्बन्ध थे। यद्यपि बन्दीगृह का यह नियम है कि अधिकारीगण बन्दियों और विशेषतया फासी की सजा प्राप्त बन्दियों से निकट सम्पर्क स्थापित न करें, उस पर भी यह तो राजनीतिक प्रकरण था। अतः इसके बन्दियों से तो काम से काम इतना ही सम्बन्ध नियमानुसार होना चाहिये। किन्तु नियम ही सब कुछ नहीं होते। बन्दी का व्यवहार और उसका सम्भाषण इसका अधिकारीगणों पर बहुत प्रभाव पड़ता है।



काम से काम का तात्पर्य यह है कि किसी अन्य व्यवहार के कारण दण्डित किसी प्रकार चिढ़ न जाय और अधिकारीगण की प्रतिष्ठा को ठेस न पहुँचाये। परन्तु दोनों ओर इस प्रकार के नियम का उल्लंघन होने की सम्भावना है अथवा नहीं यह वे लोग वन्दी के व्यवहार से जान जाते हैं। कारागार के अधिकारीगण अपने सुदीर्घ नौकरी के जीवनकाल में मनुष्य स्वभाव के अनेक प्रकारों का अनुभव एवं निरीक्षण किये हुए होते हैं। अपने उस अभ्यास एवं अनुभव के आधार पर ही वे नये आनेवाले वन्दियों के स्वभाव एवं व्यवहार का वर्गीकरण करते रहते हैं।

जब वे अनुभव कर लेते हैं कि वन्दी का स्वभाव अच्छा है, वृत्ति चिड़चिड़ी नहीं है तो वे भी वन्दी से नियम के विपरीत दो चार अधिक और अच्छे शब्दों का प्रयोग कर लेते हैं। इस प्रकार बोलते बोलते ही उनका वन्दी से परिचय बढ़ता जाता है। एक दूसरे के मनो को समझने का अवसर आता है। कम से कम अधिकारी तो वन्दी के मन को समझने का यत्न करते ही हैं।

निरीक्षण की जितनी उत्सुकता अधिकारीगण को होती है उतनी ही वन्दी को भी होती है। वह भी अब तक के अपने अनुभव के आधार पर अधिकारियों का वर्गीकरण करता है। इस प्रकार शनैः शनैः परिचय बढ़ जाने पर परस्पर स्नेह सम्बन्धों का निर्माण होता है। नथूराम और नाना आपटे को अम्बाला वन्दीगृह में लगभग नौ-दस मास रहना पड़ा था। उस सुदीर्घ अवधि में अधिकारियों ने उन दोनों को भली प्रकार परखा था और उसी के आधार पर उनसे सम्बन्ध बढ़े थे। उनके प्रति उनकी भावनाएँ बहुत ही नरम थी। इसमें ऐसा कुछ भी नहीं समझना चाहिये जो कि मनुष्य स्वभाव के विपरीत हो।

नियम यही है कि शासकीय कर्मचारी राजनीति से पृथक् ही नहीं अपितु अलित रहे। वन्दीगृह के कर्मचारी इसका अपवाद नहीं हो सकते। नियमों की अपेक्षा तो यही थी कि अम्बाला वन्दीगृह के अधिकारीगण नथूराम और आपटे से अधिक बोलचाल न रखें।

क्या मनुष्य स्वभाव के अनुसार कोई भी कर्मचारी कभी राजनीति से अलित रह सका? देश विभाजन के कारण उन अधिकारियों के घरों पर भी उन घावों की कसक विद्यमान थी। राजनीति के कारण जो चीरफाड़ हुई थी वह यदि कहीं कोरिदा अथवा वियतनाम में हुई होती तो सम्भवतया ये कर्मचारी अथवा अधिकारीगण उससे अलित रह सकते थे। किन्तु उनका दृष्टिकोण कैसा भी क्यों न हो, उनकी किसी प्रकार की कोई राजनीतिक विचारधारा हो अथवा न हो, राजनीति उनके घर पर आकर घमकी थी, उसका प्रहार न केवल उनके घरों पर अपितु उनके शरीरों पर भी हुआ था क्योंकि वे शासकीय सेवा में भले ही नियुक्त हों किन्तु वे तो वे हिन्दू ही। उनकी अपनी पैतृक भूमि पर उनका अस्तित्व

समाप्त होता जा रहा था। अतः जिस मार्ग से भी और जिस उपाय से भी सम्भव हो उससे, पाकिस्तान देने पंजाब से, उन्होंने भारतीय पंजाब में आकर सहारा खोजा था। इस प्रकार ये अधिकारीगण अनिच्छा से किन्तु अनिवार्यत्वेण राजनीति में नहाये हुए अपने अंग पर लगे घावों के विषय में यदि नहीं बोलेंगे तो क्या करेंगे? मार्ग गलत हो अथवा सही तदपि उन फासी की सजा प्राप्त बन्दिनों ने कुछ तो उनके आसुओं का बदला लेने का यत्न किया था, ऐसी उनकी धारणा क्यों नहीं हो सकती? विभाजन के समय पंजाब में क्या हुआ इसका विवरण उन अनेक पत्र पत्रिकाओं, पुस्तकों अथवा ग्रन्थों से उतना उपलब्ध नहीं हो सकता जितना कि हमें उन अधिकारियों की वेदना भरे स्वरों को सुनकर हुआ। वे दिल खोल कर हमें सब बताते थे।

नथूराम और आपटे को भी उद्विग्न मन की उस उद्गाथा को सुनने में अत्यधिक रुचि थी। उसे वह स्वयं पर बीती घटना जैसा ही समझते थे। यही कारण है कि शिमला में जब उच्च न्यायालय में नथूराम ने अपना वक्तव्य दिया था तो वहां पर उपस्थित दर्शकों के मनो को भी उन्होंने उद्विग्न कर दिया था। दर्शकों को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे कोई उनके सहभागी ही हों। श्रोतागणों को भी नथूराम ने अपने वक्तव्य से सहभागी करा लिया था। यदि उस श्रोतवृन्द को न्यायदान का सुकृत्य सौंप दिया जाता तो मुक्तकण्ठ से वे लोग उनको निर्दोष घोषित कर देते। यह मेरी अपनी ही धारणा नहीं है। उस समय न्यायपीठ पर आसीन श्री खोसला ने इसी प्रकार के भावों का अपनी पुस्तक में एक स्थान पर उल्लेख किया है। मेरा कहने का अभिप्राय तो केवल इतना ही है कि प्रत्यक्ष परिस्थिति का चित्र नथूराम और आपटे की भावना को समझता और सराहता था।

ऐसा प्रतीत होता था कि अपनी भावना व्यक्त करने के लिये अधिकारीगण को नथूराम और आपटे के रूप में उपयुक्त श्रोता उपलब्ध हो गये हैं। यही कारण था कि सरकारी नियम का अपवाद वे सिद्ध हुए। पाठक इससे सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि जब उनके हाथ से ही नथूराम और आपटे को फासी दी गई तो उनको कितना दुःख हुआ होगा।

दो एक घंटे के पश्चात् जेल के मुख्य अधिकारी श्री अर्जुनदास और उनके सहायक अधिकारी हमारी-अर्थात् करकरे, मदनलाल और मेरी-कौठरी में आये। उनका उद्देश्य हमें सान्त्वना देना था। यह कार्य उनकी कर्तव्यतालिका में अंकित नहीं था। किन्तु थे तो वे भी मानव प्राणी ही। फिर नथूराम और आपटे से उनके सम्बन्ध जितने घनिष्ठ थे उतने ही हमारे साथ भी थे।

श्री अर्जुनदास कुछ समय तक तो हमारे सम्मुख खड़े के खड़े ही रहे। सम्भव-

तया वे शब्द खोज रहे होंगे। बोलने के लिये उनके अघरो में स्पन्दन तो हुआ किन्तु शब्द बाहर नहीं निकले। उनके गले की नसों की क्रिया से ऐसा लगता था कि उन्होंने मुह पर अटके थूक को निगला है। उन्होंने एक बार पुनः प्रयत्न किया किन्तु सफलता नहीं मिली। तीसरी बार उनके मुख से जो स्वर निकला वह किसी प्रकार का कोई शब्द न हो कर केवल एक सिसकी ही थी।

कौन जाने कि क्या बात थी, किन्तु हम दोनों में से किसी के भी आँसू नहीं निकले थे। 'नियति के नियमों में हम क्या परिवर्तन कर सकते हैं?' केवल इतना ही मैंने उनसे कहा था। अर्जुनदास और निकट आये। उन्होंने हमारी पीठ पर हाथ फेरा और बिना कुछ एक शब्द भी मुख से निकाले वे वापस चले गये। मैं समझता हूँ कि मेरे कथन से उनको ही सान्त्वना सी मिली थी। मुझे लगा कि उन्होंने अपने सहकारी से कहा, 'हम आज व्यर्थ ही आये। हमें एक दो दिन बाद आना चाहिये था।' किन्तु इतना निश्चित है कि उनके आ जाने मात्र से ही हमको भी एक प्रकार से सान्त्वना सी प्राप्त हुई थी और उससे हमारा दुःखभार कुछ हल्का हुआ था।

हमारे लिये वह दिन उदासी का दिन था। फासी का दण्ड दिये जाने तक तो हमारे चित्त स्थिर थे। बहुत ही विचित्र वातावरण में बहुत प्रातः काल हमारी नथूराम और आपटे से मेट हुई थी। प्रातः चाय काँफी हमने साथ ही पी थी। थोड़ा बहुत हास्य विनोद भी हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था कि उस समय हमारे मनो पर किसी प्रकार का बोझ है ही नहीं। मानो वे लोग भूल गये हो कि उनको थोड़े समय बाद ही फासी मिलने वाली है और उसी प्रकार उन्होंने हमको भी यह तथ्य भूलने के लिये विवश किया था।

निसर्ग नियमानुसार हमारा दुःख शनैः शनैः कम होनेवाला था।

करकरे और मैं प्रातः काल उठकर कुछ पठन-पाठन किया करते थे। गीता के अनेक अध्याय हमने कण्ठस्थ किये थे।

किसी भी प्रकार के विचार व्यक्त करने के लिये मनुष्य के पास बहुत बड़ा शब्द भण्डार होना चाहिये। इस अभिलाषा से हमने लघु अमर कोष भी कण्ठस्थ किया था। अनेक मूल और अनेक स्तोत्र हम पढ़ा करते थे। उनके अर्थ समझने का हम प्रयत्न करते थे। करकरे को यदि अशिक्षित कहा जाय तो अशुक्त न होगा। सराबोर अथवा गुजरती की ४-५ कक्षा तक भी उनकी शिक्षा नहीं हुई थी। परन्तु शिक्षा और व्यवहार का सदा परस्पर सम्बन्ध होना ही चाहिये, यह युक्तियुक्त नहीं है। कम से कम करकरे तो इसके अपवाद थे ही।

करकरे को विवेचन पद्धति बुद्धियुक्त होती थी। कदाचित् वह आयु के कारण

हो। उस समय उनकी आयु ४२ वर्ष की थी। उन्हें व्यवहार-ज्ञान अच्छा था। उनकी उच्च शिक्षा नहीं हुई अथवा उन्हें अंग्रेजी का ज्ञान नहीं है इसका उन्हें दुःख होता था। उनको पढ़ने की इच्छा थी और हम दोनों के पास समय भी था। उन्होंने कारागार में अंग्रेजी शिक्षा ए० बी० सी० का आरम्भ किया था। दो वर्षों में ही वे टाइम्स अथवा फ्री प्रेस के अंग्रेजी पढ़ने लग गये। न केवल पढ़ने अपितु समझने और समझाने भी लग गये थे।

हमारा नित्य क्रम चल रहा था और हमारा विचार उसको चालू रखने का ही था। हमारी सजा हमारे सामने थी, उसको पार करना था। मन ही मन यह विश्वास था कि एक न एक दिन हमारी मुक्ति होगी ही। किन्तु आगे चल कर वह विश्वास ढगमगाने लग गया। किन्तु सजा के मध्य में तो हमें यह व्यथा नहीं थी।

नित्य की ही भांति हम दूसरे प्रातः उठे, प्रातर्विधि और स्नान आदि किया। मन की खोज न लेते हुए भी मन की खिन्नता का अनुभव होता था। हम गीता पढ़ने के लिये बैठे। खिन्नता में शब्द भी ठीक प्रकार से उच्चरित नहीं हो पाते थे।

मैं अपनी चित्तवृत्ति को केन्द्रित करने का यत्न कर रहा था। मैं श्लोक के बाद श्लोक पढ़ता जा रहा था। दूसरे अध्याय के बीसवें श्लोक पर हम आये—

देहो नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।

तस्मान् सर्वाणि भूतानि न त्व शोचितुमर्हसि ॥

यदि मेरी चित्तवृत्ति केन्द्रित हुई तो वह इस श्लोक के भावार्थ पर नहीं। अपितु नथूराम और आपटे को मृत्यु को घटना से। 'न त्व शोचितुमर्हसि,' यह कैसे सम्भव है? क्या स्थितप्रज्ञता इतनी सरल बात है? मेरी आँखें भर आईं। पटन रुक गया। लगभग आध घण्टे तक मैं खुले मन से रोया था।

दोपहर को घर के लोग मिलने के लिए आनेवाले थे, फिर मेरा दांव टूटेगा, ऐसी शङ्का मुझे सदैव बनी रहती थी। भेंट हुई और काफी लम्बी हुई। मन में जमा सारी बातें में बोल गया था। मन उदास होने पर भी दुःखावेग रुदन के रूप में प्रकट नहीं हुआ। हमारे घर के लोगों ने अधिकारियों से यिननों की कि उनको नथूराम और आपटे की दहन भूमि दिखाई जाय और दण्ड का मिट्टी लेने दी जाय। किन्तु अधिकारी उस प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर गये। उसके लिए उन्होंने खेद व्यक्त किया।

जो बात उन अधिकारियों के अधिकार में नहीं है उसके लिए आप्रह्व बग्न का कोई अर्थ नहीं, ऐसा विचार घर के लोगों ने किया। जो अपने अधिकार में है

और जिसके लिए अधिकारी रुकावट नहीं डालेंगे, वह हमें करना चाहिये, इस प्रकार का उन्होंने निश्चय किया।

नथूराम और नाना की वस्तुएं उनके सम्बन्धियों को सौंपी गईं। पुस्तक और कागज-पत्रों की जांच पहले ही कर रखी थी। वह भी वापस किए गए।

घर की मण्डली बन्दी गृह के बाहर निकली। मेरी पत्नी सिन्धु, दन्तु दत्तात्रय और गोविन्द इन सभी ने बन्दीगृह को साष्टांग प्रणाम किया। सिन्धु ने अञ्जलि भर धूल अपने आचल में दौंव ली। भावनाओं की इस चरमसीमा पर तत्स्थ सभी सिपाहियों एवं अधिकारियों की आँखें भी भर आयी।

जहाँ ये लोग ठहरे हुए थे वहाँ सैकड़ों लोग एकत्रित हो गये थे। पंजाब की उस समय की भावना में यह एक इतिहास है। वहाँ एकत्रित जनसमुदाय ने उस घूल को अपने मस्तक पर लगाया। नथूराम और नाना आपटे के सम्बन्धियों को विदाई देने के लिए अम्बाला स्टेशन पर सहस्रो की संख्या में नर-नारी एकत्रित हुए थे।

हमारे नैमित्तिक कार्यक्रम जारी थे। किन्तु अब हमें अम्बाला बन्दीगृह में कोई रस नहीं रह गया था। मेरा और करकरे का बन्दीगृह परिवर्तन की प्रार्थना करना सम्भव था अतः हमने बम्बई प्रांत में जो अब महाराष्ट्र बन गया है, भेजे जाने के लिए प्रार्थना की थी।

नथूराम से भेंट नहीं हो सकी, इसका माता-पिता जी को दुःख रहा। अब जीवन भी कितने दिन का है, कम से कम गोपाल से हा भेंट हो जाय इस दृष्टि से उस वृद्धावस्था में भी उन्होंने अम्बाला तक की यात्रा करने का निश्चय किया। वे कहते थे कि यात्रा के कष्ट से स्वास्थ्य बिगड़ जाय और उससे मृत्यु भी हो जाय तो कोई हानि नहीं, इस स्थिति तक उनका निश्चय पहुँच गया था। तीन-चार मान वाद छोटे भाई गोविन्द को साथ लेकर वे अम्बाला आये और मुझसे भेंट की।

अधिकारी वर्ग ने एक नीति अपना ली थी। उनका कहना था कि तुम लोग महाराष्ट्र के हो। आज नहीं कल तुम्हारा स्थानान्तरण महाराष्ट्र के किसी बन्दीगृह के लिए हो जावेगा। वहाँ जाने पर तुम हमारे विषय में क्या धारण रखते हो, यह सदा स्मरणीय बात होगी। तुम लोग सभी नियमों का विधिवत पालन करते हो, अतः तुमको किसी प्रकार का कष्ट होना हमारे लिए कलक की बात है। हमने तुम्हारे साथ भला व्यवहार किया था इसकी तुलना तुम वहाँ जाकर कर मको, ऐसा हम चाहते हैं। हमारी अपेक्षा इतनी ही है कि यहाँ रहते हुए हमने आप लोगों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया ऐसी भावना आपके अथवा आपके रिश्तेदारों के मन में हमारे सम्बन्ध में न आवे।

एक बार यो ही हमने अधिकारियों से पूछा कि हमारे गांधी वक्काड के अभियुक्त होने पर भी आपका हमारे प्रति बड़ा सौजन्यपूर्ण व्यवहार रहता है। क्या इससे आप लोगों पर किसी प्रकार का आक्षेप नहीं आवेगा ?

वे बोले, “अभी तक तो आया नहीं, यदि आया होता तो हम उसी क्षण अपना रुख बदल लेते। किन्तु हमें दूसरी प्रकार की ही सूचनाएँ हैं उनसे हम अपने को सुरक्षित अनुभव करते हैं।

“कैसी सूचना ?

“बढ़ी यदि ठीक प्रकार से नियम का पालन करे तो नियमानुसार जो कुछ उनके साथ किया जा सकता है वह सब करना चाहिये। उनके साथ किसी भी प्रकार की द्वेष की भावना मत रखो। न केवल इतना बल्कि कुछ नियम ऐसे होते हैं जो लचीले अथवा द्रव्यक होते हैं। उनका उपयोग हम निर्भयता से करते हैं। इससे हम अपने को सुरक्षित समझते हैं।”

मैं सप्रमाण तो सिद्ध नहीं कर सकता किन्तु इस सबके मूल में सरदार पटेल थे, ऐसा मेरा अनुमान है। वास्तव में यदि वे जीवित रहते तो आगे चलकर हमारी जो दुर्गति हुई वह न हुई होती। और हमें मुक्ति भी ५-६ वर्ष पूर्व ही मिल जाती।

अधिकारियों के सौजन्य के कारण माता-पिताजी से मेरी जो भेंट हुई वह बड़ी ही शांति से हुई। वे अपने सुख दुःख की बातें कर सके और मैं उन्हें सात्वना के कुछ शब्द कह सका। भेंट के बीच मैं ही कॉफी का समय हुआ तो मैंने उनको कॉफी बना कर दी। वे बड़े आश्चर्य से हुए।

कुछ दिनों के उपरांत मैंने गीता के ११वें और १८वें अध्याय का मराठी में समझोकी रूपांतर कर माता पिताजी को भेंट स्वरूप भेजा था।

मेरी पत्नी अपने पत्रों में लिखा करती थी कि ‘मैं पञ्जाब की जेल ने म्याना-न्तरित होकर न आऊँ। कम से कम स्वयं से मैं इस प्रकार का कोई प्रयत्न न करूँ। स्व० श्रीराम भाऊ मण्डलीक एकवार मिलने के लिए आये थे। तब उन्होंने भी उसी प्रकार की सम्मति दी थी।

दिल्ली सरकार ने हमें ‘ब’ श्रेणी दी थी। परन्तु हमारी कल्पना थी कि महाराष्ट्र में स्थानान्तरित होने पर इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं आवेगा। ऐसा भी हमें लगता था कि घर के लोगों को मिलने आने के लिए महाराष्ट्र का कोई भी वदोगृह सुविधाजनक होगा। परन्तु इससे भी अन्य एक प्रलोभन था, जिसने मैं प्रभावित हुआ था। अर्थात् २ वर्षों के बाद मिलनेवाला अवकाश अर्थात् फर्नो के नाम से कही जाने वाली चौदह दिन की घर जाने की पूरी छुट्टी हमें मिला

जाएगी, ऐसी आशा प्रतीत होती थी। इसलिये हमने प्रार्थना पत्र दिये थे और उनका वापस लेने के लिये हमने किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं की थी।

अम्बाला जेल में रहते हुए हमें ट्रिब्यून, हिन्दूस्तान टाइम्स और स्टेट्समैन समाचार पत्र मिला करते थे। प्रताप, मिलाप और एक दो हिन्दी भाषा के प्रादेशिक पत्र भी मिला करते थे। वन्दियो की सत्या के अनुपात से ही समाचार पत्र दिये जाते थे किन्तु परस्पर बदल बदल कर हम उन समाचार पत्रों को देख लिया करते थे।

हम चारो बन्धुओं में यदि पढ़ने का चस्का नहीं था तो वह मुझी को नहीं था। मैं बहुत धीरे से पढ़ता था। अंग्रेजी पढ़ने में मैं बहुत अटकता था। हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद मैं कॉलेज में पढ़ने के लिये नहीं गया था। अब पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है, इसलिये वाचनक्षमता बढ़ानी चाहिये ऐसा मैंने सोचा। किन्तु आलस्य की आदत को सहसा बदलना कठिन था। धीरे धीरे मैंने पढ़ने की आदत डाली।

एक दिन सहसा हमारे स्थानान्तरण के प्रार्थना पत्र पर स्वीकृति मिल गई। मदनलाल पंजाब का ही था, इसलिये उसके स्थानान्तरण का प्रश्न नहीं था। वह वही रहनेवाला था।

अम्बाला बन्दीगृह में हमने जो काम किया वह मन से किया था। उसमें हमारा स्वार्थ था इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। क्योंकि उसमें हमारा समय अच्छा बीत जाया करता था। और जो काम किया जाय वह ठीक प्रकार से किया जाय ऐसी चाह होने के कारण किया हुआ कार्य अच्छा ही होता था।

हम कुछ दिनों में ही अपने प्रान्त में जानेवाले हैं, इस समाचार से मन में प्रसन्नता हुई थी। अनपेक्षित रूप से एक दिन अधिकारियों ने हमारी प्रसन्नता भर डाली। सुबह का दौरा जारी था। अधिकारी हमारे पास आये। हमारी रिपोर्ट बुक हमारे पास थी। प्रमुख अधिकारी ने उन्हें हाथ में लिया, उस विभाग के बन्दीपाल का निर्देश कर वे बोले, "शर्मा जी! तुम कोई ध्यान नहीं देते। इतना अच्छा काम इन्होंने किया, क्या इसके लिये इन्हें विशेष छूट नहीं देनी चाहिये? आप मेरे पास इनको किताबें रख दीजिये।"

अधीक्षक की अधिकार है कि वे वर्ष भर में तीस दिन की छूट दे सकते हैं। ४-५-६ दिन की विशेष छूट हमको दी गई थी। अधीक्षक ने हमारी रिपोर्ट बुक में बीस दिन की छूट अंकित की। इसमें हमें सन्तोष हुआ। हमने छूट की अपेक्षा में काम किया था अथवा नहीं, किन्तु अधिकारियों ने हमारे कार्य का मूल्यांकन किया है इससे हमें सन्तोष था। हमने मन में निश्चय किया कि और

उत्तम काम करेगे, जिससे कि हम विशेष छूट के पात्र सिद्ध हो सकें। और फिर उसी प्रकार का कार्य करने का अभ्यास हो गया।

तब तक हमको दो बार बड़ी छूट दी गई थी। २६-१-१९५० को भारत गणतन्त्र घोषित किया गया था। इस उल्लेख में हमें ४० मास की छूट दी गई थी, मार्च १९५० में पंजाब के कारावास विभाग के प्रमुख अम्बाला बन्दीगृह में आये। उनको वर्ष में ६० दिनों की छूट देने का अधिकार था। बन्दी का व्यवहार अच्छा हुआ तो मास में ५ दिन की छूट देने का उनका अधिकार था। और तदनुसार ही उन्होंने वहाँ अधिकारियों को आज्ञा दी थी। इससे हमको ५ दिन की छूट मिल गई। इस आधार पर हमको ये सजा दोनों ओर से जलनेवाली मोमबत्ती सी प्रतीत हुई। एक ओर तो एक एक दिन करके हम उसको जला रहे थे और दूसरी ओर कभी नियम के अनुसार और कभी वैकल्पिक अधिकार से तो कभी राज्य के किमो विशेष आनन्दोत्सव के कारण हमें छूट दे कर अधिकारी उसको जला रहे थे। बीच में ही कही सजा रूपी यह मोमबत्ती जल जावेगी और हम मुक्त हो जावेंगे इस कल्पना से ही हम मुक्ति का सा आनन्द ले लेते थे।

हमारा स्थानान्तर होनेवाला था। तीनों का विच्छेद होगा। इस दृष्टि से मदनलाल ने एक छोटे से समारोह का आयोजन किया था। अधिकारियों ने भी हमें विदाई दी थी। उनके द्वारा हमारे अचल में डाली गई छूट भविष्य में हमारे काम में आनेवाली वस्तु थी, उसका हमारे लिये बहुत मूल्य था।

हमारे लिए अमृतसर से पिंजडे के आकार प्रकार का एक स्वतन्त्र रेल डिब्बा मंगाया गया। आज कल उस प्रकार के डिब्बे देखने में नहीं आते। ब्रिटिश काल में उनको प्रिजनर्स बोगी कहते थे। दि० १६-५-१९५० को हमारी प्रस्थान तिथि निश्चित हुई। उस दिन दोपहर को हम निकले थे। उस डिब्बे को पैमेंजर गाड़ी से जोड़ा गया था। इस प्रकार दि० १९-५-१९५० को शाम को हम नासिक बन्दीगृह में पहुँचे थे।

\* \* \*



## तेरह

### अंधकार ! अंधकार

शुक्रवार दि० २०-१०-५० को दशहरा था। नासिक बन्दीगृह में वह हमारा पहला ही दशहरा था। हमको जिस विभाग में रखा गया था वहाँ से (खानेदार) बसवली में छठे विभाग ( बराकी ) में उस दिन जाने के लिये कहा गया।

बन्दियों के पास वस्तुयें तो सीमित ही होती हैं, अतः उन्हें समेट बटोरकर दूसरे स्थान पर ले जाने में कोई अधिक समय नहीं लगता। मैंने और करकरे ने सामान बटोर और निर्दिष्ट स्थान पर रहने के लिये गये। हमारी आज तक की मर्यादा सीमित थी।

नामिक बन्दीगृह १९३० के लगभग बनाया गया था। आज भी अन्य बन्दी-गृहों की अपेक्षा वह बन्दीगृह अच्छा प्रतीत होता है। उसकी रचना अच्छी की गई है। सुरक्षा और सुन्दरता दोनों की ही ओर विशेष ध्यान देकर उसका निर्माण किया गया है।

बन्द गृह के प्रमुख द्वार के दोनों ओर कार्यालय है। अन्दर के द्वार से बन्दी-गृह में जाने पर बायी ओर रुग्णालय का आगन और दायी ओर विरोध विभाग अर्थात् Quarantine वार्ड और घान्यागार है। प्रमुख रास्ते पर और सामान्यतया बन्दीगृह के मध्य भाग में एक गोलाकार तीन मजिली बान्धु है। उसको स्तूप कहते हैं। गार्ड और अर्द्ध गोलाकार मैदान पर एकांतियों के दो विभाग हैं। प्रत्येक विभाग में ३३ और २२ कमरों की दो पक्तियाँ हैं। दाईं ओर के ऐसे ही अर्द्ध गोलाकार के मैदान पर उमी प्रकार के ६ कक्ष हैं। उनमें हाल और बैरक हैं। उनमें से पाँच विभागों को अब दो मजिली किया गया है।

स्तूप पार करके आगे बढ़ने पर पीछे की दीवार के समानान्तर उद्योग-शालायें हैं ।

नये बन्दी के आने पर उन्हें प्रथम दस दिन निरोध विभाग में रखने की प्रथा है । यदि कोई बन्दी किसी प्रकार का कोई सातगिक रोग लेकर आया होगा तो वह दस दिनों में भली प्रकार विदित हो जावेगा और रोग अन्दर नहीं फैल पावेगा । निरोध विभाग में दस कमरों की तीन पक्तियाँ हैं ।

प्रत्येक विभाग में पानी रखने के लिये सीमेंट के हौज बने हैं । कपड़े धोने के लिये ढलुए पत्थर लगे हैं । शौचस्थल शुद्धावन के हैं ( पलश लगे हुए हैं ) । पानी का संचय अपर्याप्त होने के कारण शुद्धावन ( पलश का ) उपयोग नहीं हो पाता ।

बन्दीगृह के अपने कई दुवारु पशु हैं । कई जोड़ियाँ बिलों की हैं । बन्दीगृह के बाहर वाग हैं । उसमें तरकारियाँ बोई जाती हैं । कभी ज्वार भी बोई जाती है । अन्दर की खुली जगहों पर भी जानवरों के लिये घास रखा जाता है ।

ढेड़ सहस्र लोगों के रह सकने की व्यवस्था नासिक कारागृह में है । दो मजिली बन जाने से और भी अधिक बन्दी रह सकते हैं । कुछ वर्षों में बन्दीगृह में सामान्यतः २००० से २२०० तक लोग रहने लगेंगे ।

सीधा पद्धति का (रेखान) परिमाण बन्दीगृह के भोजन पर भी हुआ करता था कई वर्ष लाल ज्वार की रोटियाँ सदैव होती थीं । उसी ज्वार के धाटे की काजी अर्थात् तनिक नमक डाल कर पकाया हुआ पतला पदार्थ, सुबह दिया जाता था । रोटी के साथ एक बार दाल और एक बार तरकारी हुआ करती थी । अन्न-पूर्ति के लिये दलहन का साग एक बार दिया जाता था ।

सप्ताह में चौदह भोजन । उनमें से एक भोजन चावल था । और एक चपाती का हुआ करता था । इतवार को दो और गुड और तेल दिया जाता था ।

सुबह का भोजन दस बजे और और शाम का भोजन चार बजे होता था । कमरे में या बैरक में भोजन ले जाना वर्जित था ।

बार बार आनेवाले बन्दियों के लिये नासिक बन्दीगृह चुने जाने में बड़ा उसी वर्ग के लोग हुआ करते थे । बम्बई को लक्ष्मी का निवास माना जाता है, इसलिये बार बार चोरी करनेवालों का भी वह मैका है । वहाँ से दण्डितों की विदाई से नासिक के लिये करते थे ।

दि० १९-५-५० को हमको नासिक बन्दीगृह में लाया गया था । निरोध विभाग केवल हमारे लिए नियुक्त किया गया था । अधीक्षक, प्रमुख बन्दीपाल और उस विभाग के बन्दीपाल इनके अतिरिक्त और कोई हमारे पान न जावे ऐसा नियम था । हमारे साथ उस विभाग में एक मेहतर का काम करनेवाला बन्दी

रखा गया। विभाग के द्वार पर बारी बारी से सिपाही तैनात रहते थे। प्रातः काल डाक्टर आया करते थे। हमारी डाक लाने ले जाने का काम उस विभाग के बन्दीपाल किया करते थे। सप्ताह में दो बार अर्धाक्षक चक्कर लगाया करते थे।

अम्बाला बन्दीगृह में हमने कई मास बिताये थे। उसके बाद हमारे पैरों की वेडिया उतारी गई थी। अम्बाला से नासिक की यात्रा में सुरक्षा की दृष्टि से हमारे पैरों में वेडियाँ डाली गई थी। नासिक पहुँचने पर दूसरे दिन अर्थात् २०-५-५० को वह निकाली गई थी।

हममें "क्रिमिनल्" का अस्तित्व नहीं है, यह बात थोड़े ही दिनों में निरीक्षण करने पर नासिक के अधिकारियों को भी विदित हो गई थी।

हमें यदि वहाँ अनुभव होता तो केवल इस बात का कि वहाँ के लोगों में हमारे सम्बन्ध में अनेक भ्रान्त धारणायें अथवा पूर्वाग्रह थे। जैसे जैसे उनकी हमसे प्रत्यक्ष बातचीत होती गई, तनिक परिचय बढ़ा वैसे वैसे एक एक करके पूर्वाग्रहों का लोप होता गया। तब अनजाने में की गई कल्पना और वास्तविकता में जो अन्तर है वह उनकी समझ में आने लगता था।

निरोध विभाग में ही हमको काम दिया जाना था। प्रथम हमको हाथ से कपड़े सिलने का काम दिया गया। बाद में निवाड बुनने का काम हमने किया। चेतन पद्धति धुल हो गई थी। काम के परिमाण में चेतन मिलता था। इस चेतन का परिमाण बाहर काम करने पर मिलने वाले चेतन का पाचवा हिस्सा होता था। परन्तु यह सूची जब तय हुई उस समय की स्थिति आगे चलकर सदैव बदलती रही मात्र बन्दीगृह में परिमाण वही स्थिर रहा। हमको दिन में कभी दो आना और कभी चार आना चेतन मिलता था।

जो भी कार्य दिया जावेगा वह सब करने और उसमें अपनी कुशलता दिखाने के प्रयत्न हमारे सदैव रहते थे। अधिकारी गण भी हमको वैसे अवसर देते रहते थे। उन दिनों श्री लटूस नामक एक विदेशी सज्जन उस बन्दीगृह के अधीक्षक थे। उन्होंने एक दिन मुझसे पूछा कि क्या मैं लकड़ी का फ्रेटवर्क कर सकूँगा। मैंने उनमें यह दिया कि मैं प्रयत्न करके देखूँगा। उन्होंने उस कार्य को सामग्री दिलवा दी। आठ दिन बाद उस काम में मेरी प्रगति देखकर उन्होंने मुझे उत्साहित किया। यह सब निरोध विभाग में ही हो रहा था।

हमको वहाँ आये पाँच मास हो गये थे। कुछ समय बाद हमारे ऊपर के बन्पन कुट्ट-कुट्ट मिथिल होने लगे थे। बीच-बीच में कोई बन्दी भी हमको कपड़े गोना अथवा निवाड बुनना सिखाने के लिये आया करते थे।

त्योहार का दिन वास्तव में बन्दी के लिये मानसिक यातना का दिन हुआ

करता है। क्या अपनी अनुपस्थिति में घर के लोगो को यह त्योहार अच्छा लगेगा ? यदि हम लोगो को कुछ मिठाई खानी भी पड़ जाती थी तो उस समय घर के लोगो की याद आये बिना नहीं रहती थी। क्या आगे का त्योहार हम घर के लोगो में बैठकर मना सकेंगे ? एक, दो नहीं अपितु अनेक विचारो से मन व्यग्र हो जाता था। परन्तु यह सब प्रारम्भ में ही होता है। क्योंकि सजा की मर्यादा बन्दी को स्मरण रहती है, अतः वह उन भावनाओ को अपने विवेक से दबाकर रखने का प्रयत्न करते-करते अभ्यासी बन जाता है। भावनावश सभी बन्दी त्योहार के दिन इस प्रकार की व्यग्रता दिखाते हैं, कुछ बन्दियो को हमने रोते भी देखा है। परन्तु ऐसे बन्दियो को भी ऐसी परिस्थिति में आनन्द प्राप्त करने की आदत बन जाया करती है।

बन्दियो को मिलनेवाला गुड, घी, तेल, वेसन चावल आदि पदार्थों का सग्रह करके त्योहार के दिन उनसे पक्वान्न बनाना, प्रायः ऐसी प्रथा सभी बन्दीगृहो में है। प्रत्यही का अन्न बन्दी के लिये पर्याप्त होता है। परन्तु नित्यप्रति उसी प्रकार का भोजन खाने से उसके प्रति मनमें अरुचि उत्पन्न हो जाती है। फिर दो सहस्र बन्दियो का भोजन दिन-रात बनाना पड़ता है, इसलिये उस पकाये हुए अन्न में किसी प्रकार की रुचि नहीं रह जाती। सुबह दस बजे बटनेवाली रोटियाँ जव प्रातः ६ बजे बनकर तैयार होगी तभी अन्य चीजों को पकाने के लिए अवसर मिल सकता है। इसलिए कभी कच्ची, कभी जली तथा कभी कुछ अन्य प्रकार की हुआ ही करती है। इसलिये एक दिन के परिवर्तन से कुछ तो अच्छा लगता ही है। उसमें भी कुछ आनन्द आता ही है।

बन्दीगृह में विक्री केन्द्र खोलने की योजना कार्यान्वित हुई थी। उस विक्री केन्द्र में या कैंटीन में खाद्यपदार्थ रखे जाते थे। मिलने वाले बेटन का दो तिहाई भाग बन्दी उसके लिये व्यय कर सकता है। त्योहार के दिन जलेबी, बूदी, चिवड़ा जैसे पदार्थ भी उस विक्री केन्द्र में प्राप्त होते थे। परन्तु विक्री केन्द्र का प्रमुख उद्देश्य बन्दी को बीड़ी, सिगरेट आदि मिले यही था। त्योहार के दिन मात्र बन्दी खाद्यपदार्थ पूरक अन्न के रूप में लेकर त्योहार मनाया करते थे।

बन्दी को एक जगह से दूसरी जगह बदलने के लिये कोई कारण ही देना पड़ता हो ऐसी बात सही है। आन्तरिक प्रबन्ध की दृष्टि से इस प्रकार के परिवर्तन एकाएक करने पड़ जाया करते हैं। हमारा यह स्थानान्तर भी इसी प्रकार के प्रबन्ध के अन्तर्गत था। हमारे न पूछने पर भी हमारे कानों में कारण की भनक पड़ी थी।

यह दशहरा हम और अलग ढंग से मनायें यह बात कई बन्दियो के मन में

आई थी। उन्होंने योजना बनाई, सामग्री एकत्रित की। सम्बन्धित उद्योगशालाओं में सामग्री वनवाकर लाये। निरोध विभाग और चहार दीवार के बीच घास बढ़ावाया था। उसके परे घोड़ी घाट था। काम के निमित्त उस भाग में भी वन्दियों का आना-जाना होता था। ऊपर के उत्साही वन्दियों ने उस घास में एक उपयुक्त स्थान देखा और सीधे वहाँ शराब की एक हाथ भट्टी लगाई।

उन्होंने दशहरा मनाया भी होता। परन्तु उनका दुर्भाग्य आड़े आया। एक वन्दी को उसके श्रम के लिये एक वोटल मिलनी चाहिए थी। उसको चौथाई दे कर विदा कर दिया था। मामला तूल पकड़ गया। पोल न खुल जाय इसके लिए उसको अधिक दिया।

दशहरा दूसरे दिन था। किन्तु जिस दिन हाथ में वस्तु हो उसी दिन त्योहार इस विचार से प्रेरित होकर कुछ वन्दियों ने उसी दिन उस शराब को हजम कर लिया। तब उसको स्मरण हुआ कि उस पर अन्याय हुआ है। झगड़ा करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, वैध मार्ग से ही न्याय प्राप्त करना चाहिये ऐसा विचार करके वह सीधे जमादार के पास गया और उसने जमादार को यह बात समझा दी कि वास्तव में उसका एक वोटल का अधिकार किस प्रकार बनता है।

जमादार ने माग की कि सारी उसके अधीन कर दी जाय। परन्तु उसने कहा कि वह तो समाप्त हो गई है। उसके सास से भी इस बात की पुष्टि होती थी। जमादार अपने अधिकारियों को वहाँ लाये। शास्त्रशुद्ध पद्धति की उस हाथ-भट्टी के अन्तर्गत व्यवस्था में पचनामा हुआ। कब्जे में आये वन्दियों को बन्दक दिया गया। अन्यो को यह समझने में विलम्ब नहीं हुआ। उन्होंने अपने रखे प्रमाण को तुरन्त उदरस्थ करके नष्ट कर दिया।

उन आठ दस रसिक भण्डली को बन्द रखने के लिये निरोध-विभाग को हमसे खाली करवाया गया था। इसलिये उस दिन हमारी विदाई बराकों के छठे विभाग के लिये हुई थी।

उस दो सहस्र वन्दीजनों की वस्ती में शराब की भट्टी मिलना, वास्तव में सनसनी का विषय था।

शराबवन्दी निर्बन्ध की कार्यवाही तीव्रता से होने लगी। मद्य का व्यापार, उपयोग और व्यवहार छिप कर करनेवालों पर आतक जमाने के लिये अनेकों पर अभियोग किये जाते थे। उसके लिये पुलिस पार्टी बढ़ाई गई थी। अनेक सशस्त्रों को सजा दी जाती थी और उनको चार दीवारी के भीतर किया जा रहा था। इस आतक से लोगों का नैतिक मूल्य बढ़े, उन्हें शराब के व्यवहार से भय लगे ऐसी उस एकट की अथवा एकट बनानेवालों की अपेक्षा थी।

मोरारजी मन्त्री थे। अब इन दण्डित सहायितों का क्या होगा ? और सबसे अधिक आचार्य अत्रे का अगर इस गृहमन्त्रालय के गर्भगृह को हाथभट्टी की केवल गध आई तो मोरार जी का क्या होगा ? इस कल्पना से ही पेट में खलबली मच गई थी। यद्यपि उस प्रकरण से हमारा किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं था।

बन्दीगृह की सनसनाहट की घटनाओं का प्रायः जिस प्रकार निपटारा होता है उसी प्रकार उस हाथभट्टी काण्ड का हुआ। बन्दीयों को सजा के अन्तर्गत सजा हुई। और सनसनाहट का मद कम हुआ।

वराकी के छटे विभाग में अन्य भी कई बन्दी रखे गये थे। वह मैदान बड़ा था। हम उसमें फिर सकते थे। उन बन्दीयों के साथ बोल सकते थे।

कई दिनों बाद हमको शिक्षा वर्ग चलाने का काम दिया गया। वाचनालय की व्यवस्था देखने का काम भी हमको दिया गया। सब काम हम नई नई कल्पनाओं का उपयोग करके ही किया करते थे। अधिकारियों ने भी समय समय पर हमको उत्साहित किया। हमारा समय काम में अच्छी तरह कटता था। समारोह के समय पर कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रमों की आयोजना करके हम उस समारोह को सम्मन्न किया करते थे।

औषणिक वर्ग के लिये पैसे या छूट अर्थात् रेमिशन मिलता था। हम छूट लेते रहे।

नासिक बन्दीगृह में आये हमें दो वर्ष हो गये थे। दि० १०-५-५२ को हमको “ब” श्रेणी से निकाल कर “सी” श्रेणी में रख दिया गया। हमको “ब” श्रेणी दिल्ली सरकार से मिली थी। वर्गीकरण के झगड़े के लिये भगतसिंह और उनके सहयोगियों के कारण भिडन्त हुई थी। जतीन्द्रनाथ ने आमरण अनशन किया था। उसमें उसका अन्त ही हो गया था। उस समय के शामन ने राजनैतिक आन्दोलन के बन्दीयों के वर्गीकरण का विचार किया। राजबन्दीयों को आगे चल कर जो सुविधायें मिलती गई उसका प्रारम्भ एक बलिदान से हुआ था। ऐसा हमें इतिहास के क्रम से विदित होता है।

जिम समय हमको श्रेणी दी गई थी उस समय इस अभियोग का स्वरूप राजनैतिक माना गया था और हमको उस के प्रमुख घटक माना गया था। चार वर्षों के बाद वे घटक तो बदल नहीं गये थे बदल गई थी तो केवल बम्बई राज्य के प्रमुखों की दृष्टि।

हमको वर्ग दिये जाने की बात को हमारे अविषय पर (चारट पर) अंकित किया गया था। उसमें यह भी लिखा गया था कि जिसके अधिकार से और कौन

से पत्र के आधार पर हमको यह श्रेणी दी जा रही है। बम्बई राज्य हमारे इस वर्गीकरण में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करे इसका कोई कारण दिखाई नहीं देता था। हमारा सारा ध्यान हमको दिये गये कार्य पर केन्द्रित रहता था। अधिकारीगण द्वारा हम पर रखे गये विश्वास का प्रतिदान हम उसी प्रकार दे रहे थे।

मदनलाल पंजाब का होने के कारण उसको अम्बाला, फिरोजपुर, जालंधर आदि बन्दीगृहों में रखा गया। उसको भी हमारे साथ ही “ब” श्रेणी मिली थी। बाद में हमको विदित हुआ कि उसकी “ब” श्रेणी हटाने की चेष्टा भी बम्बई सरकार ने की थी, किन्तु इसमें उसको सफलता नहीं मिली। सविधान ने सभी को समान न्याय का अधिकार दिया है। बम्बई राज्य ने इसका अर्थ शायद सभी को समान अन्याय होना चाहिये ऐसा किया और मदनलाल का वर्ग तोड़ने के लिये “अव्यापारेण व्यापार” चरितार्थ किया।

पंजाब राज्य की दृष्टि बम्बई राज्य की भांति दूषित, कलुषित अथवा प्रतिशोधात्मक नहीं हुई थी। उन्होंने मदनलाल की श्रेणी को नहीं बदला। कम से कम अपने चगुल में फंसे बन्दिनों के साथ हम छल करें इस विचार से बम्बई राज्य ने हम पर यह अन्याय किया था।

इसके प्रतिकार के लिये हमने केन्द्र शासन को पुनरावेदन प्रस्तुत किया था। परन्तु बम्बई राज्य का किया हुआ और हम पर लादा गया निर्णय बदला नहीं गया। ऐसे समय में सरदार पटेल की स्मृति आना अपरिहार्य था। तब तक उनका देहान्त हो चुका था। बम्बई राज्य के प्रतिशोध से जलने-वाले व्यक्तियों को मनमानी करने का अवसर प्राप्त हो गया था। गायी जी की सुरक्षा के सम्बन्ध में तो दुर्लक्ष्य किया, ऐसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आरोपों का परिमार्जन इस प्रकार होगा ऐसी भावना भी इस प्रतिशोधात्मक कृति के पीछे शासकीय अधिकारियों की हो सकती है।

जब हमको नासिक लाया गया तो प्रथम ५-६ दिनों में मुझे अपनी पत्नी की ओर से एक दो पत्र प्राप्त हुए। उनमें से एक तो अम्बाला से नासिक को पुनः प्रेषित किया हुआ ही था। पंजाब छोड़ कर मत आओ, यहाँ आपके साथ अच्छा व्यवहार नहीं होगा, ऊपर के अधिकारीगण छोटे मन के हैं यही उस पत्र का सारांश था। नासिक के पते पर भेजे पत्र में भी पत्नी ने इसी बात का संकेत किया था कि यहाँ के शासकगण हमारे साथ छल करेंगे।

पत्र देते हुए बन्दीपाल ने मुझसे पूछा, ‘तुमसे प्रतिशोधात्मक व्यवहार होगा, इस प्रकार की आशंका तुम्हारे घर के लोगों की क्यों है? पंजाब में आपलोगों को क्या अधिक मिलता था और यहाँ क्या कम मिलेगा?’

इसके उत्तर में मैंने इतना ही कहा, “यह आये तो मुझे थोड़े ही दिन हुए हैं। मेरी पत्नी का भय झूठा सिद्ध हुआ तो अच्छा ही है।”

हमारी श्रेणी छीनना प्रतिशोध का यह प्रथम प्रहार हम पर किया गया था। जब मनुष्य यह समझ लेता है कि अन्याय का प्रतिकार होना सम्भव नहीं तो वह उस अन्याय को निगल कर विद्यमान परिस्थिति में स्वयं को सुव्यवस्थित करने की चेष्टा करता था। ‘सो’ श्रेणी मिलने पर हम उसके अनुसार अपने को व्यवस्थित करने (सवाने) लगे।

वम्बई राज्य में समान श्रेणी के बन्दी को उपलब्ध होनेवाली सुविधायें हमको भी मिलने लगेंगी, ऐसी हम आशा करते थे। लम्बी सजा के बन्दी के दो वर्ष की सजा भुगतने पर उसको दो सप्ताह के लिये घर जाने की छुट्टी दी जाती है। उस छुट्टी को प्रावकाश अर्थात् फलों कहा जाता है। यह सुविधा जिनको प्राप्त है, उस वर्ग के बन्दी में ही हमारी गणना थी। उसके अनुसार मैंने भी प्रावकाश के लिये आवेदन प्रस्तुत किया था।

उसके उत्तर में कहा गया, “आपके प्रावकाश पर घर आने पर शान्ति को खतरा है अतः आपको प्रावकाश नहीं दिया जा सकता।

शान्ति को खतरा, यह बात जितनी ही सन्दिग्ध थी उतनी ही अतिव्याप्त भी। तदपि सम्बन्धित अधिकारियों का ऐसा ही अभिमत था। उनका सच्चेचित्त सैटिस्फेक्शन ही (आत्माविष्टित निर्णय ही) प्रमाण माना जाता है और उस पर निराकरण के लिये अवसर नहीं होता।

नियमित अवधि आ जाने पर मैंने पुन आवेदन किया। अप्रैल १९५४ में उत्तर आया—“गांधी वध अभियोग के बन्दी होने के कारण आप का प्रावकाश आवेदन स्वीकार नहीं किया जा सकता।” स्थानीय परिस्थिति के सम्बन्ध में सम्बन्धित अधिकारियों को जैसा लगता है और जिसको वे कारण के रूप में प्रस्तुत करते हैं, उससे यह सर्वथा भिन्न और परे था। “गांधी वध” अभियोग के दण्डित “इस प्रकार का एक नया वर्ग शासनाधिकारियों ने निर्माण कर लिया था। वह किसी वैध आधार पर नहीं था और न ही विधान सभा से इस प्रकार की कोई स्वीकृति प्राप्त थी, परन्तु अन्याय करने का अधिकार हमको मिला है उसका उपयोग हम करेंगे इस भावना के आधार पर हमारे साथ वह व्यवहार किया जा रहा था। ज्यो-ज्यो दिन बीतते जायेंगे त्यो-त्यो शासन की दृष्टि न्याय विमुख होनी जावेगी इसकी आशका पहले से ही थी।

वाचनालय, शिक्षा वर्ग, सांस्कृतिक कार्यक्रम ये एक प्रकार से शिष्ट कार्य थे। इस सिलसिले में बन्दी से सदैव सम्बन्ध आता रहता था। समाज के विभिन्न



स्तरो से आये हुए वन्दियों के स्वभाव विशेष परखने का अवसर प्राप्त हुआ था। क्या अपराध प्रवृत्ति सभी में समानरूपेण विद्यमान होती है इसका अनुभव भी हुआ। अपराध क्यो होते है अथवा किये जाते है इस विषय का भी कुछ कुछ ज्ञान हुआ।

स्वयं को यश मिले यह मनुष्य की सहज इच्छा होती है। किन्तु यह भी वह जानता है कि यश गुणों के कारण ही मिलता है। वन्दी के विशेष गुणों को सराहा गया, उसको प्रोत्साहित किया गया तो वन्दी भी अनेक सराहनीय कार्य कर सकते हैं। एक चित्रकार किसी की हत्या के अपराध में दण्ड भुगत रहा था। वन्दीगृह में उसके उस गुण को अवसर दिया गया। उसने उत्तम गलीचों का निर्माण किया। और उनमें से एक गलीचे को लन्दन में एक प्रदर्शनी में रखा गया था।

हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशित करना यद्यपि पाठशाला के विद्यार्थियों का कार्य समझा जा सकता है। किन्तु वन्दियों की तो श्रेणी ही विभिन्न होती है। नासिक के वन्दियों ने इस प्रकार का एक हस्तलिखित पत्र निकालने का उपक्रम किया। किसी का सुन्दर सुलेख, किसी की चित्रकला, किसी की लेखन कला, किसी की कविता रचना इन गुणों को किसी एक स्थान पर अवसर प्राप्त हो इस उद्देश्य की इस हस्तलिखित पत्रिका की योजना की गई थी। इस विषय में अधिकारियों का दृष्टिकोण अनुकूल था। कई अंक निकाले गये। उसकी प्रशंसा ऊपर तक के अधिकारियों में हुई थी।

मेरे सान्निध्य में एक चित्रकार वन्दी था। उसकी सहायता से चित्रकला सीखने का विचार मेरे मन में आया। उसके लिये सामग्री मगवाई गई। मैंने रेखायें खींचना आरम्भ किया तो मैं सोचने लगा कि मेरी इस दिशा में बहुत प्रगति हो रही है। एक हस्तलिखित पत्रिका में मैंने महर्षि कर्वे का चित्र बना कर दिया। नाम नहीं लिखा था। क्योंकि उन दिनों समाचार पत्रों में महर्षि कर्वे के अनेक चित्र देखने में आया करते थे।

मेरी प्रशंसा हो इस दृष्टि से मैंने उस चित्र को अपने एक जानकार को दिखाया। उसने उस चित्र को क्षण भर तक देखा। मैं आतुर था कि वह कहे 'चित्र बहुत ही सुन्दर है, पहला ही प्रयत्न होने पर भी किसी सुप्रतिष्ठित कलाकार को कथा ही इसमें उत्तर आई है, तुम अच्छे चित्रकार हो।' और इस प्रकार की प्रशंसा मैं मनु।

उस जानकार व्यक्ति ने मुंह खोला और बोला 'मेरा ख्याल है कि टैगोर की दाढ़ी को थोड़ा लम्बा दिखाना चाहिये।' मैंने उसकी ह्रा में हा मिलाया और

शीघ्रता से चित्र उसके हाथ से ले लिया। और फिर उसके बाद चित्रकला के चक्कर में नहीं पड़ा।

वन्दियों के गुणों की सक्रिय प्रशंसा करने के साधन अधिकारियों के हाथ में होते हैं। शैक्षणिक या सांस्कृतिक क्षेत्र के इस हस्तलिखित पत्र के लिये वन्दियों को दो बार पांच दिन की छुट दी गई थी। केवल मुझे वह छुट नहीं मिली थी। एक नहीं दो बार मेरी रिपोर्ट बुक में छूट देने के सम्बन्ध में अंकन हुआ था। किन्तु बाद में उसको रद्द कर दिया गया था। करकरे का नाम उस पत्रिका से सम्बन्धित नहीं था। प्रश्न मेरे तक ही था। अधिकारियों ने झूठे भय के कारण मुझ पर यह अन्याय किया था। इस का मेरे मन पर प्रभाव पड़ा। मेरे श्रम का उचित मूल्यांकन नहीं हुआ इस प्रकार की भावना जब श्रमिक के मन पर उठती है तो फिर वह उतनी तत्परता से श्रम नहीं करता। इस बात का ध्यान अधिकारीवर्ग ने नहीं रखा। इस प्रकार के अन्याय से मन में उदासीनता आ जाया करती है। परन्तु फिर, क्या बात है। यह तो छोटी सी ही बात है इस प्रकार मन में विवेक धारण कर आगे के लिये नये उत्साह से कार्य में मन को प्रवृत्त कर लिया जाता था।

शैक्षणिक सवाद या बोधप्रद नाटक में करकरे अद्वितीय व्यक्ति था। प्रसंग उपस्थित होने पर मैं कुछ कुछ पद्यरचना कर लिया करता था। शैक्षिक वर्ग में कई बार कुछ दण्डित उत्तम गायक मिल जाया करते थे। उनका उपयोग कर करकरे उनसे उस पद्य को गवा लेते थे। इस प्रकार दो दो घंटे तक चलने वाले कार्यक्रम किये जाते थे। हमारे द्वारा प्रचलित शिक्षा वर्ग भी आदर्श होते थे। इन वर्गों को अथवा हमारे द्वारा आयोजित अन्य कार्यक्रमों को अधिकारीगण बन्दीगृह की दर्शनीय वस्तु मानते थे। बाहर से आये हुए उच्च अधिकारियों के सम्मान में भी हमसे इस प्रकार के कार्यक्रम अधिकारियों द्वारा आयोजित करवाये जाते थे।

उन उपक्रमों के लिये वन्दियों को सदा छुट दी जाती रही और कभी कभी तो वह छुट नौ-नौ दिन तक की भी होती थी। किन्तु हमको उससे सदा वंचित ही रखा गया था।

विनोद बुद्धि किसी परिधि में नहीं रहती। व्यक्तिगत स्वभाव के अनुसार मनुष्य किसी भी परिस्थिति में विनोद का अवसर ढूँढ ही लेता है। निरुपद्रवी विनोद अवश्य ही रोचक प्रतीत होता है। क्योंकि उसमें किसी को व्यग्न का लक्ष्य किया हुआ नहीं होता।

अभिलाषा का दौरा जारी था। प्रार्थना करनेवाले बन्दी पक्षि में खड़े थे। किसी को छुट्टी के लिये आवेदन करना था तो किसी को घर तार भेज कर नोट

करने के लिये बुलवाना था । किसी को पुनरावेदन करना था तो किमी को नये कपड़े चाहते थे ।

यथोचित आदेश देकर अधीक्षक अगले वन्दी के समीप बट जाते थे । सहसा एक वन्दी ने बड़ी अधीरता से कहा, “बहुन जुम होता है साहब !”

इसको कुछ अधिक कष्ट दिया गया है अथवा मारपीट की गई होगी, इस प्रकार की मनोभावना से अधीक्षक ने उससे पूछा, “क्या जुल्म होता है ?”

कुछ कहावतें, अनेक सन्त वचन, कुछ उपदेश पुरक श्लोक, इनके फलक बना कर वन्दीगृह में स्थान स्थान पर लगाये गये थे । जहाँ पर वह वन्दी खड़ा था उसके पीछे एक पेठ था और उस पेठ पर भी इसी प्रकार का एक बोर्ड टांगा गया था । उस पर लिखा था—सदा सच बोलो—उसकी ओर संकेत कर वन्दी बोला, “यहाँ से जाते हुए यह फलक पटना पड़ता है, इससे बहुत कष्ट होता है ।”

वन्दी कहीं पर भी अपने को खींच कर ले जाता है इसकी अनुभूति अधीक्षक को हुई किन्तु उनको क्रोध नहीं आया । उन्होंने शान्त स्वर से वन्दी से पूछा “तो क्या उस फलक को उतार लें ?”

“नहीं साहब ! मेरा अभिप्राय यह नहीं है । मैं समझता हूँ कि इसके शब्द में थोड़ा परिवर्तन करवा दीजिये ।”

“कौन से शब्द और क्यों बदलने चाहिये ?”

“यह देखिए साहब ! वन्दी गृह में भी डबेर उबर से, जेब में नहीं तो टोपी में, टोपी नहीं तो तौलिये में हम सदैव चुराकर कुछ न कुछ लाते हैं । चाहे वह तरकारी की मूली हो, बघार के लिए मिर्च हो और नहीं तो रसोई घर के चने ही सहा । चुराकर लाई गई सूखी टहनियों से हम कोठरी में उसको पकाते हैं । भोजन कैसा मिलता है यह तो आपको विदित ही है । लाल ज्वारो और वह भी महुकनेवाली । गन्दे तेल की भाँति दोखनेवाली तरकारी, गन्दी दाल । इस तरह हड्डो के बिना हमारे दिन किस प्रकार कट सकते हैं । ( ‘हड्डो’ अर्थात् छिपा कर लाया गया चूल्हा और पकाया हुआ अन्न । ) और चोरी बिना हड्डो किस प्रकार लग सकती है । किसी अधिकारी ने कभी पकड़ लिया तो ‘यह मेरा नहीं’ इस प्रकार कह कर हम अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं । और अभियोग को टालते हैं । यदि हमेशा सच बोलना हो तो हमारी सजा भी नहीं काटी जावेगी और आपको केवल अभियोग चलाने का ही काम करना पड़ेगा ।

फलक के सम्बन्ध में वन्दी को निश्चितरूपेण क्या कहना है, यह जानने के लिए अधीक्षक ने उससे पूछा, “इन फलक में क्या परिवर्तन किया जाय ?”

बन्दी बोला, “सम्प्रति तो ‘कभी कभी सच बोलो’ इतना ही भार हम पर रहने दीजिये। जब वह हजम हो जाय तो फिर यह फलक लगवा दीजियेगा।”

कृत्रिम गम्भीरता से अधीक्षक ने आज्ञा दी, “जमादार! इसको कमरे में बन्द कर दो और इसके कमरे में “कभी कभी सच बोलो” यह फलक लगा दो। जब इसको इतना हजम हो जाय तो फिर इसको इस फलक के नीचे से जाने देना।”

एक वर्ष नित्य से अधिक ठंड पड़ी थी। जाड़े के दिनों में दो कम्बल अधिक मिलते थे। परन्तु उससे भी ठंड कम नहीं होती थी। एक ओर कम्बल दिया जाय। इस प्रकार का अभिमत डाक्टर ने व्यक्त किया था। बस्त्रागार में कम्बल थे भी। परन्तु बड़ों के आदेश के बिना उनको वितरित नहीं किया जा सकता था। अधिकारियों ने इसके लिए आज्ञा मांगी थी।

४-५ दिन हो गये फिर भी कम्बल नहीं मिले। कडाके की सर्दई पड़ रही थी। डाक्टर ने एक ओर कम्बल देने का अभिमत दिया है, यह बात बन्दियों को विदित हो गई थी। एक दिन शाम को कई बन्दी बिनती करने के लिए कार्यालय के बाहर आये। अधिकारियों ने कहा “हम प्रमुख कार्यालय के आदेश की प्रतीक्षा में हैं। उत्तर आने में २४ दिन लग सकते हैं। यह देखो, तुमसे किसी को अक्षर ज्ञान हो तो कार्यालय को लिखा यह पत्र देख लो। “ऐसा कह कर उन्होंने पत्रों की फाइल बन्दियों के सम्मुख कर दी।

पत्र में लिखा गया था, यह बात सच थी। किन्तु इन्कार लेकर वापस जाने का अभिप्राय था रात को ठंड से ठिठुरना। इस भय से एक बन्दी ने कहा, ‘साहब! आपने पत्र लिखा है, इसपर तो हमारा विश्वास है। पत्र का उत्तर आने पर उसकी एक एक प्रति हमको दीजिये ताकि उसी को अपने कम्बलों के साथ जोड़कर ठंड कम होती है या नहीं यह हम देखेंगे।”

सीमा से अधिक इस प्रकार के वचन बोलने पर अधिकारी उस बन्दी पर क्रोधित हुए। उस बन्दी को कमरे में बन्द कर दिया और उसको तीन के बजाय चार कम्बल दिये गये। प्रातःकाल तक अधिकारियों का क्रोध शान्त हो गया था। उन्होंने अनुभव किया कि ठंड से श्रस्त होकर ही बन्दी को मुख से इस प्रकार के शब्द निकले थे। दौरे पर आते ही उन्होंने उस बन्दी को कमरे से मुक्त करवा दिया और फिर शाम को सभी बन्दियों को एक एक अतिरिक्त कम्बल दिया गया।

नासिक बन्दीगृह के बेलों में से एक बेल की बड़ी विचित्र लत थी। खाकी बस्त्रों को देख कर वह चौंक जाया करता था। बन्दियों के मातहत वह चुपचाप

काम करता, परन्तु यदि चाकी कपड़े पहना हुआ सिपाही या अन्य कोई उसको समीप आया तो वह वेल उसको मारने के लिये दौड़ता था ।

इसके आचार पर बन्दियों ने एक कहानी की रचना कर डाली थी । उनका कहना था कि पूर्व जन्म में यह बन्दी रहा होगा और सिपाहियों ने इसके साथ छल किया होगा । उसमें वह मर गया होगा । उसके फलस्वरूप अब यह इस जन्म में सिपाहियों से अपना बदला ले रहा होगा और उन्हें अपने नजदीक नहीं फटकने देता ।

परन्तु इससे भी अधिक चुभनेवाला एक व्यय दिल्ली के बन्दियों ने रचा था । नवोच्च न्यायालय के सिलसिले में मैं दिल्ली जाया करता था । भोजन के समय नज़ान की दीवार पर बहुत कौवे एकत्रित हो जाया करते थे । भोजन के बाद बन्दी रोटी के टुकड़े उनके पास फेंकते और कहते, “आओ, अफसरो । यह रहा तुम्हारा हिस्सा ।” उन फेंके हुए टुकड़ों को कौवे आकाश में ही चोंच में उठा लेते थे ।

इन शब्दों की पृष्ठभूमि के विषय में अपने मन का जब कौतूहल मैंने व्यक्त किया तो दो चार बन्दियों ने मेरी जिज्ञासा की पूर्ति करते हुए कहा “ये कौवे अपने पूर्व जन्म में इस बन्दीगृह के कर्मचारी थे । उनकी क्षुधा शान्त नहीं हुई और वेचारे मर गये । अबूरी इच्छा की पूर्ति के लिये उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि उन्हें कौबो की योनि प्रदान की जाय । क्योंकि मनुष्य जन्म की माग करने पर पुन बन्दी गृह में अधिकारी के रूप में जाने की कोई सम्भावना नहीं थी । भगवान ने उनकी प्रार्थना सुन ली । इस जन्म के कौवे होने से हमारे भोजन में पूर्व वे अपनी क्षुधा शान्त करने की उतावली नहीं करते । हमारा भोजन हो जाने के बाद उच्छिष्टान्न में ही उनकी तृप्ति होती है ।”

ऐसे ऐसे तीव्र व्यय बन्दीगण रचा करते थे । यह जानकर पाठकों को भी विस्मय होगा । मनुष्य को यदि बन्द भी कर दिया जाय तो भी उसकी प्रतिभा को बन्द नहीं किया जा सकता । यथाप्रसंग उसका दर्शन हो ही जाता है । यह बात गमन करने पर फिर उस प्रकार का विस्मय होने का कोई कारण नहीं ।

इसको जो कार्य दिया जाता उस कार्य की पद्धति और उसमें हमारी प्रगति देन उन हमारा उपयोग उत्पादन उद्योग के लिये किया जाय, ऐसा अधिकारियों को अनुभव हुआ । उस समय अहमदाबाद बन्द राज्य के अन्तर्गत ही था । वहाँ के बन्दीगृह में सातुन का निर्माण होता था । बन्दीगृह और पुलिस के जिला हासिलों का यह सातुन दिया जाता था ।

सातुन में यदि गावून या ( पीट्टी ) उत्पादन किया जाय तो उसमें आनन्द के लिये जो सातुन देने में मुदिता हो जायगी । इस नीति से नासिक बन्दी-

गृह में १९-८-५५ को इस साबुन उत्पादन का प्रारंभ हुआ। इस विषय के ज्ञाता अधिकारियों ने कई प्रकार के प्रयोग किये। अनेक प्रयोगों के उपरान्त द्रव्यों का परिमाण निश्चित हुआ। और निर्माण कार्य को नियमित किया गया।

जिन दिनों प्रयोग चल रहा था उन दिनों में अपने ज्ञान के लिये नोट्स बना कर रख लिया करता था। हाथ में लिये काम की अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये कुछ पुस्तकें मगाने की अनुमति प्राप्त की। जारी कारखाने और उसके उत्पादन का पुस्तक के आचार पर मिलान किया तब अधिकारियों की अनुमति से आवश्यक हेर फेर किये गये।

बन्दोगृह का सारा कार्य मनुष्य के हाथों द्वारा ही होता था। बहुत से काम अति कठिन और श्रमसाध्य हुआ करते थे। उत्पादन का प्रयोग समय पर हो इसके लिये कभी रात को भी कार्य करना पड़ता था। कक्षावली विभाग १ में यह नाबुन निर्माणी थे। इस निर्माणी में काम करनेवालों की वस्ती सुविधा के लिए उसी कक्षावली में थी। बन्दोगृहों के काम में आने वाला कीटनाशक फिनायल भी इसी निर्माणी में बनाया जाता था। इसका परिमाण बन्दियों ने स्वयं प्रयोग द्वारा ही निश्चित कर लिया था।

थाना बन्दोगृह में स्याही की बुकनी बनाने का उद्योग था। थाना में आर्द्रता अधिक होने के कारण स्याही निर्माणी का नासिक को स्थानान्तरण करने का निश्चय हुआ। और उसके अनुसार डेढ़ वर्ष बाद स्याही का उत्पादन भी नासिक में आरम्भ हो गया। रासायनिक सभी उद्योगशालायें एक स्थान पर रखने के उद्देश्य से वह निर्माण भी कक्षावली विभाग १ में ही रखी गई।

कच्चे द्रव्यों से स्याही का निर्माण करना पड़ता था। हरे को कूटना, माजू-फल का चूर्ण बनाना, हरे का छिलका पीसना, यह सब चक्की पर किया जाता था। सब कृति में एक दिन जा कर काम का ठीक प्रवन्व करा दिया। बन्दी को मिलनेवाला पारिश्रमिक चार आने से कभी रुपया तक हमको भी मिला करता था।

कच्चे माल का हिसाब, परिमाण और स्याही की विभिन्न अवस्थाओं की कृति पूर्ण करते हुए रात हो जाया करती थी। अधिकारियों के कहने पर स्वीकार किये गये दायित्व को पूर्ण करना ही चाहिये यह बात सदैव मन में रहती थी।

ऊपर के उद्योगों के रूप के अलावा अधिक बढ़ोत्तरी बेकरी का उद्योग भी आरम्भ किया गया था। करकरे प्रारम्भ में उस उत्पादन का कार्य देखते थे। मेरे पास हिसाब किताब था। बाद में उस विषय के जानकारों की नियुक्ति की गई। केवल उत्तरदायित्व मात्र हमारा रह गया था। वह निश्चित ही अधिकारियों की ओर से हमको सौंपा गया था।

गन्दी मजा के बन्दियों की प्रत्यक्ष में पाच वर्ष की मजा पूर्ण होने ही उनका प्रकरण उनकी मुक्ति का विचार करने के लिए परामर्शदात्री समिति के नामने रखा जाना था। जिस म्यान में बन्दी रहता हो उस म्यान के पुलिस अधिकारियों का अभिमत, जिलाअधिकारी का प्रतिपत्र, न्यायालय का निर्णयपत्र और बन्दी का सर्वमामान्य वर्ताव यह तथ्य विचार के लिये हुआ करते थे। पाच वर्ष पूर्ण होने के कारण छूट का विचार करना नमिति के क्षेत्र में नहीं हुआ करता था। नमिति बन्दी की मुक्ति के लिये शासन को अपना अभिमत लिख कर भेजती है अथवा यह भी लिख देती है कि एक निश्चित कालावधि के बाद इस विषय को पुन प्रस्तुत किया जाय, और इसी बीच यदि चौदह वर्ष का समय पूर्ण हो जाय तो फिर उनके लिये समिति के अभिमत की प्रतीक्षा नहीं होती।

१९५४ में हमारा विषय परामर्शदात्री समिति के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। नमिति ने निर्देश दिया कि इस विषय को दो वर्ष बाद पुन प्रस्तुत किया जाय। १९५६ में जब विषय समिति के समक्ष रखा गया तो समिति ने पुन एक वर्ष की अवधि निर्धारित कर दी। इसी बीच हमारे १४ वर्ष की कालावधि आ गई।

अवधि पूर्ण होने में ६ मास पूर्व बन्दी का प्रतिवृत्त शासन को भेजना होता है। इस समय छूट को अत्यधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि वह १४ वर्षों की गणना में आ जाती है। इसके लिये स्थानीय अधिकारियों का अभिमत और न्यायालय का निर्णय विचारणीय होते हैं। परन्तु यदि समय पर अन्य अभिमत अनुकूल न भी हो तो बन्दी के अपने गुणावगुणों पर भी कार्यवाही करने का अधिकार होता है।

इस समय एक और बात का भी विचार किया जाता है। कारावान के नियमों को यह भी अपेक्षित है कि न्यायालय में जिन विषयों पर चर्चा न हुई हो उनको अभियुक्त कारावास में खुले मन से अभिव्यक्त कर दे। उसका उपयोग दण्डन के विरोध में नहीं किया जाता। इसको समाज के हित में, सत्यासत्य की खोज करने के लिये तथा उसी प्रकार की अन्य घटनाओं की परस्पर तुलना की दृष्टि में आवश्यक समझा जाता है। शासन इसका उस प्रकार प्रयोग करता है अथवा नहीं, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। परन्तु बन्दियों के ऐसे वक्तव्य अपराध शास्त्र अर्थात् क्रिमिनलॉजी पर खोज करनेवालों के काम में आ सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

हमारा विषय सम्मुख आने पर हमसे इस विषय में पूछा जावेगा, ऐसी हमें अपेक्षा थी। गांधी दश काण्ड ऐतिहासिक महत्व का काण्ड था। न्यायालय के सम्मुख सभी बातें पूर्ण रूप में नहीं आ पाई थी। कई बातें विकृत रूप में आई थी तो कई असत्यरूप में आई थी। न्यायालय में अपने वचाव में हमने कहा था

कि हमारा गांधी वय से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। इसलिये ऐसी विवृत्त या असत्य बातों का निराकरण करने का प्रयत्न हमारे बचाव से सुपंगत सिद्ध होता था। इस प्रतिवृत्त के समय पूर्व घटित घटनाओं का वर्णन करने में हमको किसी प्रकार का भय नहीं था। हम कितनी ही बातें खुले मन से शासन को बता सकते थे और उनके सत्यासत्य का परीक्षण करने के लिये शासन के पाप अनेक साधन थे। उनकी सत्यासत्यता की जांच करने पर शासन उसको अभिलेख के रूप में रख सकता है जिसमें कि जिज्ञासुओं को उसका लाभ प्राप्त हो सके।

किन्तु ऐसा प्रतीत हुआ कि शासन सत्यासत्य निर्णय का उतावला नहीं था। हमारे १४ वर्षों के प्रतिवृत्त को मगाकर उसके आधार पर हमको मुक्त करने का भी सरकार का इरादा नहीं प्रतीत होता था अपितु उस नियम का दुरुपयोग करके अपनी दुर्भावना से हम पर अधिक अत्याचार और अन्याय किया जा सके यही सरकार का उद्देश्य था, इसका ज्ञान हमें बाद में हुआ। बन्दीगृह के अधिकारियों को भी इस प्रकार की सूचना होगी इसी कारण उन्होंने भी हमारे विषय में स्पष्ट कुछ न लिख कर केवल कार्यवाही की खाना पूरी कर दी थी।

संयोग से पहले गणतन्त्र के दिन हमको दया के रूप में ४० दिन की छूट दी गई थी। इस प्रकार दयास्वरूप मिली छूट को काटा नहीं जा सकता, क्योंकि उससे छूट देनेवाले का ही अपमान होता है। बन्दी को प्रदत्त अन्य छूट काटी जाने पर भी इस छूट को नहीं काटा जाता। इस छूट के आधार पर हमारा प्रतिवृत्त ४० मास पहले खिसक आया था।

श्री मोरारजी देसाई ने १९५२ में बम्बई विधान सभा में हमारी मुक्ति का दिन १०-२-६० घोषित किया था। उनकी धारणा थी कि यदि किसी प्रकार के नियमोल्लघन के लिये हमारी छूट के अन्य दिन काट भी लिये जाय तो उक्त ४० मास की छूट तो काटी नहीं जावेगी इस आधार पर ही उन्होंने उक्त सम्भावित तिथि की घोषणा की थी। नियमोल्लघन के लिये हमारी ८ दिन की छूट काटी गई थी। इसके अतिरिक्त और कोई छूट नहीं काटी गई थी। इसलिये हमारा विश्वास था कि मोरारजी भाई ने जिस सम्भावित दिन को हमारी मुक्ति का दिन बताया था उससे बहुत पूर्व हम मुक्त कर दिये जावेंगे।

अच्छा व्यवहार रखने पर प्रत्येक वर्ष सद्गुणव्यवहार के आधार पर मिलनेवाली सारी छूट हमें प्रतिवर्ष मिलती रही थी। नियत काम से अतिरिक्त काम करने के आधार पर भी हमको छूट दी गई थी। जहाँ पैसे और छूट का विकल्प होता था वहाँ भी हमने छूट को ही ग्रहण किया था, वह छूट भी हमारी एकत्रित थी। इस प्रकार की सभी छूटों का शासन ने समय समय पर अनुमोदन भी किया हुआ था। सरकार ने किसी भी एक दिन की छूट के लिये आपत्ति प्रकट नहीं की थी।



मनुष्य सामाजिक प्राणी है अतः सहजीवन और समाजधारणों के जो नियम होते हैं उनके पालन की अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति से की जाती है। इस प्रकार के नियम समाज के हित की दृष्टि से समाज ही निर्माण करता है। अपनी किसी कृति से किसी अन्य व्यक्ति को किसी प्रकार की हानि न हो यही इन नियमों का उद्देश्य होता है। उसी प्रकार अन्यो की कृति से हमें भी किसी प्रकार की हानि न हो यह भी मनुष्य अपेक्षा रखता है। नियमानुसार व्यवहार को धर्म बताया गया और नियमोल्लघन को अधर्म्य मान कर उसे दण्डित सिद्ध किया गया है।

उपरिलिखित व्याख्या के आधार पर अपने नियमानुकूल वर्तव्य का लाभ अन्यो के नियमानुकूल वर्तव्य से भी प्राप्त होता है। इसलिये नियमानुसार वर्तव्य करने पर किसी को क्या पुरस्कार दिया जाय ? क्योंकि वह तो मनुष्य का धर्म ही है। किन्तु दण्डितो के सम्बन्ध में इस को दूसरी प्रकार से वरता जाता है।

किमी सामाजिक नियम को भंग करना सिद्ध हो जाने पर किसी नागरिक को सजा होती है तब वह दण्डित कहलाता है। ऐसे व्यक्ति पर स्वाभाविक ही समाज के नियमों के अतिरिक्त भी कुछ और बन्धन लागू हो जाते हैं। उन अतिरिक्त बन्धनों को तोड़ने की उसकी प्रवृत्ति रहेगी, उसको नियमानुकूल चलाने के लिये शासन को बल का प्रयोग करना पड़ेगा, इससे वह डीठ बन जावेगा अतः मनो-विज्ञान के आधार पर यह नियम भी बना लिया गया है कि यदि वन्दी ने सद्-व्यवहार किया तो उसको पुरस्कार देने का उपबन्ध भी है। यह पुरस्कार होता है उसके सजा में किसी प्रकार की कुछ कमी।

अनुभवसिद्ध एक बात की ओर संकेत कर दिया जाय कि वन्दी यदि वन्दीवास में सबसे अधिक किसी बात से डरता है तो वह उसकी मुक्ति के दिन को खटाई में पड़ने में। नियम का पालन किया तो उसकी मुक्ति शीघ्र हो जावेगी और यदि नियमोल्लघन किया तो इससे मुक्ति और भी दूर हो जावेगी, यह भय वन्दी को नियम में बंधे रहने में सहायक होता है। सहस्रावधि दण्डित जन अपने दण्ड के दिन जो प्रायः शान्ति से बिताते हैं, उसका मूल कारण यही है। प्रत्यक्ष डंडे का उपयोग करने की वारो शायद ही आती है।

हमारा व्यवहार नियमानुकूल या इसमें कोई विधिपूता है, ऐसा हमारा उद्देश्य नहीं है। परन्तु प्रलोभन से हम भी मुक्त नहीं थे। क्योंकि हम भी थे तो दण्डितों की श्रेणी में ही। नियमानुसार वर्तव्य के आधार पर मिलनेवाली छूट का हमें भी अधिकार था। शासन ने हमको इस छूट से वर्जित नहीं किया था। यही कारण था कि हमको वह छूट मिलती रहती थी और समय पर शासन की ओर से उसकी पुष्टि भी होती रहती थी।

दयास्वरूप दी गई और हमारे द्वारा अपने वर्तव्य एवं अन्य प्रकार से अर्जित

छूट यह सब मिलाकर हमारी सजा के ८ वर्ष पूर्ण हो जाने पर हमारे १४ वर्ष का प्रतिवृत्त भेजा गया था। नियमानुसार छूट सजा के एक तिहाई से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि वह अधिक हो जाय तो उसके लिये शासन की विनियम पुष्टि करवाई जाती है, ऐसा नियम है। परन्तु गणतन्त्र घोषणा के उपलक्ष्य में दया-स्वरूप प्रदत्त छूट का हमारे प्रतिवृत्त पर कोई प्रभाव होनेवाला नहीं था, हाँ हमारे द्वारा अर्जित छूट हमारे वर्तन का प्रकटीकरण था। व्यवहार नापने का यह यन्त्र सरकार द्वारा ही निर्धारित था अतः उसके सत्यासत्य का प्रश्न ही नहीं उठता था।

पंजाब उच्च न्यायालय ने शासन को परामर्श दिया था कि मेरे विषय में दया का भाव बरता जाय। प्रतिवृत्त पर विचार करते समय यह तथ्य भी सम्मुख आना चाहिये इत्यादि। इन सब बातों को ध्यान में रख कर मुझे आशा थी कि मुझे समय से बहुत पूर्व ही मुक्त कर दिया जाना चाहिये। हम निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इसी मध्य १९-१२-५६ को करकरे के स्वास्थ्य का परीक्षण किया गया। विगत सात-आठ दिनों से उनमें क्षय की प्रकार के कुछ लक्षण से दिखाई देने लगे थे। जांच करने पर विदित हुआ कि उन्हें फुफ्फुस फोड़ा जिसे अंग्रेजी में लग एन्सेस कहते हैं, उसके लक्षण हैं। उनको चिकित्सा के लिये अस्पताल में रखा गया। ५-१-५७ को उन्हें बाहर के रुग्णालय में रखा गया।

करकरे की पत्नी सौ० सरस्वती बाई की अवस्था बहुत ही दयनीय हो गई थी। हमें बन्दीगृह में जो कष्ट भुगतने पड़ रहे थे उसका उनको बार बार अनुभव सा होता था। कभी कभी तो मिलने आये लोगों की बीच में ही छोड़ कर हमें काम के लिये बुलावा आ जाता था तो हमें काम करने के लिये जाना पड़ता और तीन चार घण्टे तक जब तक कि हम काम पूरा करके न आ जावें तब तक बैठ करनेवालों को भी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। इस हाली हुई आत्मीयता का फल जब हाथों के समीप आने को है किन्तु क्रूर नियति उनको भी छोड़ती सी प्रतीत हो, इस प्रकार करकरे की अवस्था होना सम्भवनीय लगता था।

करकरे की दशा का ध्यान कर सौ० सरस्वती बाई ने सरकार ने प्रार्थना की कि उनके पति को पैरोल पर छोड़ दिया जाय। एक वर्ष बाद करकरे फिर बीमार पड़े। उस समय उनको मधुमेह का विकार होने लगा। हमके साथ ही फलदार पर भी एक फोड़ा हो गया था। उनको निरन्तर पथ्य पर रखा गया किन्तु बीमारी बढ़ती गई। तभी सौ० सरस्वती बाई ने उनकी तुरन्त मुक्ति के लिये

प्रार्थना की थी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि हमको अघेरे में बन्द कर दिया है और अघेरे में ही हमारा अन्त भी हो जायगा। नासन को थोर में प्रतिशोध को ऐसी ज्वाला सी धक्कती स्पष्ट दिखाई दे रही थी। यही कारण है कि सी० सरस्वती बाई की किसी भी प्रार्थना पर सरकार ने कभी भी दया का भाव नहीं दर्शाया।

नासिक बन्दीगृह में उस समय डा० चह्वाण चिकित्सक थे और मिविल मर्जन थे डा० यत्ते। इन दोनों द्वारा किया गया उपचार ही करकरे को अच्छा होने के प्रमुख कारण कहे जा सकते हैं।

तीन सप्ताह बाद करकरे को बम्बई के बन्दीगृह में भेजा गया। क्योंकि वहाँ से उन्हें बम्बई के प्रख्यात जे० जे० अस्पताल में चिकित्सा के लिए रखना था। एक मास के लगभग वहाँ रहकर करकरे को वापस नासिक भेज दिया गया। वापस आने पर भी कई मास तक वे बन्दीगृह के रुग्णालय में ही थे।

कई वर्ष तक मैंने बन्दीगृह में हिन्दी का अभ्यास किया। महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा सभा की प्रवेशिका परीक्षा से प्रारम्भ कर १९५६ में पण्डित परीक्षा उत्तीर्ण की। अन्तिम परीक्षा की पढाई के दिनों में तो काम का बोझ बहुत ही बढता था। प्रातः होते ही फैक्ट्री का कार्य प्रारम्भ हो जाता था। ३४ मास बाद ही सरकार का आर्थिक वर्ष पूर्ण होने वाला था। कच्चे माल की प्रभूत सामग्री आकर पड़ी थी। नियत अवधि में ही सरकार की माग को पूर्ण करना था। रात्रि को नौ बजे के बाद जेलर के समीप बैठकर सभी फैक्ट्रियों का हिसाब किताब करना पढता था। इस कार्य में ग्यारह-बारह बजना तो साधारण सी बात है किन्तु कभी कभी तो भोर भी हो जाती थी। काम करने में उत्साह लगता था। क्योंकि स्वयं को व्यस्त रखने से सजा का जो तनाव मन और मस्तिष्क पर रहता था वह भूला सा रहता था।

इसके साथ ही यह भी लगता था कि इससे कुछ अर्जन भी कर रहे हैं। प्रमुख कार्यालय ने मेरी पढाई की सुविधा के लिये एक दीपक और एक डेस्क की व्यवस्था करवा दी थी। मेरी इच्छा थी कि यहाँ रहते हुए पढाई के द्वारा किसी प्रकार की कोई उपाधि ही ग्रहण कर ली जाय। किन्तु पढाई के लिये मिलनेवाला समय अपर्याप्त था।

परीक्षा में ८ दिन बाकी थे। तब मैंने एक दिन अवीश्रक से कहा, “या तो आप मेरे बन्दीपाल को ८ दिन का अवकाश दे दीजिये या फिर इतने दिन के लिये उन्हें उन विभाग में आने में मना कर दीजिये।”

अवीश्रक को मेरी कठिनाई समझ में आ गई। उन्होंने बन्दीपाल से कहा, “इतको पढाई के लिये समय नहीं मिल रहा है। अतः रात की पाली बन्द कर दो।

पढाई के लिये समय मिलना ही चाहिये । ये इस परीक्षा को उत्तीर्ण करले यह अपने लिये भी सराहनीय ही है ।”

सचमुच ही आठ दिन तक बन्दीपाल उस ओर आये ही नहीं । केवल अत्यावश्यक कार्यों का निपटारा करके मैं अपनी पढाई में लग जाया करता था । एकान्त की दृष्टि से कभी कभी मैं स्तूप की पहली मजिल पर जाकर बैठता था । परीक्षा के लिए वाहर के केन्द्र पर जाने की स्वतन्त्रता नहीं मिली थी । समय पर पैरो में बेड़ी डाल कर भेज देते तो मैं इसके लिए भी उद्यत था । किन्तु इसे भी स्वीकार नहीं किया गया । तब राष्ट्र-भाषा सभा ने बन्दीगृह में ही मेरे लिये एक केन्द्र खोला और उसको नासिक केन्द्र के साथ सम्बद्ध कर लिया गया । इस प्रकार मैंने परीक्षा दी । परीक्षा समाप्त करते ही अब तक जमा हुआ सारा काम मैंने पहले समाप्त किया । वह शीघ्र ही समाप्त भी हो गया, क्योंकि अब पढाई की चिन्ता मन से हट गई थी । मैं परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया । एक अधिकारी को तो इससे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसने नियमों को ताक में रखकर मुझे दो पैसे दिये ।

अधिकारियों को आज्ञा से मैं हिन्दी परीक्षा देनेवाले कर्मचारियों की सहायता कर दिया करता था ।

दि० ११-४-५७ को हमारे १४ वर्षों के प्रतिवृत्त का निर्णय आया । उसमें लिखा था—“पन्द्रह वर्ष प्रत्यक्ष सजा भुगतने के बाद ही मुक्ति के प्रश्न पर विचार किया जावेगा ।” अंग्रेजी के शब्द थे—दि क्वेक्शन ऑफ रिजिज विल वि टेकन अप आफ्टर कम्प्लीटिंग फिफ्टीन इयर्स एक्जुअल इम्प्रिजनमेंट ।

यह निर्णय वास्तव में आघात पहुँचानेवाला था । उस निर्णय में प्रतिशोध की भावना झलकती थी, उसमें क्रूरता थी, अमानुषता थी । कम से कम विधान सभा की प्रतिष्ठा के लिये ही सही थी मोरार जी भाई ने जिस दिन का उल्लेख किया उसके आस पास ही छोड़ने की बात करते ।

इस आधार पर १९६४ में हमारे प्रतिवृत्त पर विचार होगा । अर्थात् गान वर्ष बाद । सम्प्रति हमको मिली हुई छूट मिला कर १४ वर्ष, उनके बाद नान वर्ष का और बन्दीवास और उस बन्दीवास में मिलने वाली न्यूनतम २½ वर्ष की छूट तथा कभी कभी शासन द्वारा दी जानेवाली अन्य छूट सह मच मित्र कर लगभग २५ वर्ष बाद हमारी मुक्ति का विचार किया जावेगा । वाग्यान्वष्टिना की किनी भी प्रचलित प्रणाली के अनुसार यह नहीं था । दण्डा अभिप्राय तो एक ही प्रतीत होता था कि यदि उस समय तक हम मर गये तो ठीक है, अन्यथा अग्रिम और बढ़ाते बढ़ाते हमारी सजा का अन्त होने-में पूर्व हमारा अन्त

देखना शासकों के मन में था। गांधी वध के निमित्त न्यायान्ध ने दो बलिदान माँगे थे, वे यथाविधि दे दिये गये थे। किन्तु अपने दया के अधिकार का विपरीत प्रयोग कर पृष्ठद्वार से यदि हम इसके लिए और अधिक बलि ले मयें तो हमें हम गांधीजी के सच्चे पुजारी मित्र होंगे। ऐसी गव गांधीभक्त मानवों की प्रतीत होती थी। इसीलिये उतनी ही क्रूर भावना से हम पर अत्याचार किये जा रहे थे। अपने प्रतिवृत्त पर दिये गये निर्णय के बाद जब जब भी देश में सामग्रीय नेताओं के 'सदा सत्य बोलो' इस विषय के भाषण पढ़ा करता था तो मेरे मन में आता था "शासन द्वारा दीवारों के भीतर मूढ़ पर लादा हुआ अमत्य का अँधेरा क्या कभी मैं जनता के सम्मुख प्रदर्शित कर सकूँगा? क्या उस प्रदर्शन के लिये मैं जीवित भी रहूँगा?"

वृद्धत्व से दुर्बल एवं चिन्ता से व्यग्र मेरे माता पिता ने जब उन निर्णय के बारे में सुना तो उनके मन में जो प्रतिक्रिया हुई वह यही कि अब उनके जीते-जी उन्हें गोपाल के स्वतन्त्र जीवन के दर्शन नहीं होंगे। उन्हें जो यह आशा थी कि न्यायालय के अभिमत का विचार १४ वर्ष के प्रतिवृत्त के समय होगा, उनका इस निर्णय ने प्रतिवाद कर दिया था। और इस निर्णय के आधार पर अब उन वचन का अथवा घोषणा का भी कोई अर्थ नहीं रह गया था जिसके आधार पर विधान सभा में यह कहा गया था कि हमको फरवरी १९६० में मुक्ति मिल जावेगी। क्योंकि वह पाकिस्तान को दिया हुआ आश्वासन तो था ही नहीं कि जिनका पालन करने के लिये शासन बाध्य होता है।

पाठक कृपया यह न समझें कि उपरिलिखित टिप्पणी में किसी प्रकार के क्रोध या केवल कल्पना के आधार पर की है। कांग्रेसी विचारधारा के कट्टर समर्थक भी मेरे लेखों को पढ़ते हैं और जब कभी उनसे भेंट होती है तो वे अपना अभिमत व्यक्त करते हुए मुझसे कहा करते हैं कि मेरे लेख संतुलित होते हैं। उनकी इस सराहना से मुझे प्रसन्नता होती है। मैं चाहता हूँ कि उनकी वह धारणा दृढ़ रहे, इसलिये मेरे मन में यह रहता है कि मैं किसी प्रकार का एकांगी वर्णन न करूँ। मैंने जो भी उदाहरण यहाँ दिये हैं, यदि किसी को उन पर-सन्देह हो तो वह शासन के उस प्रकार के बतवि की जाँच कर सकते हैं। शासन से पूछ कर और उसकी सत्यासत्यता की जाँच पड़ताल कर जब उनको यह विश्वास हो जाय कि वह सच है तो फिर वे अपने शासन द्वारा अपने ही नागरिकों की, न केवल नागरिकों की अपितु विधान सभा की भी अनुचित रीति से उपेक्षा की है इसके लिये वे सरकार की प्रतारणा करें जिससे कि भविष्य में इस प्रकार की दुर्नीति की पुनरावृत्ति करने का दुस्साहस किसी भी सरकार अथवा उसके कर्मचारी को न होवे।

मीरदाद जरदाद नाम का आजन्म कैदी था। विभाजन से पूर्व ही वह भारत आ गया था, इसलिए वह भारत का नागरिक था। भारत में ही उससे अपराध हुआ और भारत के न्यायालय ने उसको दण्ड दिया। अपने १४ वर्ष के प्रतिवृत्त में उस पर होनेवाले अन्याय की शिकायत वह किससे करेगा ? शासन से अथवा किसी भी न्यायालय के सामने ? ऐसा ही उसको करना भी चाहिये था। किन्तु उसने शिकायत की तो किमको ? पाकिस्तान के उच्चायुक्त को। हिन्दुस्तान के मुसलमानों का हित देखने का कार्य भारत के शासन का है। पाकिस्तान के किसी नागरिक पर यदि भारत में अन्याय होता है तो उस अवस्था में पाकिस्तान का उच्चायुक्त उस विषय में कार्यवाही कर सकता है। वह सरकार से शिकायत कर उसका उपाय कर सकता है।

किन्तु विभाजित भारत में भी मुसलमान समाज शेष समाज से पृथक् अलग है और उनके घटको का हितचिन्तन करना भी अपना कर्तव्य है, सदैव ऐसी धारणा रखनेवाले पाकिस्तान के उस उच्चायुक्त ने भारत सरकार के पास मीरदाद के साथ हुए अन्याय के लिये लिखा पट्टी की। उसके उत्तर में “मीरदाद भारत का नागरिक है, हमारे भीतरी प्रशासन एवं अनुशासन में हस्तक्षेप करने का आपको कोई अधिकार नहीं है, मीरदाद को शिकायत करने के लिये यहाँ के न्यायालय खुले हैं।” ऐसी दो टूक किन्तु युक्तियुक्त बात कहने की अपेक्षा सरकार ने उत्तर में लिखा—“यदि यहाँ से दया स्वरूप उसको छूट दी गई तो उससे मीरदाद की सजा की अवधि में कमी हो जावेगी और तदनुसार उतनी जल्दी उसको मुक्ति भी प्राप्त होगी।”

आगे चल कर एक प्रसंग पर दयास्वरूप छ मास की छूट दी गई। परन्तु छूट के उस आदेश के परिपत्र में लिखा गया था कि पहले जिनके सम्बन्ध में निर्णय दिया गया है उन पर यह छूट लागू नहीं की जावेगी।

परिपत्र के इस ‘शर्त’ के कारण मीरदाद अटक गया। तब मीरदाद ने शासन को स्मरण कराया, “आपने पाकिस्तानी उच्चायुक्त को जो आश्वासन दिया था क्या आप उसको भूल गये हैं ?”

शासन को होश आया। बात तो सच है। हम अपने हिन्दू नागरिकों को दिये गये आश्वासनों को झुठला सकते हैं, क्योंकि हिन्दू का तो कोई राष्ट्र नहीं है, इसलिए उनका कोई आयुक्त भी नहीं। हम विधानसभा में उच्चारित शब्दों को समझानुकूल उलट-पलट सकते हैं, क्योंकि विधानसभा कोई विदेशी सत्ता तो है नहीं। हम अपने किसी न्यायालय के अभिमत को भी टुकरा सकते हैं, क्योंकि न्यायालय हमारे अधीन होते हैं, हम उनसे श्रेष्ठ हैं। परन्तु एक मुसलमान नागरिक के सम्बन्ध में पाकिस्तानी उच्चायुक्त को दिये गये आश्वासन को यदि हमने

कार्यान्वित नहीं किया तो, हमारा व्यवहार झूठा सिद्ध हो जावेगा, इससे मुस्लिम विश्व में हमारी कुख्याति होगी, ससार में अपनी अप्रतिष्ठा होगी, अतः उसका पालन होना ही चाहिये ।

इसलिए शासन ने अपने परिपत्र की अवहेलना की । चुपचाप मीरदाद को कहा गया, 'देखो, परिपत्र की विद्यमानता में भी हम तुमको उस दया का लाभ दे रहे हैं ।' इस प्रकार उसको छ मास की छूट देकर उसको समय से पूर्व मुक्त कर दिया गया ।

यदि हम क्षण भर के लिए यह भी मान लें कि वह पाकिस्तान का नागरिक था । तो भी परिपत्र की अवहेलना कर उसको जो छूट दी गई थी वह भारत के नागरिक अन्य बन्दिनों को क्यों नहीं दी गई । क्या वे भारत के नागरिक किसी विदेशी उच्चायुक्त के पास सहायता के लिए नहीं दौड़ पाये इसलिए उनके साथ यह अन्याय किया गया ? आज वह बात एक प्रकार से इतिहास की बात बन गई है परन्तु इतिहास पढ़ा अथवा सुनाया भी इसीलिए जाता है कि जिससे उन गल-तियों की पुनरावृत्ति न हो सके ।

गोपाल से एक बार अन्तिम भेंट कर लें, इस बेचैनी से दि० २९-४-५७ को मेरे माता-पिता नासिक बंदीगृह में आये । उनके साथ छोटा भाई गोविन्द और कुछ रिश्तेदार भी थे ।

उनकी भेंट में अभूकण यद्यपि नहीं थे, किन्तु करुणा का क्रन्दन था । वह दवा हुआ था । मैं प्रत्यक्ष में ऐसा ही उनको दिखाता था कि मेरा जीवन साधारण चल रहा है जिससे कि उनको दुःख न हो । उसी प्रकार मुझे लगा कि वे भी अपनी अन्तर्वेदना छिपाते हैं जिससे कि मैं उनकी दशा से दुःखी न हो पाऊँ । इस प्रकार की सावधानी दोनों ओर से बरती जाती थी ।

माँ विमट-घिसट कर सीढियाँ चल पाई थी । मैं सोचने लगा कि क्या उसकी यह बीमारी अन्तिम सिद्ध होगी ? माँ मेरे लिये अगूर लेकर आई थी । किन्तु नियम आड़े आ गया । तब माँ को मैंने- "माँगने पर हमें यहाँ भी अगूर मिल जाते हैं ।" यह कहकर समझाया । बाहर से आये हुए टोकरी भर अगूर और माँ के दिये हुए गिने हुए चार अगूरों के अन्तर को मैं समझता था । परन्तु अधिकारियों से विनती करना और उनके द्वारा असमर्थता में खेद प्रकट कर अस्वीकार कर देना मुझे सह्य नहीं था । यदि पंजाब में होता तो चार दाने अगूर ही क्या मैं भोजन भी ले सक्ता था ।

अन्ती भावनाओं को दबाकर हमने उन दिन की भेंट समाप्त की । विदाई लेने भयम भी किसी ने किसी प्रकार का दुःख प्रदर्शित नहीं किया । घिसट कर ही माँ बाहर गई । इस यात्रा से उसको बहुत कष्ट हुआ था, वह दम्बई जाकर

गोविन्द के पास ही रही । ६-५-५७ को उसके देहान्त होने का पत्र मुझे देहान्त के दूसरे दिन प्राप्त हुआ था ।

दि० ९-५-५७ को मेरे वडे भाई दत्तात्रय माँ की अस्थि लेकर आये । उनके साथ अन्य भी अनेक जन थे । मुझे विशेष अवकाश देने का कोई मार्ग अधिकारियों के पास नहीं था । शासन का हृदय पसीज सकता है यह भी नितान्त असम्भव बात थी । फिर भी प्रयत्न किये गये किन्तु जब सफल नहीं हो सके तो अस्थि-कलश वदीगृह के भीतर लाया गया, जिससे कि मैं अन्तिम दर्शन कर सकूँ । अस्थि दर्शन करते हुए वे मेरे आँसू टपक पड़े और वे अस्थियों पर गिर पड़े थे ।

दस दिन पूर्व ही माँ मुझसे मिलने के लिए आई थी, तब उसकी इच्छा गोदावरी स्नान करने की थी । उसके लिए उठना बैठना भी असम्भव हो गया था इसलिए बिना स्नान किये ही वह वापस चली गई थी । और अब उसके अस्थि अवदोष को गोदावरी में विसर्जित किया जा रहा था ।

माँ के देहान्त होने के बाद मेरी पत्नी रुग्ण हो गई । एक के बाद एक इस प्रकार से अनेक आघातों से उसका मन और मस्तिष्क विकल हो गया था । शरीर थिथिल पड़ गया । उपचार के लिए उसको अस्पताल में प्रविष्ट कराया गया । वह बेहोश हो जाती थी । उस बेहोशी की स्थिति में बहुत कुछ बड़बड़ाती रहती थी । और उसमें वह एक ही बात कहा करती थी, 'शासन ने अन्याय किया' । - इस बीमारी में वह दो मास तक पड़ी रही ।

इसके कुछ मास बाद मेरे पिता जी का भी देहान्त हो गया । शासन के निर्णय से वेदना होने का एक मुख्य कारण यह भी था कि हमको सश्रम कारावास की सजा तो मिली थी किन्तु जो श्रम हमको करने के लिए दिया जाता था उससे कहीं अधिक श्रम हम करते थे, किन्तु उसका न किसी कागज पत्र में लेखा जोखा था और किसी के मन-मस्तिष्क पर ही । हमने यह काम किसी प्रकार की दान भावना से नहीं अपितु अपने लिए किसी आशा से किया था । कठिन श्रम का तो वह काम था ही किन्तु ऐसी बुद्धि, चातुरी का भी काम था कि कोई भी न्यायप्रिय व्यक्ति हमारी करनी को देखकर आश्चर्यचकित हो जाय । हमने कैसा काम किया इसका विवरण मैंने १९५९ में अपनी पत्नी को लिखे एक पत्र में किया था ।

हुआ यह कि हमारे विरुद्ध निर्णय के बाद भी कार्य का विस्तार कम नहीं हुआ था । और हमने भी काम से हाथ नहीं खींचा था । अधिकारी समय समय पर बदलते रहते थे । मात्र हम ही खूंट की भाँति वहाँ अचल थे । दो वर्ष बाद बदल कर जो अधिकारी आये उनमें और हममें उत्पादन के काम के सम्बन्ध में एक प्रकार से तीव्र विवाद उत्पन्न हो गया था ।



कुछ भी हो, उसका उत्तरदायित्व हमारा नहीं अपितु अधिकारियों का था। किन्तु हम पर उसका उत्तरदायित्व दे कर हमारे साथ अन्याय किया गया था। अपने आन्तरिक बल के आधार पर उस अन्याय को दवाया जाता था। हमने काम करना छोड़ दिया। हमको अलग विभाग में बन्द कर दिया गया। वहाँ रह कर भी हम इस आन्तरिक अन्याय के लिये अधिकारियों से झगड़ने लगे। इसी अवधि में अधीक्षक का भी स्थानान्तर हो गया और उसके स्थान पर दूसरा अधीक्षक आ गया। और उनके आते ही एक बात ऐसी हो गई कि हमारे विषय में उनका प्रथम प्रभाव हमारे लिये अहितकर सिद्ध हुआ।

यह बात जुलाई १९५६ की है। मेरी पत्नी दि० ८ को मुझसे मिलने के लिये आई थी। भेंट करने के उपरान्त वह अधीक्षक से मिली। उन्होंने उसको कार्यालय में बुलवाया, उनमें परस्पर कुछ वार्त्तालाप हुआ।

मुझे ३ ४ दिन बाद पत्नी का पत्र मिला। उसने मुझे लिखा था कि अधिकारी अच्छे हैं, और मुझे नियमों का पालन करना चाहिये। अधीक्षक के साथ हुई भेंट का विवरण भी उसने दिया था।

अधीक्षक का पक्ष क्या है यह तो उसको विदित हो गया है किन्तु उसे मेरा पक्ष भी तो समझना चाहिये ऐसी मेरी धारणा थी। अधिकारियों के द्वारा ही यह समझा जाय तो अच्छा हो ऐसा भी मैं समझता था। दि० १४-७-५९ को मैंने उसके लिये एक पत्र लिख कर अधिकारियों को दिया। उसको वह पत्र मिला भी गया। उस समय के हमारे विवाद और काम के विषय में मैंने लिखा था। पत्र इस प्रकार था—

कारावास दि० १४-७-५९

प्रिय सिन्धु,

पर्यवेक्षक से भेंट करने पर तुमको अनेक बातों की जानकारी प्राप्त हुई, इसकी मुझे प्रसन्नता है। यद्यपि इस बात को लगभग चार-एक मास हो गये हैं, किन्तु मैंने स्वयं ही तुमको बताना उचित नहीं समझा था। उसका कारण यही था कि इससे मैं तुम्हारी चिन्ता को और अधिक बढ़ाना नहीं चाहता था। मेरे मानसिक तनाव के विषय में तुम्हें मेरे पत्रों में थोड़ा बहुत तो आभास मिलता ही होगा।

दो व्यक्तियों अथवा पक्षों में हुए तनाव अथवा खिचाव के वातावरण को शान्त करने के लिये अनेक व्यक्तियों की सहायता की आवश्यकता होती है। समय भी महत्वपूर्ण होता है। इसके साथ ही एक दूसरे से समझदारी से बातचीत करने में प्रमाद हो जाय तो विवेक बुद्धि से काम लेना और उस प्रमाद को दूर करना भी एक कारण बन सकता है। किन्तु जब दोनों पक्ष जानबूझ कर और अपने मन में

यह धारणा बना कर कि 'मेरा पक्ष ही सच है' चलें तो उस भ्रान्ति को तीसरा पक्ष ही दूर करने में सहायक हो सकता है ।

दूषित वातावरण ठीक हो, उसके लिये कोई प्रयत्न करे और उसमें किसी प्रकार का विघ्न आ जाय और उस विघ्न को महत्व दे कर वातावरण को अच्छा किया जा रहा है, यह कहना किसी को भी उच्युक्त नहीं प्रतीत होता । इससे मूल वातावरण में अर्थात् दूषित वातावरण में और वृद्धि होती है ।

इस प्रकार के सोद्देश्य अथवा निरुद्देश्य प्रयत्नो से किसी भी व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन विगड़ सकता है और फिर मैं तो एक ऐसा बन्दी हूँ, जिसके साथ निरन्तर अन्याय ही किया जाता रहा है । हाँ, यदि कोई विकृत मस्तिष्क वाला व्यक्ति अर्थात् पागल हो तो उसको इन बातों से किसी प्रकार का सुख-दुःख नहीं होगा । स्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति पर इसको प्रतिक्रिया होगी और दुःखातिरेक से वह पागल भी हो सकता है । इन चार महीनों में मेरे मन पर पागल बनने जितना अतिरेकी परिणाम नहीं हो पाया इसका श्रेय मन स्थिति जाननेवाले और सुदूर की सोचनेवाले अधिकारियों को है ।

सिन्धु, सहिष्णुता समाप्त होने पर मनुष्य जो मार्ग खोजता है, जिन उपायों का अवलम्बन लेता है उससे क्या यही अनुमान लगाया जाता है कि उसका सन्तुलन विगड़ गया है ? यदि यह मान लिया तो फिर यह भी देखना होगा कि सहिष्णुता समय से पूर्व ही समाप्त हुई है अथवा समयावधि बीत जाने पर । यदि वह समयावधि बीत जाने के बाद ही हुआ है और अवलम्बित मार्ग भी उचित ही सिद्ध होता है तो फिर उसको तो समर्थन ही मिलना चाहिये । महाभारत का उदाहरण सम्मुख है । यद्यपि यहाँ पर यह उदाहरण बहुत बड़ा है फिर भी मैं संकेत कर रहा हूँ । कृष्ण और पाण्डव उस युद्ध में विजयी हुए इसी कारण उनका चरित्र स्थिर रह पाया था । उनका पक्ष न्याय का पक्ष था यह इतिहास की साक्षी हैं । युद्ध से पूर्व कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था, यह भी हम मानते हैं । गीता के तत्वों का अवलम्बन कर उनमें निष्ठा रखकर युद्ध किया और विजय प्राप्त की इसलिये हम कृष्ण को द्रष्टा कहते हैं । किन्तु यदि परिस्थिति विपरीत होती तो ? यदि कौरवों की विजय हो गई होती तो ? तब द्रौपदी पर किया गया अत्याचार इतिहास में अंकित नहीं होता, और वृत्तराष्ट्र को इतिहास ने नोत्तिष्ठ का स्थान दिया होता । तथा द्रष्टा कृष्ण न होकर कौरवों का कोई क्रूर सेनापति होता । और आयुध इतिहास में फिर यह भी अंकित हो जाता कि बलाबल का विचार न करते हुए, सन्तुलन के अभाव में पाण्डवों ने आततायीपन अंगीकार कर स्वयं ही अपना नाश करवा लिया । ऐसा ही निष्कर्ष तत्कालीन इतिहासकारों

ने निकाला होता। इस बात का साक्षी इतिहास ही है कि इतिहासकारों ने सदा शासकों का ही समर्थन किया है, विजेताओं को ही महत्व दिया है।

अधिकारियों के अच्छे स्वभाव के कारण मैंने यथोचित से अधिक लाभ उठाया होगा, ऐसी यदि तुम्हारी धारणा है तो वह भ्रान्त है। सिन्धु हम बन्दिओं के कुछ अधिकार होते हैं, कई सुविधायें हमारे लिये नियम में निहित होती हैं। उसमें से कुछ सुविधायें अधिकारियों की इच्छा से दी जाने का विकल्प भी नियमों में है। उनमें से जो सुविधायें अधिकारियों ने स्वेच्छा से मुझे दी उनके विषय में मैंने यह कभी न कहा कि वह मेरा मूलभूत अधिकार था। उसके लिये मैं सदैव सम्बन्धित अधिकारी का आभारी रहा हूँ। यदि उस प्रकार की वह सुविधा मुझे नहीं दी गई तो उसके लिये मैंने अपने मन में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया की भावना नहीं रखी।

ऐसे विकल्प का अनुकूलता से प्रयोग करने के लिये भी कुछ कसौटी होती है। अपने काम की दक्षता के विषय में किंचित् सकेत कदाचित् मैंने तुमसे किया है। समस्त भारत के बन्दिओं के विषय में तो मैं कुछ नहीं कह सकता। हाँ, समस्त बम्बई राज्य में यदि पूर्ण उत्तरदायित्व से और कुशलता से कार्य करनेवाले शीर्ष-तम ८-१० व्यक्तियों को यदि कोई सूची बनाई जाय तो उनमें हमारा भी स्थान होगा, ऐसा मैं कह सकता हूँ। विगत साढ़े तीन वर्षों से प्रतिवर्ष लाखों रुपये का व्यवहार, उत्पादन वृद्धि और पूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए जिसमें कि अधिकारी अणुवत् भी दोष न दिखा सकें, इस प्रकार का काम मेरे हाथों से हुआ है। अलिप्तशक्ति त्प में नहीं अपितु चरितार्थ में कहना पड़ता है कि दिन रात लगाये बिना यह होना क्या सम्भव था? यह मेरा कोई व्यक्तिगत व्यवसाय तो नहीं था और न ही इसमें मेरी किंचित् पूँजी आदि लगी थी। जिस आशा के साथ अधिकारियों ने विद्वान् करके हम पर उत्तरदायित्व सौंपा था उसको पूर्ण कर उनके विश्वास को स्थायी बनाने के लिये अपना कण कण सुखा कर हमने यत्न किया और अक्षरशः अपना उत्तरदायित्व निभाया। यदि कोई न्यायप्रिय व्यक्ति होगा तो वह इसका समस्त श्रेय हमको देगा। काम में आत्मीयता डालना यह हमारा स्वभाव बन गया था। "जितना दाम उतना काम" इस प्रकार की भावना को हमने कभी पनपने ही नहीं दिया।

मा के देहान्त या समाचारसूचक पत्र मुझे प्राप्त. ११ बजे के लगभग प्राप्त हुआ था। परकरे रणान्य में थे। मैंने पत्र पढ़ा और जेब में रख लिया। मेरा अन्तर गूँगा बन रहा था, उनमें लिये मुझे एकान्त की आवश्यकता थी।

यदि मैं बन्दी नहीं होता और विनी का कर्मचारी होता तो मुझे छुट्टी मिल जाती। सिन्धु, गिन्नु, यहाँ बन्दीगृह में किसको छुट्टी मिलेगी? बेलगाडिया मेरी छाती पर गरी थी। अन्न-अन्न स्थानों पर साबुन भेजना था। आज नियत काम तक

नियत मनुष्य सीख गये हैं। किन्तु उस समय सारा दायित्व अकेले मुझ पर था अथवा डाला गया कहीं, जो कुछ भी है या वह मुझ पर ही। वैलगाडियां भर दी थी, भट्टी चालू थी, वह विगड न जाय इसकी ओर ध्यान देना नितान्त आवश्यक था। मुझे अकेले व्यक्ति पर आई विपत्ति के लिए मैं ३०-४० व्यक्तियों को उसका शिकार बनाना उपयुक्त नहीं समझता था और न यह सम्भव ही था।

दोपहर बाद चार वजे से कुछ लेखन कार्य में अधिकारियों की सहायता करनी पड़ती है। वह होना बहुत आवश्यक है। अपनी अडचन के लिये क्या मैं उनको असुविधा में डालूँ ? उसके बाद ही मैंने आसू गिराने का निश्चय किया था।

इसके अतिरिक्त एक कार्य यह भी था कि यदि बेकरी के पदार्थ वाप कर नहीं दिये जाते तो दूसरे दिन प्रातः विक्री के लिये पदार्थ दिये ही नहीं जा सकते थे। बेकरी मेरी तो थी नहीं जिसे एक दिन के लिये बन्द कर दिया जाता। अनेक दैनिक बंधे हुए ग्राहक होते हैं। वे विश्वास पर रहते हैं। उनके कार्य को मैं कैसे टाल सकता था।

यह सब काम समाप्त कर रात्रि को ९ वजे ही मुझे एकान्त प्राप्त होनेवाला था। और वह तभी प्राप्त हुआ भी, उससे पूर्व नहीं। पत्रको पुनः पढ़ने के लिये जेब से निकाला। पढ़ने का कोई कारण तो था नहीं। मन की बात तो ज्ञात थी ही। आखें भर आईं। एक के बाद एक इस प्रकार अनेक स्मृतियों की कड़ी हृदय में उमड़ने लगी। उसी मनस्थिति में मैंने तुमको एक पत्र लिखा था और प्रातः भेज दिया था। क्योंकि प्रातः फिर मुझे कोल्हू में जाता जानेवाला था। मुझे अवकाश नहीं था, कोई सान्त्वना देनेवाला नहीं था।

त्वरा से किया जानेवाला कार्य कितनी ही सावधानी से क्यों न किया जाय किन्तु कहीं न कहीं और कभी न कभी उसमें कोई दोष निकल आना स्वाभाविक है। दाहक द्रव्यों के व्यवहार में भी मुझे कुछ इसी प्रकार के अनुभव हुए हैं। इस उद्योगशाला की प्रयोगावस्था से उसकी ठीक व्यवस्था होने तक की अवस्था में मैंने स्वयं कार्य करके उस अनुभव को प्राप्त किया है। एक बार नहीं तीन बार इस प्रक्रिया में मेरी आंखों में कास्टिक का पानी गया था। इससे एक बार तो आंख की पुतली में तीव्र ज्वर भी हो गया था। उस समय आंख से अन्वा हो जाने का भय भी हो गया था। एक बार निचले ओष्ठ के बाहर भीतर गरम गरम कास्टिक का तरल पड़ गया था, इससे तीन दिन तक तो मैं मुंह में कोई वस्तु डाल ही नहीं सका था। पूरा ओठ छिल गया था और मसूड़े भी उससे प्रभावित हुए थे।

अपनी शारीरिक क्षति के लिये क्या मैं किसी से भरपाई की मांग कर सकता था ? मैं करूँ भी तो कोई देनेवाला नहीं। क्योंकि बन्दीगृह के अन्दर के उद्योग

फैक्ट्री एक्ट के अन्तर्गत नहीं आते। इसलिये उन पर कॉम्पेन्सेशन के नियम भी लागू नहीं होते। परन्तु यदि कोई अडचन का अथवा कठिन काम हुआ तो उसको स्वेच्छा से स्वयं करने का अभ्यास मैंने किया था और उसमें प्रगति भी की थी। इसीलिये दूसरे नये सीखनेवालों को बिना किसी प्रकार की टाल मटोल के काम सिखाना सरल हो पाया। इसी का ही परिणाम है कि इन साठे तीन सालों की अवधि में किसी को किसी प्रकार का कोई तीव्र आघात लगा हो ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है। सबको अपने अपने काम में मैंने सिद्धहस्त बना दिया था।

क्या किसी भी काम में आत्मीयता डाले बिना यह सब सम्भव था? करकरे को जो फुफ्फुस विकार हुआ था उसका कारण भी डाक्टर ने कार्स्टिक और कार्बोलिक की भाप के सदैव सम्पर्क में रहना बताया था।

इन कामों में अपनी आत्मीयता डाल कर कार्य को सिद्ध करते हुए अधिकारियों का विश्वास प्राप्त कर उसके प्रतिदान में यदि उन्होंने मुझे कुछ सुविधा देने का विचार किया होगा तो उसके प्रति आभार प्रकट करना जैसा मेरा कर्तव्य है उसी प्रकार उनको भी चाहिये कि वे ऐसा न मानें कि उन्होंने मेरे सिर पर किसी प्रकार के उपकारों का बोझ रखा है अन्यथा मैं इसके योग्य तो था ही नहीं? मैंने जी तोड़ कर शरीर की क्षति करके अपना काम समझ कर काम किया है उसके बदले में ही उन्होंने मुझे कुछ सुविधाएँ प्रदान की होंगी, यो ही भावावेग में नहीं।

वर्तमान विवाद के विषय में तुमको उस ओर मे विवरण प्राप्त हुआ है, उसकी चर्चा मैं नहीं करूँगा, क्योंकि वह इस समय भी विवाद का विषय ही बना हुआ है। उसकी चर्चा करने से हानि की सम्भावना है।

तुम्हारी एक आशका के विषय में केवल मैं लिखना चाहता हूँ। मुझसे नियम पालन ठीक प्रकार से होता है अथवा नहीं, इसके विषय में तुमने मुझसे पूछा है। उसका निश्चित उत्तर तो मैं 'हाँ' के रूप में ही दे सकता हूँ। मैं नियमों का पूर्णतया पालन करता हूँ। तुमने यह प्रश्न क्यों किया है, मैं इस विषय में नहीं जानता। परन्तु यदि मेरा अनुमान ठीक है तो मैं तुमको अलग शब्दों में लिख रहा हूँ।

एक उदाहरण देता हूँ। यदि किसी बन्दी को वाग की मूली पकते हुए देख लिया जाय तो उस पर अभियोग चलाया जावेगा। क्यों ऐसा करना नियम विरुद्ध है। परन्तु पृष्ठताळ करने पर यदि ऐसा विदित हो कि उस बन्दी को चार दिन से भोजन ही नहीं मिला था, उसने इस विषय में शिकायत करने की चेष्टा भी की थी, परन्तु कदाचित् किन्हीं कारणों से उसकी शिकायत पर ध्यान नहीं दिया गया, तो क्या होगा? इस समय के अधिकारियों को तो बात ही छोड़ दो। उनमें पर्याप्त

दया है। परन्तु यदि अधिकारी कठोर होंगे और वे न्यायाप्रिय भी हुए तो क्या वे इसकी पूछताछ नहीं करेंगे कि उसको चार दिन तक भोजन क्यों नहीं दिया गया ? तथा उसने जो मूलो खाई तो विवशता में ही खाई इसलिये उस पर किसी प्रकार का नियम लागू कर उसका अपकार करने का कोई अभिप्राय नहीं। यही तो इसका न्याययुक्त निष्कर्ष हो सकता है ?

सिन्धु, मनुष्य मात्र रोटी के टुकड़ों पर ही जीता है ? भोजनमात्र पर तो पशु ही जीते हैं। मनुष्य को तो जीने के लिये कर्तृत्व की लालसा, प्रेम, सहानुभूति, उसकी कृति का मूल्यांकन, इत्यादि बातों की भी आवश्यकता होती है। इसके लिये वह सभी सम्भव उपाय करता है। मैंने यह भी पढ़ा है कि कुछ थोड़े से प्राणियों को छोड़ कर अविकाश प्राणियों में सामूहिक जीवन की प्रवृत्ति होती है। मनुष्य प्राणी तो नितान्त सम्पर्क प्रिय है, वह समूह के बिना रह ही नहीं सकता। मैं सोचता हूँ कि आदि मानव ने जब समूह बनाये होंगे तो वे प्रेम, सहानुभूति, कर्तृत्व और प्रशंसा का आदान प्रदान करने के लिये ही किये होंगे। एक दूसरे के साथ लड़ने के लिये निश्चित ही उन्होंने समूहों का निर्माण नहीं किया होगा। किसी को कोई चीज प्राप्त करने का मार्ग अन्याय करके बन्द कर दिया गया है यदि किसी को दिखाई दे तो कौन समझदार व्यक्ति होगा जो इस अन्याय की सराहना करेगा ? वह तो उसके निराकरण का ही उपाय करेगा।

क्या मैं स्वतः को अपराधी मान सकता हूँ ? किसी को अपराधी मानने के दो लक्षण हैं। एक वैध और दूसरा नैतिक। वैध यदि कहो तो मैं किसी भी रूप में स्वयं को अपराधी नहीं मानता। नैतिक के विषय में मेरा कहना है मान लो कि 'अ' मेरा अधिकारी है। और 'ब' 'अ' का वरिष्ठ अधिकारी है। मुझे 'अ' से कुछ शिकायत है। वह मैं 'ब' के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ। मेरी शिकायत यदि 'अ' के सामने आने से पूर्व 'ब' के पास गई तो वह निश्चित ही अनुपयुक्त होगी। एक और उदाहरण देता हूँ। तुम जो मुझे प्रेम पत्र लिखती हो उसके विषय में यदि तुम्हारी यह धारणा हो जाय कि अमुक अधिकारी उन पत्रों को पढ़ता है और उस अधिकारी के सम्मुख ही हम दोनों को भेंट का अवसर प्राप्त हो तो तुमको मेरे साथ बात करने में सकोच होगा कि नहीं ? उन्नी प्रकार कई बातें वरिष्ठ अधिकारियों तक जाने की नहीं होती। छिपाने की दृष्टि से नहीं। अपितु नाधारण बात हाने के कारण मैं ऐसा लिख रहा हूँ। दो मित्र परस्पर जो वार्त्तान्त्रिक करेंगे उसका प्रत्येक शब्द ही सुमधुर नहीं होता।

परन्तु सिन्धु खुले मन के अधिकारियों से खुले मन से बात करने में मुझे कभी भय नहीं लगता। और न कभी किसी प्रकार का संकोच ही हुआ। वह फिर कोई बन्दीगृह का छोटा सा अधिकारी हो अथवा न्यायालय का न्यायाधीश। मुझे

जो कुछ लगता था वह मैं सम्बन्धित अधिकारियों को उनी समय कह कर अपने मन का बोझ हलका कर लेता रहा हूँ ।

अधिकारियों के सौजन्य से मैं अनावश्यक और अधिक लाभ उठा लेता हूँ, ऐसी यदि किसी कि धारणा होगी तो उसको दूर करने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है । तुमको एक बात कहता हूँ । कुछ अधिक सम्पर्क मे ऐसा भी होगा कि कुछ विशेष सुविधाओं के लिये चन्द्री चुनने हो तो उनमें मैं निश्चित रूप में आ सकता हूँ, ऐसा अधिकारी भी सोचेंगे ही ।

और उपसहार रूप में मैं तुमको इतना ही विश्वास दिलाता हूँ कि इस विषय में तुमको किंचित् भी व्यथित नहीं होना चाहिये । अधिकारियों को मुझ पर कभी कोई एकजान लेना पड़ जावेगा, ऐसा कार्य मैं कभी नहीं करूँगा । न ही मैं कोई ऐसा कार्य करूँगा जिसके लिये मुझे लज्जित होना पड़े ।

इसी प्रकार का मेरा व्यवहार और प्रवृत्ति रही तो मैं समझता हूँ कि इससे तुम्हें भी सन्तोष ही होगा ।

पत्र बहुत लम्बा हो गया है ।

सदैव तुम्हारा ही  
गोपाल

पूर्ति बुधवार रात्रि ११ वजे  
१५-७-५९

इसके बाद अभी मुक्ति नहीं मिल सकती, इस प्रकार का जब पुनः निर्णय आया तो उससे कुछ दिन तक मन बहुत अस्वस्थ रहा । मैं निरन्तर यही विचार करता था कि मुझ पर जो अन्याय किया जा रहा है उसका प्रतिकार किस प्रकार हो सकेगा । अथवा मैं किस प्रकार इसको प्रकट करूँ, यही मैं दिन रात सोचता था । क्या इस विषय में न्यायालय में जाया जा सकता है ? क्या मंत्रिधान में इस सम्बन्ध में अपने लिये कोई सुविधा है ? इस विषय में एकट की भावना क्या है ? कौन से अधिकार के आधार पर अपनी प्रार्थना प्रस्तुत की जा सकती है ? इनमें से किन्नी बात का भी ज्ञान मुझे नहीं था ।

मैं केवल एक बात जानता था । वह यह कि मुझ पर अन्याय हुआ था और न्यायालय में अन्याय का निराकरण होता है । न्यायालय धनी-निर्धन, दण्डित स्वामी-सेवक, शासक-शासित, इस प्रकार का कोई भेदभाव नहीं करता ऐसा मेरा विश्वास था ।

यह प्रश्न ही एक अलग प्रकार का था । आजीवन कारावास का अर्थ क्या होता है ? सजा के कार्यबहन में प्रभारी शासन-संस्था का अर्थात् एक्जीक्यूटिव का

कितना अधिकार है ? न्यायालय कहा हस्तक्षेप कर सकता है ? ऐसे प्रश्नों की कदाचित् कभी चर्चा मात्र ही हुई होगी वस उतना हो उसके आधार पर मेरा ज्ञान भी था । वकीलो के लिये भी यह सदैव आनेवाले विषयों में से नहीं था अतः स्वाभाविक ही वकील वर्ग भी इससे अम्भस्त नहीं हो सकते थे ।

अगस्त १९५७ में मैंने अपने वकील के द्वारा बम्बई उच्च न्यायालय में बम्बई प्रत्यक्षीकरण याचिका—हैरियस कार्पस पैटिशन—प्रस्तुत कराई थी । न्यायालय ने उसे लौटा दिया था । वकीलो का भी दोष नहीं था । क्योंकि उनके लिए भी यह विषय ही नया था । इसलिए उसके सभी प्रकरणों पर भलीभाँति विचार नहीं किया जा सका । किन्तु इससे तो मेरा समाधान सम्भव नहीं था ।

सबिधान, भारतीय दण्ड विधान—इंडियन पीनल कोड, दण्ड संहिता क्रिमिनल प्रोसिजर कोड, वदीगृह निर्वन्ध-प्रिजन्स एक्ट आदि आदि कई पुस्तकें मैंने मगाईं । देहली के एडवोकेट श्री गणपत राय से पत्र व्यवहार द्वारा सम्पर्क स्थापित किया । अपनी याचिका स्वयं प्रस्तुत करूँ, इसके लिए स्वयं को तैयार किया और दिसम्बर १९५७ में मैंने अपना पहला आवेदन सर्वोच्च न्यायालय को भेज दिया ।

\* \* \*



## चौदह

### यन्त्रणा

अपनी लिखावट सुधारने के लिये एक एक अक्षर का बार-बार अभ्यास किया जाता है। उसी प्रकार मैं भी सर्वोच्च न्यायालय के विषय में प्रयत्न कर रहा था। कभी न्यायालय बुला लेता और पूर्व श्रवण के उपरान्त पाच मिनट में ही आवेदन वापस कर देता। कभी पूर्व श्रवण के अवसर पर तो आवेदन को स्वीकार कर लेता परन्तु अन्तिम श्रवण के समय कुछ टेकनिकल अडचन उपस्थित कर देता और आवेदन वापस लेना पड़ जाता। कभी न्यायालय स्वयं आवेदन पढ़ता और उसमें कुछ उल्लेखनीय तत्व न पाकर मुझे बिना बुलाये ही आवेदन अस्वीकार कर देता। कभी तो रजिस्ट्रार महोदय आवेदन को देख कर वापस कर देते। कुछ तकनीकी दोषों के कारण ऐसा सदैव होता रहता था। यह सब यातनाएं मैं सहन करता था।

मेरा मन स्वस्थ नहीं था। शासन चलवाना ही सकता है, किन्तु वह न्यायशील नहीं था। किन्तु यह बात सिद्ध करना मेरे वश में नहीं था।

प्रत्येक पराजय के अवसर पर मेरे ज्ञान में कुछ न कुछ वृद्धि होती। उसकी महायता मे ही मैं आगे का प्रयत्न करता। दिसम्बर १९५७ से अगस्त १९६४ तक की अवधि में मैंने २२ आवेदन पत्र प्रस्तुत किये थे।

वकील के द्वारा यह कार्य कराना मेरे लिये सम्भव नहीं था। क्योंकि मात्र वकील को गढ़ा करने से ही कार्य सम्पन्न होनेवाला नहीं था। एकत्र की सूक्ष्म धारारों ध्यान में वैधाना नितान्त आवश्यक था। और किसी भी वकील को इतनी

गहराई से छान वीन करने का अवसर मिलना सम्भव नहीं था। मुझे यदि अवकाश पर छोड़ा होता तो तब कदाचित्त यह सम्भव हो सकता था। क्योंकि तब मैं आराम से अवकाश के क्षणों की भाँति एकट्ठा का एक एक अक्षर और एक-एक पंक्ति का गहन अध्ययन कर वकील के ध्यान में लाता रहता। इसके अतिरिक्त आर्थिक प्रश्न भी था। केवल ड्राफ्ट तैयार करने में ही सैंकड़ों रुपये लगते थे। यह सब मेरे लिये सम्भव नहीं था।

कभी कभी वकीलों से परामर्श कर लिया करता था। किन्तु जब उन्हें विदित होता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक आवेदनो को अस्वीकार कर दिया है तो फिर उनका उत्साह विलुप्त हो जाता और वे आगे कार्य करने के लिये प्रोत्साहन नहीं देते थे। कोई वकील यह सम्मति दिया करते कि शासन से ही विनती कर मुक्ति का मार्ग खोजा जाय। भले ही उनके कथन में भ्रमत्व हो किन्तु शासन के पास जाने का कोई कारण नहीं था और न मार्ग ही। मुझे न्याय चाहिये था, उसके लिये कोई सविधान विशेषज्ञ यदि सहायता करता तो वह चाहिये थी। मेरा अधिकार न्यायालय द्वारा प्रस्थापित करा लेने की मेरी इच्छा थी। मेरे सद्ब्यवहार एवं सौजन्य को मुख्य मान कर उनके आधार पर मुझे मुक्ति चाहिये थी।

दि० २१-११-५७ को मैंने 'पिटोशन इन द नेचर ऑफ हैबियस कॉर्पस न० १४४, १९५७ से सर्वोच्च न्यायालय में आवेदन किया था। मैंने स्वयं आवेदन प्रस्तुत करने की अनुमति माँगी थी। उस विनती के अनुसार मुझे न्यायालय में प्रस्तुत करने का आदेश न्यायालय ने भेज दिया था।

पूर्व श्रवण के लिये २३-१२-५७ की तिथि निश्चित की गई। उसके ४-५ दिन पूर्व ही मुझे दिल्ली के बन्दीगृह में लाया गया था। प्रातः ९-३० तक न्यायालय पहुँच गया था। उस समय सर्वोच्च न्यायालय संसद भवन के एक भाग में लगा करता था। न्यायालय के प्राण में पहुँचने पर वास्तुकला का वह नमूना मैंने तब पहली बार ही देखा था। ऊँचा न्यायासन, सुन्दर कुर्सियाँ, वकीलगण और प्रेक्षकों के बैठने के लिए सामने सजाई गई गद्देदार कुर्सियाँ, पदचाप न हो एतदर्थ विछाये गये गलीचे, मन्यरगति से घूमनेवाले पत्ते, अदृश्य दीपों का प्रकाश, इस प्रकार की सजावट थी उसकी। सर्वोच्च न्यायालय का अपना भवन उन दिनों लगभग ८० लाख के व्यय से बनवाया जा रहा था। लगभग ७-८ मास बाद अर्थात् ४-८-५८ को उस भवन का उद्घाटन हुआ और फिर सर्वोच्च न्यायालय को संसद भवन से वहाँ स्थानान्तरित किया गया था।

सर्वोच्च न्यायालय की भव्यता देखने का अवसर मुझे प्रथम बार ही मिल रहा था। मैं न्यायालय में जा कर बैठा। वकील आ रहे थे। किन्ती अन्य के कानों में स्वर न पहुँच जाय इतने मन्द स्वर से वे परस्पर वार्तालाप कर रहे थे।

जिस प्रकार मनुष्य कोलाहल से भौंचक्का-सा हो जाता है उसी प्रकार कृत्रिम शान्ति भी अक्षरती है। स्वभाव के विपरीत लादी गई उस शान्ति से एक प्रकार के तनाव का सा आवरण मेरे मन पर चढ़ रहा था।

स्वतन्त्र भारत के सर्वोच्च न्यायालय की भाषा अंग्रेजी है। अंग्रेजी में ही आवेदन स्वीकार किये जाते हैं, अंग्रेजी में ही उसे प्रस्तुत किया जाता है और अंग्रेजी में ही तर्क वितर्क किये जाते हैं तथा अंग्रेजी में ही निर्णय सुनाया जाता है। आज तक यही प्रथा स्थिर है।

वकील समुदाय में लगभग ५० वर्ष से अधिक आयु के जन ही दिखाई देते थे। विधान का पठित ज्ञान होने के साथ साथ अनुभव के आधार पर अर्जित ज्ञान भी उनके पास समझा जाता था।

वकीलो की तुलना में मेरा ज्ञान कितना है, मेरी शिक्षा कितनी है, अनुभव कितना है, इन विचारों से मन में उथल पुथल सी होती थी। इस प्रकार के वातावरण में मैं अपने विचारों को ठीक प्रकार से व्यक्त भी कर पाऊँगा अथवा नहीं इस प्रकार का भय भी मन में उठता था। परन्तु एक विश्वास यही था कि मेरी शिक्षा, आयु, अनुभव और ज्ञान की बातें जान लेने पर भी न्यायालय मेरी तुलना वकीलों से नहीं करनेवाला था। मैं अपना विषय स्वयं ही प्रस्तुत करने वाला था इसलिये मुझे किसी वकील से स्पर्धा भी नहीं करनी थी।

मेरे केस में पाँच न्यायाधीशों की न्यायपीठ बैठी थी। सवधानिक प्रश्नों पर प्रायः पाँच न्यायाधीशों की पीठ का ही विधान है। अपनी शिकायत मैंने उनके सम्मुख प्रस्तुत की। एक एक न्यायाधीश मुझसे प्रश्न पूछते थे मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उनका उत्तर देता था। १५ मिनट की चर्चा के बाद पूर्व श्रवण में ही आवेदन लौटा दिया गया।

मुझे मिली छूट पर शासन ने विचार नहीं किया और उसका लाभ मुझे नहीं मिला ऐसी धारणा न्यायाधीश महोदय की बनी किन्तु उसको सिद्ध करने के लिये मेरे पास किसी प्रकार का प्रमाण नहीं था। मेरी रिपोर्ट वृक मेरे पास विद्यमान नहीं थी, जिसमें कि वह सब अंकित होता है। आवेदन लौटा दिये जाने पर ३-४ दिन मैं ही मैं वापस नासिक आ गया। तुरन्त ही मैंने दूसरा आवेदन लिखना आरम्भ किया। दि० २-१-५८ को अधीक्षक के हाथ में मैंने आवेदन-पत्र दे दिया और उसके ४-५ दिन बाद प्रतिज्ञापत्र दिया।

उस दूसरे आवेदन में मैंने न्यायाधीश की धारणा को पुष्टि की थी और शका का निराकरण भी। मेरा कथन था कि अवकाश को मैंने अर्जित किया था शासन उसका अपहरण नहीं कर सकता था। दि० ८-२-५८ को मुझे बताया

गया कि १७-२-५८ की तिथि पूर्व श्रवण के लिये नियत की गई थी। मुझे न्यायालय में उपस्थित रहने का आदेश न्यायालय ने अधिकारियों को दिया था।

दि० १७-२-५८ को २५ मिनट तक चर्चा हुई। न्यायाधीश को मेरी बात समझ में आई तो उन्होंने शासन से उत्तर देने के लिये कहा। तथा इसके लिये दि० ३-३-५८ की तिथि निश्चित की गई। यह मेरी अर्जी १९५८ की पिटीशन न० १० थी।

शामन ने नियत तिथि पर अपना उत्तर दिया। उसके आधार पर निर्णय मेरे विरुद्ध हुआ। न्यायाधीश ने अपने निर्णय में जेल के मैनूअल का हवाला देते हुए लिखा कि जेल मैनूअल के नियमों के आधार पर आजन्म कारावास का दण्ड भुगतनेवाले का दण्ड दण्ड-संहिता की धारा ४०१ के आधार पर रोकना पड़ता है। शासन ही उस अधिकार का प्रयोग कर सकता है। अतः आजन्म कारावास के दण्डित की मुक्ति केवल शासन ही कर सकता है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि दण्ड संहिता की धारा ४०१ शासन को दया का उपयोग प्रदान करने के लिये है।

उसके बाद भी मैं आवेदन करता रहा। कभी न्यायालय मुझे बुला लेता। परन्तु कारागारसंहिता के नियमों को निरुपाय करनेवाला उपाय मेरे पास न होने के कारण मुझे वापस आना पड़ता था।

दि० ५-९-६० को मेरे सातवें आवेदन के पूर्व श्रवण की तिथि नियत हुई। उस सुनवाई के बाद न्यायालय ने शासन को उत्तर देने के लिये कहा और दि० १२-१०-६० को अन्तिम श्रवण के समय कतिपय टेक्निकल कठिनाइयों के कारण आवेदन को वापस कर दिया गया। तुरन्त दूसरा आवेदन कर उस टेक्निकल कमी को दूर करना आवश्यक था। दिल्ली बन्दीगृह से ही मैंने अपना अगला अर्थात् आठवां आवेदन पत्र प्रस्तुत किया। उसके बाद मुझे फिर नासिक भेजा गया।

दि० १४-१०-६० को उस आठवें आवेदन की पेशी हुई थी। शासन को उत्तर देने के लिए कहा गया था। दि० २३-१०-६० को आवेदन पर दो घंटे प्रार्थना हुई। तब निर्णय को सुरक्षित रख लिया गया था। मेरा समाधान नहीं हुआ था, क्योंकि मेरा मन कहता था कि यह सुरक्षित निर्णय मेरे विरुद्ध ही आयेगा।

सर्वोच्च न्यायालय ने उसे ही पुष्ट प्रमाण मानकर उसके आधार पर अपना निर्णय दिया। विषय की गहनता को देखने का उन्होंने भी यत्न नहीं किया। उसी निर्णय में न्यायाधीश ने आगे लिखा कि आजन्म निष्कासन या आजन्म कारावास प्रथम-दर्शनी बन्दी को अवशिष्ट आयु तक निष्कासन अथवा बन्दीवास, इस प्रकार का अर्थ ग्रहण करना चाहिये। मृत्यु का दिन किसी को ज्ञात नहीं हो सकता इस कारण उसमें से छूट नहीं काटी जा सकती। अतः छूट का आधार लेकर दण्ड की अवधि पूर्ण होने का वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। दण्ड संहिता ४०१ के अनुसार आज्ञा प्रसारित किये बिना बन्दी को स्वतन्त्रता का अधिकार नहीं है। यह उस निर्णय का सार संक्षेप था।

रोग से उसका उपाय जिस प्रकार कई बार अधिक कष्टदायी होता है वैसी ही मेरी स्थिति हो गई थी। धारा ४०१ में तो मात्र दया का ही अधिकार निहित था। उस पर बड़े रहते हुए बन्दी को तड़फा-तड़फा कर मारने का अधिकार शासन को उसके द्वारा प्राप्त हो गया था। बन्दी अच्छा व्यवहार करे अथवा बुरा काम करे अथवा न करे, छूट प्राप्त करे अथवा न करे, अधिकारियों की आज्ञा का पालन करे अथवा न करे, किन्तु उसको मुक्ति शासन की इच्छा से ही प्राप्त हो सकती है। यही मुख्य लक्ष्य रह जाने के कारण बन्दी को दिये जानेवाले सामान्य न्याय प्राप्त करने का भी अधिकार नहीं रह गया।

बन्दी के अपने सद्व्यवहार के आधार पर सजा की छूट प्राप्त कर लेने पर भी यदि कोई अन्य कारण इसमें बाधक बन भी जाय तो भी उसका सद्व्यवहार मूल्य मानकर उसकी मुक्ति में सहायक सिद्ध हो इस प्रकार का कोई नियम ही नहीं रह गया था। शासन जिसको चाहे दो वर्ष में छोड़ दे, पाच वर्ष में छोड़ दे, किसी को सजा प्रारम्भ होने से पूर्व ही छोड़ दे, किन्तु जिसके प्रति उनकी कुदृष्टि हो गई उसने कितने ही दीर्घ काल तक प्रत्यक्ष कारावास भुगता हो, कितनी ही छूट प्राप्त की हो परन्तु जब तक उसके तन में प्राण है, हृदय में घड़कन है, जब तक उसकी सजा पूर्ण नहीं हुई और उसको बन्दी बनाये रखने का स्वयं को अधिकार प्राप्त है ऐसा मानकर किसी को मुक्ति की आज्ञा ही न दे इस प्रकार के अन्यायपूर्ण व्यवहार के लिये शासन को स्वतन्त्रता मिल गई।

धामन स्पी अन्यकार में चलनेवाले अन्याय न्यायालय स्पी प्रकाश में स्पष्ट करने का नामर्थ्य किसी बन्दी में शेष नहीं रह पाता। यही कारण है कि सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख भी वह बात स्पष्ट नहीं हो पाई और सम्भवतया मैं स्वयं ही अपना पक्ष भरी प्रहार प्रस्तुत न कर पाया होऊँ, यह भी हो सकता है। क्योंकि न्यायाधीश के उन निर्णय ने कुछ ऐसा ही आश्रम भी मिलता था कि मैं अपनी बात उठाने सम्मुख स्पष्ट नहीं कर पाया हूँ।

आजीवन कारावास का अर्थ है किसी की स्वतन्त्रता का अपहरण न कि उसके जीवन का अपहरण। जीवन का अपहरण करने के लिये विधान की एक-एक लिखित धारा है, वह अर्थात् मृत्युदण्ड देने की धारा। आजीवन कारावास उससे कुछ कम ही माना जाता है। इस दूसरी सजा का पर्यवसान पुनः स्वतन्त्रता प्रदान करने में हो सकता है मृत्यु देने में नहीं। क्योंकि मृत्यु देने के लिये दूसरा विधान है। और मृत्यु दण्ड देने के बाद स्वतन्त्रता प्रदान की गई ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस वस्तुस्थिति और तर्क पर आधारित धारार्य विचारणीय थी। क्योंकि आजन्म कारावास का अर्थ मृत्युदण्ड नहीं है अतः इसका विश्लेषण करने के लिये न्यायालय की आवश्यकता होती है।

जो जल हमारी आँखों को शुद्ध दिखाई देता है उसी जल से रोग भी उत्पन्न होते हैं, ऐसा सांसारिक नियम है। ऐसी अवस्था में सूक्ष्मबीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षण करने के उपरान्त रोग दूर करने के उपाय किये जाते हैं। इसी प्रकार भेरी स्थिति में भी न्यायालय उस सूक्ष्मबीक्षण यन्त्र का कार्य करे, ऐसी मुझे अपेक्षा थी।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से मैंने स्वयं को असहाय्यवस्था में पाया। उस निर्णय को किस प्रकार बदला जाय, किसके सम्मुख प्रकट करने से बदला जा सकता है। बन्दी अपनी मृत्यु का दिन नहीं बता सकता। शासन भी वह दिन नहीं बता सकता। बन्दी को छूट देना यदि नियमित था तो उस छूट को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व क्या छूट देनेवाले पर नहीं होना चाहिये? आजन्म कारावास का बन्दी अपनी मृत्यु का दिन नहीं बता सकता इसलिये उसको प्रदान की गई छूट का प्रयोग उसकी सजा कम करने में नहीं किया जा सकता, इस बात पर यदि शासन को दृढ़ रहना था तो फिर उसने हमको यह क्यों कहा था कि हम रक्तदान करें और उसके बदले में छूटें अथवा पैसे प्राप्त कर लें, ऐसा आजन्म कारावास के बन्दी को क्यों कहा जाता रहा था। यह किस नियम के आधार पर किया गया था? बन्दी का रक्त लेकर उसको झूठे आश्वासन इस कारण दे देना क्योंकि वह विवश है और पूर्णतया शासन के अधिकार में है? कारावास से बाहर यदि इस प्रकार का कोई व्यवहार करे तो शासन उसको दण्ड का भानी मानता है। हमारी स्थिति में शासन बलवान था, किन्तु वह विश्वसनीय नहीं रह गया था, न्यायनिष्ठ नहीं रह गया था। सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय को मान्य करना मेरे लिये कठिन हो रहा था और उसे अमान्य कर उसके सम्मुख ही उसके टुकड़े कर दूँ ऐसा सामर्थ्य भी मुझे में नहीं था।

मैंने जो छूट प्राप्त की थी उसके सम्बन्ध में न्यायालय ने टिप्पणी की थी कि “हमें ऐजा नहीं, प्रतीत होता कि शासन अनुचित व्यवहार करेगा।” उचित

और अनुचित की व्याख्या किये बिना ही न्यायालय ने अपनी सम्भावना को व्यक्त किया था। न्यायालय ने जिस प्रकार की आशा अपने निर्णय में व्यक्त की थी विधान की दृष्टि से वह शून्य के समान थी। पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा मेरे विषय में अपने निर्णय में व्यक्त किये गये दयाभाव को शासन ने किस प्रकार ठुकराया था वह मैं जानता था। न्यायालय के शब्द को मान देने का अर्थ है अपने प्रतिगोच की भावना को समाप्त करना, इस विचार ने उस समय के शासको ने न्यायालय के अभिमत को ठुकरा दिया था। इस कारण सर्वोच्च न्यायालय की डम आशा की अभिव्यक्ति को कि "शासन अनुचित रीति से वर्तव करेगा, ऐसा नहीं लगता" शासन कितना महत्व देगा यह मैं मन ही मन जानता था। फिर मुझे न्यायालय से जो चाहिये था वह दया का पत्र नहीं अपितु मुझे अपनी स्वतन्त्रता का अधिकार चाहिये था। किन्तु सम्भावना यही बढ़ती जा रही थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के अपने प्रयत्नों में मैं कदाचित अपना जीवन ही खो बैठूँ। इसके लिये शासन को कोई अतिरिक्त कठिनाई होनेवाली नहीं थी। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर वारा ४०१ के अन्तर्गत देने की आज्ञा कभी दी ही नहीं जायगी। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा अपना अन्याय छिपाने का बहुत बड़ा साधन सरकार के हाथ में आ गया था।

डम निर्णय की प्रतिध्वनि समाचार पत्रों में भी उठी थी। किसी ने तो इस प्रकार की आज्ञा की व्यक्त की थी कि सरकार को दिये गये इस अनिवर्ध अधिकार का उपयोग कभी अन्यायपूर्ण रीति से भी हो सकता है।

इस निर्णय को सुन कर जितना मैं विचलित हुआ था उतनी ही मेरी पत्नी भी विचलित हुई थी। अपने हृदय के उद्गार निकालने के लिये उसने नराठी भाषी दैनिक "भराठा" में प्रकाशनार्थ एक पत्र भेजा था। आचार्य अत्रे ने वह सम्पूर्ण पत्र २६-१-१९६१ को प्रकाशित किया। मेरी पत्नी की मन स्थिति उन निर्णय से कैसी हो गई थी उसका आभास उस पत्र से मिलता है। पत्र इस प्रकार था —

"दि० १३-१-६१ के अंक में मेरे पति श्री गोपाल विनायक गोडसे को दिये गये दण्ड और मुक्ति के सम्बन्ध में आप द्वारा लिखित सम्पादकीय पढ़ा। अपने उम लेख में आपने मेरे पति पर किये जानेवाले अन्यायों में से एक अन्याय को और पाठकों का ध्यान आकर्षित किया, इसके लिये मैं आपकी आभारी हूँ।

दुर्भाग्य की बात तो यह है कि सरकार स्वयं को राज्यकर्ता न समझ कर राजा हो समझती है। आजन्म कारावास के किसी बन्दी की सजा को तो हम हमारे प्रारम्भ होने से पूर्व ही क्षमा कर उसको मुक्त कर दें और दूसरे को इतनी सजा दें कि जिसे भुगतना हुआ हो वह प्राण त्याग दे। किन्तु इसके सम्बन्ध में

कोई हमसे न पूछे कि ऐसा क्यों किया गया है ? किसी को छोड़ना अथवा न छोड़ना यह सब पूर्णतया हमारे विचार करने का प्रश्न है । जिसके ऊपर हमारी कृपा होगी उस बन्दी को छूट को हम सोना और जिस पर अवकृपा होगी उसकी छूट को हम मिट्टी समझेंगे । इस प्रकार का सरकारी व्यवहार होता है, ऐसा हमारा अनुभव है । श्री गोपाल गोडसे के विषय में पंजाब उच्च न्यायालय के तीनो न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त किये गये इस अभिमत को कि उनकी सजा को कम किया जाय जहाँ सरकार ने कोई मान्यता नहीं दी वहाँ उनको बन्दीकाल में उनके सद्व्यवहार के कारण प्राप्त छूट को भी अस्वीकार कर दिया गया । यह क्या आश्चर्य की बात नहीं ? किन्तु शासन का कृपा प्रसाद प्राप्त करना सरल नहीं ।

जिस समय श्री गोपाल गोडसे को सजा दी गई थी उस समय वे शासकों के राजनीतिक दल के चार आने के सदस्य भी नहीं थे तब उनको किस प्रकार शासन का कृपा प्रसाद हो सकता था ?”

इसके बाद तुलनात्मक दृष्टि से मेरी पत्नी ने एक और उदाहरण दिया था । तीन हत्याओं में आजन्म कारावास की सजा भुगतनेवाले एक व्यक्ति पर शासन ने किस प्रकार कृपा की और उसको कितनी शीघ्रता से मुक्त किया इसका विवरण दे कर उसने यह बताया था कि चूँकि वह व्यक्ति अर्थात् वह अभियुक्त एक तालुका कांग्रेस कमेटी का पदाधिकारी था । तब मेरी पत्नी ने लिखा—“उसको मुक्त किया गया, इसमें मुझे कोई रोप अथवा उस व्यक्ति से द्वेष नहीं है । प्रश्न केवल यही है कि नियमों का किस प्रकार नियमन होता है । किस बात को परख कर बिना दण्ड भुगते दण्डी को मुक्त कर दिया जाता है और किस बात के आधार पर अवधि पूर्ण होने पर भी बन्दी को कारावास में ही रखा जाता है, यह पूछने का अधिकार यदि न्यायालय को भी नहीं तो फिर जनता को किस प्रकार हो सकता है ? यह तो राजा की मनमर्जी हुई ।

“सावित्री ने यम से याचना कर अपना पति पुन प्राप्त कर लिया । उसी प्रकार वर्तमान यम रूपी सरकार से प्रार्थना कर मैं अपना पति पुन प्राप्त कर सकूंगी ऐसी मेरी भावना थी । मैंने विनम्र विनती की, मन्त्री और उपमन्त्री के सम्मुख आवेदन किये, वह ‘विचार करेंगे’, ‘शर्त पर छोड़ेंगे’, ‘आवेदन भेज दो’, इस प्रकार आदवासन मिलते थे । भोलेपन से आवेदन भेजे, अनेक स्मृतिपत्र भेजे, और छ मास बाद उत्तर आया “आपकी विनती पर विचार नहीं किया जा सकता ।” बम्बई विधान सभा ने उनकी मुक्ति का दिन १०-२-६० घोषित किया था । उसके सम्बन्ध में सभापति को लिखा । उनका उत्तर आया कि “मैं कुछ नहीं कर सकता । आप इस सम्बन्ध में गृह विभाग से पूछताछ कीजिये ।” गृह विभाग से



पूछा तो उसने कह दिया, “वह केवल जैसा तैसा उत्तर या अर्थात् पूछनेवाले को मुँह देखा उत्तर—वह तो वास्तविक उत्तर नहीं था। इसके लिये केन्द्र सरकार से जानकारी प्राप्त करो। केन्द्र सरकार ही इस विषय में ठीक ठीक उत्तर दे सकती है। इसके साथ ही बन्दी का बर्ताव भी अच्छा होना चाहिये।” बन्दी का बर्ताव अच्छा है इस प्रकार का बन्दीगृह का प्रमाण पत्र लेकर बम्बई राज्य के पास गये तो उन्होंने उत्तर दिया, “यह तो ठीक है, परन्तु यह हमारी इच्छा का प्रग्न नहीं है। और वास्तविकता तो यह है कि हमने केवल उसको अपने प्रान्त में रखा हुआ ही है, वास्तव में तो वे केन्द्र शासन के ही बन्दी है।” इस प्रकार अनेक वर्षों से शासन तथा उसके विभिन्न अंग मेरे साथ छल-कपट का व्यवहार करते रहे हैं। सावित्री की उस पौराणिक गाथा की एक महत्वपूर्ण बात मेरे ध्यान से भूल गयी थी। वह यह कि यम को “हृदय” था। ( किन्तु भारत का कांग्रेसी शासन अर्थात् उसके शासक हृदयविहीन अथवा कलुपित हृदय के व्यक्ति सिद्ध हो रहे थे )।

गोपाल के विषय में पंजाब उच्च न्यायालय ने जो अभिमत व्यक्त किया है उस पर यदि इस समय विचार नहीं किया गया है तो कम से कम उसके आजन्म कारावास के १४ वर्ष पूर्ण हो जाने पर तो विचार किया ही जावेगा, इस आशा से उनके माता-पिता प्राण धारण किये हुए थे। एक पुत्र को मृत्यु दण्ड दिया गया था और दूसरा आजन्म कारावास भुगत रहा था, इन आघातों से वे पहले ही पर्याप्त दुर्बल हो गये थे। ऐसी अवस्था में जब उन्होंने यह सुना कि परीक्षण समिति का निर्णय है “१५ वर्ष प्रत्यक्ष अर्थात् छूट के दिनों को भी कारावास के रूप में बिता कर २५ वर्ष से अधिक अवधि होने पर १४ वर्षों के प्रतिवृत्त को विचारार्थ भेजा जाय। उसके बाद ही छोड़ने अथवा न छोड़ने के विषय में विचार किया जा सकेगा।”

न्यायालय के अनुकूल अभिमत की इतनी प्रतिक्रिया, इतनी उपेक्षा क्या किसी राज्य ने कभी की होगी? न्यायालय के निर्णय रूपी इस पत्थर के सिर पर पड़ने पर अब गोपाल को स्वतन्त्ररूप में जीवित देखना हमारे लिये सम्भव नहीं, इस प्रकार की धारणा उनके माता पिता की बनी और १५-२० दिन के भीतर ही उन्होंने नासिक बन्दीगृह में उनसे भेंट की। बन्दीगृह की दो तीन सीढ़िया चढ़ने की शक्ति भी उनकी माता जी में नहीं थी। २० मिनट उनकी भेंट हुई। बड़े निर्विकार रूप से २० मिनट पूर्ण होने पर अधिकारियों ने माता-पिता से उठने के लिये कहा और उनकी माता जी सीढ़ियों से उतरते ही जो नीचे बंटी कि फिर कभी छठ ही नहीं सकी। ३-४ दिन में ही उनका देहान्त हो गया। गोपाल ने स्वतन्त्र रूप में मिलना होता तो अच्छा होता, इसके अतिरिक्त अन्त समय

में उनके शब्द भी क्या हो सकते थे ? माता जी की मृत्यु से पिता जी का दुःख और बढ़ गया । थोड़े दिनों में उन्होंने भी शरीर त्याग दिया ।

स्वतन्त्रता के उपरान्त आजन्म कारावास के बन्दी को अब्दमान नहीं भेजा जाता । नियम बदल गये हैं । किन्तु गोपाल के लिये भारत में ही अब्दमान निर्माण किया गया है । माता-पिता जी के जोते जी शासको ने उनको मुक्त नहीं किया, थोड़े दिनों के लिये भी अवकाश नहीं दिया । नियमों के भीतर रह कर भी किस प्रकार की क्रूरता का बर्ताव कर सकते हैं, ब्रिटिशर्स की अपेक्षा हम कितने बुद्धिमान हैं यह सिद्ध कर के शासन ने आसुरी आनन्द का उपभोग किया । उसी शासन ने आज मेरे मुख से उर्मिला के शब्द कहने के लिये बाध्य किया है जिन्हें स्व० मैथिली शरण गुप्त ने अपने काव्य में इस प्रकार सजोया है-

पति को निष्कासन मिला, मुझको कारागार ।

मृत्यु दण्ड उस तात को, राज्य तुझे धिक्कार ॥

अन्तर केवल इतना ही कि उर्मिला पर आपत्ति आई थी राज्य लालसा के कारण उत्पन्न हुई घटनाओं के कारण, इसलिये उन्होंने राज्य को धिक्कारा और मुझ पर जो आपत्ति आई है वह शासको के क्रूर बर्ताव के कारण । इसलिये मुझे राज्य को और क्रूरता का पालन करनेवाली सत्तान्धता को धिक्कार करना पड़ा है । न्याय में पक्षपात, न करनेवाले राज्यकर्ता राज्य करें ।

आपकी

सौ० सिन्धु गोडसे

मैंने पुन निश्चय किया कि सर्वोच्च न्यायालय में जाया जाय । समाचार पत्रों में कभी कभी बन्दीयों और बन्दीगृहों के सम्बन्ध में जानकारी आया करती थी । मैं उनको अक्षित कर लिया करता था । न्यायालयों के निर्णय प्रकाशित होने पर अपने अनुकूल लगनेवाले टुकड़ों को भी मैं पढ़ कर उसको लिख लिया करता था । अब तक के अपने न्यायालयीन प्रयत्नों से भी मुझे थोड़ा बहुत अनुभव हो गया था । उन सभी का उपयोग करके पुन. नया आवेदन पत्र तैयार किया जाय, ऐसा मैंने निश्चय किया ।

निर्णय के बाद लगभग ३-४ मास तक मेरा मस्तिष्क उसी दिशा में विचार करता रहा । नित्य के व्यवहार के आधार पर निश्चित ही परिणाम निकलता था अतः कार्य में बाधा न डालते हुए मुझे अपना लेखन कार्य चालू रखना था । परन्तु व्यक्तिगत नित्यक्रमों में मेरा ध्यान नहीं था । कभी नहाने के लिये जाता और बिना नहाये ही वापस आ जाता और फिर थोड़ी देर में ध्यान आता कि मैंने तो स्नान ही नहीं किया । कुछ दिनों में बीमार रहा । डाक्टर ने गरम पानी से स्नान

करने के लिए कहा था। एक दिन गरम पानी की बाल्टी मैंने नल के नीचे लगा दी। पानी भरता जाता और मैं बरतन भर भर के अपने शरीर पर डालता जाता। पानी की उष्णता कभी की समाप्त हो चुकी थी फिर भी मैं स्नान किये जा रहा था।

एक बार ऐसा भी हुआ कि विचारों की तन्मयता में ही मैं स्नान कर रहा था कि सहना उठा और मन में विचार आया कि मन में जो विचार सकलित हुए हैं उन्हें तुरन्त लिपिबद्ध कर लिया जाय। इस दृष्टि से मैं स्नान करते ही उठा और अपनी कोठरी की ओर चल दिया। मन में मेरी यह कल्पना थी कि मैं वस्त्र धारण किये हुए हूँ। कुछ पग आगे जाने के बाद ध्यान आया कि मैंने तो वस्त्र ही नहीं बदले हैं, तब लौटा और वस्त्र बदल कर फिर बाहर आया। पागल की परिभाषा यद्यपि मुझ पर पूर्णतया लागू नहीं हो सकती थी, किन्तु आज यदि मैं विचार करता हूँ तो सोचता हूँ कि वह उससे कम की भी कोई स्थिति नहीं थी। यदि पागल हो जाता तो कम से कम जो यातनायें मन और मस्तिष्क को, शरीर के अतिरिक्त, भुगतनी पड़ रही थी वह तो नहीं भुगतनी पड़ती।

करकरे मेरे साथ ही रहते थे। वे मुझे बलपूर्वक भोजन करने के लिये बैठते थे। वे मेरे अन्य व्यवहार पर भी ध्यान रखते थे। परन्तु इस प्रकार सहते हुए जीने का क्या महत्त्व है? मरना ही जब है तो दूसरों के लिए तुरन्त स्थान खाली क्यों न किया जाय? किसी का ग्रास हम क्यों खा जाय, ऐसे विचार मन में उठते थे। उनका प्रभाव मेरे लिखने पर भी पड़ता था।

मनुष्य के मन की एक स्थिति ऐसी भी आती है कि जब उसको मृत्यु का भय भी नहीं रहता। जीवन और मरण के मध्य का आखेट सरकार मेरे साथ कर रही थी। बन्दी के साथ सद्व्यवहार किया जाय, बार बार उसको उसके अपराध का निर्देश कर उसकी आत्मा का हनन न किया जाय। जिस प्रकार उसका स्वत्व स्थिर रह सके इन प्रकार का व्यवहार उसके साथ किया जाय, उसके अन्तर को सुधारने का अवसर प्रदान किया जाय, उसके गुणोंका मूल्यांकन किया जाय, उसका धर्म बिना मृत्यु के ग्रहण न किया जाय, उसके साथ छल न किया जाय। इस प्रकार की निष्ठा बन्दीगृह के अधिकारियों को दी जाती है, सम्भवतया ऐसा नियम होगा किन्तु प्रत्यक्ष में तो बन्दियों के नाथ क्रूरता का ही व्यवहार किया जाता है। किन्तु बाहर प्रकट नहीं किया जाता है कि स्वराज्यकाल में बन्दीगृहों की योजना, वायप्रणाली और व्यवहार में अन्तर आ गया है। बन्दियों के साथ अब बन्दियों जैसा व्यवहार नहीं किया जाता उनको सम्य नागरिकता की शिक्षा दी जाती है। किन्तु यथार्थ और कर्मों में अन्तर है। जनता समझती है कि बन्दियों को सुख बन मित्र है।

इससे पूर्व मैं कह चुका हूँ कि फासी की क्रिया वास्तव में उस दण्ड की भयंकरता नहीं होती। एक बार मन में यह निश्चय हो जाने पर कि मुझे मृत्युदण्ड प्राप्त हुआ है और वह समय शीघ्र ही आनेवाला है तो फिर भय नहीं रहता। नियम भी यही कहता है कि इस प्रक्रिया को शीघ्र ही पूर्ण किया जाय। दूसरे के दुःख को ध्यान में रखकर उस नियम में मनुष्यता का आभास प्राप्त होता है। तिल तिल कर तडफाकर मारने की प्रक्रिया नियम में नहीं है। किन्तु किसी का यह कहा जाय कि तुमको मृत्यु दण्ड दिया गया है और उसके गले में फासी का फेंदा न लटकाकर उसके पैर में डोर बांधकर लटकाये रखना और यह समझना कि इससे इसकी मृत्यु हो जावेगी, गले में रस्सी डालने से तो रक्तरजित मृत्यु होगी और इससे रक्तविहीन मृत्यु होगी, अतः यह सजा उससे नरम है, इसीलिये इसका भाव भी दयायुक्त है, किन्तु उस पद्धति से उस व्यक्ति के शरीर को जो वेदना होगी वह वेदना शासन के इस मृदु सजा के तथाकथित दयापूर्ण कार्यवहन से मन को हुआ करती थी। अधिकारियों को तो इस ठगी से कुछ भी वेदना नहीं होती थी। यह बात नहीं कि सर्वोच्च न्यायालय की कोई विसर्गति शासन के ध्यान में नहीं आई थी, परन्तु मुझ पर अत्याचार करने के लिये उस निर्णयपत्र का सहारा लिया जा सकता था इसलिये उस विसर्गति को दूर करा लेने की इच्छा शासन को नहीं थी।

फासी, आजन्म कारावास, कालापानी, कारावास, सश्रम कारावास, साधारण कारावास आदि आदि सजाओं की उपपत्ति, उनका कार्यवहन, उनकी स्थिति में अन्तर, न्यू साउथ वेल्स, आस्ट्रेलिया, अन्दमान का निष्कासन के लिये उपयोग, कभी शताब्दियों पूर्व की दण्ड पद्धति, छूट पद्धति का प्रारम्भ, छूट पद्धति का हेतु, मनुष्य की अपराध प्रवृत्ति का उद्गम, बन्दीगृह पद्धति का प्रारम्भ, प्रिवी काउंसिल की धारणा के दोष, सर्वोच्च न्यायालय के विधानों की विसर्गति इस प्रकार की अनेक बातों का उल्लेखपूर्ण आवेदन करने का मेरा निश्चय था। एक के बाद एक अनेक पृष्ठ मैं लिखता जा रहा था। इस प्रकार आवेदन का आकार बढ़ता जा रहा था। सोते, जागते, उठते बैठते मुझे सदा उसका ही ध्यान रहता। कभी समय वे समय रात को मेरी नींद खुल जाती तो तभी उठ कर बैठ जाता और लिखने लगता।

एक प्रकार से एक प्रबन्ध सा तैयार हो रहा था। उसके लिए बहुत सी जानकारी मैंने एकत्रित की थी। अपनी वृद्धि के अनुसार उसकी रचना को व्यवस्थित किया। कभी मुझे ऐसा लगता कि प्रबन्ध के स्वरूप में ही इस आवेदन-पत्र को भेज दूँ। उस प्रबन्ध को मैंने "क्या भारतीय विधान के अनुसार आजन्म कारावास के दण्डित को बन्दीगृह में मरना चाहिये?" शीर्षक दिया था।

जैसे-जैसे कागज लिखकर पूर्ण होते जाते, वैसे वैसे मैं उनको घर भेज दिया करता। वहाँ से वे टाइप हो कर मेरे पास आते। उसी क्रम में मैंने एक बड़ी पुड़िया भेज दी। मैं समझता था कि ये टाइप होकर लगभग तीन सप्ताह तक वापस आवेंगे। किन्तु इसी बीच एक घटना घट गई। आधा पूना जलमग्न हो गया।

दो तीन दिन बाद समाचार पत्रों में इसके विवरण एवं चित्र आदि प्रकाशित होने लगे। मेरे भेजे हुए कागज जहाँ टाइप होने वाले थे वह घर भी जलमग्न हो गया था। यह मुझे वहाँ का मानचित्र देखने से ही विदित हुआ था। मैंने उसी प्रकार चित्र में यह भी देखा कि मेरे बड़े भाई श्री दत्तात्रय का घर तथा वह घर जिसमें मेरी पत्नी और बच्चे रहते थे, वे सब भी पानी में डूबे हुए थे। सैकड़ों प्राणी मृत्यु के आस वने होंगे ऐसा अनुमान लगाया जाता था। समाचार भी इसी प्रकार के आ रहे थे।

हाक व्यवस्था सारी अस्तव्यस्त हो गई थी। घर का समाचार जानने का कोई भी मार्ग नहीं था। ज्यो ज्यो दिन बीतते जाते त्यो त्यो चिन्ता बढ़ती जाती थी। कुछ कर सकने की अपनी कोई सामर्थ्य थी नहीं। शाम होने लगती और कमरे में बन्द होने का समय आता कि घर की मण्डली आँखों के सामने सी दिखती। चित्रों में जब यह स्थिति थी तो वास्तव में पूना कैसा होगा, कितना भयानक, कितना उदास! इस प्रकार की मन ही मन कल्पना में हो रात बीत जाया करती।

कीचड़ को लाँघकर मार्ग निकालता हुआ सा बहुत दिनों में एक पत्र घर से आया। लिखा था—“हम कुशल से हैं, घर सारा पानी में डूब गया था, दूसरी मजिल पर पानी नहीं आया।” निचली मजिल पानी से भर गई और उसमें रखा अन्नदि सब सबकर नष्ट हो गया। हम सब साथ में रहे हैं, शेष विवरण बाद में लिखा जावेगा। श्री दत्तात्रय का भी पत्र आया। लिखा था—“भवन विद्यमान है, घर में अन्नादि से लेकर वस्त्र तक सभी कुछ नष्ट हो गया है। सभी लोग सकुशल हैं।”

इसे भाग्य की बात ही समझना चाहिये कि परिवार सकुशल रह गया था। इसके बाद ही तुरन्त दूसरा प्रश्न खड़ा हुआ। मन में एकदम शका हुई, मेरे कागजात का क्या हुआ होगा। यदि कागज नहीं रहे तो मुझे उसी प्रक्रिया से पुनः लिखना होगा। किन्तु क्या उत्तनी शक्ति मुझमें अभी अवशिष्ट है? यही विचार मन में आता फिर भी कागजात के विषय में उस समय पूछना उचित नहीं नम्रता।

घर को सुव्यस्थित होने में लगभग दो मास लग गये। बीच में एक पत्र

ने यह सूचना मिली कि मेरे भेजे कागज सुरक्षित हैं। पानी बाता हुआ जानकर मामूल्यानुसार और स्थानानुसार जितनी वस्तु ऊपर समा सकती थी उतनी लेकर सब ऊपर चले गये थे। इस प्रकार वे कागज सुरक्षित रह गये थे।

छेह-दो मास व्यतीत होने पर सारा कारोबार जब व्यवस्थित हुआ तो फिर मेरे कागज भी टाइप करवाये गये। कुल मिलाकर १७५ टाइप किने हुए पृष्ठ थे। जिस किसी प्रकार इतना परिश्रम किया ही है तो इन कागजों को मुद्रित कराकर ही भेज दूं, ऐसा मेरे मन में आया। पत्नी ने इसकी सन्मावना के विषय में पूछा। मुझसे जितना हो सकेगा वह सब मैं करूँगी, ऐसी स्वीकृति उमने दी। उसने अनेक स्थानों पर इस विषय में पूछताछ की। मेरे स्वामुर ने कुछ महायत्ना की। आवेदन मुद्रित होने लगा।

दि० २८-१०-६१ को मैंने प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर किये और एक टिकित प्रति आवेदन के साथ उसको सर्वोच्च न्यायालय के लिये भेज दिया। न्यायालय को सूचित कर दिया गया कि आवेदन मुद्रित किया जा रहा है मुद्रण पूर्ण होने पर वह भेज दिया जावेगा।

दो मास के बाद मेरे हाथ में आवेदन की मुद्रित प्रति प्राप्त हुई। बड़े आकार के १२० पन्ने थे। ३-४ दिन उनको पढ़ने में लग गये। जहाँ संशोधन की आवश्यकता थी वह किया और फिर उन प्रतियों को सर्वोच्च न्यायालय में भेज दिया। आवेदन में कई नामों का उल्लेख था। उन व्यक्तियों को एक एक प्रति भेजने के लिये अधिकारियों को दे दी।

सर्वोच्च न्यायालय के पहले के निर्णय-पत्र से मुझे अनेक बातें नीखरने को मिली। मैंने उनका परीक्षण किया। उसके आधार पर निष्कासन और बन्दिवास ये दोनों बातें एक नहीं हैं इसका भेद मुझे दण्डसंहिता की अनेक धाराओं से विदित हुआ। परन्तु उसके लिये स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी। निष्कासन के बाद खर्च की गई दीवारों के नीचे नियमरूपी नींव ही नहीं थी। सावरकर जी तथा अन्य क्रान्तिकारी बन्दी एव उसी प्रकार के अन्य अपराधों में दण्डित बन्धियों को नियमानुसार नहीं अपितु छल-फल के आधार पर अन्दिमान आदि दुर्गम म्यानों पर रखा गया था, ऐसा मैंने उल्लेख किया था। उनके लिये संहिता का आचार दृष्ट कर उसके द्वारा स्पष्टीकरण भी किया था। यदि बन्दी बनाकर रखा होगा तो वह १४ वर्षों तक ही रखा जा सकेगा और यदि छूट का अधिकार न भी दिया जाय तो उसको १४ वर्ष बाद मुक्त करना ही होगा। अतः उन आर्थों को मैंने नियमों द्वारा पुष्ट किया था। एक्ट की धाराओं का मैंने पृथक् विवरण किया। मेरे दण्ड का कार्यान्वयन किस प्रकार किया जा रहा है उन विषयों को मैंने पृथक् प्रकरण के रूप में समाविष्ट किया था। मैंने न्यायालय से यह दिनांक भी

यत्न किया कि जिस प्रकार का व्यवहार शासन कर रहा है उसको उस प्रकार का अधिकार कभी भी दिया ही नहीं गया था। उस समय मेरी मन की स्थिति कुछ ऐसी थी कि सर्वोच्च न्यायालय को प्रस्तुत किया गया मेरा यह आवेदन अन्तिम ही होगा क्योंकि इसके बाद मुझमें वह सामर्थ्य ही अवशिष्ट नहीं रह पावेगा कि जिसके आधार पर मैं पुन आवेदन कर सकूँ। इसलिये इस विषय पर जितना अधिक से अधिक स्पष्ट कर सकता था वह करने का मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया था। आज भी उस आवेदन की २५-३० प्रतियां मेरे पास हैं।

मुझे यह भी आभास हो रहा था कि इसके बाद मैं कार्य में समुचित ध्यान नहीं दे पाऊंगा। पिछले ६ वर्ष से हम अर्थात् करकरे और मैं नासिक वन्दीगृह की राज्याधिक उद्योगशाला में काम करते थे। उस उद्योगशाला के प्रति हमारा एक प्रकार से अपनापा-सा हो गया था। हमारी छूट तो व्यर्थ सिद्ध हो गई किन्तु उद्योगशाला को हमने स्थापित किया, उसको व्यवस्थित किया, वह हमारे प्रयत्नों का फल है, रचना का एक छोटा-सा कार्य हमने किया है, इस प्रकार का मानसिक समाधान हम किया करते थे। हमारी अनुपस्थिति में वह कार्य स्थगित होनेवाला नहीं था। हमारी छूट भले ही निरर्थक सिद्ध कर दी गई हो किन्तु वह कार्य तो खड़ा था, और वह कार्य अपने देश का था। भले ही लघु रूप में हो परन्तु शासन की व्यापार विषयक योजना की कार्यान्विति उससे होती थी। हमारी अपनी व्यक्तिगत हानि हुई, हमारे साथ वचना की गई, इसलिये उस उद्योगशाला को निर्मूल कर देने की भावना में भले ही वैयक्तिक प्रतिशोधात्मक समाधान होता हो किन्तु मन का विवेक यही कहता था कि इस प्रकार तो देश की हम हानि करेंगे। हमारे राष्ट्रीय वृत्ति का आभास अधिकारियों को था, इसलिये हमारे विषय में कमी वे इस प्रकार की आशंका भी नहीं रख सकते थे।

वन्दी के साथ किये गये घोखे के कारण कार्य में हानि होने के उदाहरण वन्दीगृह में अनेक मिलते हैं। वडिया गलीचे बनानेवाला एक वन्दी था। वह शीघ्र ही छूटनेवाला था। इसी बीच एक बहुत ही शीघ्रता का कार्य आया और उसे उस वन्दी को सौंप दिया गया। उससे कहा गया कि इस कार्य को तुम निश्चित अवधि में पूर्ण कर दो, मुझे दस दिन की छूट मिल जावेगी।

भोजन और विश्राम की ओर भी ध्यान न देते हुए अधिक अरिश्म से उस वन्दी ने निश्चित अवधि में उस कार्य को पूर्ण कर दिया। कार्य हो जाने पर अधिकारियों ने छूट देने में आनाकानी की। उसको छूट का जो आश्वासन दिया गया था उसका एक एक दिन दोतले लगा। उसके मन पर जाने कैसा प्रभाव हुआ कि उसके मुक्त होने में आठ ही दिन रह गये थे कि वह वन्दी प्रसुब्ध हो गया। वह अधिकारियों के सम्मुख गिड़गिड़ाया कि आज उसे मुक्त कर दिया जाय।

मैं इतने से ही मन्तुष्ट हो जाऊँगा, आपका उपकार मानूँगा, मुझे मेरे बच्चों में और परिवारवालों में जाने दीजिये, वे बेचारे तडप रहे होंगे। आपके आश्वासन पर मैं उन्हें अपनी मुक्तता का दिन दस दिन पूर्व का लिख चुका हूँ। पिछले दो दिनों से वे बेचारे राह देख रहे होंगे।

न जाने क्यों, किसी भी प्रकार से हो अधिकारियों के मन में विचार आ गया। गलीचे का कार्य पूर्ण हो चुका था। अधिकारी बोले, “और आठ दिनों में क्या अन्तर पड़ने वाला है? सजा देते समय तुम्हें छूट मिलेगी ऐसा न्यायाधीश ने थोड़ी कहा था।”

इस प्रकार के कठोर वचन सुन कर व्याकुल मन से वह बन्दी बोला, “विश्राम के समय भी काम करना होगा” यह भी न्यायाधीश ने नहीं कहा था। आपको आवश्यकता थी और मेरे पास कला थी। आपने छूट प्रदान का आश्वासन दिया और मैंने कार्य किया।”

“ज्यादा बड़-बड़ मत करो। तुम्हें आठ दिन हम भूखा थोड़े रखेंगे, खाना मिलता रहेगा, जाओ अपना काम करो।”

इस प्रकार का शूल के समान चुभनेवाला उत्तर सुनकर उसकी व्याकुलता समाप्त हो गई। उसकी नम्रता भी विलीन हो गई। वहाँ से वह उद्योगशाला में गया और कैची ले कर उस गलीचे को उसने तिरछा करके काट दिया। इस प्रकार उसने उसे काटा था कि वह किसी प्रकार से भी सुवारा नहीं जा सकता था।

किन्तु शासन तो शासन ही था। और एक भी उसकी रखा करता है। वही हुआ। यहाँ भी एक ने शासन की सहायता की। उस बन्दी को पोटा गया, कमरे में बन्द किया गया, डडा वेडी डाली गई, उसकी छूट को काट कर मुक्ति दिवस को आगे बढ़ाया गया। बन्दीगृह के उत्पातो एवं उपद्रवों के मूल पर यदि कोई ध्यान दे तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि उसका आधार अधिकारियों का दुर्व्यवहार ही होता है। यदि उस गलीचे बनानेवाले को छूट का आश्वासन न दिया जाता तो निश्चित अवधि में वह कार्य पूरा नहीं हो सकता था, इस बात का ज्ञान अधिकारियों को था। जब उन्होंने आश्वासन दिया था तो नैतिक ही नहीं सभी भाति से उसको पूर्ण करने का उत्तरदायित्व उन अधिकारियों का था।

मैं भी अधिकारियों से विवाद करना चाहता तो था किन्तु यह भी चाहता था कि इससे कार्य की हानि न हो। उस विवाद के प्रारम्भ से पूर्व हमने उस उद्योगशाला में एक छोटा सा समारोह किया। विगत ६ वर्षों में किस प्रकार उद्योगशाला निरन्तर प्रगति करती रही है इसका विस्तृत विवरण हमने अधिका-



रियो के सम्मुख प्रस्तुत किया। उत्पादन, वितरण तथा अग्न्यान्त्र सभी व्यवस्थाओं का आलेख तैयार कर रखा गया था। दि० ३०-९-६१ को यह समारोह हुआ। मैं अपने मन में यह समझता था कि मैं उस उद्योगशाला से विदाई ले रहा हूँ।

दि० २०-१०-६१ को मेरा आवेदन सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत हुआ। आजन्म कारावास अर्थात् सम्पूर्ण जीवन यह तर्क यदि शासन की ओर से प्रस्तुत किया गया तो शासन के ही नियमों अनुबन्धों की किस प्रकार अवगति हो सकती है, यह सिद्ध करने का मेरा उद्देश्य था। मेरा प्रत्येक विचार लिखित हुआ करता था। मैं जानता था कि यह संघर्ष शासन और उसके विरोधी का विषम संघर्ष माना जावेगा और यह भी मैं जानता था कि मैं स्थानीय अधिकारियों के सम्मुख ही उनके नियमों की दोषी सिद्ध करनेवाला था इसलिये कदाचित् मेरे साथ अधिक छल किया जावेगा। और कदाचित् उस छल का परिणाम मेरी मृत्यु भी हो सकती है।

बन्दी के परिधान में टोपी के आधार पर उसका वर्ग पहचाना जाता था। पांच वर्ष या उनसे कम की सजा वाले को सफेद टोपी, जिसके पांच वर्ष से अधिक दोष हैं उसको पीली टोपी, विशिष्ट अर्थात् अन्त्यस्त दण्डित को काली टोपी और भाग जाने के अपराध में दण्डित को लाल टोपी पहनाई जाती थी।

हमको पीली टोपी पहनाई गई थी। अर्थात् नियमानुसार हमारी सजा पांच वर्ष से अधिक अवशिष्ट थी।

मुक्ति की अन्तिम तिथि से प्रारम्भ की भुगती हुई सजा की गणना के आधार पर अवधि निर्धारित की जाती थी। हमारे विषय में अन्तिम दिन निश्चित नहीं हो पाया था। क्योंकि शासन ने किसी भी नियम का पालन तो किया ही नहीं था। न अपने वचनों पर ही टिका रहा। अब तो मृत्यु ही अन्तिम दिन निर्धारित है, शासन ने ऐसा ही अर्थ सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय से लगाया था।

यदि उस निर्णय को मान भी लिया जाय तो न्यायालय ने यह भी तो कहा था कि मृत्यु का दिन पहले से ही कोई निश्चित नहीं कर सकता। मुझे ५ वर्ष के बाद ही मृत्यु होगी इसका अनुमान शासन ने किस प्रकार लगा लिया? उसके पूर्व भी तो हो सकती है। शासन के वर्तन के कारण लिखित नियमों में विसंगति सिद्ध हुई थी इस कारण मैंने टोपी वापस कर दी और वापस करने का कारण भी स्पष्ट लिखकर दे दिया।

मुझे सफेद टोपी दी गई। उसके आधार पर मेरी सजा की अवधि ५ वर्ष से कम की श्रेणी में आ गई, इस प्रकार लिखकर देने के लिए मैंने अधिकारियों से आग्रह किया। किन्तु वे लिखकर देने के लिए सक्षम नहीं हुए। क्योंकि लिखित

नियम का और अधिकारियों के लिखित वचन का आधार लेकर मैं सर्वोच्च न्यायालय में जा सकता हूँ, ऐसा उनका विचार हो सकता था। मैंने सफेद टोपी लेने से भी इनकार कर दिया।

प्रत्येक बन्दी को एक पदक दिया जाता है, उसे वह अपने सीने पर बटन के साथ लगाता है। पहले तो वह लोहे की तार से लटका कर गले में डाला जाता था। बाद में यह सुधार किया गया। उस पदक पर बन्दी का क्रमांक, उसका नाम, सजा की धारा, सजा का दिन, सजा की अवधि और मुक्ति का दिन अंकित रहता है।

मेरे पदक पर भी मुक्ति का दिन तो अंकित था, किन्तु शासन के वरतषि के आधार पर तो दिनांक निर्धारित करना ही विषमता था। मृत्यु ठीक उसी दिन थोड़े ही आनेवाली थी ? मृत्यु शासन की सेवक तो नहीं कि निर्धारित तिथि पर वह उनके सामने आकर हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती। मैंने पदक ( बिल्ला ) लेने से भी इनकार कर दिया।

काम करते समय अथवा इधर उधर जाते समय बन्दी को सिर पर टोपी रखना आवश्यक होता है। पदक ( बिल्ला ) भी लगाना चाहिये यह भी नियम है। मैंने नियम भंग किया इस प्रकार का आरोप लगाकर मेरी छूट काटना आरम्भ कर दिया गया। किन्तु यह उसका उपाय तो नहीं था। मैंने नियमों में दोष और शासन के वरतषि की असम्बद्धता प्रकट की थी। उसका उपाय यही हो सकता था कि उनकी जाच कर उसका निराकरण किया जाय।

छूट काटना तो सजा मानी जाती है। और उतनी अवधि के लिए बन्दी को मुक्ति का दिन आगे टल जाता है। मेरे सम्बन्ध में छूट काटना सजा की विडम्बना थी। शासन अपने को ही झुठलाने, इस प्रकार का यह कृत्य था। सजा में छूट दी गई तो भी मृत्यु के दिन मुक्ति न दी गई तो भी वैसा ही, इस प्रकार अन्वेषण नगरी का सा व्यवहार होने के कारण छूट काटने से सजा का एक प्रकार से नाटक सा खेला जा रहा था।

शासन ने नियमों में दोष तो बूढ़ लिये, किन्तु बहुत बिलम्ब से। उन नियमों में जो सुसंगति बिठाई गई वह शासन की कुधारणा के साथ। शानन ने तब निश्चय किया कि मेरे पदक पर मुक्ति का दिन अंकित न किया जाय।

इसके आधार पर पदक न लगाने के कारण मुझको जो छूट काटने के रूप में सजा दी गई थी उसका निराकरण होना चाहिए था, किन्तु वह नहीं किया गया। परन्तु इससे भी मेरा मूलभूत विवाद तो समाप्त नहीं हुआ था। जिसको वेबल सजा ही है और अब शानन की तयाकथित पद्धति के अनुसार मुक्ति का दिन निर्धारित नहीं उसको पदक लेकर क्या करना था ? तुम्हारे पान पदक नहीं है

इसलिए तुमको पुन निकालता हूँ अथवा अपने राज्य में नहीं रहने दूँगा, इस प्रकार की अनर्गल बात यमराज तो नहीं कर सकते थे। और मुक्ति का कोई भी दिन निर्धारित न करना भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय-पत्र से नहीं प्रकट होता था। किन्तु इस प्रकार का वर्ताव करने का अपना अधिकार है, इस प्रकार का गर्वयुक्त व्यवहार शासन ने किया।

मेरा सधर्प जारी रहते हुए भी एक अन्याय के लिए मुझे सर्वोच्च न्यायालय में जाना था। मेरी शिकायत अधिकारियों के विरुद्ध थी और उन्हीं के द्वारा मुझे उसे सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँचना भी था। अधिकारियों ने बीच में अडचन डाली। यह बात मैंने मेट में पत्नी को बताई। अहस्ताक्षरित आवेदन मैंने उसको भेज दिये। उसने सर्वोच्च न्यायालय को लिखा और उसने शिकायत की कि अधिकारी उनके कार्य में अडचनें डाल रहे हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने आवेदन की प्रतीक्षा की। जब प्रतीक्षा करने के बाद भी आवेदन नहीं आया तो उन्होंने जेल अधिकारियों को आदेश दिया कि यदि इस प्रकार का कोई आवेदन आया हो तो उसे तुरंत भेज दिया जाय। उनको यह भी निर्देश दिया कि इसको भेजने में विलम्ब क्यों हुआ इसका कारण भी स्पष्ट करो। यह भी सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि न्याय माँगने के कार्य में किसी प्रकार की अडचन डालना अनुपयुक्त है।

यह बात मेरी पत्नी को किसी प्रकार विदित हुई। इसकी छानबीन की गई तो ज्ञात हुआ कि अधिकारियों के जरिये से ही मेरा पत्र व्यवहार हुआ था। किन्तु इससे यह हुआ कि जिस अन्याय के विरुद्ध मुझे अवभार (रिलीफ) माँगनी थी, उसका महत्व समाप्त हो गया। सत्ता का इस प्रकार का दुरुपयोग शासन की विविध नीति के कारण हुआ करता था।

\* \* \*

पन्द्रह

### स्वाँस के लिये प्रयास

नासिक वन्दीगृह में मेरा विवाद जारी था। शासन ने भी अनुभव किया कि छूट काटने का कोई उपयोग नहीं है। मुझे बाध्य किया गया तो मैं विवाद नहीं करूँगा, शासन को और अधिकारियों को विचार करने के लिये विवश करनेवाले सरदर्द करनेवाले प्रश्न उपस्थित नहीं करूँगा, शासन के प्रहार चुप चापखण पर झेलते हुए बैठूँगा और मृत्यु की राह देखता रहूँगा, इस कल्पना से दि० २०-१-६२ को मुझे नासिक से औरंगाबाद वन्दीगृह में ले जाया गया।

मेरे विवाद असम्बद्ध नहीं थे, मूर्खता के भी नहीं थे और किसी को कष्ट देने वाले भी नहीं थे। केवल एक एक्ट की व्याख्या को स्पष्ट करने के लिये ही यह सब परिश्रम मैंने किया था। शासन के पास उसका युक्तियुक्त उत्तर नहीं था। अपना अयुक्तिक व्यवहार प्रकट न हो जाय इसके लिये बलप्रयोग करने का शासन का अत्यन्त 'अपवित्र' व्यवहार होता था। क्योंकि पवित्रता का प्रकरण प्रस्तुत हुआ है इसलिये मैंने 'अपवित्र' शब्द का प्रयोग किया है।

औरंगाबाद हम रात के समय पहुँचे थे। उस रात और उसके अगले दो दिनों तक मुझे एक बैरक में रखा गया जो विशेषतया मेरे लिये खाली करवाया गया था। बाद में मुझे उसके पार्श्व में एक कोठरी में रखा गया।

दिन में 'वन्द हो जाने के लिये' मैंने पहले दिन ही विरोध किया था। उसे सजा समझा जाता है और वह सजा किसलिये दी जाती है, यह वन्दी को समझ लेना चाहिये और उस प्रकार का अभियोग लगा कर सजा देने का अधिकार अधिकारियों को है यह बात मैंने छोटे अधिकारियों को स्पष्ट की। सम्भवतया

उन्होंने इस बात को कारागार अधीक्षक को बताया होगा। तब मेरीकोठरी दिन में खुली रहने लगी।

मुझे बन्दियों से मिलने नहीं दिया जाता था। उसका कारण यह था कि कहीं मैं उनको भडकाकर उनके अधिकारों से अवगत न करा दूँ। मैंने अधिकारियों को स्पष्ट कर दिया कि “अधिक छल सहन करने की शक्ति जिसमें होगी, जिसमें इतना मनोबल अवशिष्ट होगा, वही इस प्रकार के कार्य करेगा, अपना अपना हिस्सा सबको देखना होता है। सिखाने से कोई खडा नहीं होता।” तब बॉलीवाल और कवहू आदि मैं बन्दियों के साथ खेलने लगा।

नासिक की रासायनिक फैक्ट्री में काम किये हुए अनेक बन्दी भी औरंगाबाद जेल में थे। मेरे वहाँ लाये जाने का समाचार सुन कर उनको सन्तोष सा हुआ था। यदि इसे आत्मस्तुति न समझा जाय तो कहूँगा कि उन बन्दियों की मेरे प्रति असीम भक्ति थी। उसका प्रमुख कारण था रासायनिक प्रयोगशाला का उनके प्रति किया गया व्यवहार। सर्वोच्च न्यायालय में मिली मेरी असफलता पर उनको दुःख हुआ करता था।

उन्होंने एक विविध योजना बनाई। जिस प्रकार किसी की सहायता करने के लिये चन्दा किया जाता है, उसी प्रकार उन्होंने अपनी छूट के दिन जमा करके मुझे नासिक जेल में पत्र भेजा जिसमें उन्होंने लिखा कि हम अपनी छूट के दिन आपको देने के लिये उद्यत हैं। न्यायालय अथवा शासन द्वारा उसका उपयोग आपकी मुक्ति के लिये किया जा सकता हो तो कृपया शीघ्र सूचित कीजिये। आपने बहुत भोगा है। दिन रात काम किया है। हम अनपढ़ों को शिक्षित किया है। हमारी यह विनती आप मान लें। आप मुक्त होकर अपने बच्चों के पास आवें।

भोले, किन्तु भावनापूर्ण वे पत्र आज भी मेरे पास विद्यमान हैं। कई मास के बाद अधिकारी पत्र फाड़ डालते हैं। मैंने जब कहा कि मुझे उन पत्रों को सुरक्षित रखना है तो उन्होंने उनको नहीं फाड़ा।

औरंगाबाद के उन बन्दियों को ऐसा आभास तक नहीं हुआ कि कहीं मुझे ब्लैक लिस्ट में न डाल दिया जाय। किन्तु वैसा नहीं किया गया। किन्तु इतना स्पष्ट है कि जिन्होंने मुझे अपनी छूट प्रदान की थी उनको अपना नाम ब्लैक लिस्ट में आने का भय विलकुल नहीं था।

बन्दीगृह में आयोजित होनेवाले कार्यक्रमों में मैं भाग लिया करता था। और बन्दियों को जो पत्र-प्रदर्शन मुझसे चाहिये था वह भी करता था। केवल शामन के नाम ही मेरा सधर्प था, और वह यहाँ भी जारी था।

मुम्बयस्था की दृष्टि से मेरे आवेदन पर क्रमांक डाला गया था और वह था

पिटीगन न० १६, १९६२। दि० १२-४-६२ को औरंगाबाद बन्दीगृह में मुझे न्यायालय की ओर से सूचना मिली कि आवेदन वापस किया गया है।

इतने कठिन परिश्रम से किये गये प्रयत्न को न्यायालय ने व्यर्थ सिद्ध कर दिया था। मेरे द्वारा उठाये गये प्रश्नों की गहराई में जाने से सर्वोच्च न्यायालय ने इन्कार कर दिया था। प्रश्न उसी प्रकार अनिर्णीत ही रह गया था।

मेरे मन में और निराशा छा गई थी। मन लगातार घर की ओर दौड़ने लगा। घर पर भी उदासी की छाया हुआ करती थी। पत्नी द्वारा कभी कभी भेजे गये पत्र उसकी व्याकुल अवस्था का प्रदर्शन करते थे। मेरे मन पर भी उसका परिणाम हुआ करता था। दो वर्ष पूर्व अर्थात् ७-१०-५९ को उसने लिखा था—

“प्रत्यक्ष इच्छा शक्ति के आधार पर तुम कई बातें निश्चित करते हो और उन्हें कर डालते हो। कुछ समय पूर्व तक मैं भी कुछ इसी प्रकार निश्चित करती थी और उसे कर डालती थी। परन्तु अब न जाने क्या हो गया, कुछ समझ में नहीं आता। भोर से लेकर रात्रि के ११-१२ बजे तक का समय कहा जाता है, यह समझ में ही नहीं आता। रात को सोते समय पूरे दिन का हिसाब लगाऊँ तो मैंने कुछ किया है, ऐसा भी दिखाई नहीं देता। इससे अनेक बार जीवन में आस्था बढ़ने को अपेक्षा मेरी आस्था बढ़ती जा रही है। सोचती हूँ कोल्हू के बेल की तरह ही यदि जोना है तो फिर उसका लाभ क्या? परन्तु तुरन्त ही दूसरा मन कहता है—‘अन्य किसी को यदि तुम्हारे जीने का उपयोग हो न हो परन्तु तुम्हारा गोपाल और वे दो नन्ही चहकती चिड़ियाँ इनको तो तुम्हारे जीवन की आवश्यकता है। और जो कोल्हू तुम सम्प्रति चला रही हो उसके नियोजित फेरे यदि पूरे न हुए तो फिर अपेक्षित फल किस प्रकार मिलेगा? इससे आज तक जिस स्वाभिमान से तुमने जीने का प्रयत्न किया उसी स्वाभिमान से तुम्हारी लड़कियाँ और बन्दीवास से मुक्त होने पर गोपाल जी सकेगा, ऐसी परिस्थिति निर्माण करने के बाद ही तुम्हारी जीवन विषयक निराशा पर विचार होना चाहिये। तब तक तो गोपाल, गोपाल, और गोपाल, केवल गोपाल इस एक मन्त्र के आधार पर ही अपनी जीवन यात्रा चालू रखनी चाहिये। अन्यथा आज तक तुम जिसको देव मानती आई हो उसी की पूजा भग होने का पाप तुम्हें लगेगा।’

और इस प्रकार के विचार जिस समय मन में आते हैं तब मेरे मन में उत्साह का ज्वार आता है और तब मेरे समीपस्थजनों को असम्भव दीखनेवाला कार्य मैं हसते हसते सम्पन्न कर लेती हूँ। गोपाल। इससे मैंने एक निष्कर्ष निकाला है। मनुष्य को कहीं पर तो भी एक विश्वास और श्रद्धा का मानविन्दु प्राप्त हो जाता है। जिसका विचार मन में आने पर किसी प्रकार का भी साहसिक कार्य उससे

सम्पन्न हो जाता है। ध्येय यदि सम्मुख हो तो निराशा समाप्त हो जाती है परन्तु इतना होते हुए भी नित्य के व्यवहार में अडचनो का सामना करते हुए जी थक जाता है।

इसके बाद पत्र में मिन्चु ने कारखाने के काम का वृत्तान्त दिया है। मैंने उसे एक कविता भेजी थी— 'केवढा दिवस हा' ( कितना लंबा दिन है यहाँ ) उसकी उसने प्रशंसा की थी। उपहार में विदाई जिस प्रकार ली जाती है उसमें उसने लिखा था, "सचमुच गोपाल ! अब तुम घर कब आओगे ? अकेली रहती हुई अब मैं सचमुच बहुत थक गई हूँ। रोज रात्रि को सोते समय मैं कहती हूँ—अपने गोपाल के वनवास का एक दिन और समाप्त हुआ और अपने सौभाग्य का एक दिन और समीप आया।—मैं सोचती हूँ उर्मिला की कैसी अवस्था हुई होगी उसका चित्र ह्रवहू खींच कर मैं दिखा दूंगी। यदि किसी ने कभी इस प्रकार के नाटक का आयोजन किया तो उर्मिला की भूमिका मैं सहज रीति से निभा दूंगी।"

मेरी छोटी कन्या उस समय ५-६ में होगी। उसने एक बार बन्दीपाल को एक पत्र भेजा। उसमें लिखा था "आप हमारे बापू को क्यों नहीं छोड़ते ? ताई अर्थात् मा बीमार है। हमारे बापू का बर्तव्य तो अच्छा है न, फिर कारागार क्या अच्छा बर्तव्य करनेवालो के लिये होता है ? मुझे जेल में रख लो और मेरे बापू को छोड़ दो। मेरी सहेलियो के घर में उनके मा बाप हैं, हमारे पिताजी को हमारे घर भेज दीजिये।"

अधीक्षक ने वह पत्र पढ़ा। उनका ८-१० वर्ष का एक पुत्र उन्हीं दिनों चल बसा था। उन्होंने मुझे असिलता का पत्र दिखाया। पत्र पढ़कर मैंने बापस कर दिया। तब मैंने देखा कि उनकी आखों में अश्रुकण छलक रहे थे।

बढ़ती हुई कन्यायें कितने दिन उद्विग्न रहें ? पत्नी कब तक ऋष्ट उठाये ? उसके मन का बोझ कब हलका हो ? घर घर जैसा कब लगने लगेगा ? उनका पारिवारिक जीवन कब सुखमय होगा ? इन्हीं विचारों में मैं यह भी सोचता, मैं कब तक दीवार से टक्कर लेता रहूँगा। सत्ता के सम्मुख किसी का सयानापन नहीं चलता। मुझसे अब यह थातना नहीं सही जा रही थी।

जिस दिन सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय जात हुआ उस दिन सारा समय यो ही सोच विचार में ही बीत गया था। इसी प्रकार शाम हो गई। सर्वोच्च न्यायालय ने यदि बुलाया होता तो बन्दी होने पर भी वहा जाने में कुछ तो उत्साह आता ही। किन्तु आज तो मैं पूर्णतया जेल की कोठरी में बन्द होता हुआ भी निराशा की अन्धकारमय काल रात्रि में बन्द सा स्वयं को अनुभव करता था। मेरा मन टूट चुका था।

रात को मैंने एक आवेदन लिखा। उसे मैंने राष्ट्रपति को सम्बोधित किया। उसमें मैंने लिखा था—“मुझे छोटने का अधिकार केवल शासन को है। मेरे बन्दी जीवन के १३ वर्ष पूर्ण हो गये हैं, आठ वर्ष की छूट है, इस प्रकार कुल मिलाकर २१ वर्ष हो गये हैं। मुझ पर दया कर मुझे जेल से मुक्त किया जाय। मेरे बारे में यदि यह भी प्रसिद्ध किया गया कि मैं क्षमा माग कर जेल से मुक्त होना चाहता हूँ तो भी मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। आप किसी भी शर्त पर छोड़ेंगे तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं। मुझे किसी भी स्थिति में मुक्ति चाहिये।”

आवेदन को टाँप करने में बिल्कुल न हो इसलिये मैंने जितनी प्रतियाँ आव-  
श्य थी, स्वयं हाथ में लिख कर तैयार कर ली थी। मेरा विचार था कि प्रातः  
उने अधीक्षक को दे दूंगा। रात को बन्दीपाल गश्त पर आये तो उनके सम्मुख  
मैंने अपनी मन स्थिति का वर्णन कर दिया।

रात्रिको मुझे नोद शान्ति से आई।

प्रातः काल में उठा तो सहसा मेरे मुख से ‘नहीं, नहीं’ का चीत्कार सा निकला  
चोत्पार मुनकर पहरदार चौक गये। वे मुझसे पूछने लगे कि क्या मैं स्वप्न में  
चोत्पार कर रहा हूँ ?

प्रतीत होता है कि निद्रा भग के कुछ समय पूर्व ही मेरा मन कार्यप्रवण  
हूँगा होगा। यदि स्वप्न भी आया हो तो मुझे उसका स्मरण नहीं था।  
यह वदचित्त बाह्य मन की अर्द्ध जागृतावस्था रही होगी। अन्तर्मन ने कहीं  
पर किसी प्रकार का आघात किया होगा। निद्रा भग होते ही मुह से “नहीं नहीं”  
के शब्द निकले होंगे या अन्तर्मन ने जो आघात किया वह प्रबल रहा होगा।  
उससे बाह्य मन में और बाह्य मन से स्नायु में हलचल होने से इस प्रकार के  
शब्द निकले होंगे और उन शब्दों के आघात से ही मेरी निद्रा भी भग हुई होगी।

मैं जब इसका विश्लेषण करता हूँ तो प्रतीत होता है कि हाथ से कोई ऐसी  
बात हो गई होगी जिसको मन अपराध समझता होगा। ऐसे अपराध के लिये  
क्षमा याचना करके उसका अक्षतः परिमार्जन करने जितना तो मन बड़ा होना ही  
चाहिये। उसमें न्यूनता नहीं समझी जानी चाहिये।

किन्तु मेरा इस प्रकार क्षमा याचना करना मैं समझता हूँ कि ठीक उसी प्रकार  
का कृत्य होगा जैसा कि घोर विपत्ति के समय में मानी राणा प्रताप के मन में  
अकबर के सम्मुख नतमस्तक होने का विचार आया हो। किन्तु तब भी अकबर तो  
विदेशी था अतः उसका राज्य भी विदेशी राज्य ही माना जाना चाहिये और उससे  
स्वतन्त्रता के लिये राणा प्रताप लड़ रहे थे, किन्तु वे पराजित हो रहे थे। विदेशी  
का राज्य ही अन्याय होता है उस अन्याय को दूर करने के लिये किया प्रत्येक  
सम्भव अथवा असम्भव उपाय देश की दृष्टि से न्याय ही होता है। राणा की



पराजय का अर्थ था उनकी शक्ति का ह्रास । पराजित होना उनके अपराध नहीं था । राणा का क्षमा याचना करने का अर्थ होता कि उसने स्वराज्य प्राप्ति के लिये जो भी यत्न किये जो सवर्ष किया वह अपराध किया । किन्तु हम समझते हैं कि उसने ऐसा कुछ नहीं किया था । इसी कारण स्वाभिमान का देवता मान कर आज हम प्रताप का सम्मान करते हैं ।

किन्तु मेरे पक्ष में, न तो यह राज्य विदेशी था और न ही इसके शासक विदेशी थे । यदि इस राज्य के प्रति किसी अवैध घटना का भी यदि कोई हेतु रहा होगा भी तो वह यही कि अपने देश की सीमायें सुदृढ़ हो, राज्य में सुख शान्ति रहे, किसी पर राज्य द्वारा किये गये अपमान को सहन न करें, अन्याय न सहें, धमकियों से न डरें, मृगमरीचिका के पीछे न दौड़ें, इस प्रकार की भावना से अपने ही राज्य का हमने कोई अपराध किया हो तो उससे क्षमा मागने में भी हमारी किसी प्रकार की मानहानि नहीं होनी चाहिये ?

प्रश्न ऐसा था कि राज्य हमारा और राज्यकर्ता हमारे होने पर भी मैंने उनका कोई अपराध नहीं किया था । यदि मैं क्षमा याचना करता हूँ तो इसमें झूठे ही यह सिद्ध हो जावेगा कि कोई न कोई उनका अपराध है । उनको झूठा सम्मान दिया जाता है और क्षमा प्रदान करने का उनका अधिकार है इस प्रकार उनको झूठा अधिकार प्रदान करना हो जाता है । इनमें से कोई भी बात मन को जचती नहीं थी । यदि इस विषय में अपराध किसी का था तो वह राज्य का था मेरा नहीं । शासन ने मेरे साथ अन्याय और अत्याचार कर अपराध किया था ।

मेरी सजा निष्कासन होते हुए भी उन्होंने मुझे बन्दीगृह में बन्द करके रखा था । नियत समय से अधिक मुझसे काम लिया और उसके लिये मुझे अलग छूट दी । मैंने काम किया था यह तो सत्य था ही । मुझे छूट प्रदान की किन्तु देते समय उसको मन से ही भुला दिया, इस प्रकार का वनाबटो व्यवहार किया गया । मुझसे रक्त लिया गया, उसके बदले में छूट दी गई और उस छूट की शासन ने यथा समय पुष्टि भी कर दी किन्तु उसका कोई लाभ मुझे नहीं मिला । रक्तदान के सम्बन्ध में मैंने अपने आवेदन में शासन की वक्रोक्ति से आलोचना की थी । 'शासन कहेगा, 'न्यायपि ! हमने बन्दी का रक्त लिया यह बात सच है । परन्तु उसमें हमने गलती क्या की ? बन्दी को यदि अन्दमान भेजा जाता तो वहा उसको जगल काटने का काम करना होता और वहां जगलों के जोंक उसका सारा ही रक्त सोख जाते । हमने तो कुछ शीशी भर ही लिया होगा । इसके साथ ही नियमों से सर्वथा अपरिचित, अनभिज्ञ वे जोंक बन्दी को किसी प्रकार की छूट का आश्वासन भी लिख कर नहीं दे सकती थी । शासन ने बन्दी की छूट अर्थात् उसकी छूट के अधिकार से उसको वंचित तो नहीं किया ? अब यह किस बात

की छूट मागता है ? जंगल के उन जन्तुओं से भी क्या वह इस प्रकार के किसी अधिकार की माग कर सकता था ?”

इस आलोचना का परिणाम तो हुआ । केन्द्र शासन ने रक्तदान और उसके विनियम में छूट के आश्वासन को छानबीन करने के लिये समिति की नियुक्ति कर दी । समिति ने ऐसा निष्कर्ष निकाला कि रक्तदान और तज्जन्य छूट इनका कारागारान्तर्गत नियमों से तनिक भी सम्बन्ध नहीं है ।

समिति के निष्कर्ष के अनुसार शासन को मुझे यह कहना चाहिये था कि “तुम्हारे रक्तदान की छूट का लाभ हम तुमको दे रहे हैं । क्योंकि उसका नियमों के साथ सम्बन्ध नहीं है । और इसलिये तुम रक्तदान करने के लिये बाध्य नहीं थे । हमारे कहने पर तुमने रक्तदान किया था, हमने तुमको बदले में छूट दी है और अब हम तुमको उसका उपभोग करने का अवसर दे रहे हैं ।” दूसरे शासन को समिति का यह निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के अध्ययन में भी लाना चाहिये था । और पहले किया हुआ विधान वापस लेना चाहिये था । और न्यायालय को चाहिये था कि आजन्म कारावास के विषय में दिये गये निर्णय को वापस ले ले । वह सर्वोच्च न्यायालय की प्रतिष्ठा का प्रश्न था । सभी बातें एक साथ सम्मुख आ कर उन पर ठीक न्याय होना आवश्यक था । मैं उससे मुक्त होता या न होता यह पृथक् प्रश्न था । यह बात गौण थी ।

शासन ने बैसा नहीं किया । प्रतिशोध पूर्ण रूप से लिया ही जाना चाहिये भले ही अपने व्यवहार में असत्यता का आभास रहे, इसी प्रकार की नीति शासकों ने स्वीकार की थी । मेरा प्रत्येक विवाद सत्य था और तर्कयुक्त था । शासन को इसकी प्रतीति होती थी परन्तु फिर भी उसने मेरे साथ न्याय नहीं किया । मैं समझता हूँ कि अपराध शासन का था, मेरा नहीं ।

छूट का महत्व सर्वसामान्य और स्वतन्त्र नागरिक उतनी उग्रता से नहीं समझ सकता जितना कि वन्दी समझता है । वन्दी भले ही किसी को सोने की मुद्राओं से तौल दे तब भी कानूनन वह एक दिन की भी स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर सकता । एक दिन छूट का विनियम पैसे में नहीं हो सकता । हा, यह भले ही हो सकता है कि यदि अमुक राशि का जुर्माना नहीं चुकाया गया तो उसके लिये निर्धारित अवधि का कारावास अवश्य मिल सकता है, वह प्रकरण इससे अलग ही है । उसका इस छूट से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं । छूट का अर्थ है कि न्यायालय ने जो सजा दी अथवा कानून के अनुसार जो सजा भुगतनी है उस सजा में से कुछ की छूट । दया के पवित्र अधिकार की धारा में छूट पद्धति का उत्प्लेख है । वह क्षेत्र शासन का है । मैंने जो छूट सप्रहित की थी उसके आधार पर १४ वर्ष पूर्ण होने में एक दिन पूर्व भी यदि शासन ने मुझे मुक्त किया होता तो मैं शासन

का आजन्म आभारी बन जाता। सरकार के उम उपकार का नन्दा ध्यान करता रहूँ, इतना ऋण उसमें सरकार का मुझ पर हो जाता। हमका कारण छूट का अर्थात् मुक्ति का मूल्य क्या है यह मैं जानता हूँ। वह अधिकार कितना पवित्र है यह भी मैं जानता था। तब, यदि शासन ने मुझे छूट के आधार पर मुक्त किया होता तो, मेरे मुँह में अनायास ही निकलता “आपके एक दिन और मुझे बन्दी-वास में रखने के अधिकार के वावजूद आभने मुझ पर एक दिन की दया की है उसके लिये मैं आपका आभारी हूँ।”

आज शासन मुझे दया दिखाकर छोड़ दे उस प्रकार की कुमालुना उसमें अवशिष्ट ही नहीं रह गई थी। विपरीत इसके मेरी साम अभी तक चल रही है और मैं जीवित हूँ, इसके लिये सरकार मुझे अपराधी समझती है।

निद्रा भग होने से पूर्व मेरे मन में कुछ इसी प्रकार की चयल पुयल ती हुई होगी। अन्तर्मन ने ही पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष का नाटक किया होगा और उसके मध्य कुछ इस प्रकार का विचार मन्यन हुआ होगा.—

“दया की याचना कर और उसे प्राप्त करके तुम क्या करना चाहते हो ?”

“इससे मेरी वियोगावस्था समाप्त होगी। घरवालों को सुख एवं शान्ति प्राप्त होगी, उनकी क्षण क्षण की वेदना शान्त होगी और मैं स्वतन्त्र जीवन जी सकूँगा।

“परन्तु इसे प्राप्त करने के लिये तुम्हें अपने चरित्र का हनन करना होगा।”

“जो हो, मुझसे अब ये यातनायें सही नहीं जाती।”

“फिर यह व्रत क्यों लिया ? किसने तुम्हें बुलाया था ? सुन की नीकरी थी, बच्चों के साथ रह कर मौज करता। मन को धोखे में क्यों डाला ?”

“उस समय मैं समझता था कि भारत के साथ अन्य य हो रहा है।”

“क्या अब तुम्हें अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हो रहा है ?”

“नहीं। परन्तु यह कहे बिना मुक्ति भी तो नहीं मिलेगी।”

“असत्यव्यवहार से दुखी होकर तुमने यह व्रत लिया और अब स्वयं ही असत्य भाषण के लिये उद्यत हो गये ?”

“परन्तु शासन यह बात समझ नहीं सकेगा।”

“किन्तु तुम्हारा मन ? तुम और शासन अलग होंगे किन्तु तुम और तुम्हारा मन तो वृथका नहीं हो सकते। अपने स्वार्थ साधन के लिये यदि तुम मुक्त भी हो गये तो भी अपने मन से अपने इस व्यवहार को किस प्रकार दूर कर सकोगे ?”

“परन्तु यह वियोग मैं कितने दिन तक सहन करता रहूँगा ?”

“तुम यदि याचना करोगे तो उसका उत्तर तुम्हारे अनुकूल ही होगा, ऐसी तुम्हारी कल्पना है क्या ?”

"तुम जिद्दी बन गये हो, तुम शासन को दाता मानते हो, तुम दान माग रहे हो। ध्यान में रखो, दान देना अथवा न देना यह दाता का अधिकार होता है। दान मिलना ही चाहिए यह याचक का अधिकार नहीं होता। एकांगी विचार क्यों करते हो ?

"परन्तु मेरी पुकार पर अनुकूल विचार होगा और मैं मुक्त हो जाऊंगा।"

"मान लिया। किन्तु बाहर कब जाओगे ? कल ? आज विनती करने से क्या फल अन्तर आनेवाला है ? तुम्हारी कितनी शेष है क्या इसका तुम्हें ज्ञान है ? निर्णय आने से पूर्व ही तुम मृत्यु के प्राप्त नहीं हो जाओगे यह क्या निश्चित है ?"

"अर्थात् कितना भुगतने के बाद मैं मरूँगा ? क्या मैं चार दिनों का स्वातन्त्र्य भी उपभोग नहीं कर सकूँगा ? मेरी इतनी छूट " "।"

"छूट गई गद्दे में। मरने के लिये छूट नहीं मिलती और छूट मिलने पर भी मृत्यु निश्चित ही है। निर्धन भी मरना है, धनी भी मरता है, तुम तब तक मरोगे अथवा नहीं इस प्रकार की सभी सम्भावनायें विचार करना आवश्यक है तब अमरपत्र लेकर नहीं आये हो। मनुष्य मरता है, तुमको भी मरना है। जीवन में सबको सुख का उपभोग करना मिलता ही है, यह तथ्य नहीं है। कभी मनुष्य क्रूरता करता है और कभी नियति। प्रत्येक क्रूरता का उपाय नहीं होता। विभाजित पंजाब और बंगाल की ओर देखो। उन लोगों का क्या अपराध था ? कितने ही लोगों ने अपने जीवन में किसी को शब्द से भी नहीं दुखाया होगा। वहाँ क्या हुआ ? परिवार के परिवार उध्वस्त हुए। पतिविहीन पत्नी और पत्नी विहीन पति खुले सूर्य के प्रकाश में निराश्रित पड़े रहे। लड़के अनाथ हो गये और मा बाप निस्सन्तान हो गये। सहारा खोजने के लिए वे देश भर में भटकते रहे। क्या उन्हें सुख मिला ? उन्हें जीवन प्राप्त हुआ ?"

"वे शरणार्थी थे।"

"शरणार्थी ? किसकी शरण पाने के लिए ? नहीं उन्होंने तो पीरूप की रक्षा करने के लिए अपने शरीर और मन पर घाव सहे थे। अपना स्वल्प रखने के लिये प्रयत्न किये, स्वयं आघात सह कर दूसरे भ्रान्तों को उससे बचाया। वे शरणार्थी नहीं पुरुषार्थी थे, स्वत्वार्थी थे। धर्मांतर करके भी क्यों न हो परन्तु जीवित रहना है ऐसे जो लोग शरण माँगते हैं वास्तव में शरणार्थी वे हैं। क्या तुम भी शरणार्थी बनना चाहते हो ? अकृत अपराधों के लिये क्षमा याचना करोगे ? अपने को व्यर्थ में फँसाओ, स्वयं को और अपने शासन को कलकित कर मुक्ति का पथ खोजो।"

"किन्तु मेरे बन्दी होने के कारण मेरा घर घर नहीं रह गया है।"

"फिर वही बात। अग्नि में हाथ डालते समय विचार करना पड़ता है कि

इससे हाथ जलता है। हाथ डालने के बाद नहीं। विवाह के अवसर पर तुमने और तुम्हारी पत्नी ने दोनों हाथों से मिलकर अग्नि को आहुति दी थी, एक स्वर से मन्त्रोच्चार किया था। इस प्रकार दग्धन में डाले गये। बाद में स्वत के कृत्य से मैं पत्नी और वच्चों को दुःख में डकेल रहा हूँ, बरवार नष्ट कर रहा हूँ ऐसा क्या उस समय तुम्हारी समझ में नहीं आया था? उनके सुख के लिये तुम बाहर जाने का बहाना कर रहे हो? वास्तव में सुख तुमको चाहिये। तुम उनकी आड़ ले रहे हो।”

“उनका आचार क्या है?”

“इतने दिनों तक आधार था? उनका सुख-दुःख विवाता देखेगा। तुम अपना विचार करो। परिवार के परिवार इस प्रक्रिया में झूलसनेवाले थे। जिन छोटे परिवारों का विच्छेद हुआ है उनमें से एक तुम्हारा परिवार भी है। तुम और तुम्हारे परिवार वाले सुख देखेंगे ही नहीं ऐसा यदि तुम्हारा और उनका कर्मफल होगा तो उसके लिये तुम क्या कर सकते हो? इसे विवाता का विधान समझ कर ही विचार करना चाहिये।”

“क्या सुख प्राप्त करने का प्रयत्न भी मैं न करूँ? यह मिलना न मिलना तो मेरे हाथ में नहीं है यह मैं जानता हूँ। परन्तु सुख?”

“ऐसा प्रयत्न? विपरीत पथ की यात्रा? जो झूठ है उसे तुम जानते हुए भी करोगे? यदि इस प्रकार तुम्हें भुक्ति मिल भी गई तो दिन रात एक कसक तुमको सताती रहेगी। ‘तुमने स्वयं झूठ बोला और शासन को झूठ बोलने के लिये विवश किया।’ भुक्ति के बाद उस कसक की यातना इतना कष्ट देगी कि उनकी तुलना में वन्दीवास की यातनायें कुछ नहीं।”

मैं समझता हूँ कि मानो किसी ने इस प्रकार शाप का उच्चारण किया हो। भुक्ति के बाद मानो वह कसक मुझे चुभने लगी होगी ऐसा आभास-सा होने पर जानी मन ने “नहीं नहीं” कहा होगा।

मैं नली प्रकार जाग गया था। कुछ समय बाद मन में स्वयं ही गीता का निम्न श्लोक उभर कर आया—

उद्धरेदात्मानात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

गव्या का त्याग कर मैं प्रातर्विधि में लग गया। वह समाप्त कर मैं रात्रि में लिखे कागज के समीप आया। उन दिनों मुझ में शक्तिहोनता आ गई थी। अतः नरकार ने मेरी मुविद्या के लिये एक छोटा सा मेज और एक डेस्क दिया था, उसमें लिखने में मुविद्या होती थी। मेरे सम्मुख कण रात्रि का लिखा वह दामा ज्ञाना पत्र था। उनकी एक एक प्रति ऊपर के दायें कोने से नीचे के दायें

कोने तक और नीचे के दायें कोने से ऊपर के बायें कोने तक दो रेखाये खींच कर उन मोटे मोटे अक्षरों में अंग्रेजी में ही कॅन्सल्ट लिख दिया। यद्यपि कागज़ मेरे ही पैसे से दिये जाते थे किन्तु वे गिन कर दिये जाते थे और उनकी गणना रहती थी जो कि अधिकारियों को देनी पड़ती थी, इस कारण मन की दुर्बलता रूपी उस क्षमा-याचना-पत्रको को मैं फाड़ नहीं सका।

अधीक्षक नये ही आये थे। अभी तक उनका और मेरा ठीक परिचय भी नहीं हुआ था। धीरे धीरे परिचय बढ़ता गया। अधीक्षक के नाते मैंने उनके साथ भी बहुत सघर्ष किया था। इतना होते हुए भी जिन किन्हीं अधिकारियों को मैं समझदार, उदार और सम्बेदनशील मानता हूँ उनमें उनका प्रमुख स्थान है। उनका नाम था श्री तोसकर।

मैं उदास हूँ, इसका ज्ञान अधिकारियों को था। दूसरे दिन उनका चक्कर आया। कोई कुछ बोला नहीं। मैं भी चुप ही रहा। तीसरे दिन की फेरी के समय मैंने अधीक्षक को कई कागज दिये, उनको टाइप करके भिजवाने की प्रार्थना थी।

उन्होंने सरसरी तौर पर पृष्ठ पर दृष्टि डाली और फिर प्रश्नभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। वे कागजात सर्वोच्च न्यायालय को भेजे जानेवाले आवेदन के प्रारूप के थे।

“परसो तो आप ?” अधीक्षक बोले।

“हाँ। मैंने उनको बीच में ही टोका। दया के आवेदन का अपना विचार मैंने जेलर के सम्मुख रखा था। उन्होंने उस विषय में अधीक्षक को कहा होगा। परन्तु अब जो कागज वे देख रहे थे वे कुछ उससे भिन्न थे। मैंने उनसे कहा “मैंने दया याचना के विषय में विचार किया था किन्तु अब मेरा विचार बदल गया है। यह देखिये” मैंने उनको इस हेतु लिखे कागज दिखाते हुए कहा, “मैंने इस प्रकार के आवेदन को लिख कर फिर उसे रद्द कर दिया है”

“सहसा आपका विचार किस प्रकार बदल गया ? उनका प्रश्न था इससे पूर्व मैं कह चुका हूँ कि अधिकारी भी बन्दिओं के विशिष्ट स्थित्यन्तरो का निरीक्षण करते रहते हैं। उसका अध्ययन करते रहते हैं। उस के आधार पर वे अपनी धारणामें बनाते रहते हैं। यही कारण है कि उन अधीक्षक के भाव से परिलक्षित नहीं होता था कि मुझे दया का ही आवेदन करना चाहिये था।

“मुझे आत्मज्ञान हुआ है ?” मैंने काव्यात्मक भाषा में कहा। उसनी ही विनोदप्रियता से वे बोले, “आपको कौन मिले थे ?”

“श्रीकृष्ण।”

“क्या कहा उन्होंने ?”

“क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ।”

उनको हसी आ गई। बहुत दिनों से मेरे मुँह पर की हंसी पड़ गई थी किन्तु तब मैं भी मुस्कुराया था। मैं पुनः तन कर खड़ा हो रहा हूँ इन विचार से होने वाले सन्तोष की सूचक ही मेरी हंसी थी। अनेक दिनों तक मेघाच्छन्न रहने के बाद जब आकाश पर सहसा सूर्य की किरणें दिखाई देती हैं उसने जो आह्लाद मन को होता है ठीक वैसा ही मेरा भी आह्लाद था।

आवेदन दाखल करवाया गया। मैंने उस पर हस्ताक्षर किये। प्रतिज्ञा पत्र लिखा और वह सब कागजात सर्वोच्च न्यायालयको भेजने के लिये अधिकारियों के पास दे दिये। सर्वोच्च न्यायालय में कुछ दिनों के लिये अवकाश था। साठे तीन मास के बाद आदेश आया कि दि० ६-८-६२ को बन्दी को न्यायालय में उत्तस्थित किया जाय।

निश्चित तिथि पर मैं उपस्थित हुआ। आवेदन में मैंने मुक्ति के लिये प्रार्थना नहीं की थी। शासन से मुझे कुछ बातें समझनी ही चाहिये इस के लिये कुछ चुविचा मागी थी किन्तु एक टेकनिकल आपत्ति के कारण मेरा आवेदन सर्वोच्च न्यायालय ने वापस कर दिया।

क्योंकि इस बार मैंने मुक्ति के लिये कोई याचना नहीं की थी अतः इस पराजय से मुझे आघात सा नहीं लगा और यदि मुक्ति की याचना की होती तब इस प्रकार की पराजय मिलती तो भी अब मेरी मन स्थिति ऐसी हो गई थी कि उसका परिणाम उतना भयकर नहीं होता।

अपनी न्यायालयीन तथा अन्य गतिविवियों के विषय में मैं अपनी पत्नी को सूचित करता रहता था। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद पांच दिनों बाद मैं और्यावाद पहुँचा था। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से घर वालों को सूचित कर दिया था।

अपनी विकलावस्था को भूल कर अपने विवेक को स्थिर रखनेवाली और समय पर मेरा भी विवेक स्थिर रखने में सहायता करनेवाली मेरी पत्नी ने दि० १६-८-६२ को उत्तर में लिखा—

“तुम्हारा पत्र मिला। पत्र पढ़ कर किंचित् दुःख हुआ। किन्तु उसका आभास किसी अन्य को न हो इस दृष्टि से सावधानी बरती। पिछले दो दिनों से मैं निरन्तर उनी पर विचार करती रही हूँ। “भविष्य में किस प्रकार लिखा जाय इस सबन्ध में अपनी बुद्धि में आगे सिन्धु ने लिखा, “इन बातों का विचार करने पर ऐसा लगता है कि एक बार किसी अच्छे वकील से परामर्श किया जाय। दो-तीन सहस्र रुपया उसका देना पड़ जावेगा। किन्तु कोई हानि नहीं।

थोड़े दिनों तक उतनी राशि एकत्रित कर फिर इस प्रकार का प्रयत्न किया जाय। परन्तु तब तक तुम्हारे प्रयत्न चालू रहे, उन्हें रोकने का कोई कारण नहीं। पठरपुर की यात्रा मोघ मिलने तक करनी ही है यही एक विचार जिम प्रकार उन यात्रियों के मन में स्थिर रहता है उसी प्रकार अपने को भी दृढ़ संकल्प करना होगा कि जब तक तुम्हारी मुक्ति नहीं हो जाती हमारे प्रयत्न सतत चालू रहने ही चाहिये। अनेक यातनायें एवं कष्ट सहने के बाद भी वे यात्रा यात्रा करने से रुकते नहीं निरन्तर वर्षानुवर्ष उस यात्रा को करते रहते हैं और कष्ट सहने पर ही वे दर्शन करने पर यात्रा का लाभ मानते हैं। इसी प्रकार हममें अपने मन में निश्चय कर कार्य को चालू रखना होगा।

“मेरा विश्वास है गोपाल। हम को भी उसी प्रकार एक दिन सुख का, आनन्द भोगने का अवश्य ही प्राप्त होगा। परन्तु उस आनन्द का क्षण प्राप्त करने के लिये अभी तक कष्ट, मानहानि, उपेक्षा, दुख और वियोग इनका घडा नहीं भर पाया है।

“तुम स्थिर रहो। प्रयत्न निरर्थक सिद्ध हुए, ऐसा विचार आना स्वाभाविक है। परन्तु पत्थर से तेल निकलेगा इस भावना से किये हुए प्रयोग व्यर्थ सिद्ध होने पर भी क्या अनुसन्धानकर्ता निष्क्रिय होकर बैठ गये थे? नहीं। विजली के बल्ब में कौन सी तारों का उपयोग किया जाता है इस प्रयत्न में एडिसन के कितने प्रयोग व्यर्थ सिद्ध हुए थे? परन्तु क्या उसने अपना प्रयत्न त्यागा? यदि वह चसका उसने छोड़ दिया होता तो आज हमें रात को जब चाहे तब प्रकाश, हाथ जोड़ कर खड़ा रहा नहीं दीख पड़ता।

“सारा ससार भी यदि विमुख हो गया, तो भी मैं तुम्हारे साथ हूँ, इस विश्वास को स्थिर रखो। हम फिर प्रयत्न करें, करते रहें।” “जैसे जातो तैसे तू माझा सांगाती (जहा जाता हूँ वहाँ तू मेरे साथ हो।)”

पिछले दो मास से औरङ्गाबाद बन्दीगृह में मेरा स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। भूख मन्द हो गई थी। जिला रुग्णालय के प्रमुख चिकित्सको ने मेरा परीक्षण किया था। बन्दीगृह के डाक्टर भी अस्थायी उपाय किया करते थे। उसी अवस्था में विगत अगस्त में मैं दिल्ली भी गया था।

दिल्ली से लौटने के दो सप्ताह बाद स्वास्थ्य और भी बिगड़ गया। दिन भर मे आँची रोटी भी मेरे पेट में नहीं जाती थी। पूरक अन्न के लिए मुझे पाव भर दूध (और डबल रोटी) दिया जाता था। परन्तु उसको लेने की भी इच्छा नहीं होती थी। तरकारी अथवा दाल का रस यही अनाश मैं चाहने लगा था।

दि० ३१-७-६२ को मेरा स्वास्थ्य अधिक बिगड़ गया। दूसरे दिन मुझे बन्दीगृह के रुग्णालय में सटाकर ले जाना पड़ा। रुग्णालय पड़ोस के ही वैरक में



था। परन्तु वहाँ तक जाने की शक्ति मुझमें नहीं थी। पिछले ३-४ दिन से पेट में कुछ गया ही नहीं था।

मुझे पीलिया हो गया था। उससे यकृत विगड़ गया था। सिविल सर्जन एक दो बार सप्ताह में आया करते थे। उनका और मेरा परिचय था मेरी चिकित्सा के लिए उनको बुलवाया गया।

रोग का निदान एवं चिकित्सा के लिये मुझसे भी कुछ पिछली जानकारी ली गई। इसी प्रकरण में कुछ और भी वार्तालाप होने से बोलना पड़ा। मैं ठीक प्रकार से बोलता हूँ अथवा नहीं, भस्तिष्क कार्यक्षम है अथवा नहीं, निरन्तर पराजयी का मन पर कितना परिणाम हुआ है यही सब देखना उनका उद्देश्य था। उन्होंने मुझसे पूछा, “पहले पहल आपका भार कितना था?”

“छ पाँण्ड” मैंने कहा।

उन्होंने सोचा शायद छ से पूर्व का शब्द छूट गया है, अतः उन्होंने पुष्टि कराने के लिए पूछा, “क्या एक सौ छ?”

“नहीं, केवल छ”

उनके ध्यान में बात आई। वे हँसे, उन्हें मेरी कल्पना का आभास हुआ। मन की विनोदप्रियवृत्ति रोगनिवृत्ति के लिये सहायक होती है यह वे मलीभांति जानते थे। भले ही मैं दण्डित अपराधी हूँ परन्तु परिचय के बाद अधिकारी मेरे साथ बराबरी का ही व्यवहार करते थे। भले ही मेरा आक्षेप सीधे उन पर ही क्यों न हो। अन्यथा मैं भी किसी के साथ उतनी विनोदप्रियता और मुक्तता से बोल नहीं पाता था। डाक्टर ने सुधार कर मुझसे पुनः प्रश्न पूछा “आप जब औरङ्गाबाद बन्दीगृह में आये तब आपका भार कितना था?”

“एक सौ पचीस पाँड।”

“बाहर किस प्रकार की आदतें थी।”

प्रश्न सुनकर मैं हँस पड़ा। वे बोले, “क्यों हँसे क्यों?”

मैंने कहा, “डाक्टर आज चौदह वर्ष से मैं निरन्तर बन्द पड़ा हूँ। मेरी प्रत्येक गतिविधि किसी न किसी नियम से प्रतिबद्ध है। सो बाहर की कौन-सी आदत अब तक बनी रही होगी? सीमाग्य से अब यदि कभी मुक्त भी हो गया तो यहाँ की आदतें ही बनी रहेंगी, क्योंकि मैं इनका इतना अभ्यस्त हो गया हूँ कि अब इस आयु में उनको बदल पाना असम्भव हो जावेगा। बाहर दर-उधर घूमते हुए कभी अचानक ध्यान में आने लगेगा ‘अरे! मेरा वार्डर कहाँ गया? पुत्रिमर्त्य कहाँ है? मैं अकेले इधर कैसे जा रहा हूँ? मानो मैं भाग कर जा रहा हूँ ऐसा मन की भास होने लगेगा। मैं पलभर रकूँगा पीछे मुड़ार दूँगा।

“कमी अपनी इच्छानुसार पत्नी ने बढ़िया भोजन परोसा तो मैं उससे कह बैठंगा, ‘यह क्या तरकारी बनाई है ? इसका रङ्ग यह कैसा है ? इसका तो वैसा रङ्ग होना चाहिये था ? तरकारी में तेल और मिर्च नहीं डालना चाहिये ।’ तब इस वातावरण में डाक्टर बाहर की कौन-सी आदत अब तक रह सकी होगी, आप ही बताइए ? हाँ, जिस प्रकार मैं बाहर स्वास-प्रस्वास छोड़ता था ठीक उसी प्रकार आज बन्द होने पर भी छोड़ता हूँ, यही एक आदत बाहर की स्थिर है, किन्तु लगता है वह भी अब थोड़े दिनों में छूटने वाली है ।”

“आपकी वह आदत उसी प्रकार बनी रहे उसके लिये ही प्रयत्नशील हूँ । मुझे विदित हुआ है कि आप बहुत लिखते रहते हैं । न्यायालय के झगड़ों से थोड़े दिन छुटकारा लीजिए । जब आप स्वस्थ हो जाए तब आप और शासन एक दूसरे से निवट लें ।” इस प्रकार कुछ आश्वासन के से शब्द कहकर डाक्टर चले गये ।

मुझसे न लिखने के लिए कह कर भी ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अधिकारियों से कहा होगा कि लिखने के साधन मेरे समीप रहने चाहिये, इससे मेरा मन-मस्तिष्क व्यस्त रहेगा और व्यर्थ की बात सोचने के लिए अवकाश नहीं रहेगा ।

मेरा विश्वास था कि यहाँ के डाक्टर जो भी चिकित्सा करेंगे, जो भी औषधि देंगे, उसमें वे किसी प्रकार की श्रुति नहीं करेंगे । किन्तु इतना होने पर भी मृत्यु का भी अपना भाग होता है और वहाँ डाक्टर और उनके उपचार व्यर्थ सिद्ध होते हैं । यह भी मैं जानता था । मुझे लगता था कि मेरा एक आवेदन सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख सदैव ही पड़ा रहे । उस अवधि में ही यदि मृत्यु आ भी गई तो कम से उसके बाद सर्वोच्च न्यायालय यह तो देख सके कि मेरी शिकायत व्यर्थ नहीं थी । शासन ने मेरे साथ अत्याचार किया था, अन्याय किया था, क्रूरता बरती थी । दो आवेदनों के मध्य मैं बहुत ही कम अवधि रखता था । वह अवधि अटल सी थी । क्योंकि प्राप्त तैयार करने के लिए दो दिन, टाइट होकर आने के ३-४ दिन और प्रतिज्ञापत्र लिखने के लिये ३-४ दिन लगा करते थे । बीच में ही कहीं मेरी मृत्यु न हो जाय इस प्रकार कुछ भय-सा प्रतीत होता था । मेरा स्वास्थ्य अच्छा न होने की सूचना घर पर भेजी गई थी । पत्नी और बच्चे दि० ६-९-६२ को मुझसे मिलने के लिये आये ।

उस समय मैंने पत्नी को कहा था, “मुझे लगता है कि मैं स्वस्थ हो जाऊंगा । किन्तु इससे भी महत्व की बात है कि सर्वोच्च न्यायालय में मेरा एक आवेदन विचाराधीन होना चाहिये । ऐसी मेरी इच्छा है । जब भी मैं तुम्हें सूचित करूँ तुम तुरन्त यहाँ आ जाना और यही से मेरा आवेदन टाइन कराकर ले आना, जिससे कि विलम्ब न रहे ।” मैंने उससे यह भी कहा, “जो जीवन हमने एक

साथ बिताया है वही मुझ अपने भाग्य में लिखा था। गायद अपना भाग्य अधिक सुख भोगनेलायक नहीं। यदि इन पर भी सुख मिल ही गया तो उसको हम अस्वीकार तो करनेवाले नहीं हैं? मेरा एक आवेदन सर्वोच्च न्यायालय में पड़ा है, वह कदाचित् वापस आनेवाला है, किन्तु मैं नमस्रता हूँ न्यायालय में सदा मेरा एक आवेदन रहना ही चाहिये, इस विचार से मैंने अपना अगला आवेदन तैयार करके रखा हुआ है।'

उस आवेदन के बारे में संक्षेप में मैंने अपनी पत्नी को बताया। इतने में भेंट का समय हो गया। मैंने उनसे विदाई ली। वे लोग बार-बार स्वास्थ्य के लिये मुझे सावधान करते हुए वापस गये। यद्यपि जाते समय उनको आँखों में अश्रुकण नहीं दिखाई देते थे किन्तु मैं समझता हूँ कि उनके अन्तःकरण अवश्य रो रहे थे। जेल के अधिकारियों ने भी उन लोगों को आश्वस्त करते हुए कहा था कि हम सभी प्रकार का आवश्यक उपचार कर रहे हैं, आप चिन्ता मत कीजियेगा।

उस रुग्णालय में पीलिया के अन्य भी अनेक वन्दी थे। मुझे मिलनेवाली औपधि उनको नहीं मिलती थी। मेरे साथ उपचार में तनिक पक्षपात हो रहा है यह मुझे दिखाई दे रहा था। इस बात को मैंने अधीक्षक को बताया तो उन्होंने सावधानी बरतने का आदेश दिया। उनको विदित हुआ कि घनाभाव के कारण ऐसा हो रहा है। अतः जब मैं अपनी पत्नी को उनके द्वारा दिये गये आश्वासन की बात पर विचार करता हूँ तो प्रतीत होता है कि उनका आश्वासन सच ही था।

अधीक्षक इतने भले थे कि अपने अधिकार का प्रयोग कर उन्होंने मुझको दो जानेवाली औपधि उन वन्दियों को दिलाने का भी प्रयत्न करवा दिया। उन्होंने मुझसे यह नहीं कहा कि तुम अपना स्वास्थ्य देखो, दूसरों से तुमको क्या लेना-देना।

मेरे स्वस्थ होने की प्रगति मन्द थी। रुग्णालय में रहकर ही मैं दवा पानी ले रहा था। १९६२ के अक्टूबर मास के उत्तरार्द्ध में हमारे देश पर विपत्ति के बादल मंडराये। चीन ने हमारे देश की उत्तर-पूर्वी सीमा पर आक्रमण कर दिया। परन्पर के नव मनषेदों को भुला कर एक साथ कन्धे से कंधा मिला कर आक्रमण का उत्तर देने का वह प्रण उपस्थित हुआ था। १८-१०-६२ को संकट की स्थिति की घोषणा की गई थी।

हमारे महामुद्र के अवसर पर ब्रिटिश ने वन्दियों की भी एक टुकड़ी तैयार की थी और उनसे युद्ध पर भेज कर उनसे युद्धोपयोगी कार्य करवाये थे। इनके लिये वन्दियों को नज़ा में छूट दी गई थी। जब मैं स्वयं उन दिनों मोर्चे पर था तो मैंने श्रद्धा दह देना था। वन्द्यगृह के विभिन्न वर्ग के वन्दी चुन कर उनका उपयोग किया जाय इस प्रकार की एक योजना भी तैयार कर मैंने शासनाधि-  
कारियों के पास भेजी।

बन्दीजन मुझे मिलते थे, उनमें अपार उत्साह था। इस अवसर पर उनका क्या कर्तव्य है, क्या किया जा सकता है, इस प्रकार की अनेक बातें वे मुझसे पूछते रहते थे। रक्तदान और द्रव्यदान की सरकार से अनुमति प्राप्त करा ली जाय इस प्रकार की बात भी उनको बताया करता था। सम्भवतया उनके मन में यह विचार भी हो कि यदि उनको मोर्चे पर भेजा गया तो उनको स्वतन्त्रता मिल जावेगी उनका बन्दीवास समाप्त होगा। परन्तु यहाँ व्यर्थ में सड़े रहने की अपेक्षा समुपस्थित प्रसंग पर हम प्राणार्पण से यदि देश की सेवा करें ऐसी पवित्र भावना उनके मन में लक्षित होती थी। किन्तु मैंने शासन के पास जो योजना भेजी थी उसको स्वीकार नहीं किया गया।

जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ कि मनोरंजन के लिये मैं कुछ कविताएँ लिख लिया करता था। मन में भावनाएँ जमड़ने लगी कि वे कागज पर उतरने लगी। अनेक बार मन में आता था कि गद्य लिखने की अपेक्षा इनको पद्य में लिखा जाय। भारत-चीन युद्ध के समय मैं बीमार था। उस प्रसंग में मैं प्रत्यक्ष कुछ नहीं कर सकता था। भारतवासी रणभूमि पर उतर रहे हैं और मैं बन्दीगृह के रुग्णालय के विस्तर पर पड़ा हूँ, मन की यह विपश्चिता उससे बाहर निकलने को हुई और 'क्षत्रवृत्त भारत' इस कविता के अन्त में मैंने लिखा—

हवनाची मजला नाही सधि, चित्त अश्रु बाही

रक्त रुग्णशय्या खाई, पाय बाधलेला राही लौह कोदणाला।

क्षत्रवृत्त भारत अवघा चालला रणाला ॥ १-११-१९६२ ॥

अर्थात् इस रणयज्ञ में हवन करने का मुझे अवसर नहीं है। रुग्णशय्या मेरा रक्त पी रही है। मेरा पैर लौह शृंखलाओं में बँधा पड़ा है। वहाँ पूरा क्षत्रवृत्त भारत रणक्षेत्र में प्रवृत्त है।

पण्डित नेहरू के उन दिनों के विचार पढ़ कर मन को अच्छा लगता था। शस्त्र शक्ति की उपेक्षा नहीं की जा सकती। जिसको हम उन्मत्तविश्वास में बहकर "मित्र मित्र" कहते हैं वह सच्चा मित्र नहीं होता। हम जागृत नहीं रहे यह हमारा अपराध है। इस प्रकार के अनुभवपरक शब्द राष्ट्र को "माई-माई" के स्वप्निल वातावरण में से निकाल कर वास्तविक घरातल पर पर टन कर खड़ा कर देंगे ऐसी मुझे आशा होती थी।

थोड़े ही दिनों में एक पक्षीय शस्त्र सन्धि हुई थी। उसमें भी मुझे अपनी हार ही प्रतीत हुई। शत्रु जब यह कहता हो कि हम अपनी इच्छा में आक्रमण करना बन्द कर रहे हैं तो मैं समझता हूँ कि यह हमारे मुँह पर एक कगारा थपड़ था। हमारी हार थी। शत्रु ने हमें यहाँ पर भी पराजित किया था।

पराजय के आघातों को सहते हुए ही हमने यह भी अनुभव किया कि जिम

विश्व शान्ति को रटते हम थके नहीं, वह विश्वशान्ति बिना सामर्थ्य के व्यर्थ सिद्ध हो रही है।

दि० २०-११-६२ को मुझे रुग्णालय से उन्मुक्त ( डिस्चार्ज ) किया गया। नाडी का कभी कभी तीव्र हो जाना, हाथ पावों में कभी कभी सहसा कम्पन होना इस प्रकार के विकार अभी शेष थे इसलिये मैं वैद्यकीय नियन्त्रण में और पथ्य पर था। दो मास बाद मैं अपनी कोठरी में आया।

रक्तदान की माग अभी तक भी हो रही थी। जून के मध्य में रक्त पेढी (बैंक) आवेगी ऐसी सूचना मुझे मिली थी। रक्त देने के लिये मैंने भी अपना नाम लिखवा दिया था। और भी ३०-३५ बन्धियों ने अपने नाम लिखाये।

रक्तदान के प्रतिदान स्वरूप बन्धियों में से किसी ने पैसे और किसी ने छूट को पसन्द किया था। मैंने दोनों को ही स्वीकार नहीं किया। रुग्णालय के कर्मचारियों ने इस कारण से मेरा नाम विशेष रूप में अधिकारियों को दिखावा था।

मेरे लिये विशेष पहरा रखा हुआ था, मैं अभी तक पथ्य आदि के लिये डाक्टर नियन्त्रण में था, ऐसा व्यक्ति मैं, भी रक्तदान करनेवाला था। अधिकारी जन इससे कुछ शक्ति हो गये। उन्हें लगा कि कहीं मैं भविष्य में इस विषय को लेकर ही किसी प्रकार का विवाद खड़ा न कर दूँ। वे इसका उपाय सोच रहे थे।

मुझे सनके भय की कल्पना थी। अपने स्वार्थ के लिये मैं किसी अधिकारी को कठिनाई में डालूँ, इस का विचार कभी भी मेरे मन में नहीं आया। इस सम्बन्ध में जब अवीक्षक मुझसे मिले तो मैंने बताया, “यह रक्तदान बिना किसी प्रकार के प्रतिदान के है। इसके लिये कोई भी प्रतिदान मैं कभी भी नहीं मांगूंगा। देश की रक्षा के लिये अनेक लोगों ने बिना प्रतिदान की भावना के ही अपने प्राणार्पण किये हैं। मैंने तो केवल रक्त दान ही किया है और भविष्य में भी करता रहूंगा। क्योंकि इस स्थिति में इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता। अपने ही देश के लिये किये गये इस छोटे से कर्तव्य के लिये मैं देश से किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं करता। देश के लिये व्यक्ति के जीवन को गौण समझा जाना चाहिये, यही मेरी धारणा है।”

भविष्य में मेरे सम्बन्ध में अधिकारी सजग रहने लगे थे। प्रत्येक चार मास के बाद रक्तदान के लिये मैं अपना नाम दिया करता था। बिना प्रतिदान के मुझे इसकी अनुज्ञा मिलने लगी थी। रक्तदान से पूर्व मेरी वैद्यकीय परीक्षा की जाती थी। चिकित्सक धोणवतुली का परिमाण ( H. B. परसेंटेज ) आदि देखा करते थे। जब तक वैद्यकीय दृष्टि से रक्तदान के लिये मुझे अयोग्य सिद्ध नहीं किया गया तबतक मैं इन प्रकार निरन्तर रक्तदान करता रहा।

सर्वोच्च न्यायालय में मेरे आवेदन कभी अस्वीकार कर दिये जाते थे और कभी लौटा दिये जाते थे। १९६३ के मध्य तक यह क्रम जारी रहा। ५ अगस्त ६३ को मुझे न्यायालय में बुलाया गया। मैं न्यायालय गया। पराजय की अपनी माला में मैंने एक और फूल गुंथा था।

सितम्बर के मध्य हमारे कारावास के अधीक्षक का स्थानान्तर हो गया उनके स्थान पर दूसरे व्यक्ति आ गये थे।

बीमारी से उठने पर मैं काम नहीं करूंगा, ऐसी सूचना मैंने अधिकारियों को दी थी। कानून कहता था कि कालेपानी के बन्दी को तब तक सश्रम कारावासी समझा जाय जब तक उसको सीमा से बाहर नहीं भेजा जाता। सन् १९५६ में काला पानी बन्द हुआ था, आजन्म निष्कासन का रूपान्तर आजन्म कारावास में हुआ था। और उसी का स्वरूप आजन्म सश्रम बन्दी बन गया। बाहर जाने का अधिकार ही नहीं, यह कहने पर फिर काम किया या न किया दोनों एक ही बात थी। काम करने से छूट मिलती है, परन्तु रिपोर्टबुक पर अंकित उस छूट का प्रेतदहन के लिये लगनेवाली सलाई जितना भी जब उपयोग नहीं तो फिर यह झूठा दिखावा क्यों ?

मैं स्वस्थ हो गया था। चिकित्सको का कहना था कि हलका काम किया जा सकता है। फिर भी कदाचित्त मुझे किसी ने कोई काम दिया न होता। किन्तु जब दण्डित यह कहे कि "मैं काम नहीं करूंगा" तो इससे अधिकारियों के अधिकार को आघात पहुँचता है और वे उत्तेजित हो जाते हैं। मुझे शासन के अधिकार का दम्भ तो दिखा देना ही था। दि० १५-३-६३ को मुझसे काम करने के लिये पूछा गया। मैंने कहा कि मैं अपना वक्तव्य दे रहा हूँ। और दि० १९-६-६३ को मैंने ७१ पत्नी का एक वक्तव्य अधिकारियों को दे दिया।

दि० १५-६-६३ को मेरी पत्नी मुझसे मिलने के लिये आई थी। अधिकारियों ने मेरी विचित्र स्थिति की थी। मैंने भेंट करने से इन्कार कर दिया। इन्कार करने का कारण मैंने लिख कर दिया था। अधिकारियों को यह भी हिम्मत नहीं होती थी कि बिना भेंट किये पत्नी आदि को वापस भेज दिया जाय। मैंने घर पर पत्र भेजना भी बन्द कर दिया था। क्योंकि जेल अधिकारी प्रत्येक पत्र में काट छाट करने लग गये थे। पत्र रोक लिये जाते थे किन्तु उसकी सूचना मुझे कभी कभी तो ३०-३५ दिन बाद दी जाती थी।

काम न करने सम्बन्धी मेरे वक्तव्य पर विचार करने में शासन को ५ मास लगे। और उस विचार के परिणामस्वरूप उनका निर्णय था कि जो छूट मुझे दी जाती है वह न दी जाय। यद्यपि निर्णय युक्तियुक्त था किन्तु यदि उस छूट के परिणाम से सजा के कम होने पर कोई प्रभाव पड़ता होता तो।

बन्दी के प्राणों पर टिकटिकी सी लगाये रखना और छूट देकर भी छूट को कार्यान्वित न करना यह जले में नमक छिड़कने के समान था। मैंने निश्चय किया कि जो धोखा हो चुका है वह हो चुका है, अब यदि प्राण अवशिष्ट है, शासन उन्हें सुख से खींच ले, इस प्रकार मन स्थिति में पहुँच गया था।

छोटी-छोटी बातों में भी भुझपर विचित्र वन्धन आने लगे। नियमों की मर्यादा का भूत खड़ा कर मेरे पत्रों को रोकने का क्रम भी जारी था। किसी बन्दी के साथ बोलने न देना, नितान्त एकान्त में रहना, वे अन्न देते हैं यही मानो उनका उपकार है इस प्रकार का आभास देना, भीतर ही भीतर मानो मैं बन्दूकें चलाया करता हूँ इस प्रकार पहरेदारों को सन्नद्ध रखना, नित्य की इस प्रकार की बातों से मेरा मन बहुत विचलित सा हो गया था।

धर्मान्तर स्वीकार न करने के कारण तपे हुए तवे पर रख कर मार डालने के उदाहरण इतिहास में पढ़ने को मिलते हैं। मेरे मन में विचार आया करता था कि तपे हुए तवे पर छटपटाहट होती होगी और यह भी कि वह तड़पन बहुत ही तीव्र होती होगी, किन्तु उसका अन्त तो शीघ्र ही हो जाता होगा। थोड़े समय में ही वह बलिदानी मूर्च्छित हो जाता होगा। शेष यातना वह बेहोशी में ही भोग कर मृत्यु का शास बन जाता होगा। किन्तु मेरी यह इतनी मुदीर्घ छटपटाहट अधिकारी गण किस प्रकार सहन कर लेते होंगे ?

फिर मैं विचार करता शासन भी किसी एक व्यक्ति द्वारा अदृश्य शक्ति के रूप में यज्ञित होता है। मनुष्य बदलते रहते हैं किन्तु शासन स्थिर रहता है। कभी निगाली बदलो गई हो और कभी वस्त्रन परन्तु यह हुक्का-चिलम हमारे परदादा के काल से चला आया है, ऐसा लोग कहाँ करते हैं। ऐसे ही एक ही अधिकारी सदैव विद्यमान रहता है और उसके सम्मुख वही एक ही बन्दी रहे तो निरन्तर देखते रहने से उसके मन में दया भाव आ सकता है। गांधी वध अभियोग के हम सन्देहास्पद अभियुक्तों से आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिये साम, दाम, दण्ड, भेद सभी प्रकार के उपाय करते हैं। किन्तु कार्य पूर्ण हो जाने के बाद पुलिस का व्यवहार ऐसा कभी नहीं रहा कि उसके हाथ में शासन है और डण्डा है तो उसका प्रयोग होना ही चाहिये। कोई भी चुसस्कुत व्यक्ति अपने सम्मुख अविरल होने वाली छटपटाहट को सुदीर्घकाल तक सहन नहीं कर सकता। भले ही फिर वह पुलिस का अधिकारी हो अथवा जेलर का, कोई सचिव हो अथवा मिनिस्टर। उचित न्याय नहीं करना, प्रतिगोध लेना, छूट को निष्क्रिय मिट्ट कराना इस प्रकार की नीति जो वरिष्ठ अधिकारियों ने निश्चित की, इनका कारण यही था कि बन्दी उस समय उनके सम्मुख नहीं रहता था,

बन्दी की छटपटाहट उनके सम्मुख होनेवाली नहीं थी। जेल अधिकारियों को भी आशा हुआ करती थी कि अपनी तो बदली होती रहेगी निरन्तर अपने सम्मुख यह छटपटाहट रहेगी नहीं, इस कारण वे अपना समय किसी प्रकार बिताया करते थे। व्यक्तिशः उनमें सहृदयता का लोप हो गया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता था। मैं जानता हूँ कि मेरी तडपन अनेक अधिकारियों की निद्रा भंग का कारण बन गई थी। परन्तु वे ही अधिकारी जब अधिकारी की हँसियत से आते थे तो वे यन्त्र हैं, बृहत् यन्त्र के भाग हैं, मनुष्य नहीं, इस प्रकार की भावना उनके मन में आती थी और उनका व्यवहार भी वैसा ही हो जाता करता था।

छूट को गणना में यदि न लिया जाय तो दि० १-२-६४ को मेरे कारावास के १५ वर्ष पूर्ण हुए थे। इसके ६ मास पूर्व मेरा विषय शासन के पास भिजवा दिया गया था। १५ वर्ष पूर्ण होने ही मुझे छोड़ा नहीं जाना था परन्तु तदपि कम से कम उस दिन को मेरी मुक्तता का दिन तो कहना ही चाहिये था। परन्तु इस घोषणा से शासन जो मुझे सदा के लिए बन्दी बना कर मृत्यु के लिये तडपने देने के आनन्द से वचित रह जाता। मैं समझता हूँ कि शासन के वे वरिष्ठ अधिकारी जिन्होंने मेरे विषय में इस प्रकार का निश्चय किया था भले ही वे अत्यधिक शिक्षित रहे हों किन्तु वे सुसंस्कृत नहीं थे इतना निश्चित है। यदि उन्होंने मेरे मुक्त होने की अन्तिम तिथि की घोषणा की होती तो उससे कम से कम मेरे घर वालों को ही कुछ तो सान्त्वना प्राप्त होती। शासन ने वह भी नहीं किया।

मेरे मुक्त होने के बाद अर्थात् नवम्बर १९६४ में सत्यनारायण पूजा के समारोह में भाग लेने के बहाने कई लोगों ने उद्धतापूर्वक कहा 'गोडमे की प्रवृत्ति के हिंसक जन अनिर्वन्ध छूट गये हैं।' मानो इस प्रकार के उद्धत भाषण करनेवाले व्यक्ति न्यायाधीश हो इसलिए उनके कथन के अनुसार उस बहाने से सरकार ने बिना किसी प्रकार की छानबीन किये अनेक लोगों को भारत सुरक्षा कानून के अन्तर्गत बन्दी बना लिया था। १७ वर्ष तक कारावास में सड़ते रहने के बाद फिर निरपराध होकर भी पुनः एक वर्ष तक मुझे उन्ही दीवारों के पीछे सड़ते रहना पड़ा। मैंने इस अवधि में किस प्रकार सजा भुगती है, कैसी यातनायें सही हैं, इसका ज्ञान उस समय उन कोलाहलकर्ताओं को नहीं था जिन्होंने हमारे छूटने के विरोध में कोलाहल मचाया था। यदि उनको उसका ज्ञान होता तो कदाचित् उन्हें भी मेरे साथ सहानुभूति ही होती। और तब वे घायद घात का वनगड नहीं बनाते। अब वे अपने वर्तव्य की जाच कर सकते हैं। मेरे प्रत्येक वाक्य की सत्या-सत्यता के विषय में वे शासन से पूछ सकते हैं। तब उन्हें विदित हो जायगा कि सरकार का व्यवहार साधारण मनुष्यता से भी कितना गिरा हुआ था।

अस्तु, जीवन के सम्बन्ध में मुझे निराशा आती जाती थी। मधर्प जारी था।



परन्तु मन का यह सन्तुलन कब तक टिका रहेगा, इस विषय में संदेह होता रहता था। यातनाओं से तंग आ कर एक दिन मैंने सूचना दी, कि दि० १६-४-६४ के बाद मैं स्वयं अपने पैरो से कोठरी के अन्दर नहीं घुमूंगा। यदि किसी प्रकार जुलम व जबरजस्ती ने अधिकारी मुझे कोठरी में बन्द करना चाहें तो वे करें, मैं उनको किसी प्रकार का सहयोग नहीं दूंगा। बधस्यल पर जो स्वयं चल कर नहीं जाता उसको उठा कर ले जाया जाता है।

मेरे निषेध का प्रकार टेकनिकल होने पर भी उसका कार्यवाहन तो वास्तविक रूप में होनेवाला था, पुस्तक पर नहीं। बन्द होने के समय मैं कोठरी के बाहर बैठा रहा। वर्रको में जो प्रशाल रखक वर्थात् वार्डर होते हैं वे बन्दियों में से उनकी उन्नति करके बनावे जाते हैं। उनको अलग टोपी और पट्टा दिया जाता है। मुझ पर जो दो प्रशाल रखक ये उनमें कहा गया कि वे मुझे उठा कर कोठरी के अन्दर बन्द कर दें, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था, "कोई यदि मृत शरीर पड़ा होगा तो उसे उठा कर हम इधर उधर रख देंगे। यदि एक बन्दी दूसरे बन्दी पर किसी प्रकार का अत्याचार करेगा तो उसका भी हम प्रतीकार करेंगे उसको नियन्त्रित करेंगे। परन्तु जिस बन्दी को प्रेतबन्ध कर दिया गया हो, उसके साथ प्रत्यक्ष प्रेत का सा व्यवहार करने में सहायता करने का कार्य हमने न कहा जाय। हम अधिकारी होते हुए भी बन्दी हैं। कल हम पर भी कुछ इसी प्रकार की बारी आ सकती है। इसके अतिरिक्त आपके आरक्षक यहाँ हैं, उनसे उठाने के लिये कहिये। बन्दी ने यदि किसी प्रकार का विरोध किया और सिपाहियों में अपने वचाव का सामर्थ्य नहीं हुआ तो फिर हम यहाँ पर हैं ही।"

उन प्रशाल रखकों पर आज्ञा भग की आरोप लगा कर उनका अधिकार छोन लिया गया। न केवल इतना अपितु उन पर यह आरोप भी लगाया गया कि ये न सुवरने वाले बन्दी हैं अतः इन्हें रत्नागिरि भेज दिया जाय और तदनुसार उन्हें वहाँ भेज भी दिया गया। शरारती बन्दियों के लिये रत्नागिरि बन्दीगृह प्रख्यात है।

उन प्रशाल रखकों से उस प्रकार के कार्य के लिये अधिकारियों का कहना कितना अव्यवहार्य एवं अनियमित था इस का विवरण मैंने ५० पृष्ठ के एक आवेदन में जो मैंने कारागृह विभाग के प्रमुख के नाम भेजा था, उसमें किया था। क्योंकि वह घटना मेरे सम्मुख ही घटी थी, अतः मैंने यह आवश्यक समझा था।

तब अधिकारी अन्य बन्दियों को लाये और उनके द्वारा मुझे कोठरी में बन्द करवाया गया। मेरी छूट काटने की विधि चलाई गई। अधिकृत रूप से ही जिनको मृत्यु की सजा हुई हो उसको भी छूट दी जाती है, इस प्रकार

विंती अन्य के विषय में तो मैंने देखा नहीं। मान लिया जाय कि उसको छूट दे भी दी गई और उसको उसकी पुस्तक पर अंकित भी कर दिया तो उससे क्या ? मैंने अधिकारियों से कहा, "मैं बाहर निकलना चाहता था, यह आप देख रहे थे डमलिये मेरी मुक्ति की तिथि पर उगली रख कर आप आसन की ओर से मुझे यानना दे रहे थे। अब आप उस स्थान पर उगली नहीं रख सकेंगे। मैं मृत्यु के बहुत समीप हूँ। आपके द्वारा काटी हुई छूट को देखकर क्या आप समझते हैं कि मृत्यु चौककर रुक जावेगी ? यदि आप कर्तव्यपालनशील अधिकारी हैं तो आसन को कहिये कि वह इस विडम्बना को रोके।"

दि० २०-६-६४ को नित्य की भाँति अधीक्षक मेरी कोठरी के समीप आये। गले में तौलिया लपेटे मैं द्वार की चौखट के पास खड़ा था। मेरे निकट ही मेरे नये प्रशाल रखरू खड़े थे। मैंने अधीक्षक के हाथ में एक कागज दिया और गले में लटकने वाली डोरी को चौखट में लगी कुण्डी के काटे में लटका दिया। क्योंकि उस समय सभी का ध्यान लगभग मेरी ही ओर था। अतः शीघ्रता से मुझे उठा लिया गया और डोरी निकाल ली।

वास्तव में मैंने एक डोरी का फास बना कर गले में लटका रखा था। पहरेदार सदैव मुझ पर छिपी नजर रखते थे इसलिये शौचस्थान पर मैंने उसको तैयार किया था। और उसको छिपाने के लिये गले में तौलिया लपेट लिया था।

मेरे इस क्रिया से सबको विस्मय हुआ। मुझे नीचे वैठाया गया। अधिकारी भी वहीं बैठे। मैंने बड़ी शान्ति से कहा, "यह चहुँप पहलू मेरे पास होते हुए कोई मुझे शान्ति में फासी देने देगा, ऐसा असम्भव दीखता है। मैं इस स्थिति को पहुँच गया हूँ, यह बात केवल आपके ध्यान में लाने के लिये मैंने यह नाटक किया था। आप लोगो ने यदि अधिक तग करने का निश्चय किया तो मैं इसी किमी प्रकार से अपने को मुक्त कर लूँगा। तब केवल मेरी वास्तविक लाश ही आपके हाथ में आवेगी। आपके चाहे कितने ही पहरेदार मेरे चारों ओर घूमते हों, किन्तु वे इसकी आहट भी न पा सकेंगे। यदि आप को सन्देह हो तो आप स्वयं ही देख लीजियेगा। मैं सब प्रकार से सिद्ध हूँ।"

मुझ पर लगाये गये बन्धन कुछ ढीले किये गये। कुछ दिन बाद जब मेरा मन शान्त और कार्यक्षम हुआ तो मैंने एक दिन अर्थात् दि० २४-७-६४ को अधीक्षक को एक पत्र लिखा। उसमें लिखा था "अपने मनकी एकात्मता पर अब मेरा विश्वास नहीं। किसी भी तरह से अब मैं अपना जीवन समाप्त करूँगा, ऐसा प्रतीत होता है। उन समय शायद कुछ लिखने के लिये भी मैं रुक नहीं सकूँगा।"

"मैं मृत्यु को सामने देख रहा हूँ। वह मुझे भय नहीं दिखाती। इस ऊँची सतह पर खड़े होते हुए आपके प्रति या किसी अन्य के प्रति मेरे मन में किसी भी

प्रकार की कोई द्वेष भावना नहीं है।”

“यदि मेरी अनायास नैसर्गिक मृत्यु हो गई तो आपका किसी प्रकार का अनिष्ट न हो, उसके लिये आप इस पत्र का उपयोग कर सकते हैं। इसके लिये किसी को भी दोषी न ठहराया जाय। मेरी इस स्थिति के लिये ठीक कौन उत्तरदायी है इसका निर्णय करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। अतः सभी व्यक्ति सशय के लाभ के अधिकारी हैं।”

“मेरी इन भावनाओं को, कि मैं अपना जीवन समाप्त करना चाहता हूँ आप सम्मान की दृष्टि से देखेंगे ऐसी मेरी कोई धारणा नहीं है। हाँ यदि वैसा न हुआ, जैसा कि मैं लिख रहा हूँ तो आप मुझे असत्यवादी वेशक समझेंगे। तबतक आप मुझे स्पष्टवक्ता समझिये और यदि मृत्यु आ गई तो फिर समझियेगा कि मेरा कथन प्रामाणिक था। मृत्यु के बाद अपने संरक्षण के लिये आप इस पत्र का अवश्य प्रयोग कीजिये।”

वास्तविक पत्र पर्याप्त लम्बा था परन्तु प्रस्तुत विषय के लिये इतना साराश पर्याप्त होगा। पत्र मिलने पर अधिकारी मुझसे मिले। उन्होंने मुझे अपने निश्चय से परावृत्त करने का यत्न किया। मैंने कहा, ‘अब परावृत्त करने में कोई स्वारस्य नहीं। क्योंकि पुरत इसी समय मैं अपने हाथ में डोरी लेकर आया नहीं हूँ। और यदि अधिकारी के नाते से आप मुझे परावृत्त करना चाहें तो मैं यही समझूंगा कि मुझे अधिक जीवित रखने पर मुझे यातना देने से आप को आनन्द आता है, इसलिए इस प्रकार मनाने की चेष्टा की जा रही है। यदि आपके हृदय में थोड़ी-सी भी सम्बेदना विद्यमान होगी तो मेरी मृत्यु से आपको यह जानकर समाधान होगा कि इससे मेरी यातना तो समाप्त हो गई है। जिनके हाथ में मेरी मुक्ति थी उनके हाथ में मेरी सजा का कार्यवहन क्यों नहीं सौंप दिया गया? फसाने का यदि कोई पाप होगा तो वह अब आपको लगनेवाला है। अन्यथा उस प्रकार वह उनके हिस्से गया होता।

“क्या होनेवाला है, यह तो मैं नहीं जानता। आपकी कल्पना के अनुसार यदि कुछ अनिष्ट हुआ ही तो मेरा पत्र आपके संरक्षण के लिये है ही। मैं अपना अनिष्ट स्वयं कत और इससे दूसरे को कुछ काट-होवे यह विचारकर जीवित होते हुए प्रत्येक क्षण मरणतुल्य वेदना सहूँ इसकी मर्यादा कब समाप्त होगी, यह मैं कैसे कहूँ?”

अधिकारी समझा-बुझाकर चले गये। भेंट समाप्त हुई। कभी-कभी मुझे घोर अन्याय की प्रतीति होती थी। वह अन्याय किस प्रकार का है, उसको लिपिबद्ध करने का निवार भी आता था किन्तु उसको कागज पर उतारने की शक्ति नहीं रह गई थी। विवशता के कारण ही मैं वह अपमानित जीवन सहन किया करता था।

\*\*\*

## सोलह

### प्रकाश की प्रथम किरण

बहुत ही कठिन एवं असुविधाजनक परिस्थिति में रहते हुए और मनस्थिति के अत्यन्त व्यग्र होते हुए भी सर्वोच्च न्यायालय में मेरे प्रयत्न चालू थे। मुझे लगता है कि मनुष्य में जीवन की इच्छा बहुत ही प्रबल होती है। किसी दुर्घटना में मस्तिष्क के चकनाचूर हो जाने पर भी शरीर के अन्य अवयव छटपटाते रहते हैं, मानो निकलनेवाले प्राणों को रोकने के लिये वे प्रयत्न कर रहे हों ऐसा प्रतीत होता है। मैं समझता हूँ कि अभी तक मेरा मस्तिष्क व्यवस्थित था।

औरंगाबाद बन्दीगृह में दि० २६-५-६४ को मैंने एक प्रारूप टाइट करवाने के लिए दिया। उसके दूसरे ही दिन पण्डित नेहरू का देहान्त हो गया, इसके कारण दो दिन तक हाट-बाजार बन्द रहे। स्वाभाविक ही कागज बापस मिलने में विलम्ब हो गया।

मेरी पत्नी सिन्धु ने सर्वोच्च न्यायालय के एक वकील से विचार विनिर्णय किया था। उन्होंने आवेदन करने से पूर्व उसका प्राप्त दिखाने के लिये कहा था सम्भवतया वे ही उस आवेदन को सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिये उद्यत भी थे।

सर्वोच्च न्यायालय जिस विषय पर एक बार निर्णय दे चुका है यदि उम्मीद प्रश्न को पुनः उपस्थित करना हो तो उसको सर्वोच्च न्यायालय के किसी अधिकारी द्वारा नियत अवधि अर्थात् ३० दिन के भीतर ही प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि अवधि बीत जाने पर प्रस्तुत करना हो तो उसके लिये विशिष्ट अनुमति प्राप्त करनी आवश्यक है। मेरे पूर्व निर्णय की कालावधि बीत गई थी, और मुझे उद्योग

पुन प्रस्तुत करने की इच्छा हो रही थी। इसके लिये विशिष्ट अनुमति लेने की आवश्यकता थी। उसके लिये किसी वकील की सहायता चाहिये थी। अपने प्राप्प की टाइम्ड प्रति मैंने सिन्वु के माध्यम से वकील के पास भिजवा दी। उसकी एक प्रति मैंने अपने दिल्ली के वकील मित्र लाला गणपतराय को भी भेज दी।

धर का पत्र व्यवहार मैंने पुन. चालू कर दिया था। साधारणतया एन वर्ग की अवधि के बाद मेट भी करने लग गया था। कुछ पत्र-व्यवहार के बाद वकील साहब ने मुझे बताया कि प्राप्प में विचार करने योग्य ऐसी कोई बात नहीं है, उस प्रकरण को पुन सर्वोच्च न्यायालय में नहीं ले जाया जा सकता।

प्रत्येक की अपनी अपनी धारणा होती है। मैं यह नहीं मानता कि वकील बात को समझ नहीं पाये थे। वकील और न्यायाधीश में मतभेद हो सकता है। मतभेद तो दो न्यायाधीशों में भी होते हैं। इस स्थिति में एक न्यायाधीश बुद्धिमान और दूसरा मदबुद्धि है ऐसा नहीं कहा जा सकता। किन्तु मुझे इस बात का खेद था कि वकील के पीछे लगे रहने से आवेदन प्रस्तुत करने में विलम्ब हुआ था। यदि वे उस आवेदन को प्रस्तुत नहीं कर सकते थे तो इनकी सूचना मुझे तुरन्त देनी चाहिये थी।

अपने पक्ष एवं विधान पर मुझे विश्वास था। लाला गणपतराय ने उसमें अनेक संशोधन सुझाये थे। उनमें से जो मुझे उचित लगे उनको मैंने मान लिया और प्राप्प को पुन ठीक किया। और प्राप्प को इस प्रकार का बनाया कि जिसने सर्वोच्च न्यायालय यह न समझे कि मैं उसी प्रश्न को पुन उठा रहा हूँ। टाइप करा कर दि० १४-८-६४ को प्रतिज्ञापत्र के साथ उसको दे दिया।

आवेदन के एक अंश में मैंने यह भी दिखाया था कि सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय कितना दोषपूर्ण है। अपना तर्क मैंने सप्रमाण सिद्ध किया था। केवल उसी प्रश्न पर पुन विचार करने न करने के निर्णय को मैंने सर्वोच्च न्यायालय पर छोड़ दिया था।

आवेदन के दूसरे अंश में मैंने अनेक मूलभूत प्रश्न उपस्थित किये थे। भारत सुरक्षा कानून के अन्तर्गत छोड़े गये नागरिक के अधिकार के लिये न्यायालय में जाने के अधिकार को संकटावस्था के कारण स्थगित किया गया था। वेने ही सर्वोच्च न्यायालय का स्वयं के ही एक निर्णय को प्रमाण मान कर मेरे लिये न्यायालय के द्वार बन्द करने का अधिकार क्या सर्वोच्च न्यायालय को है? क्या प्राज्ञ्याय अर्थात् रैस जुडिकेटा (Res-Judicata) आवेदन के मार्ग में आड़े आता है?

राज्य का रावास के बन्दी की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी जाती है, ऐसा न्यायालय ने भी कहा था। दण्ड संहिता की धारा ४०१ में दया का अधिकार

उल्लिखित है। आजन्म कारावास के बन्दी की मुक्ति का आदेश शासने ने कभी नहीं निकाला। अर्थात् उसे स्वतन्त्रता नहीं मिली तो उसका जीवन ही खीन लिया। यदि सर्वोच्च न्यायालय ने भी न्यायालय का द्वार बन्द कर दिया तो फिर ऐसे बन्दी को कौन संरक्षण दे सकेगा ?

सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार की भावना व्यक्त की थी कि शासन किसी प्रकार का अनुचित वर्तन करेगा, ऐसा नहीं प्रतीत होता। अनुचित वर्तन की न्यायालय के मन में कुछ परिभाषा तो होनी चाहिये। इसी प्रकार मेरा यह वर्तमान बन्दीवास उचित है अथवा अनुचित यह देखने का उत्तरदायित्व भी सर्वोच्च न्यायालय पर आता है।

अन्य भी अनेक तर्क दे कर मैंने कहा था कि यदि मेरी प्रार्थना मान्य कर लेना न्यायालय की सीमा के अन्तर्गत आता तो मैं फासी की याचना करता। क्योंकि इन दिनों मेरे साथ जो व्यवहार किया जा रहा है फासी ही उसने छुटकारा दिला सकती है। किन्तु न्यायालय तो सविधान के प्रति उत्तरदायी है, वह मुझे फासी दिला कर किस प्रकार इस विपत्ति से छुड़ा सकता है ? इसी प्रकार मैं भी सविधान की सीमा के अन्तर्गत न्यायालय से मुक्ति की याचना कर सकता हूँ, फासी की नहीं।

मैं उक्त आवेदन तैयार कर रहा था कि उन्हीं दिनों अर्थात् अगस्त १९६४ के प्रथम सप्ताह में महाराष्ट्र विधान सभा में मेरी और करकरे की मुक्ति के लिये अनेक प्रश्नोत्तर हुए थे। प्रश्नकर्त्ताओं को उत्तर दिया गया कि उनकी मुक्ति राज्य शासन नहीं अपितु केन्द्र शासन ही अपनी दया के अधिकार से कर सकता है। श्री नानावती को आजन्म कारावास का बन्दी होते हुए भी चार वर्ष बाद ही किस प्रकार मुक्त कर दिया गया इसके उत्तर में सरकार ने कह दिया कि "लोक-हित की दृष्टि से वह तथ्य प्रकाशित नहीं किया जा सकता।"

प्रश्नकर्त्ताओं को सम्पूर्ण जानकारी नहीं हुआ करती और मैं यह जानकारी उनको दूँ यह भी सम्भव नहीं था। शासन कई अर्द्धसत्य प्रस्तुत कर मन्त्रियों को किस प्रकार तुरन्त मौन कर देता है यह जानकर मुझे दुःख होता था।

जुलाई १९५२ में ही बम्बई शासन ने हमारी मुक्ति का दिन १०-२-६० बताया था। फिर १४ वर्ष के प्रतिवृत्त के समय उसी शासन ने पहले दिया हुआ दिन भुलाकर १५ वर्ष प्रत्यक्ष कारावास भुगतने के बाद अपना अभिमान केन्द्र शासन को सूचित करने की दुष्टता की थी। वह गोपनीय अभिलेख ही न्यायालय ने एक बार मेरे हाथ में दिलवाया था तभी इस शासन के ढोंग का परिचय मुझे प्राप्त हुआ था। नियम का उल्लंघन कर दिन रात बन्दी से काम लेना और उनसे रक्तदान लेना तथा प्रतिदान में छूट का झूठा आश्वासन देना मात्र ही इन शासन

का अधिकार था। मनुष्यता की प्रगति हो रही थी न ?”

मैं इस प्रकार विचार किया करता था कि मुक्ति का दिन शासन नहीं बता सकता यह बात सत्य है। मेरी मृत्यु कब होगी यह उनको पहले कैसे ज्ञात हो जावेगा ? मृत्यु आने पर वे अपने दया के अधिकार से पत्नी को तार भेजेंगे ? ‘तुम्हारे पति की सजा पूर्ण हुई, उसको लेने के लिये औरंगाबाद आओ।’ और वह आनन्द से उभरती-सी बन्दीगृह के द्वार पर जब पहुँचेंगी उसे उसका ‘मुक्त’ पति सौंप दिया जावेगा। दया के विशेष अधिकार का उपयोग कर शासकीय अधिकारी शासन की ओर से आशीर्वाद देंगे। “नादा सौख्य भरे।” (आनंद से सत्कार करो।)

मेरा आवेदन दि० १८-८-६४ को सर्वोच्च न्यायालय को भिजवाया गया। पजीवार ने उसको स्वीकार कर लिया। दि० १५-९-६४ को उसे सविधानिक न्यायासन के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। सविधानिक न्यायासन अर्थात् कौन्सिल ऑफ़ पांच न्यायाधीशों का होता है। वह विचार करता है कि प्राथमिक श्रवण के लिये आवेदन में कुछ है क्या ? और यदि है तो मुझे बलवाने के लिये आवेदन देने पर विचार किया जाना था। आवेदन स्वीकार कर लिया गया। दि० २८-९-६४ पूर्व श्रवण का दिन निर्धारित किया गया और इसकी सूचना मुझे दि० १८-९-६४ को औरंगाबाद बन्दीगृह में प्राप्त हुई। दि० २३-९-६४ को मैंने औरंगाबाद से दिल्ली के लिये प्रस्थान किया। तीन दिन दिल्ली बन्दीगृह में रहकर दि० २८-९-६४ को न्यायालय में उपस्थित हुआ। न्यायाधीश ने आवेदन को पढ़ लिया था। बीस मिनट तक चर्चा हुई। परन्तु दण्ड संहिता की धारा ४०१ का अस्तित्व अर्थात् दया का अधिकार मन से नहीं हट रहा था। मैंने कहा कि मुझे दया नहीं चाहिये, मेरी स्वतन्त्रता छीनी गई है। धारा ४०१ का उलटा उपयोग कर यदि मैं मृत्यु का प्रास बन गया तो क्या फिर मैं न्यायालय में आ सकूंगा ? दया के अधिकार का अर्थ क्रूरता का अधिकार नहीं होता और स्वातन्त्र्यहरण का अर्थ भी जन्महरण नहीं होता। कानून में जीवन हरण का अन्य विधान है। स्वातन्त्र्य हरण की सजा का उपयोग जीवन हरण के लिये करना नियम विरुद्ध होने के साथ ही क्रूर कृत्य भी कहलायेगा।

कम से कम इस बार न्यायाधीश से मेरे द्वारा प्रस्तुत तर्कों के विषय में सहा-नुभूति परक उद्गार प्रकट किये थे। परन्तु धारा ४०१ पुनः सामने आ गई। चूंकि मेरी सजा आजन्म कारावास है और वह अधिकार प्रभारी शासन सत्स्था का है।

मैंने पुनः तर्क प्रस्तुत किया कि मेरा स्वातन्त्र्य छिन गया है। उसे प्राप्त करने के लिये मैं जीवित होते हुए ही प्रयत्न कर सकता हूँ, मरने के बाद नहीं। शासन

द्वारा धारा ४०१ का उपयोग करने पर मैं आपके पास क्यों आऊंगा ? शासन उस अधिकार का प्रयोग नहीं करता और तब तक आप भी न्यायालय का द्वार मेरे लिये बन्द कर दें, क्या यह आपके अधिकार की बात है ?

न्यायाधीशों ने परस्पर विचार विमर्श किया। कभी अनुकूल और प्रतिकूल होते-होते ३-४ मिनट में ही उन्होंने सर्वसम्मत निर्णय लिया—‘पूर्व श्रवण के लिये शासन को उपस्थित होने का आदेश दिया जाय।’ इस प्रकार इस आवेदन ने यह सीढ़ी भी पार कर ली। दि० १९-१०-६४ की तिथि इसके लिये निर्धारित कर दी। तब तक मुझे दिल्ली बन्दीगृह में ही रखने का आदेश दे दिया गया।

दि० २८-९-६४ को जब मेरा आवेदन न्यायालय के सम्मुख आया और मैंने उसके सम्मुख प्रस्तुत किया उससे दो-तीन दिन पहले ससद में श्रीमती शकुन्तला पराजपे ने हमारी मुक्ति के सवध में प्रश्न किया था। छोड़ना अथवा न छोड़ना यह हमारी इच्छा पर निर्भर है, इस प्रकार का उनको उत्तर दिया गया था।

मैं सोचता हूँ, ‘हमारा अधिकार, हमारी इच्छा’ ऐसा शासन का बार बार कहना क्या न्यायाधीशों पर किसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न नहीं करता होगा। अन्यथा मुझे उनको समझाने के लिये बीस मिनट क्यों झगड़ना पड़ता। न्यायालय के अनुकूल निर्णय से मुझ पर भी प्रभाव पड़ा था। यह मेरा २२वाँ आवेदन था।

न्यायालय से मुझे दिल्ली कारागार में जो १९५९-६० में लगभग ९० लाख रुपये व्यय करके तिहाड़ में बनाया गया है, लाया गया है। इस बन्दीगृह को नितान्त आधुनिक माना जाता है। बन्दियों की सुख सुविधा का भी इसमें ध्यान रखा गया है। यहाँ तक कहा जाता है कि यदि बन्दियों को इस प्रकार की सुविधा प्रदान की गई तो इससे अपराध प्रवृत्ति का निरोध होने की अपेक्षा प्रगति होने की सम्भावना अधिक हो सकती है। क्योंकि जो सुविधा मुक्त जीवन में व्यक्ति उपलब्ध नहीं कर सकता वह उसको कारागार में मिलने लगी है। यहाँ रगमच है, वाचनालय है, रेडियो सुनने और टेलिविजन देखने की सुविधा भी है। इस सन्दर्भ में अपराधवृत्ति की प्रगति के विषय पर यदि कभी अवसर आया तो अपने विचार मैं पृथक् से व्यक्त करने का यत्न करूँगा।

दिल्ली कारागार में मुझे ‘ब’ श्रेणी में रखा जाता था। मुझे दिल्ली शासन ने ही ‘ब’ श्रेणी प्रदान की थी। उसको मेरे अधिपत्र पर १९४९ में अंकित किया था। अधिपत्र पर काटछाँट करना अपराध माना जाता है। किसी प्रकार का सशोधन भी मूल अधिकारी अथवा उसका वरिष्ठ अधिकारी ही कर सकता है।

बम्बई प्रशासन ने १९५२ में हमारी श्रेणी घटा कर ‘सी’ श्रेणी कर दी थी। महाराष्ट्र शासन दिल्ली शासन से वरिष्ठ नहीं था। इसलिए उन्होंने अधिपत्र पर सशोधन नहीं किया। हमारा अधिकार दवा कर हमारे साथ महाराष्ट्र सरकार ने



अत्याचार किया था। अधिपत्र की वास्तविक प्रति स्थलान्तर के समय दिल्ली भेजी गई थी उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया था। उसके अनुसार हमारी 'ब' श्रेणी अबाधित रही। दो व्यक्तियों को दवाने के लिये अपने ही शासन ने कितनी धोखेवाजी को यह जान कर कैसा भी कोई व्यक्ति क्यों न हो उसको भी आघात लगेगा ही।

मेरे प्रतिवेदन में चार प्रतिवादी थे। महाराष्ट्र शासन, केन्द्र शासन, औरंगाबाद कारागृह प्रमुख और दिल्ली के चीफ कमिश्नर। दि० २८-९-६४ का सर्वोच्च न्यायालय का आदेश २९-९-६४ को टाइप होकर मेरे प्रतिवेदन की प्रतियों सहित सम्बन्धित कार्यालयों को ३-४ दिन में पहुँच गया। मैं कल्पना कर सकता हूँ कि जिस प्रकार रेचक लेने से पेट में विचित्र प्रकार की गचपच होती है उसी प्रकार उन सम्बन्धित कार्यालयों में भी गचपच हुई होगी। सर्वोच्च न्यायालय कहाँ का न्याय देता है, इस दर्प से शासन का व्यवहार हुआ करता था। चार पाच दिन पूर्व ही शासन द्वारा ससद में कथन 'छोड़ना या न छोड़ना यह हमारी इच्छा का प्रबल है' न्यायालय को भी विचार करने का विषय बन गया। धारा ४०१ को स्थगित कर वन्दी को मृत्यु के समीप पहुँचाने का अपना अधिकार है, इसका विश्वास शासन को हो गया था।

सर्वोच्च न्यायालय का आदेश पाकर शासन जो हिल गया था उसका कारण कुछ अन्य ही था। शासन ने न्यायालय को अब तक अघेरे में ही रखा था। जो सत्य उनको अवगत था उनमें उन्होंने न्यायालय को सूचित नहीं किया था। प्रतिशोध लिया जा रहा है इस कल्पना से फिर यदि भारत के सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय किसी अधूरी जानकारी के कारण गलत भी हो जाता है तो उसको क्या चिन्ता। यह थी उन सम्बन्धित व्यक्तियों की अर्थात् प्रतिशोध लेनेवाले व्यक्तियों की राष्ट्रीय एकात्मता की भावना।

सभ्य सद्स्यों को गोलमटोल उत्तर दिये जा सकते हैं क्योंकि समय पर "लोकहित" नामक कवच शासन की सुरक्षा में समर्थ है। किन्तु न्यायालय को फुसलाया नहीं जा सकता।

शामन की अनेक बातें मैंने न्यायालय के विचार के लिये प्रस्तुत की थी। उन बातों की सत्यता यदि न्यायालय को जची और न्यायालय ने शासन को दोषी ठहराया तो अमत्यता का आरोप कौन स्वीकार करेगा? न्यायालय शासन को नहीं अपितु उसके किसी भी अधिकारी को ही दोषी ठहरायेगा।

भावी घटनाओं के आधार पर यह निश्चय जाना जा सकता है कि सरकार ने अपनी मुट्ठी बन्द ही रखने का निर्णय लिया। जिससे कि मेरे आवेदन में

उपस्थित आरोपो का उत्तर न देना पड़े और न्यायालय द्वारा असत्यता का आरोप न लगाया जा सके ।

प्रतिवादियों को जो आदेश भेजा गया था उसकी एक प्रति मुझे दिल्ली कारागार में दि० ४-१०-६४ को प्राप्त हुई । उन दिनों आवेदन के सम्बन्ध में ही और कुछ लिखने में व्यस्त रहा करता था । दि० १०-१०-६४ को शनिवार था । भारत के तत्कालीन गृहमन्त्री गुलजारीलाल नन्दा के कारागृह के निरीक्षण के लिये आने की चर्चा थी । यत्र-तत्र सफाई आरम्भ हुई । गृहमन्त्री से दो बातें करने के लिये सभी वन्दियों को नाट्यगृह में एकत्रित किये जाने की योजना थी ।

कई कनिष्ठ अधिकारियों ने मेरे विषय में अनेक धारणायें बना ली थी । गृहमन्त्री की सभा में मुझे उपस्थित किया जाय अथवा नहीं । भारत के गृहमन्त्री के आने पर कुछ ऐसी वैसी बात हो गई तो ? इस प्रकार उन अधिकारियों में विचार विमर्श हुआ करता था किन्तु किसी प्रकार का निर्णय नहीं कर पाते थे । मेरे वानों में यह बात आई । मुझे यह जान कर हसी आती थी । तब मुझे ३-४ वर्ष पूर्व का एक प्रसंग स्मरण हो आया ।

एक आवेदन के लिये मुझे दिल्ली भेजा जा रहा था । एक नायक और तीन सिपाही मेरे साथ थे । सिपाहियों में से एक दो पहले भी मेरे साथ एक बार आये थे । उनसे परिचय था । और उस परिचय के आधार पर जितना विश्वास निर्माण हो सकता था वह भी हुआ था ।

बन्दी को मार्ग में ले जाते हुए हथकड़ी डालना अथवा न डालना यह मार्ग रक्षक दल के प्रमुख पर निर्भर करता है । वेड़ी डालने से मैंने कभी इन्कार भी नहीं किया । किन्तु प्रायः हुआ यही कि एक दो बार छोड़ कर कभी किसी ने वेड़ी नहीं पहिनाई । यात्रा में हम वन्दियों को घर के वस्त्र पहना दिया करते थे ।

कभी इस प्रकार हुआ कि किसी स्थान पर मार्ग रक्षक दल बदलनेवाला था । किन्तु वह बदला नहीं गया । यही दल दिल्ली तक आया, नायक नया था । दिल्ली स्टेशन पर यदि वहाँ का मार्गरक्षक दल अथवा वाहन नहीं आया तो क्या करना होगा, कहाँ रुकना होगा । बन्दीगृह तो वहाँ से बारह मील दूर है, इस प्रकार की चिन्ता उसको हुई । मैंने उससे कहा कि मैं उसका मार्ग दर्शन कर दूँगा उसको कोई अडचन नहीं होगी । अनेक बार आने जाने से मुझे वहाँ की पद्धति का ज्ञान हो गया था ।

हम नई दिल्ली स्टेशन पर उतरे । मार्गरक्षक दल और वाहन नहीं आया था । हमने सामान उतारा । दो आरक्षक वहाँ ठहरे । दोनों को मैं दाहर आरक्षक कार्यालय में ले गया । मैंने उसको टेलीफोन दिखाया, किन्तु नायक टेलीफोन के विषय में भी पूर्ण अनभिज्ञ था । तब मैं स्वयं आगे बढ़ा । वहाँ बैठे भीमकाय

अद्वितीय ने आज्ञा लेकर मीने टेलीफोन नम्बर देकर मीने नायक की ओर से फोन गिला कर दत्ताया, "मैं अमुक नायक, अमुक क्रमांक नई दिल्ली स्टेशन से दोट रहा हूँ, एक बन्दी को लाया हूँ और मेरे साथ तीन अन्य आरक्षक हैं। बन्दी ने तिहाड़ कारागार में ले जाना है, कृपया कोई वाहन भेज दीजिये।" वहाँ ने उत्तर मिला, "सम्प्रति कोई गाड़ी नहीं है। कई बन्दियों को लेकर गाड़ी न्यायालय गई है, घाम को वापस आते समय वही गाड़ी आप लोगों को भी ले आवेगी।"

एक उत्तर के आचार पर तो ६-७ घंटे स्टेशन पर रुकना पड़ता। मुझे जीधर कारागार पहुँच कर कुछ अभ्यास करना था। तब मैंने पुन कहा, "बन्दी नयूराम गोडसे का भाई गोपाल गोडसे है। उसको सर्वोच्च न्यायालय में जाना है, हमन्दि यहाँ लावा गया है। क्या इस प्रकार का भयंकर बन्दी ६-७ घंटे यहाँ गुला घूमता रहेगा? कोई विशेष व्यवस्था कर जीधर गाड़ी भिजवा दीजिये।"

टेलीफोन पर नयूराम का भाई गोपाल गोडसे का नाम सुनकर सामने बैठे भीमराम अधिकारी नायक ने बोले "चार व्यक्तियों का तुम्हारा आरक्षक दल और उनमें में भी दो तुम यहाँ पर। केवल दो व्यक्तियों के आधीन ऐसे भयानक बन्दी ले छोड़ कर आज्ञा ठीक नहीं। तुम जाओ और ये गाड़ी की व्यवस्था करोगे। तुम उसका ध्यान रखो।"

ही नहीं था। वे शीघ्रता से कही जा रहे थे। पाँच मिनट में वे वापस आये और विलकुल हमारे समीप से निकले। उनकी जिज्ञासा जागृत हुई। थोड़ी दूर खड़े रहकर वे उस भयंकर वन्दी को अपनी विकट दृष्टि से खोज रहे थे। परन्तु वह तो उनको कहीं दिखाई ही नहीं दिया। वे सोचते हो शायद किसी आरक्षक ने उसे अपने थैले में तो बन्द नहीं कर लिया, परन्तु इतना भयंकर व्यक्ति इतना छोटा तो हो नहीं सकता। उन्होंने यो ही घड़ी की ओर देखा। तब से पौन घण्टा हो चुका था। उन्होंने शायद यह भी सोचा होगा कि यहाँ का मार्गरक्षक दल आकर उस वन्दी को ले तो नहीं गया ?

इतने में ही मोटर आकर रुकी। हमने अपना सामान चढाया। वह अधिकारी वही रुककर देखते रहे। फिर वे कुछ आगे सरके और प्रबल भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। उसी दृष्टि से मैंने उनसे पूछा 'क्या ?'

"गोपाल गोडसे कहाँ हैं ?" उन्होंने मुझसे प्रश्न किया।

"आपके सामने खड़ा है महाराज ! आज्ञा कीजिये।" मैंने बड़ी विनम्रता से उनसे कहा।

"आप ?" कहने के लिए निकला हुआ उनके मुख से 'आ' लगभग दस सेकण्ड तक खुला ही रह गया था। ऐसा भयंकर वदी इतनी देर तक बिना किसी रक्षक के इस प्रकार अनिर्वन्ध घूमता रहा। मानो उससे उन्हें आघात-सा लगा।

वह बोले, "मैंने तो सोचा था कि आप आवश्यक व्यवस्था एवं सुरक्षा की देखभाल के लिए जेल से भेजे गये कोई अधिकारी होंगे।"

"मार्ग में मैं स्वयं ही अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करता हूँ।" मैंने कहा। मोटर चलने लगी और हम स्टेशन से वन्दीगृह की ओर चले।

आज गृहमन्त्री आवेंगे, उन समय मृक्षे सभागृह में जाने देना चाहिये अथवा नहीं, इसकी चर्चा मेरे कानों में पड़ी। मैंने उन अधिकारियों को द्राण देने हुए कहा, "यही सभी वन्दी जानेवाले हैं तो आप मेरे साथ पक्षपात नहीं कर सकते। यह तो हुई नियम की बात। किन्तु वहाँ जाये बिना मेरा कुछ अटक जावेगा ऐसी बात नहीं है। यदि चाहें तो यही आ जावेंगे।"

मेरे मुख से यो ही निकले हुए वाक्य सत्य सिद्ध हो गये। इनमें मेरी दृष्टि की बात नहीं। कुछ भी हो श्री नन्दा भारत के गृह मन्त्री थे। मैं एक दण्डित था। मैं छोटा था और हूँ भी। श्री नन्दा मुझसे मिले। किन्तु उपयुक्त नहीं होगा कि हम कहें कि वे कारागृह का निरीक्षण करने आये थे और उन्नी ब्रम में मुझसे भी मिले।

वैयक्तिक रूप से श्री नन्दा के प्रति मेरे मन में सहानुभूति है। गांधी जी के मरण ने जिनको वास्तविक दुःख हुआ था वे उनमें से थे। गांधी वचन अपने में एक गूँथोर घटना हो सकती है किन्तु गांधी भक्तों की भावनाओं को ठेस पहुँचाने का उद्देश्य उनके घटकों का नहीं था। इसलिये उससे जिनको वास्तविक दुःख हुआ उनके प्रति हमारी सहानुभूति होना स्वाभाविक है।

एक दो दिनांक देर लेने के बाद श्री नन्दा ने मेरे विषय में पूछा। मोटर द्वारा ही वे कारागार का निरीक्षण कर रहे थे। अतः मोटर हमारे वरक की ओर घुमार्त गई। उस समय वहाँ हम १४-१५ बन्दी थे। द्वार पर आते ही श्री नन्दा ने फिर मेरे बारे में पूछा। अधिकारियों ने मुझसे सामने आने के लिये कहा।

पञ्जर अभिवादन में सेंट का प्रारम्भ हुआ। उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया। उस समय भी मेरे मन में आया जो कनिष्ठ अधिकारी कुछ क्षण पूर्व गिराई हुए थे उनको यह दृश्य देख कर डलबली मची होगी। मैंने श्री नन्दा को अपने दिव्यो आने का कारण बताया। उन्होंने कहा, "मुझे मालूम है।" मैंने कहा, आज़म करवाने का विषय मुझ तक ही सीमित नहीं यह एक प्रकार से सामाजिक और कानूनी अर्थात् सोशियो-लीगल पैसा सम्मिश्रण है। केन्द्रीय मंत्री के माने आन इस विषय में कुछ रचि प्रकट करें, यही मेरी आकांक्षा है। इनके मन्वन्ध में यदि कुछ विचार विनिमय करना हो तो मैं उद्यत हूँ।" मैंने तुलसी भी एक फनगी सेंट की।

हमारे वास्तविक के समय भी नास्तवीय फोटोग्राफों ने स्पष्ट प्रकाश में लाने चित्र लिये। श्री नन्दा ने अधिकारियों को आदेश दिया कि "सना समाप्त होने पर इनको गार्डन में ले आना, वहाँ स्वतन्त्रता से वार्डालाय हो सकेगा।" यह सब कर वे आगे बढ़ गये।

शाम को मैं कार्यालय में गया। जैसा कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति मिलने के लिये आता है इस प्रकार शिष्टता से श्री नन्दा ने मुझसे बैठने के लिए कहा। वे बोले, “मैंने आपका पत्र पढ़ा है।”

कौन सा पत्र, यह मेरे ध्यान में नहीं आ रहा था। क्योंकि उनको मैंने कोई पत्र लिखा ही नहीं था। शायद न्यायालय द्वारा भेजा गया आदेश होगा यह अनुमान लगाकर मैं उनसे वार्तालाप करता रहा। फिर मैंने अपना मुद्रित प्रबन्ध उनको दिया और बोला, “यह एक लौट कर आया हुआ आवेदन है। परन्तु आजन्म कारावास के विषय पर सर्वांगीण विचार हो और किसी भी बन्दी के साथ अन्याय न हो सके इस दृष्टि से आप इसे देखियेगा।” उस पुस्तक में मेरी एक हिन्दी कविता “उत्तमाग सिद्धर विभूषित” शीर्षक से उस पुस्तक के परिशिष्ट में थी मैंने वह भी उनको दी।

उनके हाव भाव से ऐसा प्रतीत होता था कि उस पुस्तक को वे कदाचित न देख पावें। अतः मैंने कहा, “अपने लिये मैं न्यायालय में प्रयत्न कर रहा हूँ। यदि न्यायालय ने मुझसे कहा कि इस सजा की वैध परिणति मृत्यु ही है तो मैं उसे वरण कर लूंगा, पुनः न्यायालय में मैं नहीं जाऊंगा। परन्तु आप सोचिये मदनलाल और करकरे को क्यों सजा कर रखा हुआ है? उन्हें तो आप मुक्त कीजिये।”

“मुक्त होने के बाद आप क्या करेंगे?” उनका प्रश्न था।

“अभी तक तो इस प्रश्न पर विचार नहीं किया था। परन्तु यदि मैं मुक्त हो ही गया तो राजनीति लड़ूंगा। फिर भी प्रथम तो मुझे भरण पोषण के लिये उद्योग ही देखना पड़ेगा। मेरी पत्नी ने एक उद्योग खड़ा किया है।

“कई पूर्वग्रह होते हैं। मैंने वे नहीं रखे। जेल के अधिकारी आपके बर्ताव के बारे में कहते हैं। यहाँ के अधिकारियों ने तो आपके बर्ताव के बारे में ठीक ठीक ही कहा है।”

“छूट तो बर्ताव का परिमाण माना जाना चाहिये। वह किसी को मजा में ले कम नहीं करनी है ऐसा कहने पर बन्दी कैसा बर्ताव करेगा है यह बात या कोई महत्व ही नहीं रह जाता। क्या छूट का उपयोग आजन्म कारावास के बन्दी के सजा के कम करने में नहीं करना चाहिये? और यदि ऐसा करना है तो उसकी पहली छूट देते समय, इतना ही क्यों उसके बन्दीगृह में पर रखते हो क्या उसकी सजा की अन्तिम अवधि तय नहीं करनी चाहिये?”

उनका कहना था, “ऐसी अवधि तो निश्चित होती ही है और छूट का उपयोग भी होता है।”

“किन्तु मेरे साथ प्रत्यक्ष क्या हुआ यह भी तो आप देखिये।” मैंने उन्हें एक उदाहरण देते हुए बताया, अभी आपने ४ माम की छूट दी। आपने नाटक नहीं किया। वह बन्दी उतने दिन पूर्व मुक्त होगा यह आपका प्रमाणिक हेतु मैं अब भी मानता हूँ। उनकी छूट की गणना होकर जो इसके अधिकारी होंगे वे परमो अर्थात् सोमवार से मुक्त होने भी आरम्भ हो जावेंगे। विभिन्न समयों पर विभिन्न अधिकारियों द्वारा प्रदत्त यह पवित्र उद्देश्य मेरे सम्बन्ध में आगे चलकर अबचन क्यों पैदा कर देता है, यह बात देखने की है। यदि मैं अस्वस्थ हुआ तो इसी वचना के कारण हुआ। छूट में से अपना अधिकार प्रस्थापित करने के लिए मैं न्यायालय की शरण लेता रहा हूँ। दया के लिए मैं आपके पास आया होता। आप जानते हैं कि नथूराम ने दया की याचना नहीं की थी। सजा न्यायोचित है ऐसी उनकी धारणा थी। इतनी छूट होने पर भी मुक्ति मृत्यु के वाद ही हो सकती है यही बात यदि न्याय को मान्य हो तो फिर मैं कुछ नहीं कह सकता। इसलिये मैंने पहले ही आपको कहा था कि उस स्थिति में मैं मृत्यु को स्वीकार कर लूँगा। करकरे और मदनलाल को तो आप लोग छोड़ दीजिये।

“आई विश यू वेल” ( मैं तुम्हें शुभकामनायें देता हूँ। ) श्री नन्दा ने कहा और हमारी भेंट समाप्त हो गई।

बन्दीगृह से बाहर के कई शासकीय कर्मचारी उस समय के वात्सलाप के समय वहाँ उपस्थित थे। मैं नहीं कह सकता कि हमारे वात्सलाप को टेप रिकार्ड किया गया होगा। किन्तु मेरी ऐसी कल्पना अवश्य है।

श्री नन्दा से मेरी कार्यालय में भेंट होनेवाली है यह जान कर दिल्ली के अनेक सहवन्दियों को सन्तोष हुआ। उनमें से कुछ ने मुझसे कहा कि नन्दा जी यहाँ पर आपसे सहानुभूति से ही मिले थे और आप फिर उनसे मिलनेवाले हैं तो उनमें कहिये कि भले ही बाहर किसी प्रकार के भी काम के लिए कहें, कोई ग्रामो-चोग, कोई खादी भण्डार, वह सब आप कर लेंगे किन्तु वे आपको छोड़ दें। श्री नन्दा आपकी विनती अवश्य मानेंगे। उनके इस सहानुभूतिक वर्ताव के लिए मैंने उन लोगों को धन्यवाद किया। वे मेरा विषय समझ नहीं सकते थे और मुझे भी उनको समझाने में कोई लाम नहीं था। यदि मुझे याचना ही करनी होती तो फिर सर्वोच्च न्यायालय में चक्कर काटने की आवश्यकता न होती। मुझमें किसी प्रकार की अकड़ नहीं थी किन्तु बन्दिदों द्वारा सुशाई गई विनती करने से केवल एक ही गलत बात होती कि उसके द्वारा मैं स्वतः की और शासन की वचना करता। मुझे ऐसा करना नहीं था। भले ही इतनी देर से सही किन्तु शासन को अपना अपराध तो समझ लेने देना चाहिये।

मैंने अपने न्यायालय में दिये आवेदन को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं किया

था। शासन को किसी प्रकार का बहाना बनाने को न रहे इसलिये दि० १०-१०-६४ को न्यायालय को पूरक विधान मेज दिया था।

श्री नन्दा की बन्दीगृह की भेंट केवल मेरे लिये ही थी यदि ऐसा मैं भी कहूँ तो भी एक बात स्पष्ट है कि मेरा आवेदन और पूरक विधान यदि शामकीय वकीलो ने पढ़कर अध्ययन किया होगा तो उत्तर देने के प्रपच में न पड़े ऐसा परामर्श उन्होंने शासन को दिया होगा। तब शासन के सम्मुख दो मार्ग थे, एक तो मेरे आवेदन का विरोध न करना और दूसरा आवेदन के लिये नियत किया हुआ दिन निकलने से पूर्व ही मुझे मुक्त कर देना। श्री नन्दा की भेंट उस दृष्टि से हुई थी यह स्पष्ट है।

सोमवार अर्थात् १२-१०-६४ को श्री नन्दा के आगमन के अवसर पर घोषित छूट के आवाज पर परिपक्व बन्धियों के छूटने की गतिविधि जारी थी। ऐसी छूट के अवसर पर बन्दीगृह में एक प्रकार का समारोह सा हो जाता है। मरझाये हुए मन लहलहाते हैं, सूखे मनो में कोपल फूटती है। मुझे १९५० के जनवरी में इसी विभाग के बन्धियों के इसी प्रकार मुक्त होने की घटना स्मरण हो आई। श्रीधर छूटने का विश्वास दिलानेवाली ४० मास की छूट की हमारी घोषणा हुई थी। क्योंकि ऐसी छूट किसी भी कारण से काटी नहीं जा सकती, शुद्ध दया ही उस छूट का भाव होता है।

छूट की यथार्थता के लिये किये गये अनर्थक परिश्रम और उसमें प्राप्त पराजय से मेरा मन कुठित हो गया था, भावनायें मर गई थीं, इसी कारण आज जो मुझे चार मास की छूट घोषित हुई थी उसका मेरे मन पर किसी प्रकार का भी उत्साहजनक परिणाम नहीं हुआ था। अपने मन की इन बातों को यदि अलग रख दे तो बन्दी मुक्त हो रहे थे, अपने अपने परिजनो में जा रहे थे, इमसे उनको जो आनन्द होता था उसे देख कर अपने मन में भी सन्तोष ही होता था। वान पर विश्वास होना कठिन है, परन्तु फासी की सजा प्राप्त बन्दी भी अपनी बात भूलकर किसी नये आने वाले बन्दी को सान्त्वना देता ही है कि धराना नहीं, श्रीधर ही ये दुर्दिन बीत जावेंगे। उदास मत होना। “बन्दी हमारे बन्दी के दुःख में दुःखी होता है उससे सहानुभूति प्रकट करता है। उसके आनन्द में सहयोगी बनता है।

मंगलवार दि० १३-१०-६४ का दिन। थोड़े समय पहले ही हमारी कोठरियाँ खोली गई थी कि एक बन्दीपाल महाशय आकर खड़े हो गये। मैंने कहा “आज इतने सबेरे ही?”

“आपकी मुक्तता का आदेश आया है। अपना सामान समेटिये, साढ़े गान्त बजे के लगभग आपको बाहर निकलना है। “उन्होंने कहा।”



उस समय सात वज्र रहे थे। मन ही क्या शरीर भी कूदे ऐसे वे शब्द थे। परन्तु मेरे साथ किये गये छल के कारण मन इतना कुठित हो गया था, चेतनाहीन हो गया था कि उन तथाकथित दया के टुकड़ों का आनन्द मुझे मन से भी उपभोग करने की बात नहीं आई। जैसे किसी चित्रपट में प्रारम्भ से अन्त तक कण्ठा-जनक दृश्यों का चित्रण होते रहने से प्रेक्षकों के मन अत्यन्त द्रवित हो जाने के कारण चित्र के अन्त में सुखान्त दृश्य दिखाने पर भी उनका आर्द्र सम्प्राप्त नहीं हो जाता वही स्थिति मेरी भी थी। जब तक दया की आशा की गई तब तक वह प्राप्त नहीं हुई। न केवल इतना, सुदीर्घ अवधि तक उसकी आशा की किरण भी कहीं दिखाई नहीं दी उससे मन इतना खिन्न हो गया कि अब उस दया की रचि ही नष्ट हो गई थी। इस अवसर पर मुझे एक शेर का स्मरण आया, सम्भवतया वह गालिव का हो—

कर गये बेवस्तु कुर्बानी तो फिर क्या फायदा।

सर से ऊँचा हो गया पानी तो फिर क्या फायदा ?

दया सारहीन न हो इसलिये काले पानी अथवा आजन्म निष्कासन के बन्दी की सजा परिवर्तन बन्दीवास में करना होगा तो दण्ड संहिता की धारा ४०२ के आधार पर या भारतीय दण्ड विधान की धारा ५५ के आधार पर वह बन्दीवास १४ वर्ष का ही रहना चाहिये। ऐसे शासन पर बन्वन है। ऐसा परिवर्तन बन्दी को बिना मान्यता के करने का उनका अधिकार है। अर्थात् ऐसी प्राप्त दया से इन्कार करने का अधिकार बन्दी को नहीं रहता।

इस प्रकार मेरी सजा को बन्दीवास में तो परिवर्तन कर दिया था, क्योंकि कार्यवहन वैसा ही जारी था। हा बन्दीवास की अवधि किसी प्रकार निर्धारित नहीं की थी। १४ वर्ष कमी के पूर्ण हो गये थे।

मेरी मृत्ति का आदेश धारा ४०१ के आधार पर अर्थात् दया के अधिकार का उपयोग करके। इतने विलम्ब से यह आदेश प्रसारित करने से, और सरकार की भावना का विचार करते करते उसमें मेरी रचि नष्ट हो गई थी। क्या केवल मैं जीवित हूँ इतना ही लक्षण यह 'दया' समझी जाने के लिये पर्याप्त था ?

सरकार की इस दया का स्वीकार कर ही लेना चाहिये, ऐसा कोई बन्वन मुझ पर नहीं था। क्योंकि आज्ञा धारा ४०१ की थी। न्यायालय में इसकी चर्चा होने दो इस विचार से इस दया को स्वीकार कर लूँ ऐसा मुझे नहीं लगता था।

किन्ती भी प्रकार से विचलित न होते हुए मैंने बन्दीपाल से कहा, "मुझे अधीक्षक से मिलना है।"

"क्यों ?"

“मेरा आवेदन विचाराधीन है, तब तक मैं बन्दीवास में ही रहना चाहता हूँ। यही विनती मैं उनसे करना चाहता हूँ।”

बन्दीपाल को यह अनुभव नितान्त नया था। अनेक बार अनेक घषके खाकर और इतने बर्षों के परिश्रम के बाद इस बन्दी को मुक्ति मिली है किन्तु तब भी यह बाहर जाना नहीं चाहता, इसका तात्पर्य समझने में वह बेचारा असमर्थ था। आनन्दातिरेक से भी मनुष्य उद्विग्न हो जाता है, पागल भी हो जाता है। किन्तु मुझ में इस प्रकार का कोई विकार भी उस बेचारे को दिखाई नहीं देता था।

बन्दीपाल पर और क्या प्रतिक्रिया होती है यह देखने के लिये मेरे पास समय नहीं था। मुझे आशंका थी कि यदि मैंने आदेश का सीधी तरह पालन न किया तो ये मुझे बठा कर जेल से बाहर कर देंगे। अतः मैंने दो कागज लिये और तुरन्त अधीक्षक को लिखा—

“महोदय,

मेरा आवेदन क्रमांक १०६, १९६४ का सर्वोच्च न्यायालय में विचाराधीन है। १९-१०-६४ को उसका श्रवण होगा। दया करना शासन का विशेषाधिकार है अर्थात् उस विशेषाधिकार द्वारा प्रदत्त दया को अस्वीकार करने का मुझे अधिकार है ऐसा एक विधेय मैंने आवेदन में लिखा है। आवेदन का श्रवण होने तक कृपया दया की आज्ञा का कार्यबहन रोक कर रखिये यही मेरी आपसे विनती है। इससे मेरा दया की आज्ञा देनेवाले किसी सम्बन्धित अधिकारी का अपमान करने का हेतु नहीं है।

साभार “”

अधीक्षक को मिलने के लिये मैं कार्यालय के पास गया। वहाँ दस पन्नेह मिनट तक रुकना पड़ा। तब तक मेरा सामान चौपाल में आ कर पड़ा था। विनती नहीं मानी जावेगी यह स्पष्ट था। किन्तु यदि मानी जाती तो मेरी लिखित विनती ही मानी जाती मौखिक नहीं। इसलिये लिखने में समय लगा था। अधीक्षक महोदय से मेट हुई। मेरी विनती मान्य करना उनके लिये सम्भव नहीं था। हमारा कुछ वार्तालाप हुआ, उसके बाद उन्होंने मेरा आवेदन रख लिया और मैं बाहर आ गया।

मुझे विदित हुआ कि करकरे और मदनलाल को भी मुक्त करने का आदेश हुआ है। मुझे इससे समाधान हुआ।

जहाँ जहाँ हस्ताक्षर करने आवश्यक थे, वह मैंने किये। मुझे यात्रा का अधिपत्र (बारट) दिया गया। सामान की जाच हुई, उसे बन्दीगृह के बाहर रखा गया।

असमय में आये वृद्धत्व को कधो पर लेकर मैंने बन्दीगृह के बाहर पाव रखा और स्वतन्त्रता की प्रथम सास ग्रहण की।

क्या यह सच है ? हा, मैं मुक्त हो गया हूँ। बन्दीगृह का कोई भी अधिकारी मेरे पीछे नहीं था। न कोई आरक्षक ही। "अकेले कहा जा रहे हो ?" यह कह कर कोई धमकाने वाला दण्डधारी मेरे समीप नहीं था। "तुम्हारी टोपी कहा है ? तुम्हारा पदक कहा है ?" ऐसा पूछनेवाला भी कोई नहीं था। "काम क्यों नहीं करते ? तुम पर अभियोग लगाया जावेगा।" इस प्रकार धमकानेवाला भी कोई नहीं था। छूट का झूठा आश्वासन देनेवाला खाकी परिवेष्टधारी कोई अधिकारी भी कहीं दिखाई नहीं देता था। मैं मुक्त हो गया था यह बात वास्तव में सत्य थी।

जैसे कोई भारी और कठिन मछली प्रयत्न करने पर भी जब गले में उतारी न जा सके और जिसके गले में उतारने से अपना ही गला बन्द होकर प्राण जाने के भय से मगरमच्छ उसे मुक्त कर दे और फिर अपने मन को यह कहकर सान्त्वना दे कि चलो "तुम पर दया करके मैं तुम्हें जीवन दान देता हूँ।" ठीक उसी प्रकार की मेरी मुक्ति थी। मुझे सुरक्षित रख कर मेरी सजा का कार्यबहन करने के लिये उस द्वार ने जबड़ा खोला था। न्यायालय को उसने वैसे सुरक्षा का आश्वासन दिया था। फिर उसके मन में पाप आया। उसको लगा कि न्यायालय सीया हुआ है। वाद ही जिस प्रकार खेत को खाना चाहें उसी प्रकार मुझे पचाने की भूख शासन को लगी थी। मुझमें भारीपन अथवा कठोरता नाम की कोई चीज नहीं थी। न्यायालय मेरे विल्लाने से जागृतावस्था में थे। यह क्या धोरगुल हो रहा है यह देखने के लिये दोवार तोड़ कर भीतर आने की स्थिति में वह था तब मुझ में गुस्सा एवं कठिनत्व आया था। इस कारण शासन का द्वार रूपी मुख अवरोध हो गया था, मैं उसके गले में उतर नहीं सकता था। मगरमच्छ के मछली को उगलने के समान ही शासन के लिये भी यही हितकर था कि वह मुझे मुक्त करे। और मुझे उसी कारागार के द्वार से बाहर किया।

शासन का दात मेरे शरीर में बहुत गहरा चला गया था किन्तु फिर भी मैं जीवित था। मेरे हृदय को पार करके जाने के पहले ही शासन को दात उठाना पड़ा था। अपने पूर्वजों ने न्यायालय की यह कुव्यवस्था क्यों करके रखी है, ऐसा खेद सम्भवतया उन सम्बन्धित व्यक्तियों को हुआ होगा।

बाहर आने पर एक वाहन द्वारा मैं श्री गणपत राय जी के घर पर आया। देहली में जहाँ मैं सर्व प्रथम कृतज्ञता व्यक्त कर सकूँ यह वह स्थान था। विलकुल अन्त तक अर्थात् मेरे अन्तिम आवेदन के लिये पूरक विधान भिजवाने थे उसकी प्रतियाँ भी उन्होंने बोधता में टाढ़प करवा दी थी।

जब मैं वहाँ पहुँचा तो वे घर पर नहीं थे। मैं मुक्त वातावरण में घूँस फिर

सकता हूँ अथवा नहीं, यह देखने के लिये मैं बाहर निकला। देहली के गुप्तचर मेरे पीछे थे। उनकी गाड़ी भी थी। परन्तु वे मेरे मार्ग में बाधक बनने के लिये नहीं थे। वे दो हो अथवा दो सौ हो तब भी जबतक वे मुझे किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं देते तबतक उनके विषय में शिकायत करने का मुझे कोई कारण नहीं था। आज भी वैसे ही गुप्तचर रहते हैं, किन्तु मेरे व्यवहार मे रूकावट डालने के लिये नहीं। और मैं उनसे डरूँ इस प्रकार की कोई सामग्री मेरे पास न होने से उनसे कभी जवाब पूछने का भी मैं कोई कारण नहीं समझता।

मैं थोड़ा इधर उधर भटकता था तो मुझे कुछ ऐसे अनोखे अपरिचित व्यक्ति पकड़कर राह बताते कि जिनको मैंने कभी देखा नहीं था। उन्होंने मुझे कैसे पहचाना? मेरी मुक्ति की सूचना उनको किस प्रकार लगी? इस प्रकार के प्रश्न मेरे मन में उठते थे। क्योंकि वे लोग स्वयं मेरे पास आये थे। बातों किसी प्रकार भी फैल जाती है, ऐसा मैं सोचता। परन्तु मेरा अनुमान है कि मैं कही भी रूह मेरा पथप्रदर्शन शासकीय व्यवस्था के गुप्तचर विभाग से होना ही सम्भव था। शायद मैं किससे क्या बोलता हूँ इसका अनुमान लगाने के लिये वह व्यवस्था होगी। मिलनेवाले लोगों में गुप्तचर भी होंगे तो होंगे।

मुझे वे लोग प्रेम से मिले। उन्होंने अपना परिचय दिया। उनमें से दो तीन व्यक्तियों ने मुझे अपने घर भी बुलवाया। समय मिला तो मैं आरुणा ऐसा ही मैं उनको कहा करता था। दो तीन व्यक्तियों ने मुझे भोजनालय में भोजन भी करवाया।

बीच में मैं श्री गणपत राय के यहाँ जाकर उनसे मिला था। एक नये परिचित के साथ मैं उनके पास गया था। मेरी मुक्ति यह अपमानित मुक्ति है यह बात मन को चुभती थी। निष्पक्षता से मुझे लगता था कि शासन ने स्वतन्त्र के दया के अधिकार का उपयोग इस प्रकार दुर्दशा करके करना उसके लिये भी उचित नहीं था। शासन स्वयं ही भूल करता है। भूल प्रदान का समाधान मेरे इस मुक्ति से नहीं हुआ था। क्या करूँ, मैं यही सोच रहा था।

मैंने सर्वोच्च न्यायालय को एक आवेदन दिया। आवेदन क्रमांक १०६ का सर्वमर्ग दे कर मैंने कहा, "दि० १३-१०-६४ को मुझे दिल्ली बन्दीगृह में मुक्त कर दिया गया है। दि० १९-१०-६४ को उपरिलिखित आवेदन श्रवण के दिने आयेगा तब तक मुझे अन्दर ही रखा जाय ऐसी विनती मैंने अग्रोशक को की थी। परन्तु मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे मुक्त किया गया।

"मुझ पर लादी गई इस दया में इन्कार करने का मुझे अधिकार है या नहीं इसका विचार मेरा आवेदन श्रवण के लिये जव आवे तो किया जाय। अल्पपा

नविधान के १४ वें परिच्छेद के अनुसार “न्याय की समानता” के अनुसार मुझे वच मुक्त होना चाहिये था इस पर विचार किया जाय ।

“मैं दि० १९-१०-६४ को न्यायालय में उपस्थित रहूँगा ।” आवेदनपत्र लेकर मैं न्यायालय गया । दशहरे के अवकाश के कारण न्यायालय बन्द था । वहाँ रज्जी पेटी में मैं अपना आवेदन डालकर आ गया ।

यदि मेरी मुक्ति की आज्ञा स्वीकृत हो जाती अथवा कारागार के अधीक्षक द्वारा मेरी प्रार्थना मान ली जाती तो जो बन्दीवास प्राप्त हुआ होता वह मेरी अपनी इच्छा से होता । एक कठिन प्रश्न सुलझाने के लिए थोड़ा सा कष्ट भुगतना पड़ा तो वह कोई बहुत बड़ा मूल्य नहीं था । उस अवधि में शासन ने मुझे बन्द किया है ऐसा अकुश न रहा होता । न्यायालय वैसी आज्ञा दे सकता है या नहीं यह एक चर्चा का विषय था । मेरे पास मेरे विधान थे ।

श्री नन्दा को गाठने का मैंने प्रयत्न किया । उन्होंने सद्विच्छा व्यक्त की थी । मैं आज मुक्त था । उस सद्विच्छा के लिए आभार प्रकट करना चाहिये था परन्तु वे किसी समा में थे । मैं उनके कार्यवाहक से मिला । मैं उनको पत्र दे आया । “सर्वोच्च न्यायालय में मेरा प्रयत्न—दया को अस्वीकार करना मेरा अधिकार है एतद्विषयक मेरा आवेदन—एक प्रश्न को सुलझाने के लिये है । किसी का अनमान करने के लिए नहीं । आपने मेरे प्रति जो सद्विच्छा व्यक्त की उसके लिए मैं आभारी हूँ ।

जाजतक मुझपर हुए अन्याय के लिए समझ लिया जाय कि श्री नन्दा उत्तरदायी थे, किन्तु पूर्णतया वे ही उत्तरदायी थे ऐसा नहीं समझा जा सकता । किन्हीं भी व्यक्ति विशेष पर इस प्रकार का दोषारोपण किया जा सकेगा ऐसी स्थिति नहीं है । पिछले ८ वर्षों से कितने ही व्यक्ति बदल गये थे और कितने ही दिवंगत हो गये थे ।

हिन्दू महासभा भवन में मुझे नयूरामजी के मित्र मिले । नयूराम हिन्दू महासभा के कार्यकर्ता थे । अनेक प्रान्तों में उन्होंने दौरा किया था । सभी प्रान्तों में उनके मित्र थे । हिन्दू महासभा ने गांधी बंधकाण्ड का निषेध किया था परन्तु नयूराम हमारा नहीं हैं ऐसा हिन्दू महासभा ने नहीं कहा । नयूराम के किसी मित्रगण ने भी ऐसा नहीं कहा था । नयूराम के कृत्य की पृष्ठभूमि का राजनैतिक मूल्यांकन जैसे सरदार पटेल अथवा किसी अन्य कांग्रेसी नेताओं ने किया था उन्हीं प्रकार नयूराम के मित्रजनों ने भी किया था । परन्तु इस प्रकार मूल्यांकन किया इतलिये सरदार पटेल आदि ने गांधी हत्या का आदेश दिया ऐसा श्रम श्रम प्रकार नहीं वह सन्तों जैसे ही हिन्दू महासभा ने यह आदेश दिया था ऐसा श्रम भी अन्याय होगा ।

मैं मुक्त हुआ था इसलिये उनके मित्रों को भी इसका समाधान था। मुझसे देहली में रहने के विषय में पूछताछ की गई। मैंने उन्हें बताया कि मैं रात को ही जानेवाला हूँ।

अपनी मुक्ति के सम्बन्ध में मैंने घर पर भी तार द्वारा सूचना दी थी। घर पहुँचने की अपनी तिथि से भी उनको सूचित किया था। दि० १५-१०-६४ को अर्थात् दशहरे के दिन मैं घर पहुँचनेवाला था।

दि० १४-१०-६४ को मेरी मुक्ति का समाचार चारों ओर फैल गया। गाड़ी गुजरात से गुजर रही थी। कई स्टेशनों पर लोग अनुमान से मुझे देखने के लिये आते थे। मैं जिस किसी को बताता वही मुझे पहचानता था, अन्यथा कोई मुझे पहचानता नहीं था। एक स्टेशन पर मैंने झुण्ड देखा, उत्सुकतावश मैंने भी वृष्टि डाली। विलकुल सयोग की बात थी कि मुझे पहचाननेवाले एक सज्जन वहाँ थे। उनसे मेरा परिचय बन्दीगृह का ही था। मैंने उनको कुछ छूट दिल्वाई थी। उसने जब मुझे देखा तो अपने साथियों को संकेत किया और सारे मेरे समीप आकर खड़े हो गये। उन्होंने मुझे पुष्पमाला पहनाई, मेरा जयजयकार किया।

क्या मैं नेता बन गया हूँ? मैं अपना ही स्वयं निरीक्षण करने लगा। नेता सा कोई भी गुण मुझमें दिखाई नहीं देता था। उस पुष्पमाला से मैं भारी हो गया था। परन्तु प्रश्न थोड़े समय का ही था, गाड़ी चलने ही वाली थी। मैंने उनसे पूछा कि “मैं इसी गाड़ी से आऊँगा, इसका ज्ञान आपको कैसे हुआ?”

“हम एक दो गाड़ियाँ देखनेवाले थे। ये लोग मेरे पीछे लग गये कि इनको भी साथ लेकर चलोँ। हमारा विचार था कि यदि भेंट हो गई तो अच्छा ही है कुछ घण्टे ही तो व्यर्थ जानेवाले थे।”

इस पर भी मुझे विश्वास नहीं हो रहा था। कहीं ऐसा तो नहीं, कि दिल्ली से किसी ने अथवा गुप्तचर विभाग ने ही निश्चित गाड़ी का तार भिजवाया हो, जो कुछ भी हुआ होगा उसका ज्ञान मुझे नहीं हो पाया।

गाड़ी छूटने से एक मिनट पूर्व मिठाई की एक टोकरी मेरे डिव्वे में रखी गई। एक व्यक्ति ने मुझे मेरे परिवार के नाम पत्र दिया। मेरे प्रति उन लोगों ने शुभ कामना व्यक्त की और गाड़ी चल पड़ी।

दादर से कल्याण स्थानक पर आया। घर के लोगों के वहाँ आने की सम्भावना थी। मैं उत्तरा, इधर उधर देखा, कुछ परिचित मुह दिखाई दिये। कितने लोग होंगे, तीस, चालीस, पचास। सभी सम्बन्धी नाते के थे। मित्र बहुत थोड़े थे। बड़े भाई दत्तात्रय, छोटा भाई गोविन्द और परिवार के लोग सब लोगो ने मुझे प्रथम बार ही यहाँ पर मुक्त रूप में देखा था। मैं अब उनमें ही

हूँ ऐसा अनुभव हुआ। अरे! यह आनन्द से उमड़ पड़नेवाली लड़की कौन ? अरे यह तो असिलता है। मेरी छोटी कन्या। कितनी बड़ी हो गई थी। इसको मैं बच्चे के विछावन में छोड़कर गया था। मानसपुत्र नाना को भी अपना आनन्द व्यक्त करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता था। बड़ी कन्या विद्युत्कृता वर्षा में थी।

मेरी दृष्टि पत्नी को खोज रही थी। आँखें चार हुईं। उसका समझना उसने समझा और मेरा मैंने। असम्भव दोखनेवाला दिन ऐसा उसको लगा था। मन में उमड़ पड़नेवाले आनन्द को उसने दबा कर रखा था। हम सभी स्थानिक के प्रतीक्षालय में बैठे। मैंने स्नान किया। सभी ने चाय पी। मैंने उनको बताया कि दो दिन बाद मुझे फिर न्यायालय में जाना है।

मेरा यह कथन सुन “अब क्या बाकी रह गया है” इस प्रकार की कुछ चिन्ता उनके मुख पर व्यक्त हुई। मैंने समाधान कर दिया।

कल्याण से हम पूना की गाडी में बैठे। पूना स्टेशन पर अनेक लोग एकत्रित थे। पूना में जिन व्यक्तियों के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करूँ उनमें से श्री ग० वि० केतकर थे। किसी भी प्रकार का भय न रखते हुए हमारी मुक्तता का प्रश्न उन्होंने सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया था। उससे मेंट की।

१७ वर्ष बाद मेरे घर में दशहरा मनाया जा रहा था। शहनाई नगाडा बज रहा था। द्वारो पर तोरण था। आगन में रगावली काढी गई थी। पचारती लेकर मुवासिनी खड़ी थी।

श्री भाऊराव अर्भ्यकर दम्पति मेरी पत्नी को अपनी कन्या के समान मानते हैं। और उसी प्रकार उससे व्यावहार भी करते हैं। यह मैं पहले भी एक स्थान पर लिख चुका हूँ। उनके जामाता का आगमन हुआ, कन्या को सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका दोहरा आनन्द उन्मुक्त प्रकट हुआ था।

पचारती उत्तरवाते समय मेरी आँखें छलछला आईं। मैंने उन्हें रोका नहीं। जो आसू बहना चाहते थे मैंने उन्हें बहने दिया। इतने वर्ष तक मैं उन्हें रोके हुए था। अब रोकने का कोई कारण नहीं था।

लगभग एक पीढ़ी का अन्तर पड़ गया था। अपने कन्दो पर जिन मुडियाओं को मैंने खेलाया था उनको मैं आज उनकी गोद में उनके बच्चों के साथ देख रहा था।

मेरी स्मृति धुँधली हो गई थी। उसमें कई मिलजुल कर रहनेवाले परिचित आते थे और मुझे आदर से बुलाते। मेरे ‘गोमाल’ नाम के आगे अब ‘राव’ लगाने लग गया था। मैं सोचता था कि मैं कब बड़ा हुआ। मैं सोचता कि जिस

प्रकार फ्रिज में रखी वस्तु वैसी ही रहती है उसी प्रकार बन्दीगृह में रहने से मुझ पर भी काल का कोई प्रभाव नहीं पडा होगा । क्या मुझे, तू-तू, रे-रे कहने वाला अब कोई नहीं है ।

मुझे अधिकार से अरे, जारे कहनेवाले तीन व्यक्ति स्वर्गस्थ हो चुके थे । मां, पिताजी और नथूराम । याद आते ही मैं घर के भीतर गया । उनके चित्र थे, उन्हें मैंने वन्दन किया । सारा दिन लोगो का ताता लगा रहा । आगे के कुछ दिनो तक भी यही क्रम जारी रहा ।

और वह हमारी प्रथम रात्रि थी, आसुओ से भीगी भीगी ।

दि० १९-१०-६४ को मैं सर्वोच्च न्यायालय में पहुँचा । आवेदन सामने आया । मैं खडा रहा । मेरा नया परिशिष्ट भी न्यायमूर्ति ने पढा था ।

मूल आवेदन के अन्तर्गत ही अन्य आवेदन थे । मूल आवेदन को अब विचारधीन करने का प्रश्न नहीं उठता था । क्यों कि मैं मुक्त हो गया था । आवेदन को अफलित ( इनफ्रैक्चुअस ) कर दिया गया । जिस प्रकार जड तोड़ देने से शाखायें स्वयमेव गिर जाती हैं उसी प्रकार मेरे प्रमूख आवेदन के अफलित सिद्ध होने से तदनन्तर्गत लिखित सभी आवेदन भी गिर गये ।

न्यायालय से इस प्रश्न को सुलझा लेने में मैं असमर्थ ही रहा । मेरी यह अन्तिम पराजय थी ।

गांधी वध काण्ड के एक चिरपराजित दण्डित की ऐसी यह गाथा है ।

\*\*\*



## सत्रह

### • और अंत में

मेरे जीवन में एक छोटा सा समय ऐसा था कि कहीं से कोई तीव्र स्वर सुनने पर मैं सतर्क हो जाया करता था। मैं सदैव यह देखता रहता था कि कहीं ऐसी आवाज आती है क्या ? किसी अनोखे व्यक्ति ने मुझे थोड़े समय अधिक देख लिया तो तो मैं समझता कि यह ऐसा क्यों करता है। हो न हो यह आरक्षक विभाग का गुप्तचर होगा। प्लेटफार्म पर घूमते हुए, मोटर पर जाते हुए रेल गाड़ी में यात्रा करते हुए, मैं मन ही मन कुछ तो भी छिपा कर रखा करता था। इसकी सदैव मुझे चिन्ता रहा करती थी। उस चिन्ता का चिन्ह बाहर प्रकट न हो इसके लिये मैं सदा प्रयत्नशील रहा करता था। परन्तु जो मन में था वह मन से तो छिपाया नहीं जा सकता था।

वह समय अल्प ही रहा। अर्थात् गाँधी हत्या के दिन के पहले और वाद के थोड़े से दिन। मुझे सशयित समझकर पकड़ा गया था। आरोपी के नाते न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया था। आर्शंका को स्थान न रहे इतने समाधानकारक ढंग से मेरे भीतर का आरोप सिद्ध किया गया। न्यायालय ने मुझे दण्ड द्विधा, शासन ने उस दण्ड का कार्यान्वयन किया। अपनी स्वतन्त्रता के लिये सघर्ष करते हुए ही दि०-१३-१०-६४ को दिल्ली कारागार से मुझे मुक्त किया गया।

मुक्ति के बाद मेरी स्थिति में एक विशिष्ट अन्तर आया। जिस का भय रहे ऐसा कोई भी दबाव मन पर नहीं रहा। मुझे बिना शर्त मुक्त किया था। इसका अभिप्राय यह कि मुझे नागरिक के सभी अधिकार प्राप्त हो गये। मतदान का अधिकार भी। समाज के लिये आवश्यक ऐसे सभी नियमों और निबन्धनों के साथ मैं अपने अन्य गहनागरिकों की भाँति ही बचा हुआ हूँ। उसके साथ ही दूसरों के

अधिकार पर अतिक्रमण न करके किसी नागरिक के उपभोग्य अधिकारों का उपयोग करने की जो स्वतन्त्रता होती है वह स्वतन्त्रता मुझे भी प्राप्त हुई ।

जिज्ञासा मनुष्य का स्थायीभाव होता है । थोड़े समय के लिये भी यदि आप किसी अन्य स्थान पर रहकर आँखें तो लौटने पर लोग वहाँ के समाचार जानने की उत्सुकता प्रकट करते हैं । अधूरी और अज्ञात बातों को जानने की भी जिज्ञासा होती है ।

गांधी जी का जीवन जितना देशव्यापी था उसनी ही उनकी मृत्यु भी देश-व्यापी ही सिद्ध हुई थी । उनका देहान्त वध से हुआ यह दैवदुर्विपाक था और ऊपर ऊपर देखने पर उनकी मृत्यु की घटना उनके स्वयं के तत्वों के विपरीत थी । इसलिये वह विषेश ध्यान में लाने लायक थी । अहिंसक की मृत्यु हिंसा से हुई थी । -

इतिहास ने गांधी वध इस घटना का अंकन किया इससे इतिहास पढ़नेवाले की जिज्ञासा जागृत हुई । अर्थात् यह वध करनेवाले कौन थे ? क्या वे क्रूर कर्मि हत्यारे थे ? क्या गांधी जी के साथ उनका कोई व्यक्तिगत द्वेषभाव था ? क्या उनके चरित्र में कुछ हीनता थी ? उनका भविष्य क्या रहा ? क्या उनका कुछ कथन था ? यदि ऐसी घटना न हुई होती तो ? उस समय की राजनीतिक परिस्थिति कैसी थी ? जनता की मनोदशा उस समय कैसी थी ? जन-जीवन किस स्थिति में था ?

गांधी वध से सम्बन्ध रखनेवाले इस प्रकार के अनेक प्रश्न उनके मन में उठा करते थे और आज भी उसी प्रकार उठते रहते होंगे ।

मैं गांधी वध से काण्ड का एक दण्डित व्यक्ति हूँ । अपनी मुक्ति के लिये मैं न्यायालय द्वारा सघर्ष किया करता था । समाचार पत्रों में वह विवरण प्रकाशित होता था और कभी कभी आकाशवाणी पर भी समाचार प्रसारित हो जाया करता था । मेरे विषय में यथारूप से गांधी वध अभियोग का दण्डित कहकर किया जाता था । मेरी मुक्ति का समाचार भी सर्वत्र प्रकाशित हुआ था ।

इस समाचार से परिचित तथा अपरिचित सभी व्यक्ति अपनी जिज्ञासा की मुद्दसे पूर्ति कराने के लिये आतुर हो, यह स्वामाधिक ही था ।

बन्दीवास भुगतनेवालों के चरित्र भी अनेकों ने पढ़े होंगे । किन्तु उनमें से अधिकांश अंग्रेजों के शासनकाल के हैं । मैंने अपना बन्दीवास स्वराज्य काल में भोगा था । उस पर भी गांधी जी के तत्त्वज्ञान के संस्कार यदि नित्य नहीं तो सप्ताह में एक बार तो प्रसारित करके लोगों में भरने का यत्न हो ही रहा था, और वह यत्न आज भी जारी है । आज भी प्रति शुक्रवार को प्रातः आकाशवाणी

द्वारा गांधी की प्रार्थना सभा के टेपरिकार्ड जनता के कानों में दूसे जा रहे हैं।

मैंने जो बन्दीवास भुगत वह किस प्रकार का था ? गांधी जी का तत्त्वज्ञान और उन तत्त्वज्ञान को प्रसारित करनेवाला और उसके द्वारा भारतीय जनता को उत्साहित करनेवाला शासन और उसके प्रत्यक्ष व्यवहार में कितनी विमर्शिता थी ? क्या किसी प्रकार के हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया की गई थी ? अथवा क्या नस्कारों द्वारा स्वयं ही हृदय में कुछ परिवर्तन हुआ ? क्या सजा की भयकरता ने मन को विचलित किया ? जिन को सजा हुई थी उन सभी पर गांधी के तत्त्वज्ञान का या शासन के व्यवहार का क्या परिणाम हुआ ? बन्दीवास में किम प्रकार का भोजन मिलता था ? क्या मारपीट भी होती थी ? क्या परिजनों ने भेंट करने की सुविधा थी ? छूट मिला करती थी अथवा नहीं ? बन्दीजनों को मिलनेवाली फलों हमें भी मिलती थी अथवा नहीं ? इस प्रकार के मेरे कारावास में सम्बन्धित प्रश्न भी मुझसे निरन्तर पूछे जाते थे। वास्तव में प्रश्न तो गांधी के तत्त्वज्ञान और उसकी व्यावहारिकता में तुलना के लिये ही अभी भी पूछे जाते हैं।

गांधी वच की घटना को राजनीतिक और ऐतिहासिक महत्व प्राप्त होने के कारण उसमें "क्या हुआ था" यह जानने की उत्कण्ठा गांधी पर थढ़ा रखने और न रखनेवालों को अर्थात् सभी की हो सकती है। इसी प्रकार इतिहास पढ़ने और पढ़ानेवालों को भी हो सकती है। मुक्त होने के कुछ दिन बाद मैंने इस तथ्य को समझा।

एक उत्तरदायी नागरिक के नाते अपनी मर्यादा का ध्यान रख कर और सम्य नागरिक को प्राप्त भाषण और लेखन की स्वतन्त्रता का उपयोग करके जिज्ञासुओं की उत्कण्ठा की पूर्ति की जाय, ऐसा मैं सोचने लगा। परन्तु इसके लिये मैं अपना मुह थोड़ा अथवा लेखनी सठाऊँ उससे पहले ही मुझे पुनः अपेक्षित रूप में पकड़ लिया गया। एक वर्ष का कारावास का जीवन मुझे पुनः भुगतना पड़ा।

कारागृह से पुनः मुक्त होने पर इस दिना में मेरे विचार फिर चलने लगे और मैंने लेखनी सठाई। अनेक लेख लिखे। श्री अ० ज० करंदीकर के अनेक विवादग्रस्त लेखों के कारण "पंजप" मासिक पत्र के सम्पादक श्री ग० वा० बेहरे ने मेरा परिचय हुआ। श्री बेहरे को मैंने अपने लेख दिखाये।

न्यायाधीश दृष्टिकोण से उन्होंने उन लेखों को देखा। क्योंकि उनको अपना भाविद-मन चम्काना था, बन्द करना नहीं। जब उनको यह प्रत्यक्ष हो गया कि उन लेखों में ऐसी कोई बात नहीं है कि जो आपत्तिजनक कही जाय, अथवा किसी को बिद्वाने या प्रयोजन हो। न्यायोचित सजा के सम्बन्ध में कुछ अनुपयुक्त उद्गारों का

प्रकटीकरण तो नहीं किया गया है, कहीं इतिहास की प्रतारणा तो नहीं हुई इत्यादि तथ्यों की पड़ताल करने के बाद उन्हें प्रकाशित करना उन्होंने स्वीकार कर लिया।

अनेक बार तो केवल नाम के कारण ही कुछ पूर्वाग्रह हुआ करते हैं। उनकी पार्श्वभूमि कुछ तो अधूरी होती है और कुछ विकृत भी। मैं कैसा हूँ यह लोगो की समझ में किस प्रकार आ सकता है? मेरे विचारों को लोग समझें ऐसी मेरी इच्छा थी। जिस प्रकार मैं यह चाहता था कि कोई मुझे भयभीत न करे, उसी प्रकार मैं यह भी चाहता था कि कोई मुझसे भयभीत न हो। मेरे लेखों को प्रकाशित कर, मैं कैसा हूँ, यह श्री वेहरे ने लोगो को दिखा दिया। उन्होंने मुझे समाज में स्थान दिलाया, मुझे समाज में खड़ा किया, वह विलकुल शान्तिपूर्वक घेरे से। शासन ने मुझे मुक्त किया तो इसी समाज में मेरे पुनर्वसन के लिये उन्होंने यह सब प्रयत्न किये। शासन का एक विभाग विमुक्त बन्धियों के समाज में पुनर्स्थापन तथा पुनर्वसन के लिये होता है। मेरे विषय में वह कार्य श्री वेहरे ने किया।

इन लेखों को मैंने लिखा वहाँ तक तो मैं। इनका लेखक हूँ। परन्तु 'लेखक' की एक परिभाषा है। गाते समय गायक, स्वर-लय-ताल-चढ़ाव-उतार आदि का समन्वयन और बन्धन नियमित करे, उनके श्रोता और उनसे ऐसी अपेक्षा रखते हैं। इसी प्रकार पाठक भी लेखक से अपेक्षा रखते हैं कि वह सुन्दरता एवं वास्तविकता के आवरण में ही अपने मन की बात उनको समझावे।

केले के पीछे का जब एक पत्ता निकलता है तो उसके भीतर दूसरे पत्ते का आभास भी तुरन्त ही होने लगता है। वह निकलते ही उसमें से तीसरा पत्ता निकल आता है। उसी प्रकार एक विचार में से दूसरा विचार इतनी सहजता से रचाया जाय कि अपना मानसिक स्थलान्तरण कब हुआ यह बात पाठक समझ न सके इमी मैं लेखक की चातुरी और कुशलता है। पाठकों की अपेक्षा पूर्ण करना उसका कर्तव्य है।

किसी सुरक्षित उद्यान में अर्थात् पेड़ पौधों की सीधी पत्तियाँ, वर्गानुसार फूलों की क्यारियाँ, सजी हुई धींधियाँ, तृणाच्छादित भूमि के आकार के हरे गलीचे हुआ करते हैं और यह सब देखकर वह मनुष्य मोहित हो जाता है। उसी प्रकार लेखक ऐसे प्रेक्षणीय उद्यान पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करे यही उनकी अपेक्षा होती है।

'लेखक' की परिभाषा में अथवा लेखकों की पक्ति में मैं कहाँ पर खड़ा हूँ यह मैं नहीं जानता। इतना मैं जानता हूँ कि मैं ऐसा लेखक नहीं हूँ जिसका कि लेखक नाम से वर्गीकरण किया जा सके। इससे मुझे सरक्षण मिला है और पाठक भी मुझे उसी प्रकार समझ कर मेरी कृति को पढ़ेंगे ऐसी मुझे उनसे अपेक्षा है।

उद्यान की भांति योजनावाद नहीं अपितु वन की भांति वायु के झोंके से उड़ाये गये बीज कहीं पर भी पड़ें, प्रकृति ने उसे मिट्टी में दबाया, आकाश ने उस पर जल सींचा, किसी भी स्थान पर वह बीज अंकुरित हो गया, यही उसका पौधा और कभी वृक्ष हो जाय और कौन सा वृक्ष कहाँ उग जाय इसका कोई नियम नहीं। प्रकृति जो देगी वह स्थान और जिस प्रकार सुरक्षा देगी उसे ग्रहणकर ऐसे अनिश्चित प्रकृति के नियमों से जो बढ़ता रहता है, उसे वन कहा जाता है।

सुलझे हुए विचारों को सुरक्षित उद्यान की भांति सजाने का प्रयत्न मैंने नहीं किया है। जैसे विचार मन में उठे मैंने उनको उठने दिया है। जहाँ पर वे उठे उसी स्थान पर मैंने उन्हें लिपिबद्ध कर दिया। इस प्रकार इस अनियोजित एवं अनियमित वन से भी पाठकों को जिज्ञासा की पूर्ति हो सकेगी ऐसा विश्वास जब मन में जगा तो मैंने इसे पाठकों के सम्मुख रखना उपयुक्त समझकर ही यह कार्य किया है। भले ही नगर में रहने के कारण सदा नल का पानी पीते रहने से कभी जंगल में जाने पर यदि झरने का पानी पीने को मिल जाय तो उससे प्यास नहीं बुझ सकती, ऐसा नहीं होता।

१९-२० वर्ष का कालखण्ड कोई छोटी अवधि नहीं होती। इस अवधि में मेरी स्मृतियाँ यदि धुसली और अस्पष्ट हुईं अथवा विलकुल निद्रा भी गई तो वे बाहर की स्मृतियाँ ही थी। जिस प्रकरण में मैं लगभग १८ वर्ष बन्दीवास में रहा हूँ उस सम्बन्ध की स्मृतियाँ और १८-२० वर्ष पूर्व का सुरक्षित रखा हुआ छायाचित्र तब जितना स्पष्ट था आज भी वह उतना ही स्पष्ट है। क्योंकि बन्दीवास में भी प्रत्येक क्षण मेरे मन में रहता था कि मैं बन्दीवास क्यों भुगत रहा हूँ। मन को सदा उसकी स्मृति रहती थी। मन पर और कोई चित्र अंकित हो इसका न अवसर मिलता था और न उसके लिये कोई स्थान ही था। जो चित्र एक बार अंकित हुआ उसे पोंछा नहीं जा सका। उस पर भी गान्धन बीच बीच में मुझे स्मरण कराता रहता था, “तुम गांधी बक्कांड के दण्डित हो।” फिर वह चित्र पोंछा भी किस प्रकार जाता?

एक दृष्टि से यह अच्छा ही हुआ। इतिहास सुरक्षित रह सका। जो जैसा का तैसा ही देखते हुए पाठकों को, विशेषतया इतिहास के पाठकों को इसमें से नये विश्लेषणात्मक सूत्र एवं विचार प्राप्त होंगे। गांधी जी के जीवन से ही उनकी मृत्यु भी नम्रगन्धित थी। और उस मृत्यु रूपी दुर्दैवी घटना से मैं सम्बन्धित था। इसलिए गांधी जी के जीवन के अन्तिम अध्याय का ही यह पृष्ठ है। नियति ने उससे मेरा सम्बन्ध जोड़ा इसलिये इस इतिहास-स्वरूप पृष्ठ का नाम है “गांधी वध और मैं।”

\* \* \*

## अठारह

### द्वारा भेंट

[ मूल मराठी पुस्तक पर लगाया गया प्रतिबन्ध हटाने के पश्चात् छपे  
संस्करण के लिए लिखे गये प्रास्ताविक का अनुवाद ]

लेखन स्वातन्त्र्य के मंच से आज 'गांधीहत्या आणि मी' ( गांधीवध और मैं ) ग्रंथ दुबारा पाठको को प्रस्तुत हो रहा है। पहला संस्करण दिनांक १२-१०-१९६७ को प्रकाशित हुआ। लगभग दो मासों के पश्चात् दिल्ली प्रशासन ने पुस्तक पर प्रतिबंध लगाया। एक राज्य के बंदीकरण आदेश का क्षेत्र पूरे भारत भर में होने के कारण उस समय पुस्तक के पुनर्मुद्रण की योजना कुण्ठित हुई।

दिनांक २५-१-६८ को प्रस्तुत लेखक के घर पर ( दीड झडती ) तलाशी आयी और बारिशियों ने एक प्रति स्वाधीन कर ली। दिनांक २७-१-१९६८ को श्री वेहरे—जो अस्मिता प्रकाशन के संचालक हैं और जिन्होंने अपनी प्रकाशन संस्था द्वारा पुस्तक का प्रकाशन किया था—के कार्यालय से दो प्रतियाँ समग्रहृत अर्थात् जप्त की गयी।

आजन्म कारावास से मेरी मुक्तता करने के विषय में शासन ने मुझसे अतीव प्रतिशोधात्मक अर्थात् बदला लेने की भावना से भरा क्रूर वर्तन किया जिसका वृत्तान्त मेरी इस पुस्तक में आया ही है। मैं गांधीवध से संबद्ध दंडित या हमलिये मुझे प्रावकाशसे ( पैरोल अथवा फलों की छुट्टी से जो दंडितों को दी जाती है ) वंचित रखना, मैं गांधीवध से संबद्ध दंडित या इसलिए मुझसे रक्तदान प्रत्यक्ष रूप में खराखरा लेना और मेरे पत्ले छूट-रेमिंगन झूठी बांधना और तिस पर मुन्न टोपियाँ सिर पर पहनकर दंडितों को सचाई के और सद्वर्तन के

घूट पिलाते फिरता, ऐसा दमपूर्ण प्रयोग शासनाधिष्ठित महाभागो ने मुझ पर किया। मेरी भावनायें कटु की गयी थी। उसी वस्तुस्थिति से प्रस्त हो यदि मैं गांधीवध की भीमासा के समेत सभी विषय चिढ़कर लिखता तो वह समर्थनीय ही होता। किंतु सब मनस्ताप के घूट पीकर मैंने बड़े समय से विषय लिखे थे।

गांधी वध के विषय में एक ही एक पक्ष आज बीस-वाइस वर्ष लोगों को आग्रह पूर्वक बताई जाती है। जिनका सबध उस पड़यंत्र से था उनका क्या कहना था इस तथ्य को इतिहास के रूप में लोगों को प्रस्तुत करने से मैं कोई अपराध नहीं करता था। पड़यन्त्र के सब दंडितों ने अपने अपने देहदण्ड भुगतें हैं। न केवल एक अपितु दो व्यक्तियों को फांसी दी गयी। जो आजन्म कारावास भुगतने गये वे भी बिना किसी प्रमाण के अधिकृत रूप से दंडित बधमुक्त हुवे। इसलिए ऐसे इतिहास कथन से लोगों में सहानुभूति निर्माण कर शिक्षा में शिथिलता लाने का प्रश्न ही नहीं था। इच्छा इतनी ही थी कि दंडितों को तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखना सिखाया गया है, अतएव लोग उन दिनों की राजनीतिक परिस्थिति को सम्मुख रखकर सब घटनाओं को परखें। उसके उपरान्त किसी को यदि तिरस्कार स्थिर रखने की इच्छा हो तो भले ही वह वैसा रखें।

पुस्तक पढ़ने के पश्चात् अनेक सज्जनों ने एक ही घटना का दूसरा पक्ष प्रकाश में आने के इस प्रयास की सराहना की और वैसे पत्र लिखे। आज तक जो एक ही एक अग दृष्टि के सामने लाया जाता था उससे शासन ने वस्तुस्थितिको कैसे छिपाये रखा था यही प्रतीत होता है, ऐसा भी उल्लेख अनेकों ने किया है।

यह मानना पड़ेगा कि शासन इस स्थितिको जानता था। इसलिये निष्कर्ष यही निकलता है कि गांधीजी में जो गुण नहीं थे वे उन्हें चिपकाकर उनके नाम का बिड़ोरा पीटकर अपना आसन स्थिर रखने का धंधा करनेवालों का व्यवसाय स्वातन्त्र्य (?) अबाधित रहे, उसको थोड़ा भी धक्का न लगे, ऐसे अन्यायिगिरी हेतु से ही यह वदीकरण लगाया गया था। वैसे ही गांधीवध अभियोग के दंडितों से सीखो के भीतर किया गया शासन का दुर्व्यवहार उन दंडितों के मुक्त होने के पश्चात् लोगों के सामने न आवे ऐसा दुवारे दंडितों में पाया जानेवाला उद्दण्ड हेतु भी इस वदीकरण की आज्ञा के पीछे था।

वदीकरण को आज्ञा को कारण दिखोया गया कि पुस्तक हिंदुस्थान के हिंदुओं और मुसलमानों के बीच वैमनस्य निमिषिण करता है।

पुस्तक की नैर्वधिकता के बारे में भूझे भरोसा था कि पुस्तक निर्वन्धवाह्य नहीं हो सकती? उसी प्रकार का विश्वास श्री वेहेरे को भी था। हम इस प्रयास में थे कि न्यायालय द्वारा वह निर्दोषिता सिद्ध हो।

उस न्यायालयीन कार्य में सर्वश्री माधवराव पाठक, मोहनराव जोशी, माधव-  
राव पराजपे तथा उनके सहायक श्री कामथ, श्री टिपणीस आदि विधितज्ञोने  
हमें अनमोल सहायता की। श्री माधवराव पराजपे ने अभिवक्तव्य (आरग्युमेंट)   
किया।

उन सबके अविश्रान्त परिश्रम का फल था दिनांक ६-९-१९६९ का बम्बई  
उच्चन्यायालयका निर्णयपत्र। सविधान द्वारा व्यक्तिको दिया गया भाषण स्वातंत्र्य-  
का अधिकार स्थिर रखने की दृष्टि से यह निर्णय बड़ा महत्व रखता है। न्याय-  
मूर्ति श्री मोदी, न्या. श्री देसाई और न्या. श्री चंद्रचूड का न्यायासन था।  
न्यायमूर्ति श्री चंद्रचूड ने निर्णय लेखापित (डिक्टेट) किया। न्यायप्रक्रिया के  
इतिहास में भी इस निर्णयका लेखाङ्कन होगा। लेखन स्वातंत्र्यका यह प्रश्न इतना  
महत्व रखता है।

शासनका आक्षेप और पुस्तक की अनाक्षितता आमने सामने परखने के लिये  
पाठक श्री वि. श्री जोशी द्वारा किया गया निर्णयपत्रका सारांश रूप अनुवाद  
देखें जो आगामी शीर्षक में दिया है। (मराठी से हिंदी अनुवाद लेखक ने स्वयं  
किया है)

नागरिकको दिया गया मुद्रण स्वातंत्र्य, भाषण स्वातंत्र्य, लेखन स्वातंत्र्य का  
अधिकार न्यायालय ने समोदित किया है। सविधान निर्मित उन मूलभूत अधिकारो  
के मंचपर खड़े रहकर यहाँ यह कहना भी स्थलोचित होगा कि शासन केव  
सत्तान्ध बनकर और पूर्वग्रहों से पीडित बनकर ऐसी अपनी क्षुद्र कृतियाँ न करे।

पुस्तक में कोई परिवर्तन नहीं किया है। पाठको से कुछ सूचनाएँ आयी थी  
जो अवश्यमेव विचारणीय थी। किंतु अनिवार्यतासे उन्हें दूर रखना पड़ा। नथूराम-  
का मृत्युपत्र मूलरूप में देखने की अनेक पाठको की इच्छा छायाचित्र के माध्यम से  
पूरी की जा रही है।

शासन ने मुझे इस बंदीकारण संघर्ष में खींचा जिसके फलस्वरूप मुझपर  
पाठको के ऋण के भार के अतिरिक्त अधिवक्तानो का तथा और साहाय्यभूत  
व्यक्तियों के ऋण का भार भी पड़ा और बढ़ा, जो मैं विनम्रतापूर्वक ढो रहा हूँ।

२४-९-१९६९

लेखक

\*\*\*



## उत्तीस

### निर्णयपत्र का सारांश

महाराष्ट्र राज्यके बम्बई स्थित उच्च न्यायालय के तीन न्यायमूर्तियों के विशेष न्यायपीठने ( बेंचने ) जो निर्णयपत्र दिया उसके २१७ टंकलिखित पृष्ठ हैं । उसमें विधि विषयक ( अर्थात् कानूनी ) चर्चा, आक्षिप्त भागों के समेत पुस्तक के प्रकरणों का सारांश, शासन के लिये आक्षेपों का निराकरण तथा खंडन, अभिवक्तव्य में ( अंग्लमेंट में ) लिये गये आक्षेपों के उत्तर ऐसे स्थूल भाग हैं । महत्व का भाग इस प्रकार है—

पुस्तक का मुख्य विषय, पुस्तक में लेखक ने सर्वसाधारणतया प्रयोग की हुई भाषा का स्वरूप उस भाषाका रस तथा उसका प्रभाव, ऐतिहासिक घटनाओं का, हिंदु उत्पत्ति के शास्त्र सिद्धान्तों का और पौराणिक कथाओं का लेखक ने लिया हुआ भरकन सदन, भाषा में पायीजानेवाली उपमायें, उत्प्रेक्षायें, उससे अभिमत अर्थ, ऐसे और इसके साथ ही अन्य प्रकार की कहावतों का ( भाषालकारों का ) उसने किया हुआ अनिविध प्रयोग इससे लेखक की भाषा में निर्माण हुआ सामर्थ्य ही नहीं अपितु उनकी शैली की सुन्दरता और अपने ग्रंथ से पाठकों को जो बोध लेना चाहिये, ऐसा उसका अभिप्राय है वह अभिप्राय अथवा पुस्तक के ध्यानपूर्वक पढ़ने से लिया जा सके वह अर्थबोध भ्रम में आवे इसलिये हमने पुस्तक के लेखन का अभी तक विम्लेषण किया है ।

हमने उन पुस्तक का सब अंगों से विचार किया है । किन्तु हमारी राय में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच द्वेषभाव फैलानेवाला लेखन उसमें है इस शास्त्रीय अभिप्राय ने सहमत होने में हम असमर्थ हैं । हमारा स्पष्ट अभिप्राय यह है कि पुस्तक में ऐसा कोई लेखन नहीं है । भारतीय दण्ड विधान ( इंडियन पीनल कोड ) धारा १५३ ( झ ) के अंतर्गत जो प्रकाशन दण्डपात्र हो, ऐसा लेखन भी पुस्तक

में निश्चय ही नहीं है। वैसे कहा जाय तो हिन्दु और मुस्लीम इनके बीच शत्रुता अथवा द्वेष निर्माण हो इस हेतु से लिखा गया कोई भी लेखन उसमें नहीं पाया जाता। हमारा इस प्रश्न पर समाधान हुआ है। पुस्तक यदि सीधे अर्थ से पढ़ी जाय तो लेखक का भी वैसा हेतु नहीं दीखता अर्थात् लेखक का वैसा हेतु भले ही हो, यदि वह धारा १४३ (अ) का न उल्लंघन हो तो वह भी बात विचारने योग्य नहीं है यह भी यहाँ बताना आवश्यक है।

राजहूती (जब्तीकी) आज्ञा के लिए पुस्तकपर जो आक्षेप लिये गये हैं क्या वे साधारण हैं? इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रारम्भ में पुस्तक का विषय क्या है यह देखना पड़ेगा। स्थूलरूप से पुस्तक का विषय गांधीजी का वध है। किन्तु उसको ऐसी व्याख्या करना भी बहुत ही स्थूल होगा। क्योंकि पड़यन्त्र कहाँ और क्यों हुआ, प्रार्थनास्थलपर की घटना जिसका पर्यवसान अत में गांधीजी के देहान्त में हुआ, अपराधान्वेषण की दिशा न्यायालयके निर्णय; फांसीके दंडका प्रत्यक्ष शब्दांकन, तीन दंडितोंका वदीवास और उनकी मुक्तता, इनका पुस्तक में निर्विकारता से वर्णन है यह बात नहीं है। इन घटनाओं के घागेको पकड़ लेखक ने अपना प्रतिपादन विषय रूँथा है।

### पुस्तक का मुख्य विषय

लेखन को प्रेरणा देनेवाला ही नहीं अपितु पाठक को सबसे अधिक प्रभावित करनेवाला मध्यवर्ती प्रतिपादन पुस्तक में यह है कि 'गांधीजी का वध यह किसी भ्रमिष्ट मनुष्यका कृत्य नहीं था, वह एक राजनीतिक वध था, और उसका कारण यह था कि गांधीजी भारत के एक अल्पसंख्यक वर्गविशेष के पक्ष में भारत का अहित होवै तो भी झुकते थे। देश का विभाजन हुआ उससे लोगो पर जो आपत्तियाँ थीं, उस अवस्था में गांधीजी ने मुस्लीम तुष्टीकरण नीति वैसे ही प्रवाहित रखी। भारतीय शासन ने पाकिस्तान को पैसों का प्रदान करने से इनकार किया किन्तु अशत शासन को वह राशि देने के लिये बाध्य करने के हेतु गांधीजीने १३ जनवरी १९४८ को अनशन आरम्भ किया। शासन ने जैसे ही घोषित किया कि पचपन करोड़ रुपये का प्रदान पाकिस्तानको किया जायगा, गांधीजी ने अनशन तोड़ा।' पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय यह है कि गांधीजी का वध देश विभाजन करने के निर्णय का तथा उपरिलिखत पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तानको देने का मूल्य हुआ।

पुस्तक का बहुतसा भाग अन्य विषयों से भी भरा है। 'दूरत्व के दिन' इस नीचे अध्याय में लेखक ने अपनी अनुपस्थिति में घर्मपत्नी सिधूको जो वष्ट मर्ने पड़े उसका वर्णन किया है जो हृदय को सद्गदित करनेवाला है। उसका प्रतिपादन है कि गांधीवध जैसे राष्ट्रव्यापक अपराध में कैसे हुए दंडित के परिवार को भी एक प्रकार का अप्रत्यक्ष देहदण्ड भुगतना पड़ा है।

-- दंडित का कारावासी जीवन, अधिकारियों का सहानुभूतिपूर्व वर्तव और बंदियों के एक विशिष्ट वर्ग के प्रति शासनकी क्रूर, प्रतिशोधपूर्ण नीति यह एक प्रतिपाद्य विषय पुस्तक में है।

इस पुस्तक का रख हिंदुस्थान के हिंदू और मुस्लीमों के राजनीतिक सबंध की ओर नहीं है। प्रचलित समय के साम्प्रदायिक संबंध की समस्या का तो वह तनिक भी विचार नहीं करता। अविवाद्य ऐतिहासिक घटनाओं का उसमें विवरण है। हमारा समाधान हुवा है कि लेखक ने इतिहास को विकृत रूप नहीं दिया है।

प्रकाशक का कहना है कि गांधीवध अब एक इतिहास है, उस आपत्ति के सत्य कारण कौन थे यह दिखाने का उसमें प्रयास है। और यह प्रकाशक का कहना बहुतसा यथार्थ है। शासकीय अमिषक्ताने (अंडव्होकेट जनरल ने) कहा है कि मुसलमान वस्तुतः परदेश के हैं और उनकी अन्याय्य मागे ठुकराने के लिये हिंदुओं को सिद्ध रहना चाहिये। हम इससे सहमत नहीं हो सकते।

यहां तक छानबीन हुई पुस्तक के प्रतिपाद्य विषय की। किंतु उपमा, उत्प्रेसा, गर्भित अर्थ आदि के बारे में कहना हो तो वह अनगिनत है। इतनी कि उनकी गिनती करना ही हमने छोड़ दिया। किंतु उनका प्रयोग भी, गांधीजी की अनुनय नीति से पाकिस्तान की निर्मिति हुई और उस अनुनय की वेदीपर वे बलि चढ़े इस कथन के संदर्भ में किया गया है।

## लेखक की भाषा

पुस्तक की भाषा, उपमा, उत्प्रेसा और अन्य अलंकारों से परिपूर्ण है। उससे लेखक की भाषा मनोवेधक और प्रौढ़ हुई है। लेफ्टनंट गवर्नर कहते हैं कि उनके संस्कृत के ज्ञान से संस्कृत प्रचुर मराठी पढ़ना और उसका तथ्य समझने में उन्हें सुविधा हुई। अब मराठी भाषा हम भी भली भांति जानते हैं। किंतु फिर भी पुस्तक के कई उद्धरण आक्षेपाह्व है ऐसा शासन द्वारा क्यों कहा गया है यह समझने के लिये हमें वे उद्धरण विशेष ध्यान से पढ़ने पड़े। साधारण पाठक को पुस्तक की शब्द संपदाका आकलन करने के लिये न इतना समय होता है, न इतना ज्ञान। पुस्तक के एकाग्र स्थान पर आया हुआ प्रक्षुब्ध उद्धरण छूट निकालने के लिये तो हमें उसमें बहुत ही गहराई में जाना पड़ा।

पुस्तक का बोध ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता। हा, अनुनय से देश का कभी राज नहीं होता यह बोध अभिप्रेत हो तो बात और है। लेखक कोई तात्पर्य नहीं देता।

महत्त्वपूर्ण, उद्धरणों में से 'शोष' अर्थात् 'अन्वेष्ण' इस प्रस्तावना का एक आसेपाह्व उद्धरण है। वह सब हमने दिया ही है। उससे प्रकाशक, पाठक के मन

पर यह अंकित करना चाहता है कि वधक ने गांधीजी का वध व्यक्तिगत हेतु से नहीं किया है किंतु गांधीजी की नीति से देश का विभाजन हुआ इसलिये। 'सावरकर स्मरण में आयेंगे' इस कथन से उसका कहना है कि हिंदुस्तान एक ओर अखंड रखने पर सावरकर तुले हुवे थे। इसलिये जिनके घरवार विभाजन के समय रक्तपात से लयपथ हुए उन्हें सावरकर स्मरण आयेंगे और नथुराम की याद आयेंगे वह भी उसी कारण से। अर्थात् हमें यह स्पष्ट करना होगा कि हम प्रकाशक के और लेखक के इस प्रतिपादन से सहमत हैं ऐसा कोई न समझे। उसके विपरीत हमारा मत है कि गांधीजी ने सैकड़ों हिंदुओं के और मुसलमानों के प्राण बचाये थे। इस वस्तुस्थिति की ओर किसी भी इतिहासकार को आनाकानी नहीं करनी चाहिये। किंतु पुस्तक के बारे में जो आक्षेप हैं वह यह है कि हिंदू और मुसलमानों के बीच शत्रुता फैलानेवाला लेख उसमें है। हमें इतना ही देखना है कि पुस्तक पर लगाया गया आरोप सिद्ध हुआ है या असिद्ध।

विद्वान् शासकीय अधिवक्ताने यह भी कहा कि पुस्तक 'सत्यका अन्वेषण' है। किंतु लेखक और प्रकाशक का यह इतिहास कथन निरा असत्य है। अधिवक्ता का यह विधान मानना हमारे लिये कठिन है। पुस्तक का उद्देश्य यह नहीं है कि इतिहास को विकृत ढंग से लिखकर नथुराम का उदात्तीकरण करना और उस माध्यम से हिंदु मुसलमानों में द्वेषभाव फैलाना।

### इतिहासविकृति नहीं की गयी -

अब इस विधेय पर हम आये ही हैं तो गांधीजी का अनशन और पाकिस्तान को देने का देन इसके बीच कार्यकारण भाव दिखाने में लेखक को कोई प्रमाण है या नहीं यह हम देखें। शासकीय अधिवक्ता कहते हैं कि गांधीजी ने यह अनशन अन्य कारणों से किया था और लेखक ने अपनी सुविधा के लिए इतिहास ही विकृत किया है। किंतु लेखक ने इंडियन इनफ़र्मेशन, २ फरवरी १९४८ के अंक के उद्धरण दिये हैं। उससे सरदार पटेल और पणमुखम् चेट्टी ने काश्मीर प्रश्न का समाधान होने तक पाकिस्तान को पैसे न दिये जायें यह कहा है और बाद में वह निर्णय पीछे लिया गया यह भी कहा है। वह पीछे लेना गांधीजी की विनति के अनुसार लिया गया यह भी स्पष्ट है। इसलिये गांधीजी ही इन पैसे के प्रदान के लिए शासन को विवश करने के उत्तरदायी हैं ऐसा लेखक ने अनुपयोक्ति आधार पर लिखा है। अतएव हम नहीं मानते कि अपनी सुविधा के लिये लेखक ने इतिहास विकृत किया है।

श्री प्यारेलाल की 'महात्मा गांधी दि लास्ट फेज' पुस्तक की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया था। अपने ग्रंथ के पृष्ठ ७११ पर प्यारेलालजी कहते हैं कि अनशन प्रारंभ होने के चौबीस घंटों के अंदर अंदर हिंदुस्थान गणतन्त्र का

मन्त्रिमंडल बिलीभवन के घास पर गांधीजी के इर्दगिर्द बैठा। पचपन करोड़ रुपये देने के प्रश्न पर विचारविमर्श हुआ। दि० १५ को शासन ने पचपन करोड़ रुपये तुरन्त देने का निश्चय घोषित किया। गांधीजी ने कहा उस निर्णय के पीछे मेरा अनशन ही था।

प्यारेलालजी का वृत्तान्त हमने इतने विस्तार से दिया है। क्योंकि हमारे सामने बार बार यह कहा गया कि लेखक ने इतिहास विकृत किया है। हमारी राय में प्यारेलाल की उसी पुस्तक से आवेदक का कहना बहुत अश से प्रमाणित होता है। इसलिये अनशन और अगभूत घटनाओं के बारे में उसने इतिहास का विकृतीकरण किया है यह आरोप सिद्ध नहीं माना जा सकता।

अब नथूराम के विषय में जो उद्धरण आये हैं उनका विचार करें। वे दिखाते हैं कि नथूराम से जिनका संबंध आया उनको नथूराम एक व्यक्ति इस भर्मादा में उसके प्रति आदर भावना थी। लेखक कहता है कि वदिशाला के अधिकारियों ने उसके साथ अच्छा बर्ताव किया, न्यायमूर्तियों ने उसकी सराहना की। न्यायालय में बैठी उच्चभ्रू स्त्रियों ने सिसकियाँ दी और आँसू बहाये। उन्होंने उसके लिये स्वेटर बुने। दूसरे कुछ उद्धरणों में लेखक ने सरदार पटेल के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है क्योंकि उन्होंने दण्डितों को 'ब' श्रेणी दी। इन उद्धरणों के बारे में आप्पे यह है कि यह उद्धरण दिखाते हैं कि सरदार पटेल जैसे कट्टर कांग्रेसी लोगों को भी नथूराम के कार्य के प्रति सहानुभूति थी।

यहलें उद्धरणों के बारे में हमें यह नहीं दिखाया गया है कि वे निर्देश मनगढ़त हैं। ठीक ठीक कहा जाय तो पंजाब उच्च न्यायालय के एक न्यायमूर्ति जी. डी. खोसला ने जिनके सामने इस अभियोग का पुनरावेदन प्रस्तुत हुआ था, अपने 'दि मर्डर ऑफ दि महात्मा' ग्रंथ में जो लिखा है उससे नथूराम के संबंध में लोगों की क्या भावनाये थी, इस विषय पर पुस्तक में आये हुए सदर्भ सत्य ही प्रतीत होते हैं।

सरदार पटेल के बारे में दिए उद्धरण के सबब में कहना हो तो, प्यारेलालजी के पुस्तक से, तथा मौलाना आजाद के 'इंडिया विन्स फ्रीडम' ग्रंथ से यह प्रतीत होता है कि पाकिस्तान को ५५ करोड़ राशि देने को सरदार पटेल का विरोध था और गांधीजी और पटेल के बीच देश-विभाजन के प्रश्न पर मतभेद हुये थे यह भी स्पष्ट है। अर्थात् हम नहीं कह सकते कि सरदार पटेल की सहानुभूति के कारण ही दण्डितों को 'ब' श्रेणी दी गयी यह विधान कहीं तक सच है। किंतु वह असत्य है यह कहने के लिए भी हमारे पास स्पष्ट कारण नहीं है। दूसरी बात, इन विधानों से यह अर्थ नहीं निकल सकता है कि सरदार पटेल के अभिप्राय में नथूराम का कृत्य स्तुत्य था।

शासकीय अधिवक्ता का कहना है कि नथूराम का गुणगान करने में लेखक का हेतु यह कहना है कि वह और गांधीजी एक ही स्तर पर हैं, कि वह नथूराम का स्थान ऊँचा है। हम मानते हैं कि पुस्तक का मध्यवर्ति सूत्र यह है कि नथूराम का कृत्य उसके पीछे के हेतु से अलग निकालना चाहिये। किसी व्यक्ति का कृत्य धिक्कार करने योग्य हो तो भी उसका हेतु स्तुत्य हो सकता है। किन्तु शासकीय अधिवक्ता ने जो अर्थ लगाया है, बहुत ही खीचातानी का है जो साधारण पाठक की मानसिक कक्षा के परे है।

पुस्तक के ७६, ११७ और १२९ पृष्ठों पर के उद्धरणों का और एक समूह है जिसके आधार पर हमें कहा गया है कि लेखक के प्रतिपादन का हेतु है कि मुसलमान सबसे क्रूर लोग हैं वे हिन्दुस्तान की एकता के विरोधक हैं और स्वतंत्रता आंदोलन का भी उन्होंने विरोध किया था। अब यह सच है कि मुसलमानों ने स्वतन्त्रता आंदोलन का विरोध किया ऐसा लेखक ने कहा है। किन्तु बीर सावरकर ने सूत्र कहा है कि यदि आप साथ आयें तो आपके साथ, साथ न आयें तो बिना आपके और विरोध करें तो उस विरोध को काटकर हम स्वतंत्रता की ओर बढ़ेंगे, यह भी लेखक ने कहा है। और रा. स्व. संघ को स्वतंत्रता की रक्षा के दूर करनेवाला समर्थ हिंदू समाज बनाना था यह भी लेखक ने कहा है। हम इस बात से सहमत होने में असमर्थ हैं कि इस प्रकार के छुटपुट उद्धरणों से हिंदू मुसलमानों के बीच वैमनस्य निर्माण होगा। क्या यह सच नहीं है कि एक धारणा ऐसी है कि मुस्लिम लोग के कुछ सदस्य इस मत के थे कि—अंग्रेज यहाँ से न चले जायें ?

चौथे अध्याय में लेखक ने कहा कि आग्रे और नथूराम ने कहा कि उनकी अंतिम इच्छा यह है कि उनके फूल सिन्धु नदी में प्रवाहित किये जायें। किन्तु उससे यदि कोई तात्पर्य हो तो यही है जो किसी समय हिन्दुस्तान का भूभाग था और जो पाकिस्तान को गया है वह हिन्दुस्तान फिर से प्राप्त करे। हमारी दृष्टि से, जो मुसलमान हिन्दुस्तान के नागरिक हैं उनको इस विधान से ठेस पहुँचने की सम्भावना नहीं है। क्योंकि जो भूभाग खोया है उसको जीतने का प्रश्न राजनीतिक है न कि सांप्रदायिक।

### आक्षेपाहं कुछ नहीं है

अंत में, कुछ उद्धरणों के आधार पर हमें बताया गया कि राजनीतिक हत्या न्यायोचित रहती है और स्तुत्य भी तथा पाकिस्तान के विरुद्ध, और पाकिस्तानी प्रवृत्ति के मुसलमानों के विरुद्ध यदि प्रतिशोध की और रक्त पिपासु धारणा हो तो वह भी स्तुत्य है। हमने ये उद्धरण बार बार पढ़े किन्तु हम जिस बात को

पुष्टि नहीं दे सकते कि वदी आज्ञा में जो कारण दिये हैं उन कारणों से वे आक्षिप्त हैं। उसमें एक उद्धरण है नयूराम ने १५ नवंबर १९४९ को फाँती जाने के पूर्व अपने माता पिता को लिखे पत्र में पत्र नयूराम ने कहा है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्ध में और अन्य स्थानों में बहुत ही दुरभिमानी और महत्व के व्यक्तियों को विश्व कल्याण के कारण मारा था। अर्जुन को तो उन्होंने अपने सबधियों का वध करने का भी उपदेश दिया था। इन उद्धरणों का अर्थ इतना ही है कि वक्क के कृत्य में अपराधोपन होता है। किन्तु उसका मूल्यांकन उसके पीछे के लक्ष्य के हेतु का विचार और उस व्यक्ति के अन्य गुणों से वह घटना अलग ही करना चाहिये। गांधीजी के वध की उसमें प्रशंसा है यह सत्य है किन्तु मुसलमान प्रश्न से यह सब संबद्ध नहीं है। एकाध वाक्य अथवा परिच्छेद सदर्थ से अलग किया गया तो भावक्षम मन के लिये वैसा साहित्य ज्वालाग्राही भी हो सकता है। किन्तु यह प्रक्रिया वास्तविक नहीं समझी जानी चाहिये। पुस्तक साकल्य से पढ़ना चाहिये और वैसा पढ़े तो वैसे आक्षेपों से वह मुक्त ही करना होगा।

### पुस्तक का संकुल परिणाम

शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा है कि पुस्तक की भावनाओं को कई अंतः-करणों में गहरा स्थान मिलेगा, मुसलमानों को शासन आत्मीयता दिखाती है इस लिये पुस्तक की भावनाएं हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध उचकायेगी, और पाठकों पर परिणाम यह रेंगता रहेगा कि गांधीजी एक पाषाण हृदय और केवल मुसलमानों का हित देखनेवाले राक्षस थे। बात यह है कि पुस्तक की भावनाओं को कवियों के अंतःकरण में गहन स्थान मिलेगा अवश्य। क्योंकि उसकी भाषा प्रभावी है और रचना हेतुपूर्ण है। किन्तु स्पष्ट रूप में कहा जाय तो उसका परिणाम सांप्रदायिक द्वेषभाव फैलानेवाला नहीं होगा। उसमें ऐसी भावनाओं को आवाहन नहीं है। पाठक के मन में पुस्तक पढ़ने के बाद बहुत देर तक रहनेवाली भावनाएँ जो रेंगती रहेंगी वे ये हैं कि देश की अखंडता का भग्न नहीं होना चाहिये। गांधीजी की अनुनय की नीति से देश विभाजन अपने साथ लोगों के लिये अनंत आपदाएँ ले आया। पाठक सिंहूर उठेगा इन भावनाओं से, वह कपित होगा लेखक के माता-पिता की स्थिति से उसकी पत्नी और बच्चों की दयनीय अवस्था से।

वीर सावरकर के राजनीतिक तत्त्वज्ञान का विवरण देनेवाले आठवें अध्याय की ओर हमारा ध्यान खींचा गया है। उसमें जो परिच्छेद हैं मानो, "हिन्दुराष्ट्र और मुस्लीमराष्ट्र के बीच युद्ध छिड़ा है। मुस्लीम राष्ट्र ने हिन्दुराष्ट्र के सेनानी को घेरने की प्रतिज्ञा की है इस प्रकार की अथर्थाथ अभिनिवेश से शासन ने ज्वलत राष्ट्रभक्त सावरकर को घेरने की सोची।" इसका खूब शासन की ओर है। उसमें सांप्रदायिक भावनाओं को आवाहन है यह हम नहीं मानते। उसमें जिस

पर जोर है वह शासन की पक्षपात-भरी प्रवृत्तिपर। इसलिये कदाचित् शासन के अनादर की भावना बन सकती है। किंतु वह विषय भिन्न है।

न्यायालय ने पुस्तक पर प्रसिद्ध लगानेवाली आज्ञा को आवेदकों को मूलभूत अधिकारों में वचित करनेवाली अतएव सविधानवाह्य ठहरायी। न्यायालय ने आदेश दिया कि शासन लेखक को ३०००) और प्रकाशक को १००० ) रुपये क्षतिपूर्ति स्वरूप दे।

उक्त रुपये क्षतिपूर्ति स्वरूप शासन से लेखक को ३०००) तथा प्रकाशक को १०००) लब्ध तत्क प्रप्त हो चुके हैं।

\* \* \*



दूरध्वनि :  
पूना ५३५४६

वितस्ता प्रकाशन  
१२०६/१ व शिवाजीनगर  
पूना ४ : ( महाराष्ट्र )  
अप्रैल १९७३

प्रिय पाठक !

सप्रेम नमस्कार !

‘गांधीवध और मैं’ और ‘गांधीवध क्यों’ ? इन ग्रन्थों का गुजराती और अन्य भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित करने के हेतु ‘वितस्ता प्रकाशन’ आपसे ऋण अर्थात् सुरक्षा निधि चाहता है। दो वर्ष अवधि के लिए प्रतिवर्ष प्रतिशत २० ६) व्याज से ऋण की प्रार्थना है। सौ अथवा सौ से अधिक राशि उपयुक्त होगी।

‘वितस्ता प्रकाशन’ के नाम विकर्ण ( ड्राफ्ट ) अथवा धनादेश ( चेक ) भेजे। धनादेश भेजाने में २० १-५० वर्तन ( कमीशन ) लगता है। अतः, धनादेश के साथ वह राशि अधिक भेजें।

विश्वास है कि आपसे और आपके इष्ट-मित्रों से त्वरित सहयोग मिलेगा। धन्यवाद।

नव वर्ष  
वि० सं० २०३०

भवदीय  
गोपाल विनायक गोडसे  
सौ. सिन्धू गोपाल गोडसे

